श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग के ग्रंथ

हिंदी में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
१.	श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली २८ भाग, पूरा सेट	१०)	१५)
	फुटकर भाग	॥)	॥।)
२.	उक्त ग्रंथावली की संशोधित आवृत्ति के पहले नौ भाग, तीन जिल्दों में। प्रति जिल्द	१)	१॥)
३.	दशादेश (राम बादशाह के १० हुक्मनामे)	१)	
४.	राम-वर्षा भाग १-२	१)	१॥)
५.	राम-पत्र (गुरुजी के नाम राम के पत्र) ...	१)	१॥)
६.	बृहत् राम-जीवनी (उर्दू कुल्लियाते-राम जिल्द २ का अनुवाद), पृष्ठ ६७२ ...	२॥)	३)
७.	संक्षिप्त राम-जीवनी, पृष्ठ ६४ ...	।)	
८.	श्रीमद्भगवद्गीता, स्वामी राम के पट्ट शिष्य नारायण स्वामी कृत व्याख्या सहित, दो	४)	६)
	जिल्दों में, पृष्ठ लगभग २०००, प्रति जिल्द...	२)	३)

आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह बेदी कृत

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
९.	वेदानुवचन, पृष्ठ लगभग ५७० ...	१॥)	२)
१०.	आत्मसाक्षात्कार की कसौटी, पृष्ठ १७२	॥)	॥।)

उर्दू में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
१.	कुल्लियाते-राम जिल्द १ (रिसाला अलिफ़ के १२ नंबर), पृष्ठ लगभग ५०० ...	१॥)	२)
२.	कुल्लियाते-राम जिल्द २ (अर्थात् स्वामी राम की सविस्तर जीवनी), पृष्ठ लगभग ५००	१॥)	२)
३.	राम-वर्षा, दोनों भाग, पृष्ठ लगभग ५२५...	१)	१॥)
४.	राम-पत्र (गुरुजी के नाम राम के ख़त) पृष्ठ २०८	॥)	॥।)

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
५.	संक्षिप्त जीवनी, पृष्ठ लगभग ३३० ...	॥)	१)
	आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह वेदी कृत		
६.	वेदानुवचन, पृष्ठ लगभग ५२० ...	१॥)	२)
७.	मियारुल मिकाशफ़ा (छांदोग्य उप० के छठे प्रपाठक की व्याख्या), पृष्ठ लगभग १७० ...	॥)	१)
८.	रिसाला अजायबुल इल्म, पृष्ठ लगभग १२०	।=)	॥)
९.	जगजीत प्रश्न (ईशावास्योपनिपद् की शांकर भाष्यानुसार व्याख्या), पृष्ठ लगभग १००	।=)	॥)

अंग्रेज़ी में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
१.	स्वामी राम के समग्र अंग्रेज़ी व्याख्यान व लेख, आठ जिल्दों में, पूरा सेट ...	७)	१४)
	प्रति जिल्द	१)	२)
२.	पैरेबल्स आफ़ राम (स्वामी राम की समग्र कहानियाँ), पृष्ठ लगभग ५००	२)	३)
३.	स्वामी राम की नोटबुक्स, दो जिल्दों में	२)	४)
	प्रति जिल्द	१॥)	३)
४.	हार्ट आफ़ राम	॥)	१)
५.	पोइम्स् आफ़् राम	॥)	१)
६.	संक्षिप्त राम-जीवनी, गणित पर व्याख्यान के सहित	॥)	
७.	प्रैक्टीकल गीता (बा० नारायणस्वरूप कृत)	।=)	
	स्वामी राम के छपे चित्र भिन्न-भिन्न आकृति के १० चित्रों का एक सेट... ...	॥)	
	प्रति चित्र	-)	
	तिरंगा चित्र बड़ा साइज़ ...	।)	
	,, छोटा साइज़ ...	=)	

मैनेजर—श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ.

श्री स्वामी रामतीर्थ

संन्यासाश्रम की अंतिम फोटो

लखनऊ 1905

भूमिका

राम भगवान् की असीम कृपा से आज हम उनके हिंदी-जीवन-चरित को अपने पाठकों के हस्तकमल में पहुँचाते हुए फूले नहीं समाते। जिस प्रकार स्वामी राम के समग्र अँगरेज़ी व उर्दू उपदेशों का हिंदी-अनुवाद लीग द्वारा ग्रंथावली के रूप में प्रकाशित हुआ है, उसी प्रकार उनकी सविस्तर उर्दू-जीवनी का यह हिंदी-अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। या यों कहा जाय कि उर्दू ख़ुमख़ाना-ए-राम जिल्द दूसरी का यह हिंदी-अनुवाद है, जिसे राम भगवान् के पट्ट शिष्य श्रीमन्नारायण स्वामीजी ने पहले उर्दू-भाषा में लिखा था, और फिर उसके विपुल भाग का हिंदी-अनुवाद बहुत वर्ष हुए हिंदी-ग्रंथावली के अनेक भागों में उचित स्थलों पर प्रकाशित कराया था। अब उन बिखरे हुए मोतियों (जीवनी-संबंधी लेखों) को जिला देने और उक्त उर्दू-रचनानुसार एक सूत्र में पिरोने में जो सहायता श्रीयुत चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासुजी ने दी है, उसके लिये लीग उनको धन्यवाद देती है और प्रेम से उनका लिखा हुआ निवेदन भी इस जीवनी के आरंभ में दिए देती है।

हमें आशा है कि हमारे पाठकगण राम की इस पवित्र जीवनी के निरंतर अध्ययन से अपना जीवन सुधारेंगे, और इस प्रकार न केवल अपने और अपनी मातृभूमि को वरन् सारे संसार को भी लाभ पहुँचावेंगे।

इस बृहत् जीवनचरित से यद्यपि बहुत-से उपदेश मिलते हैं, परंतु हमारे पाठकगण यदि निम्नलिखित एक ही उपदेश को ग्रहण करें तो भी बेड़ा पार है।

"Where there is a will, there is a way"

"होवे दृढ़ संकल्प ही जांहि।
निकले मार्ग-पूर्ति हि तांहि॥"

बाल-अवस्था में इधर माता का वियोग और उधर विवाह का हो जाना कुछ कम बाधाएँ नहीं हैं, और फिर उस पर घर की निर्धनता तथा पिता के चित्त की कठोरता इन कष्टों की दिनदुगुनी और रातचौगुनी वृद्धि करती हैं। मगर वाह रे वीर! तूने उत्साह वा हिम्मत से इन रुकावटों के पत्थरों को अपनी उन्नति की निसेनी का पत्थर बना लिया (you turned the obstacles into stepping stones) और उक्त बाधाओं के पत्थरों को कुचल कर स्वतंत्रता व आज़ादी की पहाड़ी पर अपने को पहुँचा दिया।

मैं श्रीमन्नारायण स्वामीजी को धन्यवाद दिए बिना इस भूमिका को समाप्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह न केवल उक्त जीवनी के मूल-लेखक व संपादक हैं, बल्कि उसके हिंदी-अनुवाद के शोधक भी हैं।

सुर्जनलाल पांडेय
(उपनाम शांतिप्रकाश)
मंत्री
श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ.

निवेदन

परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज का जीवनचरित सरलता से सुकोमल, उत्साह से ओजस्वी, सज्जनता से सुरभित, साधुता से धवलित, प्रेम से स्निग्ध, भक्ति से मधुर, तपस्या से पूत, पवित्रता से पावन, सत्यता से प्रखर, ज्ञान से प्रकाशमान और उन्माद (निजी मस्ती) से अरुण है। श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, विश्वास, विवेक, जितेंद्रियता, संयम, कर्मनिष्ठा, परिश्रम, सहनशीलता, साधुता, सत्य, विद्या, ज्ञान, कवित्व, देशभक्ति, त्याग और परोपकार आदि गुणों के वह आगार थे। जो कुछ उन्होंने सत्य जाना, उस पर विश्वास किया, और उसके साँचे में अपने जीवन को ढालकर संसार के सामने एक उत्तम आदर्श उपस्थित किया। वह एक सच्चे जिज्ञासु थे, अतः उन्होंने सच्चा ज्ञान प्राप्त किया। वह एक सुदृढ़ सत्यान्वेषी थे, अतः उन्होंने चरम सत्य का दर्शन किया ; वह एक सच्चे ईश्वरभक्त थे, अतः उन्होंने साक्षात् ब्रह्म में विहार किया ; वह एक सच्चे साधु थे, अतः उन्होंने अल्प आयु में ही परमहंस-पद प्राप्त किया ; वह एक सच्चे त्यागी थे, अतः उन्होंने कामनाओं पर विजय पाकर परमानंदलाभ किया। उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य-व्रत और पुरुषार्थ-बल से आशा, तृष्णा, राग, द्वेष, दंभ, पाखंड, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और अहंकार आदि दुर्दांत और दुर्जेय शत्रुओं पर आक्रमण करके आत्मिक स्वराज्य को प्राप्त किया, और शत्रुहीन प्रकृति के

सुविस्तीर्ण साम्राज्य में सम्राट् के उस सिंहासन को सुशोभित किया जिस पर अभिषिक्त होने पर अग्नि, वरुण, मरुत्, कुबेर, सूर्य, चंद्र, दिग्पाल और इंद्रादि देवगण दास के समान आदेश की प्रतीक्षा करते हैं, तथा माया या प्रकृति समस्त भोगों की भेंट लिए दासी के समान सर्वकाल सेवा में इस आशा से उपस्थित रहती है कि उसकी ओर सम्राट् की एक दृष्टि हो जाय और वह अपने को कृतार्थ एवं सौभाग्यशाली समझे। अतः राम बादशाह का जीवनचरित सामान्य संसारीजनों के लिये एक सुंदर और सुमधुर प्रसाद है। स्वामी राम-जैसे महापुरुष इस संसार में देर में आते और देर में पहचाने जाते हैं।

यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि स्वामी रामतीर्थजी महाराज वर्तमान युग में एक विद्वान् तत्त्वदर्शी महर्षि हुए हैं। उर्दू-फ़ारसी और अंग्रेज़ी इत्यादि के पंडित, और कॉलेज के प्रोफ़ेसर होकर भी उन्होंने व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, याज्ञवल्क्य, नारद, जाबालि, वामदेव और सनकादि प्राचीन ब्रह्मज्ञानियों की भाँति संसार त्यागकर वनवासी तपस्वी होकर ब्रह्म-साक्षात्कार किया। वह बड़े अध्ययनशील, मननशील और तत्त्वचिंतन में निरत रहते थे। उन्होंने पाश्चात्य भौतिक विज्ञान और पाश्चात्य दर्शन के सिद्धांतों को अनुशीलन कर वेदांत-तत्त्व पर गंभीर विचार किया और भारतीय ब्रह्मविद्या का गहन अवगाहन करके व्यावहारिक वेदांत का वह उदार सार्वभौमिक उपदेश दिया, तथा देश और विदेश में वेदांत का डंका बजाया, जिससे हिंदू-धर्म पर लगे हुए नैष्कर्म्यता, संकीर्णता और पाखंड के कलंक को धो दिया! उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं दिया, वरन् जो कुछ अपने श्रीमुख से कहा, उसे अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया, और वह स्वयं गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ की परिभाषा के जीवित और मूर्तिमान् उदाहरण

हो गए थे। उनके अल्पकालिक जीवन में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चारों आश्रमों का हमें परिदर्शन मिलता है। अतएव उनका जीवन पूर्ण है और उनका पवित्र चरित्र साधकों और जिज्ञासुओं के लिए एक प्रकाशपुंज पथप्रदीप है।

हिंदी-भाषा-भाषी सौभाग्यशाली हैं कि परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के परम प्रिय पट्ट शिष्य श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज ने लखनऊ में श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन-लीग स्थापित करके उसके द्वारा हिंदी में श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली निकालकर २८ भागों में स्वामी राम के समस्त लेखों, व्याख्यानों, कविताओं और उनके निजी पत्रों तक को हिंदी में अनुवाद कराकर प्रकाशित करा दिया है, जिससे हिंदी-भाषी सज्जन स्वामी राम के कल्याणमय उपदेशों और संदेशों से मनमाना लाभ उठाते और उठा सकते हैं। इस ग्रंथावली के कई भागों में स्वामी राम का संक्षिप्त परिचय भी प्रकाशित हो चुका है जिससे ग्रंथावली के पाठक स्वामी राम के पवित्र जीवन से नितांत अपरिचित नहीं हैं, किंतु अब तक हिंदी में उनकी सांगोपांग बृहत् जीवनी एक पुस्तक में न होने से हिंदी के पाठक रामचरित का क्रमानुसार संपूर्ण अध्ययन करने से वंचित थे। अतः राम-भक्त और राम-प्रेमियों के लिये लीग ने हिंदी में यह बृहत् जीवनचरित प्रकाशित करके उस अभाव की पूर्ति कर दी। आशा है, हिंदी-प्रेमी इसे देखकर परमानंदित होंगे।

राम बादशाह का यह बृहत् जीवनचरित श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज द्वारा लिखित व संपादित उर्दू "खुमख़ाना-ए-राम—जिल्द दोम" का विशुद्ध हिंदी-अनुवाद है। इसे स्वामीजी ने चार खंडों में विभाजित किया है। प्रथम खंड में स्वामी राम के आरंभिक जीवन का सविस्तर और सप्रमाण वर्णन किया गया

है, और इसमें उनके संसार-त्यागी होने से पूर्व जीवन का उल्लेख है। द्वितीय खंड में स्वामी राम द्वारा लिखित उर्दू "रिसाला अलिफ़" नामक मासिक पत्र के अंतिम छः अंकों के लेख हैं जो 'जल्वा-ए-कुहसार' अथवा 'पर्वतीय दृश्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन लेखों में स्वामी राम महाराज ने अपने ही कर-सरोज से अपनी आभ्यंतरिक अवस्था का बड़ा सुंदर और विशद वर्णन किया है। इससे ज्ञात हो जाता है कि आत्मसाक्षात्कार करने से प्रथम उनके हृदय की क्या अवस्था थी, और किस प्रकार उन्हें आत्मसाक्षात्कार हुआ। इसी लिये इस खंड का शीर्षक "साक्षात्कार का प्रण व निजानंद-अवस्था" रक्खा गया है। आत्म-साक्षात्कार करके ब्रह्मानंद की वारुणी का घूँट पी लेने पर सच्चे उन्माद ने स्वामी राम पर अपना रंग जमाना आरंभ कर दिया, और उसके परिणाम में वह गृहस्थ त्यागकर वनवासी हुए। घर छोड़ने और संसार से मुँह मोड़ने पर स्वामी राम को निजानंद की प्राप्ति हुई, उनके हृदय में आनंद का समुद्र उमड़कर गंभीर गर्जन करने लगा। उन्होंने देखा कि "ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।" (मुंडकोपनिषत्) अर्थात् यह अमृत-रूप ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दाहिने है, ब्रह्म ही बाएँ है तथा ब्रह्म ही नीचे और ऊपर फैला हुआ है। यह सब विश्व ब्रह्म ही है, और ब्रह्म ही श्रेष्ठ है। इस स्थिर और अविनाशी ब्रह्मसाक्षात्कार के सुख को लाभ करके उन्होंने हीन और नाशमान संसारी सुख को तृणवत् त्याग दिया। अतः इस तृतीय खंड का शीर्षक "निजानंद और त्यागावस्था" दिया गया है। इस तृतीय खंड में श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज ने, जो कि उन दिनों वनों में स्वामी राम के निकट ही रहते थे, स्वामी राम के आत्मिक

आनंद और त्याग की दशा का मार्मिक और हृदयवेधी चित्रण किया है। इसी में स्वामीजी महाराज की जापान, अमेरिका एवं मिस्र-यात्रा का वर्णन है, और विदेशों से लौटकर पुनः एकांतसेवी, वनवासी होने और जलसमाधि लेने तक का वृत्तांत है। स्वामीजी ने इसमें राम महाराज के उस अंतिम लेख अर्थात् "निजानंद समस्त विभूतियों का प्रतिज्ञापत्र है" तथा मृत्यु के नाम उनके लिखे हुए आदेश को भी दे दिया है, जिनके लिखने के बाद इस महापुरुष की लेखनी ने सदैव के लिए विश्राम ले लिया, और श्रद्धालु जिज्ञासुओं पर उसके द्वारा जो हिमालय से अमृत-वर्षा होती थी, उसका चिरकालिक अवसान हो गया।

इस प्रकार तीन खंडों में ही स्वामी राम का जीवनचरित समाप्त हो गया है, और चतुर्थ खंड परिशिष्ट-रूप में है। चतुर्थ खंड पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में है। पूर्वार्द्ध का शीर्षक "स्वामी राम के विषय में लोकमत" रक्खा गया है। इसमें स्वामी राम की असामयिक और अकस्मात् जल-समाधि पर क्षुब्ध होकर राम-प्रेमियों ने शोकोद्गार-रूप में जो विविध लेख और कविताएँ भिन्न-भिन्न साहित्य एवं संवादपत्रों में प्रकाशित कराईं, उनके हिंदी-अनुवाद और उद्धरण प्रकाशित किए गए हैं। उत्तरार्द्ध का शीर्षक "स्वामी राम की मस्तानी कविताएँ" रक्खा गया है। इसमें स्वामी राम के वह लेख और कविताएँ हैं जिन्हें अपने कर-कमलों से लिखकर उन्होंने "रिसाला अलिफ़" के उस परिशेष-अंक में प्रकाशित कराया था जिसके बाद फिर उसका कोई अंक भी नहीं निकला, और जो "नज़्मे-मुअर्रा" के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये कविताएँ स्वामी राम के हृदय का ठीक और सच्चा प्रतिबिंब हैं।

कई साल हुए, एक बार पहले भी, श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज-लिखित इसी बृहत् जीवनी के आधार पर हिंदी में स्वामी

राम की एक संक्षिप्त जीवनी मैंने लिखी थी, जिसे देखकर स्वामीजी महाराज बहुत ही प्रसन्न हुए थे; और उन्होंने उसे लीग की ओर से रामतीर्थ-ग्रंथावली के इक्कीसवें भाग में प्रकाशित करने के अतिरिक्त अलग पुस्तकाकार भी छपा दिया था। इस बार श्रीस्वामी जी महाराज ने अनुग्रह करके मुझे उक्त ग्रंथावली के अनेक भागों में प्रकाशित लेखों को (जो इस बृहत् जीवनी के संबंध में थे) अवलोकन और आवश्यकतानुसार संशोधन करने की आज्ञा प्रदान की, जिसे शिरोधार्य करके मैंने उनकी रचित उर्दू सवानह उमरी के हिंदी-अनुवादित भागों को उक्त रचनानुसार एकत्रित किया और उनके ध्यानपूर्वक अध्ययन और आवश्यक स्थलों पर कहीं-कहीं संशोधन करने में मुझे अवर्णनीय आनंद प्राप्त हुआ।

इस परिश्रम में मूल ग्रंथ के भावों को मुहाविरेदार हिंदी में सुंदरतापूर्वक प्रकट करने की मैंने यथासाध्य चेष्टा की है, तो भी एक भाषा के मौलिक और स्वाभाविक सौंदर्य को दूसरी भाषा में तद्रूप प्रकट करना एक दुःसाध्य कार्य है। फिर कहाँ एक विद्वान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता महात्मा के अलौकिक चरित और गंभीर विचार और कहाँ मेरे समान मायामोहग्रस्त सामान्य प्राणी! अतः इसमें अनेक त्रुटियों का होना संभव है। भरोसा केवल यही है कि इसमें श्रीमन्नारायण स्वामी का सँवारा हुआ रामचरित है, अतएव आशा है कि इसके पाठ से श्रद्धालु पाठकों को अवश्य ही आनंदलाभ होगा और वह इसके द्वारा अपने जीवन का सुपथ देखेंगे। तथास्तु।

विनीत—

चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु

विषय-सूची

प्रथम खंड

(अक्तूबर १८७३ से अगस्त १८९८ तक)

द्वितीय खंड (जल्वा-ए-कुहसार)

(अगस्त १८९८ से दिसंबर १८९८ तक)

तृतीय खंड (निजानंद और त्यागावस्था)

(जनवरी १८६६ से अक्तूबर १६०६ तक)

विषय पृष्ठ

चतुर्थ खंड

पूर्वार्द्ध (राम के विषय में लोकमत)

राम के देहत्याग पर कुछ कविताएँ

उत्तरार्द्ध (राम की मस्तानी कविताएँ)

माया

श्रीस्वामी रामतीर्थ

अमेरिका (१९०४)

ब्रह्मलीन परमहंस

श्रीस्वामी रामतीर्थजी एम्० ए०

का

जीवनचरित

प्रथम खंड

(परमहंस श्रीस्वामी रामतीर्थजी महाराज के पट्ट शिष्य श्री आर० ऐस०, नारायण स्वामीजी की लेखनी से)

आरंभिक जीवन

स्वामी रामतीर्थजी महाराज का आध्यात्मिक जीवन तो उनके व्याख्यानों, पत्रों, कविताओं और ग़ज़लों से अपने-आप टपक रहा है, परंतु उससे न तो उनके शारीरिक जीवन का कुछ पता चलता है, और न यह मालूम होता है

कि यह आशाजनक नवयुवक किन-किन अवस्थाओं से यात्रा करके जीवन के उस अंतिम सोपान (लक्ष्य) पर पहुँचा, जहाँ पहुँचने के लिये सब लोग सामान्यतः और धार्मिक पुरुष विशेषतः व्याकुल रहते हैं।

इस न्यूनता की पूर्ति के लिये यह उचित समझा गया कि स्वामीजी महाराज के शारीरिक जीवन के कुछ आवश्यक वृत्तांत भी संक्षेप से प्रकट कर दिए जायँ, ताकि राम-प्यारे स्वामीजी के प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन से भी परिचित हो जायँ, और यदि संभव हो, तो उस जीवन के आदर्श पर अपने जीवन को बनाने का भी प्रयत्न करें।

जन्म-तिथि और कुल

स्वामी रामतीर्थजी महाराज का जन्म मिती कार्तिक शुक्ला १ संवत् १९३० विक्रमीय, बुधवार, तदनुसार ता० २२ अक्टोबर, १८७३ ई० को, अर्थात् दिवाली के ठीक दूसरे दिन जमघट को, २५ घड़ी ५५ पल पर, पंजाब प्रांत के गुजराँवाला ज़िला के अंतर्गत मुरालीवाला * गाँव में, एक उत्तम गोस्वामी-कुल में हुआ। यह वही वंश है जिसमें रामचरितमानस के सुप्रसिद्ध रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी

* इस ग्राम का नाम मुहरालीवाला था, परंतु कृष्णभक्ति की उमंगों में स्वामीजी इसे मुरालीवाला लिखा करते थे, जिससे उसका नाम मुरालीवाला ही प्रसिद्ध हो गया।

महाराज उत्पन्न हुए थे; और जिसके आदिपुरुष श्रीरामचंद्रजी महाराज के गुरु वसिष्ठजी महाराज कहलाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज की रामभक्ति के कारण यह वंश तो प्रथम ही से प्रसिद्ध और विख्यात था, परंतु स्वामी रामतीर्थजी ने इस वंश * में जन्म लेकर अपने व्यावहारिक सच्चे जीवन से इसकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि और भी द्विगुण कर दी।

स्वामीजी के पूज्य पिताजी का नाम गोसाइँ हीरानंदजी था। वह स्वभाव के सीधे-सादे और प्रकृति के क्रोधी और प्रखर थे। स्वामीजी के जन्म लेने के कुछ काल ही पश्चात् उनकी साध्वी माताजी की मृत्यु हो गई जिससे उन्हें अपनी भगिनी श्रीमती तीर्थदेवी और अपने पिताजी की भगिनी (अर्थात् अपनी बुआ) की गोद में पालित-पोषित होना

---

* इस वंश की गद्दी गढी कपूरा (पेशावर) में अब तक मौजूद है, जो बाबा तुलसीदास के नाम से प्रसिद्ध है। सहस्रों मनुष्य पेशावर के आसपास में इस गद्दी के सेवक अर्थात् शिष्य हैं। इस वंश के एक वयोवृद्ध गोसाइँ भी, जो पेशावर के अतिरिक्त सवात, मालाकुंड, चकदरा, बमोनिया और काबुल इत्यादि के अनेक हिंदू-परिवारों के पूज्य गुरु हैं, गढी कपूरा (पेशावर) में रहते हैं। इन वयोवृद्ध का नाम बाबा करमचंद गोसाइँ था। आप १२० वर्ष की आयु में, १६१० ई० में, परमधाम को सिधारे।

पड़ा। इस नन्हीं-सी आयु में ही अपनी माताजी का दूध छूट जाने के कारण तीर्थरामजी बचपन में अत्यंत दुबले और कमज़ोर थे। बड़े होने पर जिस प्रकार वह आध्यात्मिक जीवन में अग्रगण्य हो गए, वैसे ही शारीरिक बल और शक्ति में भी उन्नति कर गए, और संन्यास-काल में तो प्रति दिन तीस मील पहाड़ों के कठिन और दुर्गम रास्तों पर चलना उनके लिये बच्चों का-सा खेल हो गया, तथा अत्यंत शीत-स्थानों पर अर्थात् हिमालय के निकट केवल एक धोती पहनकर जीवन-निर्वाह करना उनके लिये एक सामान्य-सी बात हो गई। अमरनाथ, यमुनोत्तरी एवं अन्य हिम-पूर्ण स्थानों की यात्रा उन दिनों उन्होंने केवल एक धोती (आधी नीचे और आधी कंधे पर) पहने हुए ही की थी, और जाड़ा कुछ भी प्रभाव करता मालूम न देता था।

उनके पिताजी की भगिनी (अर्थात् स्वामी रामतीर्थजी की बुआ) बड़ी ही साध्वी, सती और प्रेम की पुतली थीं। वह प्रतिदिन देवमंदिरों, शिवालों और भजन-पूजा के स्थानों में जाया करती थीं, और जब-जब वह इन भजन, पूजन और उपासना-स्थानों में जातीं, तो अपने साथ शिशु रामतीर्थजी को भी (जो उस समय तीर्थराम कहलाते थे) ले जाती थीं। कभी-कभी कथा में ले जाकर कथा सुनवातीं, कभी पूजा-आरती में सम्मिलित करके उसमें धर्म का भाव

विकसातीं। बुआजी की प्रेम की गोद, आंतरिक पवित्रता और धार्मिक चित्त ने बालक तीर्थरामजी के हृदय पर कुछ ऐसा धार्मिक प्रभाव डाला कि शिशुपन में ही उन्हें देव-मंदिरों, कथाओं और व्रत आदि से प्रेम हो गया, शंख-ध्वनि बचपन ही में उनके हृदय पर जादू भरा प्रभाव डालने लगी। गोसाईंजी के पिताजी गोसाईं हीरानंदजी का कथन है कि "जब राम तीन वर्ष के हुए, उस समय मैं उसे संयोग से एक दिन अपने साथ लेकर कथा सुनने के लिये धर्मशाला गया, और जब तक मैं कथा सुनता रहा, यह नन्हा बच्चा बड़े ध्यान और सचाई से कथावाचक पंडित की ओर तकता रहा। जब दूसरे दिन लगभग उसी समय कथा का शंख बजा, तीर्थराम ने रोना आरंभ कर दिया। मैंने उसे चुप कराने के लिये कई मेल के खिलौने और मिठाई देनी चाही, किंतु यह बच्चा मिठाई और खिलौनों के लोभ में बिलकुल नहीं आया, वरन् खिलौने इत्यादि सब फेंक दिए और लगातार रोता रहा। इतने में मैं कथा सुनने के लिये जाने लगा और तीर्थराम को भी साथ ले जाने के लिये गोद में उठा लिया। ज्योंही मैंने उसे उठाकर धर्मशाला की ओर मुख किया, वह बिलकुल चुप हो गया। मुझे यह बहुत ही अचंभा-सा प्रतीत हुआ और मैं परीक्षा के लिये फिर थम गया। बच्चे ने फिर रोना आरंभ कर दिया। जब

मैं फिर आगे बढ़ा, तो चुप हो गया। तात्पर्य यह कि जब तक कथा का मतवाला बालक तीर्थराम धर्मशाला नहीं पहुँच गया, तब तक व्याकुल रहा। इसी प्रकार प्रतिदिन शंख की ध्वनि सुनकर तीर्थराम रोना आरंभ कर देता था जिसमें उसे कथा के मंदिर में झट पहुँचा दिया जाय।"
एक बार स्वामीजी महाराज ने स्वयं भी लेखक (श्रीमन्नारायण स्वामीजी) से इस प्रकार कहा था कि "बचपन में राम के चित्त पर शंख की ध्वनि इतना विस्मयजनक प्रभाव करती थी कि यदि राम ढार मारकर भी रोता हो, तो भी उसके सुनने से झट चुप हो जाया करता था।"

अपने एक अँगरेज़ी-व्याख्यान में स्वामीजी ने अपने जन्म के विषय में इस प्रकार लिखा है कि "राम के बाबा गोसाईं रामलालजी * ज्योतिष्-विद्या के बड़े पंडित थे। जब राम उत्पन्न हुआ, तो वह जन्म-मुहूर्त देखकर रोए और हँसे। जब उनसे रोने और हँसने का कारण पूछा गया, तो आपने बताया कि रोए हम इसलिये हैं कि यह बच्चा ऐसी घड़ी पैदा हुआ है कि या तो यह खुद नहीं रहेगा और या अपनी माताजी पर भारी होने के कारण उसे अपने हाथ से खो देगा। और हँसे हम इसलिये हैं कि यदि ईश्वर

---

* स्वामीजी के जन्मपत्र में उनके बाबा का नाम 'राममल' लिखा है, किंतु उनका प्रसिद्ध नाम रामलाल था।

की इच्छा से यह बच्चा जीवित रहा, तो ऐसा प्रतापी और विद्वान् होगा कि सारे संसार में इसका नाम विख्यात होगा, और इसके कारण हमारे कुल की प्रसिद्धि देश-देश फैलेगी।" ईश्वर की कुछ ऐसी ही इच्छा थी या कदाचित् भारतवर्ष के भाग्य ही कुछ ऐसे थे कि तीर्थरामजी की प्यारी माताजी तो थोड़े ही समय पश्चात् संसार से विदा हो गईं, और तीर्थरामजी थोड़ी देर तक तो गाय के दूध से पले, और उसके बाद अपनी आदरणीया और प्रेमभरी बुआ की प्रेमपूर्ण गोद में खेले-कूदे।

जन्मपत्र और भविष्यवाणियाँ

इस प्रसंग में गोसाईं तीर्थरामजी का जन्मपत्र भी दिया जाता है, इससे ज्योतिष्-प्रेमी सज्जन तथा अन्य राम-प्रेमी इस बात से भली भाँति परिचित हो जायँ कि उनके पूर्व-जन्म के संस्कार भी कैसे बलवान् थे जो बचपन में ही अपना रंग दिखाने और जमाने लगे।

जन्मपत्र

श्रीसंवत् १९३० विक्रमीय शाके १७९५ शालिवाहने श्रीसूर्यदक्षिणायने शरदृतौ कार्त्तिकमासे शुक्लपक्षे तिथौ प्रतिपदायां बुधवासरे घड़ी २५ पल ५५ स्वातिनक्षत्रे ३१।२५ प्रीतियोगे २९।४९ ववकरणे पंचांगे श्रीसूर्योदया-दिष्टे २४।४८ शुभलग्नोदये श्रीमद्गोस्वामिराममलात्मज-

गोस्वामिहीरानंदगृहे पुत्रो जातः । राशिनाम स्वातिनक्षत्रात् अंत्यचरणे ताराचंद इति तुलाराशिः । व्यवहारनाम तीर्थराम इति लोके प्रसिद्धः ।

जन्मलग्नम्

१ मेष, राहु
११ कुंभ
२ वृष
१२ मीन
१० शनि, मकर
३ मिथुन
९ धन, मंगल
६ कन्या, बृहस्पति, शुक्र
४ कर्क
८ वृश्चिक
७ तु. के. सू. चं. बु.
५ सिंह
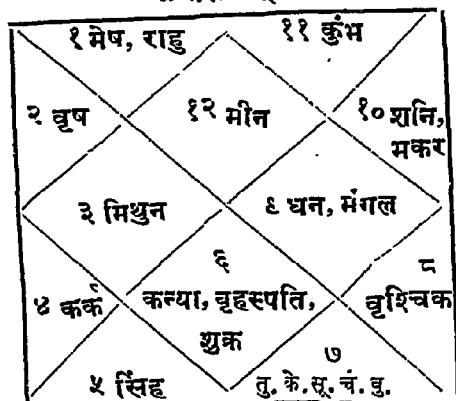
सुना जाता है कि उक्त जन्मलग्न देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक सांसारिक सुख-दुख को लात मारकर परमानंद-सागर की तरंगों पर तैरेगा, और सांसारिक प्रेमनद को पार करके ईश्वरी प्रेम के अथाह और अनंत जल में निमग्न होगा। संसार का पर्यटन करेगा और केवल अपने वंश को ही नहीं अपितु भारतभूमि के इतिहास को नए सिर से सोनहरा चोला पहनाएगा।

सुना जाता है कि उसी समय एक विद्वान् पंडित ने यह भविष्यवाणी भी की थी कि "१. यह बच्चा अपनी

माता का दूध नहीं पिएगा, २. विद्या बहुत प्राप्त करेगा, ३. तप करेगा और भजन में लवलीन रहेगा, ४. अट्ठाईस वर्ष की आयु में विरक्त होकर ईश्वर-दर्शन की लालसा से वनों के लिये प्रस्थान करेगा, ५. पृथ्वी पर बड़ा नाम पावेगा, ६. तीस और चालीस वर्ष की आयु के मध्य में पानी से भय होगा। इत्यादि इत्यादि।"

स्वामीजी महाराज के शरीर छूटने के पश्चात् केवल उपर्युक्त जन्मलग्न एक सुप्रसिद्ध और विद्वान् (निपुण) ज्योतिषी को दिखलाया गया, तो उन्होंने नीचे लिखे दस फल वर्णन किए—

(१) उच्च कोटि का विद्वान् हो।

(२) २१ या २२ वर्ष की आयु में परमार्थ का विचार बड़े वेग से रक्खे।

(३) इष्ट अद्भुत हो, जैसे ओंकार।

(४) देशांतर गमन अवश्य करे।

(५) राजदरबार का चमत्कार होकर रहे नहीं, अर्थात् राजदरबार में उत्तम पद प्राप्त करके शीघ्र ही उसे त्याग दे।

(६) शरीर प्रायः रोगग्रस्त रहे, वरन् किसी अंग में दोष हो।

(७) अंतिम आयु में शारीरिक वासनाएँ बिलकुल नष्ट हो जायँ।

(८) दो पुत्र अवश्य होने चाहिएँ।

(९) आयु २८ वर्ष से लेकर ३५ वर्ष के अंतर्गत अर्थात् अल्पायुषी हो।

(१०) यदि ब्राह्मण हो तो मृत्यु जल में; यदि क्षत्रिय हो, तो मृत्यु मकान पर से गिरकर हो।

तीर्थरामजी की जन्मकुंडली के लिखनेवाले ज्योतिषी ने जन्मपत्र के अंत में जन्मराशि को ९ भागों में विभक्त करके संक्षेप से निम्न-लिखित भविष्यवाणियाँ की थीं—

"पहले भाग में धन का आनंद लेनेवाला हो। दूसरे भाग में धन का स्वामी अर्थात् कोषाध्यक्ष हो। तीसरे भाग में ग़रीब अर्थात् द्रव्यहीन रहे। चौथे भाग में वार्तालाप करने के अयोग्य हो। पाँचवें भाग में अपने वंश के अनुकूल धर्माचरण करनेवाला हो। छठे भाग में अन्य स्त्री से कोई अनुचित संबंध हो। सातवें भाग में माता-पिता को तारनेवाला हो और अपने कुल में सर्वश्रेष्ठ निकले। आठवें भाग में राजदरबार में सम्मान प्राप्त करे। नवें भाग में अत्यंत भाग्यवान् हो। जन्म लेते ही प्रथम वर्ष में पहले, छठे, नवें और ग्यारहवें मास में रोगी हो। आरंभिक आयु के तीसरे और पाँचवें वर्ष में किसी रोग के कष्ट में दुःखी हो और पाँचवें वर्ष में विद्या प्राप्त करने की ओर दत्तचित्त हो। सातवें और तेरहवें वर्ष में ऊपर से अर्थात् कोठे पर

से गिरे; जलाघात अर्थात् जल में डूबना नवें, इक्कीसवें या अंतिम तेंतीसवें वर्ष में हो (यह अंतिम भविष्यवाणी तो अक्षर-अक्षर सत्य निकली)। विद्या में उन्नति तेईसवें वर्ष में हो। २४ या २५ वर्ष की आयु में राजप्राप्ति अर्थात् शासक पद की प्राप्ति हो। सत्ताईसवें वर्ष में राजक्लेश हो अर्थात् राजपद को त्याग दे। २२, ४१ या ५२ वर्ष की आयु में किसी अंग में दोष उत्पन्न हो जाय।" इत्यादि।

जब स्वामीजी के शारीरिक जीवन पर आदि से अंत तक ध्यान से दृष्टि डाली जाय, तो उपर्युक्त भविष्यवाणियाँ लगभग सबकी सब अपना फल देती हुई दीखती हैं। यहाँ तक कि ठीक ३३ वर्ष के अंत में उनका शरीर गंगा में बहा और संसार से सदैव के लिये विदा हो गया। यदि यह दिन किसी प्रकार बिना इस घटना के बीत जाता, तो दूसरे दिन तत्काल उनका चौंतीसवाँ वर्ष आरंभ हो जाता, क्योंकि दीपमालिका के ठीक दूसरे दिन उनका जन्म हुआ और ठीक दीपमालिका के दिन उनकी मृत्यु।

सगाई

बालक तीर्थरामजी अभी दो ही वर्ष के होने पाए थे कि पिताजी ने उनकी सगाई गुजराँवाला ज़िले की तहसील वज़ीराबाद के वैरोके नामक ग्राम में पं० रामचंद्र के यहाँ कर दी। उस स्थान में पंडित रामचंद्रजी का वंश अत्यंत

प्रतिष्ठित समझा जाता है। इसी वंश के एक वृद्ध पंडित मुत्सद्दीलाल थे, जिनके पिता सिक्खों के राजत्व काल में अदालत वज़ीराबाद के रक़मदान (हिसाब-लेखक) थे।

आरंभिक शिक्षा

वस्तुतः राम का शिक्षा-संबंधी अध्याय तो उसी समय से आरंभ हो जाता है, जब कि बाल्यावस्था में ही ईश्वर-दर्शन, कथाएँ और शंख की ध्वनियाँ इस होनहार (आशा-जनक) नवजात को व्याकुल किए रहती थीं, मानों आरंभिक आयु में ही उनका अनुराग ईश्वर-प्रेम और धार्मिक कथावार्ता की ओर हो गया था; परंतु व्यावहारिक रूप में शिक्षा में अनुराग लगभग छः वर्ष की आयु में प्रकट हुआ। उनके गाँव मुरालीवाला में एक सरकारी वर्नाक्युलर प्रायमरी स्कूल था, उसी में यह होनहार और छोटे-से डीलवाला बच्चा प्रविष्ट करा दिया गया। तीर्थरामजी यद्यपि डील में छोटे और स्वभाव के सीधे-सादे थे, परंतु उच्चकोटि के मेधावी (ज़हीन), पढ़ने में सबसे तीव्र और परिश्रमी थे। मदरसे के प्रधानाध्यापक मौलवी मोहम्मद्अली थे। वह तीर्थरामजी के मेधावीपन पर प्रायः विस्मित होते और दाँतोंतले अँगुली दबाते थे। इस छोटी-सी आयु में स्कूल की पाँचवीं जमात तक तीर्थरामजी ने स्कूली किताबों के अतिरिक्त फ़ारसी-भाषा में गुलिस्ताँ और बोस्ताँ पढ़ डालीं;

और उर्दू कोर्स की नज़्में (कविताएँ) कंठ कर ली थीं। खेल-कूद का उन्हें बिलकुल शौक़ न था और न बाज़ारू लड़कों की-सी आदतें उनमें प्रवेश होने पाई थीं। सारा समय वह पढ़ने-लिखने में बिताते और संध्या समय जब स्कूल से छुट्टी मिलती, सीधे धर्मशाले की कथा सुनने चले जाते, और वहाँ से घर लौटकर खाने-पीने से छुट्टी पा धर्मशाले में दिनभर की सुनी हुई कथा ज्यों की त्यों अपने घरवालों को बिछौने पर जाने से प्रथम सुनाया करते थे।

इस ईश्वरदत्त योग्यता और मेधावीपन के कारण तीर्थरामजी ने पाँच वर्ष के स्थान पर लगभग तीन साल के अल्प समय में प्राइमरी शिक्षा का प्रमाणपत्र अत्यंत सफलता के साथ प्राप्त कर लिया था। अर्थात् प्रथम वर्ष में पहली और दूसरी, दूसरे वर्ष में तीसरी और चौथी, और तीसरे वर्ष में पाँचवीं कक्षा की शिक्षा समाप्त कर ली और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए तथा छात्रवृत्ति भी प्राप्त की।

कर्तव्य का ज्ञान

तीर्थरामजी के पिताजी से सुना गया कि जब तीर्थरामजी आरंभिक शिक्षा अपने गाँव में समाप्त कर चुके, तो मुझसे कहने लगे—"पिताजी, मदरसे के मौलवी साहब (मौलवी मोहम्मदअली) ने मेरे साथ बहुत परिश्रम किया है, मैं चाहता हूँ कि हमारे घर में जो भैंस है, वह उनको

सेवा में भेंट की जाय, क्योंकि गुरुदक्षिणा देना हमारा कर्तव्य है।" विचार करने की बात है कि यह नौ-दस वर्ष का बालक कर्तव्याकर्तव्य एवं उचितानुचित का कितना विवेक रखता था, और आरंभ से ही 'कर्तव्य' और अधिकार के साथ कितना प्रेम और अनुराग था।

विवाह

इसी अवसर में लगभग १० वर्ष की आयु में गोसाईं हीरानंदजी ने अपने पुत्र तीर्थरामजी का विवाह कर दिया। भला इस छोटी-सी आयु में यह बच्चा इस गोरखधंधे को क्या जान सकता था, परंतु थोड़े ही समय पश्चात् उसने आपत्ति की और पिताजी से इस प्रकार निवेदन करने लगा कि "मुझे आपने किस अल्पायु में जंजाल में फँसा दिया।" परंतु हिंदूघरों की जो दयाजनक और बुरी दशा है, उसके अनुसार ऐसी बातों की कौन परवाह करता है।

शिक्षा

आरंभिक शिक्षा के पश्चात् तीर्थरामजी आगे पढ़ने के लिये अपने पिताजी के साथ गुजराँवाला हाईस्कूल में प्रविष्ट होने गए। गुरालीवाला गाँव इस स्कूल से लगभग ७ मील की दूरी पर है। इस छोटी-सी दस वर्ष की आयु के बच्चे को बिना किसी संरक्षक के इतनी दूर छोड़ना पिताजी ने उचित नहीं समझा, इसलिये वह अपने योग्य और कृपालु मित्र

भगत धन्नारामजी की देखरेख में तीर्थरामजी को छोड़गए, यद्यपि आरंभ में वह कुछ समय तक अपने ननिहाल में ही रहते रहे।

मुरालीवाला गाँव के वर्नाक्युलर स्कूल में केवल उर्दू-फ़ारसी ही पढ़ाई जाती थीं, वहाँ अँगरेज़ी का नाम-निशान न था, इसलिये गुजराँवाला पहुँचने पर तीर्थरामजी पहले अँगरेज़ी के स्पेशल-क्लास में प्रविष्ट हुए। इस कक्षा के उत्तीर्ण करने के पश्चात् मिडिल के दर्जों का कोर्स पढ़ने लगे। इस समय उनकी आयु लगभग साढ़े बारह साल के थी। इस आयु में किसी आवश्यक कार्य के लिये वह अपनी सुसराल वैरोके ग्राम में गए थे। भगत धन्नारामजी के साथ तीर्थरामजी को इतना प्रेम और श्रद्धा थी कि यह उनको बालब्रह्मचारी, अभ्यासी और योगी समझकर उन्हें अपना गुरु मानते थे। जब यह पहला अवसर उनसे पृथक् होने का तीर्थरामजी को मिला, तो उन्होंने अपनी सुसराल से गुरुजी को एक पत्र लिखा, और यह पत्र अपने गुरु के नाम तीर्थरामजी के जीवन में पहला पत्र है। इसे नीचे ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है जिसमें इस जीवनचरित के पाठकों को ज्ञात हो जाय कि इस छोटी-सी आयु में भी तीर्थरामजी उर्दू-भाषा में कैसे योग्य थे, और आरंभिक आयु में ही उनको अपने गुरुदेव के प्रति कितनी श्रद्धा-भक्ति थी, और वह अपने गुरुदेव के साथ कैसे अनुरक्त थे।

पत्र की हिंदी-प्रतिलिपि

धैरोके (ग्राम से)
२४ मई, १८८६

"रहनुमाय सालिकान् व पेशवाय आरिफ़ान्, सलामत।*

आपका नवाज़िशनामा† मुझे वद्दोकी के मेले से एक दिन पहले मिला था। उसमें लिखा था कि 'मेले को आवेंगे।' इस वास्ते मैं भी मेले को गया, मगर मुझे आपके दर्शन न हुए। और यहाँ लिफ़ाफ़े नहीं मिलते, इस वास्ते ख़त में देरी हुई। और आज इस कार्ड की ख़ातिर वज़ीराबाद आया हूँ।......अगर कोई क़ुसूर सरज़द हुआ हो, तो माफ़ फ़रमाएँ।

गुलाम, तीर्थराम"

इस गुरुभक्ति के साथ-साथ तीर्थरामजी अपनी शिक्षा में भी इतना परिश्रम करते थे कि प्रायः अपनी कक्षा में प्रथम ही रहा करते थे, परंतु विवाहित होने पर भी साढ़े चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने इंट्रेंस की परीक्षा दी और अपने परीक्षा-परिणाम को ब्योरेवार अपने गुरुदेव के पास यों लिख भेजा—

१८ मई, १८८८

जनाब सतगुरुजी महाराज भगत साहब, मुझ पर प्रसन्न रहो। मैं सोमवार के दिन मिशन-कॉलेज में दाख़िल हो गया, और

---

* अर्थ—हे मुमुक्षुओं के पथ-प्रदर्शक तथा ज्ञानियों में शिरोमणि! आपको प्रणाम करता हूँ।

† कृपापत्र।

भगत धन्नारामजी

श्रीस्वामी राम के पूर्वाश्रम के गुरु

देहली (१६१२)

एक मकान बच्छोवाली में एक रुपया महीना किराया पर लिया है। उस मकान का मालिक महताबराय मिश्र है, इसलिये पत्र मुझे उसकी मारफ़त लिखा करो। और मेरा वज़ीफ़ा नहीं लगा, और न ही मैं औवल दर्जे में पास हुआ हूँ। मेरा नंबर पंजाब में अड़तीसवाँ है। यहाँ मिशन-कॉलेज में साढ़े चार रुपया फ़ीस है। फ़क़त। ज़्यादा आदाब।

तीर्थराम, एफ़० ए० क्लास, मिशन-कॉलेज, लाहौर।

इसके कुछ मास पश्चात् गुरुजी की सहायता से तीर्थरामजी को म्युनिसिपल कमेटी गुजराँवाला से छात्रवृत्ति मिली, क्योंकि उन्होंने म्युनिसिपल हाईस्कूल से इम्तहान दिया था, और ज़िला गुजराँवाला में वह प्रथम रहे थे।

उच्च शिक्षा

इस अवसर पर यह वर्णन करना अप्रिय न होगा कि तीर्थरामजी अपने घर से रूठकर कॉलेज़ में प्रविष्ट होने के लिये लाहौर चले आए थे। बात यह थी कि उनके पिताजी उनको आगे पढ़ाना नहीं चाहते थे, और तीर्थरामजी इसके विरुद्ध थे। इसलिये लगातार एक वर्ष तक (एफ़० ए० के समय) वह अपने ग्राम मुरालीवाला में एक बार भी नहीं गए, और केवल उस छात्रवृत्ति पर, जो म्युनिसिपल कमेटी गुजराँवाला से स्कूल में प्रथम रहने के कारण उन्हें मिली थी, निर्वाह करते रहे। अपने मौसियाजी पंडित रघुनाथमल और अपने गुरु भगत धन्नारामजी की सहायता और

प्रोत्साहन से शिक्षा प्राप्त करने में विचलित नहीं हुए, और बहुत समय तक गाँव जाने का इरादा नहीं किया, यद्यपि मुरालीवाला लाहौर से बहुत दूर न था। बाद में पिताजी के कहने-सुनने पर कुछ दिन के लिये अपने कुटुंबियों से मिलने चले गए।

एफ़० ए० के दूसरे साल (सेकेंड ईयर) में बहुत परिश्रम करने लगे, और इसी कारण प्रायः बीमार रहने लगे। इस पर भी उन्हें एकांत-सेवन और परिश्रम का इतना चाव था कि अपने एक पत्र में उन्होंने अपने मौसियाजी को इस प्रकार लिखा था कि——

"मेरी सबसे भारी आवश्यकता १. एकांत और २. समय है। ऐ परमात्मा! १. परिश्रमी मन, २. एकांत स्थान और ३. समय, इन तीनों वस्तुओं का कभी मेरे लिये अकाल न हो। मौसियाजी, यह मेरा संकल्प है, आगे परमेश्वर को इख़्तियार है।"

ईश्वर से इन प्रार्थनाओं का तीर्थरामजी को यह फल मिला कि लगातार रोगग्रस्त रहने पर भी वह १८९० ई० में एफ़० ए० की परीक्षा में अपने कॉलेज में संभवतः प्रथम रहे और सरकारी छात्रवृत्ति भी प्राप्त की, एवं बी० ए० की शिक्षा भी उसी मिशन-कॉलेज की गोद में जारी रक्खी।

इस प्रकार शिक्षा को आगे निरंतर जारी रखने से जब उनके पिताजी को यह ज्ञात और निश्चय हो गया कि तीर्थराम

विना हमारी सहायता के भी शिक्षा जारी रख सकता है, और हमारी इच्छा के अनुसार नौकरी इत्यादि करने को तैयार नहीं होता, तो वह क्रोध में आकर तीर्थरामजी की नवयुवती स्त्री को भी लाहौर में उनके पास छोड़ गए, और आप किसी प्रकार की भी सहायता करने को तैयार न हुए। उस समय नवयुवक गोसाईं तीर्थरामजी को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मकान का किराया, किताबों और फ़ीस का बोझ, अपना और स्त्री का खर्च इत्यादि, इत्यादि। परंतु किसी ने सच कहा है कि "दृढ़ संकल्प कठिनाइयों के पहाड़ों को चीर देता है, निराशा के घने बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है।"

एक बेर छात्रवृत्ति के रुपए गोसाईंजी ने किताबों पर खर्च कर दिए, और दूसरे खर्चों के लिये उस समय कुछ विचार न किया, परंतु बाद में उन्हें कठिन विपत्ति का सामना करना पड़ा। हिसाब लगाने से ज्ञात हुआ कि इस महीने में उनके हिस्से में, केवल तीन पैसे रोज़ बचते हैं। पहले तो घबराए, फिर सँभलकर बोले—"भगवान् हमारी परीक्षा करना चाहता है। क्या हरज है, फ़क़ीर भी तो दो-तीन पैसे में दिन काटते हैं।" इस हिसाब के अनुसार गोसाईंजी दो पैसे की सवेरे और एक पैसे की संध्या को रोटी खाकर दिन काटने लगे। एक दिन सायंकाल को

जब रोटी खाने दुकान पर गए, तो दुकानदार ने कहा—"तुम रोज़ एक पैसे की रोटी के साथ दाल मुफ़्त में खा जाते हो, जाओ मैं एक पैसे की रोटी नहीं बेचता।" यह दशा देखकर नवयुवक तीर्थरामजी ने मन में संकल्प किया, "चलो जब तक और रुपया नहीं मिलता, चौबीस घंटों में केवल एक ही समय भोजन किया जायगा।"

इस प्रकार दरिद्रता और धनहीनता में भी गोसाईंजी के मन में जितना परिश्रम का चाव और समय का ध्यान था, जो महत्त्व वह दिखावे की अपेक्षा भीतरी दशा को देते थे, और साथ-साथ गुरुभक्ति और ईश्वर का जैसा ध्यान रखते थे, वह सब उनके पत्रों से, जो उन दिनों उन्होंने अपने पूज्य गुरुदेव भगत धन्नारामजी को लिखे थे, स्पष्ट प्रकट हो रहा है। उदाहरण के रूप में कुछ प: नीचे दिए जाते हैं—

पत्र-संख्या १

२४ जून, १८९० ई०

"* सत्यं ज्ञानमनन्तं (ब्रह्म) आनन्दामृत शान्ति-निकेतन, मंगलमय शिवरूपम् अद्वैतम् अतुलम् परमेशम् शुद्धमपापविद्धम्।

* २९ मई १८८९ से लेकर ३० अगस्त १८९८ तक सारे पत्रों के आरंभ में तीर्थरामजी ने अपने गुरुजी को "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म", इत्यादि उपमा से संबोधन करके लिखा है, पर प्रत्येक पत्र के आरंभ में बार-बार यह संबोधन लिखना उचित और आवश्यक नहीं समझा गया, इसलिये उसके स्थान पर केवल "संबोधन पूर्वोक्त" ऐसा शब्द लिख दिया गया है।

मैं आपके चरणों में सब कुछ अर्पण करता हूँ। आप दया रक्खें।

महाराजजी ! आप मुझ पर क्रुद्ध हैं, पर मैं जानता हूँ कि इस क्रोध का कारण इससे अतिरिक्त और कोई नहीं है कि आपने मेरे हृदय को नहीं देखा, केवल बाह्य आचरण तथा व्यवहार को देखकर ही आप मेरे विषय में बुरे अनुमान कर बैठे हैं। यदि आप मेरे हृदय को देखें, तो मैं आशा करता हूँ कि आप क्रुद्ध न हों।

आपने यह अनुमान न करना कि यदि मेरी ओर से किसी बाह्य सन्मान तथा सेवा में कोई त्रुटि हो गई है, तो उसका कारण आपकी ओर से मेरे चित्त का विमुख हो जाना है। यह बात कदापि नहीं है, क्योंकि मैं प्रत्येक कार्य में आपकी सहायता का आकांक्षी हूँ, और अपने चित्त में सर्वदा आपका ध्यान रखता हूँ। प्रथम तो अभ्यास अथवा और किसी उत्तम कार्य की ओर चित्त लगने में आपकी सहायता की आवश्यकता है, फिर उस कार्य के उद्योग में आवश्यक पदार्थों की प्राप्ति के लिये आपकी सहायता चाहिए। तत्पश्चात् यदि उस कार्य में परिश्रम किया जाय, तो उसके सफल होने में भी आपकी सहायता की आवश्यकता है। संक्षेप से यह कि प्रत्येक कार्य में आपकी सहायता की आवश्यकता है।

यदि किसी बाह्य व्यवहार तथा सेवा में त्रुटि हुई है, तो उसका कारण ऐसा है—दृष्टांत रूप से, यदि मैं पढ़ने में परिश्रम करूँ और उस पढ़ने में केवल स्वार्थ ही दृष्टिगोचर हो और आपकी ओर से चित्त हटा लूँ, तो निःसन्देह यह बड़ी बुरी बात है। पर मेरी ऐसी दशा नहीं है। मैं यदि परिश्रम करता हूँ, तो मेरे चित्त में (मैं बिलकुल सत्य कह रहा हूँ। आपने कोई और

अनुमान न करना) किंचित् अपना रस (स्वार्थ) भी दृष्टि में रहता है, परंतु विशेषतः यह ख़्याल होता है कि यह पढ़ना आपका काम है। यदि मैं अच्छा पढ़ूँ (अभ्यास करूँ), तो मानो आपकी अधिक आज्ञा पालन की है, और आपकी सेवा विशेष करके की है। और आपके विरुद्ध लेशमात्र भी कोई काम नहीं कर रहा।

अब यदि पढ़ने की ओर मैं अधिक ध्यान दूँ और आपकी बाह्य सेवा में किसी प्रकार से यदि त्रुटि हो जाय (पर मैं सत्य कहता हूँ कि मेरा मन नितांत पूर्ववत् है, वरन् पूर्व से भी बहुत उत्तम प्रकार आपका आज्ञाकारी है), तो चाहे बाह्य-द्रष्टा की दृष्टि को मेरी त्रुटि का अनुमान हो, परंतु अंतर्द्रष्टा की दृष्टि को स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि मैं पहले से भी अधिक आपकी सेवा कर रहा हूँ। चाहे अब यह प्रतीत हो रहा है कि मेरा ख़्याल आपकी (बाह्य-सेवा इत्यादि की) ओर कम है, परंतु बाह्य-रूप से मेरा यह कम ख़्याल आपकी ओर प्रतीत होना अंत में मुझे ऐसा योग्य कर देगा कि आपकी सेवा लाख गुणा अच्छी करूँ, यदि आप मेरी बाह्य-चेष्टा पर क्रुद्ध न हो जायँ और मेरे परिश्रम (जो कि आपका काम है) के सफल होने में सहायता दें, क्योंकि अंत में मैं आपकी सहायता का दीन हूँ। यह कहावत प्रसिद्ध है "हिम्मते-मर्दां मददे-ख़ुदा" जिसका अर्थ मैं यह करता हूँ कि मनुष्यों के यत्न में ईश्वर की सहायता की आवश्यकता है।

. मेरा यह पढ़ना आपका बहुत बड़ा काम है। शुश्रूषा आदि के कामों को भले पुरुष इतना बड़ा काम नहीं समझते। इसलिये आपका बहुत बड़ा काम करने में (अर्थात् पढ़ने में) यदि आपके किसी छोटे (बाह्य सम्मानादिक) काम में त्रुटि हो जाय, तो आप क्षमा कर दें।

फिर यह कि कई पुरुष होते हैं जो केवल मन से अधिक सेवा कर सकते हैं और कई वाह्य-पदार्थों से। परंतु मैं चाहे किसी वाह्य-पदार्थ से आपकी सेवा न कर सकूँ, पर मन से तो आपका बड़ा आज्ञाकारी हूँ।

जो विद्यार्थी घरों से पढ़ने आते हैं, वे (पढ़ने में अधिक प्रवृत्त रहने के कारण) अपने पिता-माता को पत्र तक भी बहुत कम लिखते हैं। उनका (इस प्रकार) अपने माता-पिता की ओर अधिक ख्याल होना तो दूर रहा, परंतु उनके माता-पिता भी कभी यह अनुमान नहीं करते कि हमारा पुत्र हमारे विरुद्ध हो गया है। वे समझते हैं, हमारा ही काम कर रहा है।

यदि आप यह कहें कि एक दूसरे के बाह्य-सत्कार की ओर अधिक ध्यान न देने से प्रेम में त्रुटि हो जाती है, तो यह बात मेरे विषय में बिलकुल नहीं, क्योंकि मैं तो मन में आपका बड़ा ही ध्यान करता रहता हूँ। प्रत्येक कठिन स्थान में आप याद रहते हैं। और यह एक प्रकार का आभ्यंतर मिलाप होता है (चाहे बाह्य-दृष्टि से आपको प्रतीत न हो)। साथ इसके मेरा आपका संबंध पिता-पुत्र का है, जिसके टूटने का प्रलय-काल में भी भय नहीं होता। आप और कुछ अनुमान न करें, मेरा मन तो सदैव शुद्ध है।

फिर यह कि जो अनुचित काम मनुष्य से होता है, उसके कारण दो हो सकते हैं—प्रथम मूर्खता या अज्ञानता, द्वितीय उसके मन की अपवित्रता वा मलिनता। जब मेरे से कोई अनुचित व्यवहार प्रतीत हो, तो आप यह विचारें कि उसका कारण क्या है। यदि पहला कारण हो (केवल जो कारण मेरे अनुचित कामों में सर्वदा होता है), तो आप इसको दूसरा कारण समझकर मुझ पर रुष्ट न हो जाया करें। बल्कि चाहिए

कि यदि किसी से कोई अनुचित चेष्टा अज्ञानता से हो जाय, तो उस पुरुष को उसकी अज्ञानता का बोध करा दें, पर उसे यह न कहें कि 'तेरा मन शुद्ध नहीं है, और तू मलीन चित्तवाला है, या तेरा हमारी ओर चित्त बुरा है।'

अब यदि कोई और कारण आपके क्रोध का है, तो वह अवश्य लिख दें; क्योंकि जब तक मनुष्य को कारण न बताया जाय, वह क्या जाने कि कोई क्यों रुष्ट है। यह अवश्य कृपा करनी कि अपने मन का क्रोध एक पत्र में प्रकट कर भेजना, और मेरी मूर्खता पर मुझे सूचना देनी। आप अवश्य मेरे विषय में बुरा अनुमान, जो आपके चित्त में है, हटा दें।

पत्र के भारी हो जाने के भय से मैं इसे समाप्त करता हूँ, और विश्वास करता हूँ कि आप इतने से ही मेरी आभ्यंतर दशा से परिचित हो जायँगे, और कृपापत्र लिखेंगे ॥ इति ॐ ॥

आपका दास—तीर्थराम"

पत्र-संख्या २

१२ जुलाई, १८९०

"संबोधन पूर्वोक्त।

आपका एक पत्र मिला, बड़ा आनंद हुआ। हमें छुट्टियाँ पहली अगस्त या उससे दो-तीन दिन पहले को होंगी। मैं परमेश्वर से या आपसे प्रार्थना करता हूँ कि किसी प्रकार छुट्टियों में मैं बड़ा परिश्रम करूँ, किसी प्रकार से कालक्षेप न हो, और मेरा परिश्रम यथार्थ रीति से हो, और परमेश्वर उस परिश्रम को सफल करे। क्योंकि मैं अपने-आपको बड़ा ही अयोग्य (नालायक़) समझता हूँ, और वास्तव में हूँ भी बड़ा ही अयोग्य। इसलिये जो मेरा संकल्प है, उसका तात्पर्य यही है कि

किसी प्रकार से मैं परिश्रम अधिक करूँ, और लक्ष्य नहीं। मैं आशा करता हूँ कि मुझे ऐसे संकल्प में अवश्य सहायता देंगे। मेरी अवस्था पर अवश्य दया कीजिए, मैं बड़ा अयोग्य हूँ। मैं चाहे यहाँ रहूँ चाहे वहाँ रहूँ, आपका तो दास हूँ। इस समय जो मेरा संकल्प है, वह मैं लिख देता हूँ। यदि यह बदल गया, तो भी लिखूँगा। संकल्प चाहे कुछ हो आपने यह न अनुमान करना कि आपके विरुद्ध है, क्योंकि मेरे प्रत्येक संकल्प से मुख्य उद्देश्य यह होता है कि आपके साथ प्रीति (सत्कार) और भी अधिक हो। मेरा लक्ष्य उसके विरुद्ध नहीं होता। अब संकल्प यह है कि "पहले कुछ दिन अर्थात् सात या आठ दिन के लगभग तो नितांत लाहौर में ही रहूँ, और उन दिनों में अपने पिछले पढ़े हुए का अभ्यास करूँ (यदि हाँसी न जाना पड़ जाये, तो)।" तत्पश्चात् गुजराँवाले कुछ दिन रहकर देखूँ कि पढ़ा जाता है या नहीं। पाँच-चार दिन वैरोके रहने का भी संकल्प है, और कुछ दिन मुरालीवाले में। साथ इसके हाँसी जाने का भी विचार है। क्योंकि मौसियाजी ने लिखा था। यदि वहाँ एकांत स्थान मिल गया, तो वहाँ ही शायद अधिक दिन अर्थात् एक मास के लगभग रह पड़ूँ। और पिछली छुट्टियाँ फिर लाहौर में आकर काटूँ। परंतु आपसे मैं यही माँगता हूँ कि मेरा समय किसी प्रकार से नष्ट न हो।

आपका दास—तीर्थराम"

इस पत्र का उत्तर गुरुजी ने शायद कठोर और रोषपूर्ण दिया होगा, जिसके उत्तर में गोसाईंजी फिर गुरुजी महाराज की सेवा में अत्यंत युक्तियुक्त, उपदेशपूर्ण और सविस्तर निवेदनपत्र लिखते हैं।

पत्र-संख्या ३

"संबोधन पूर्वोक्त। १६ जुलाई, १८६०

हमें छुट्टियाँ प्रथम अगस्त से होंगी। आज १६ जुलाई है। मैं आपका सदा आज्ञाधीन हूँ। आप कोई और अनुमान कभी न करें। जिस कार्य में कोई मनुष्य नित्य प्रवृत्त हो, उसे कुछ काल के पश्चात् एक शक्ति प्राप्त हो जाती है, जिससे उसको विना विचारे उस कार्य के संबंध में जो अच्छी बात हो, वह सूझ जाती है। और उस अच्छी बात के अच्छा होने की जो युक्तियाँ हैं, उनका प्रभाव तो उसके मन में पड़ जाता है, चाहे वह सिद्ध करने का युक्तियाँ स्वयं उसके मन में न आवें। और बहुधा ऐसी युक्तियाँ मन में नहीं भी आतीं, क्योंकि युक्तियों का आना और बात है (यह पंडितों वा शास्त्रवेत्ताओं का काम है, और सारे मनुष्य पंडित या शास्त्रवेत्ता नहीं होते), और वह शक्ति जिससे यह प्रतीत हो जाता है कि अमुक काम ठीक है, पर उस काम के अच्छा होने में युक्ति मन में नहीं आती, उस शक्ति का नाम संज्ञान (Conscience या ज़मीर) है। मैं जब छोटा था, तो कविता इत्यादि पढ़ने से शीघ्र भाँप लेता था कि अमुक कविता उसी वृत्त (छन्द) पर है जैसी कि अमुक दूसरी, या अमुक कविता और छंद की है, परंतु यह नहीं जानता था कि क्या वृत्त है; और उन दोनों में भेद किस बात में है। यद्यपि इतना प्रतीत होता था कि कुछ भेद उनमें अवश्य है। अर्थात् अपने अनुभव के सिद्ध करने में युक्ति नहीं दे सकता था यद्यपि अनुभव नितांत सत्य होता था। जैसे केवल दस वर्ष के अभ्यास के पश्चात् अब कविता के विषय में मैं युक्ति देने के योग्य हुआ हूँ और जानता हूँ कि यह युक्ति उस समय भी दी जा सकती थी, चाहे मैं युक्ति से अपरिचित था, अर्थात् युक्ति अवश्य थी यद्यपि मैं

नहीं जानता था। इससे यह सिद्ध हुआ कि सच्चा मनुष्य सर्व-काल में युक्ति नहीं दे सकता, कोई-कोई समय उसकी बात बिना युक्ति सुने भी माननी चाहिए, यदि इतना हमें विश्वास हो कि "वह मनुष्य जान-बूझकर बुरा काम नहीं करनेवाला, और यदि वह ऐसा काम कर रहा है कि जिसमें वह युक्ति नहीं दे सकता, तो वह अपने अंतरात्मा के अनुसार चल रहा होगा।"

उक्त दृष्टांत का दार्ष्टांत यह है कि मैं आपको निश्चय दिलाता हूँ कि मैं आपका अंतः हृदय से सेवक हूँ और जो काम मैं करता हूँ, चाहे ऊपर से मैं उस विषय में कोई युक्ति न दे सकूँ, पर वास्तव में वह काम ऐसा होता है जैसा मुझे इतने वर्ष का अभ्यास दर्शाता है कि यह काम अच्छा है, और इस काम के करने में कल्याण होगा। इसलिये आप कहीं यह न अनुमान कर बैठें कि जब यह (अर्थात् मैं) युक्ति नहीं दे सकता, तो इसको (अर्थात् मुझे) कोई और प्रयोजन उद्दिष्ट है, अथवा हमसे उपराम हो गया है। यह बात कदापि नहीं। हाय ! मैं आपको कैसे निश्चय कराऊँ कि मैं आपका दास हूँ। . . . .

पुनः यह कि जब मैं जानता हूँ कि आपका जो विचार मेरे विषय में होता है, उसका उद्देश्य यही होता है कि मुझको आनंद हो, चाहे ऊपर से वह उद्देश्य कुछ अन्य ही प्रतीत होता हो। इसलिये मैं ख़याल करता हूँ कि यदि मेरे अंतरात्मा से या किसी दूसरी पक्की रीति से मुझको ठीक-ठीक प्रतीत हो कि यह बात मेरे लिये अच्छी है (पर जो मेरे लिये अच्छी है वह आपके लिये मुझसे अधिक भी अच्छी होगी, आपके लिये वह कदापि बुरी नहीं हो सकती), तो अवश्य आपकी भी उस विषय में वही सम्मति होगी जो मेरे अंतरात्मा की, या उस परिपक्व उपाय की जिससे कि वह वार्ता प्रतीत हुई है। और आप उस विषय में यह न कहेंगे कि उसने

(मैंने) हमारी आज्ञा भंग की है, बल्कि यह कहेंगे कि इसने (अर्थात् मैंने) हमारी आज्ञा का पूर्ण रीति से पालन किया है। पुनः यह कि मैं चाहे किसी स्थान पर हूँ, आपका तो दास हूँ।

अब सारांश यह है कि आपने लिखा था कि छुट्टियों में गुजराँवाले आ जाना। सो यह बात है कि आऊँगा तो मैं अवश्य ही, चाहे कैसी दशा हो; पर यह बात नहीं हो सकती कि सारी छुट्टियाँ वहाँ (गुजराँवाले में) ही व्यतीत करूँ। मेरा अंतरात्मा कहता है कि "लाहौर में अधिक काल रहो" यह बात अंतरात्मा की समझकर मैंने अधिक सोचा नहीं, तथापि दो-एक युक्तियाँ लिखता हूँ (मैं बड़ा शोक करता हूँ कि मुझे इन निकम्मी युक्तियों पर समय व्यर्थ खोना पड़ता है, पर मैं इसलिये इन पर समय खोने के लिये विवश होता हूँ कि कहीं आप कुछ और समझकर रुष्ट न हो बैठें। यदि मुझे इस बात का भय न हो कि आप रुष्ट हो जायँगे, तो मैं इन युक्तियों पर समय व्यर्थ न खोऊँ। क्या ही अच्छा हो, यदि आप मुझको अपना दास समझकर मेरे शुद्ध निश्चय या सत्य वाक्यों में संशय न लाया करें)।

इस रहस्य को मैंने अब समझा है कि लाहौर के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान में रहने से न केवल यह दोप होता है कि वहाँ एकांत स्थान नहीं मिलता, वरन् एक अति कठिन और बड़ा दोप भी है, वह यह कि वहाँ वृत्ति ऐसी नहीं रहती कि किसी सूक्ष्म कार्य को कर सके, वहाँ दीर्घदृष्टि जाती रहती है। इसका कारण यह है कि चिदात्मा जो कि न स्थूल शरीर है और न स्थूल देह का अंग, वह विषयों की प्राप्ति से और भौतिक पदार्थों के संग से दुर्बल और दूपित हो जाता है। और लाहौर के बिना अन्य सब स्थानों में यह दूपण पाया जाता है, क्योंकि वहाँ सर्व-साधारण के मेल-जोल से चित्त की मिट्टी पलीद हो जाती है।

अब यदि कोई पूछे कि लाहौर में भी तो मेल-जोल होता है, तो उसका उत्तर यह है कि लाहौर में जो मनुष्य मिलता है उसके साथ ऊपरी मन से एक बात की जाती है, जिसमें मन का ध्यान उसकी ओर नहीं जाता। पर और स्थान में जो मनुष्य मिलता है, वहाँ बलात्कार उसकी ओर चित्त-वृत्ति देनी पड़ती है, क्योंकि उससे जो मिलाप होता है, वह बहुत काल के पीछे प्राप्त होता है। साथ इसके लाहौर से अतिरिक्त अन्य स्थानों में अपने बंधुजनों से मिलाप होता है, जिनकी ओर अधिकतर ध्यान देना आवश्यक होता है। दूसरे लाहौर में मेल-मिलाप जो होता है, वह बहुधा अपने सहपाठियों से होता है, जो अधिक विक्षेप नहीं डालता।

अब यदि यह प्रश्न किया जाय कि क्या और भी कोई विद्यार्थी है जो छुट्टियों में लाहौर रहेगा? तो सुनिए:—* रुकुनुद्दीन, जो पंजाब में इस बार प्रथम रहा है, एक दिन भी सारी छुट्टियों में अपने ग्राम नहीं जायगा। वह स्वयं कहता है कि वह दस-बारह दिन अब वहाँ (अपने ग्राम) हो आया है, परंतु छुट्टियों में वहाँ कदापि नहीं जायगा, आप मालूम कर लें।

संसार में कोई मनुष्य विद्या में निपुण हो ही नहीं सकता, जब तक कि वह परिश्रम न करे। जो निपुण हैं, वे बहुत परिश्रम करते हैं, तब निपुण हैं। यदि हमें उनका परिश्रम ज्ञात न हो, तो वे गुप्त प्रकार से अवश्य करते होंगे, या वे पहले कर चुके होंगे। यह वार्ता बहुत अनुसंधान की गई है।

यह भी सत्य है कि छुट्टियों में कई विद्यार्थी घर जायँगे और

---

* रुकुनुद्दीन से अभिप्राय उस रुकुनुद्दीन साहब एम्० ए० से है कि जो आजकल मांटगुमरी के डिस्ट्रिक्ट जज के पद पर काम कर रहे हैं।

फिर भी वे निपुण हैं। किंतु उनके विषय में और बात (कारण) है। उनके घरों में या उन स्थानों में जहाँ वे जायँगे ऐसे निमित्त नहीं होते कि जो उनके चित्तों को अभ्यास से रोकें। वे विवाहित हुए नहीं होते, या कोई और हेतु होता है, अथवा उनके मन बड़ी परिपक्वावस्था को प्राप्त हुए होते हैं, जो बाह्य पदार्थों की ओर नहीं जाते। पर मेरा मन पक्का नहीं, यह अति दुष्ट है।

मेधा (ज़िहन) जिसको कहते हैं, वह शक्ति भी परिश्रम से बढ़ती है। पुनः यह कि यदि संभावना से कोई मनुष्य बिना परिश्रम किए किसी परीक्षा में अच्छा रह भी जाय, तो उसे पढ़ने का आनंद कदापि नहीं आएगा। वह मनुष्य बहुत बुरा है। वह उस मनुष्य के सदृश्य है, जिसने आपको एक समय कहा था कि मुझे एक कविता बना दो और बीच में नाम मेरा रखना। अब चाहे उसने लोगों में यह प्रसिद्ध कर दिया कि कविता मेरी है, परंतु आप जानते हैं कि उस लेख में जो आनंद आपको आया होगा उस मनुष्य को कदापि-कदापि नहीं आ सकता। अथवा वह उस मनुष्य के सदृश है, जिसको और की कमाई हुई संपत्ति मिल जाय। अब चाहे उसके पास धन तो है, पर वह धन से आनंद नहीं ले सकेगा, शीघ्र उसको क्षीण कर देगा। किंतु जिसने परिश्रम से धन कमाया है, वही लाभ उठाएगा।

आप मेरे पिता समान हैं, और पिता-माता को ऐसा नहीं होना चाहिए जैसा कि वह गुजराँवाले का पाधा (पंडित) जिसके विषय में आपने एक समय सुनाया था कि उसने अपने बड़े योग्य पुत्र को पाठशाला में पढ़ने से रोक रक्खा था, केवल इसलिये कि उसको अपने पुत्र से स्नेह बहुत अधिक था।

किंतु आप तो बड़े ही अच्छे हैं, आपको तो इस विषय में उस पाधे (पंडित) की-सी उपमा त्रिकाल भी नहीं दी जा सकती।

आपका और उसका उदाहरण तो प्रकाश और अँधेरे के समान है। कदाचित् आपके चित्त में ये बातें नहीं बीती होंगी, जो मैंने ऊपर लिखी हैं। तभी आपने यह कहा कि लाहौर में मत रहना। अब दो वर्ष की बात है, अधिक काल भी नहीं। यदि अब परिश्रम न करूँ, तो परिश्रम के लिये और कब समय आएगा। आप मुझे दो वर्ष की छुट्टी दीजिए, फिर सारी आयु आपके संग हूँ। आपने यह समझ छोड़ना कि हमारा पुत्र परदेश गया हुआ है, जब आएगा फिर हमारा है। और मेरा ध्यान जब इस पढ़ने की ओर अधिक हो, तो आपने मेरी बाह्य आवश्यकताओं का ऐसे ध्यान रखना जैसे कि एक महाराजा अपने योधाओं की रखता है जिस समय कि योधा युद्ध में अपने महाराजा के लिये शत्रु से लड़ रहे हों। आपने कभी कोई और अनुमान मेरे विषय में न लाना, मैं आपका दास हूँ।

मैं यह जानता हूँ कि परिश्रम अति उत्तम वस्तु है (पर मैं परिश्रम इस प्रकार नहीं करनेवाला कि रोगी हो जाऊँ), किंतु परिश्रम में लगने के लिये आपकी (सहायता की) आवश्यकता है। आप मुझे सहायता दें कि मैं पढ़ने में परिश्रम करूँ। आपकी सहायता बिना परिश्रम भी नहीं हो सकता। हे परमात्मा ! मेरा मन परिश्रम में अधिक युक्त हो, मैं अत्यंत परिश्रम करूँ, क्योंकि मेरे संकल्पों को पूरा करनेवाले आप हैं। सातवीं या आठवीं छुट्टी के पश्चात् मैं गुजराँवाले आऊँगा, थोड़े ही काल के बाद फिर लाहौर में यदि आ जाऊँ, तो बड़ी अच्छी बात हो।

आपने इस लंबे लेख से रुष्ट न हो जाना। इससे वास्तव में अभिप्राय यही था कि किसी प्रकार से आप रुष्ट न हो जायँ। रघुनाथशरण * को यह कह देना कि यदि अच्छा (निपुण)

---

* रघुनाथशरण भगत धन्नारामजी की बुआ का पुत्र था।

होना चाहता है, तो यों करे कि पुस्तक को कंठस्थ कर ले। इस बात में से इतने लाभ प्राप्त होते हैं कि मैं किसी प्रकार से वर्णन नहीं कर सकता। मुझे तेरह वर्ष के पश्चात् यह बात मालूम हुई है। यह बात अत्यंत ही अच्छी है। मैं इसको विस्तारपूर्वक फिर कभी वर्णन करूँगा, जब गुजरांवाले आऊँगा। यह बात ऐसी है कि इससे केवल अपने शिक्षक से अतिरिक्त अन्य आचार्यों की नितांत आवश्यकता नहीं रहती।

आपका दास—तीर्थराम"

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि इन दिनों गोसाईंजी की आयु लगभग साढ़े सोलह वर्ष की थी, और बी० ए० क्लास में प्रविष्ट हुए अभी केवल ढाई महीने हुए थे। इतनी छोटी-सी आयु में कितना गंभीर तर्क, कैसी दार्शनिक भाषा और कैसे प्रेम-पूर्ण उपदेश उनके हृदय, मस्तिष्क और लेखनी से बहने लग पड़े थे जो आजकल बड़े-बड़े योग्य और प्रसिद्ध एम्० ए० के विद्यार्थियों के हृदय और मस्तिष्क में भी एक हलचल-सी पैदा करते हैं, और इस पर विशेषता यह कि सब ओर से विपत्तियाँ और दरिद्रता भी उमड़-उमड़ कर उन पर आई हुई थीं। भोजन के लिये पास में पैसा नहीं, एक बेर भी पेट भर कर भोजन नहीं मिलता, दरिद्रता ने अपना पूरा-पूरा रंग जमाया था, शारीरिक रोग भी घेरे हुए थे, चोर भी इस समय घर में घुसकर कुल बर्तन और खाने-पीने का सामान चुराकर ले गए थे, परंतु इन

अनेक आपदाओं में ग्रस्त होने पर भी मेधा, योग्यता, शांति, दृढ़ता, संतोष और स्थिरता में कोई कमी नहीं थी अपितु उन्नति पर थे।

इस अत्यंत अभाव के समय में गोसाईंजी एक बिलकुल छोटी-सी, तंग और अँधेरी कोठरी में रहते थे, और किसी प्रकार का शारीरिक व्यायाम भी नहीं करते थे। इस बात को रोगों का कारण समझकर उनके एक सहपाठी ने प्रिंसिपल साहब को सूचना दी जिस पर तीर्थरामजी को आज्ञा हुई कि वह भविष्य में बोर्डिंग हाउस में रहा करें। जिसमें उन्हें रहने के लिये हवादार कमरा मिले, और रुकनुद्दीन नाम का एक लड़का उन पर इसलिये नियुक्त किया गया कि वह उन्हें प्रतिदिन छुट्टी के बाद आधा घंटा व्यायाम किये बिना घर को न जाने दे।

इस प्रकार जब गोसाईंजी बोर्डिंग हाउस में रहने लगे, और प्रतिदिन नियत काल में व्यायाम करने लगे, तो उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा और तापतिल्ली की शिकायत दूर हो गई।

विद्यार्थी-काल में प्रोफ़ेसर की जगह पढ़ाने का काम

गोसाईंजी मेधावी और परिश्रमी तो प्रसिद्ध ही थे, परंतु गणित-शास्त्र में इतने निपुण थे कि कॉलेज में इस विषय में

कोई उनकी बराबरी का न था। इन्हीं दिनों (२५ जून, १८६१) को जब गणित का प्रोफ़ेसर बीमार हो गया, तो उस समय गोसाईंजी कई सप्ताह तक अपने सहपाठियों को प्रोफ़ेसर साहब की जगह पर पढ़ाते रहे। वस्तुतः गणित-शास्त्र की प्रोफ़ेसरी के योग्य तो वह अभी से हो गए थे, किंतु क्रियात्मक रूप से बी० ए० पास करने के बाद इस पद पर वह इसी कॉलिज में नियुक्त हुए।

बी० ए० में असफलता

सुना जाता है कि गोसाईंजी अँगरेज़ी-भाषा में इतने तीव्र नहीं थे जितने कि गणित में, फिर भी अपने सहपाठियों से हर विषय में प्रथम रहते थे। इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा कुछ विचित्र प्रकार से हुई, जिससे कि बड़े-बड़े योग्य और मेधावी (ज़हीन) विद्यार्थी तो रह गए और अयोग्य तथा साधारण उत्तीर्ण हो गए। सुना जाता है कि अँगरेज़ी का पर्चा या तो परीक्षक महोदय ने बड़ी लापरवाही से देखा, या कदाचित् बिना देखे ही नंबर लगा दिए गए; क्योंकि जिन लड़कों को अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसरों ने परीक्षा में बिठाना ही स्वीकार नहीं किया था (क्योंकि उस विषय में प्रोफ़ेसर उन्हें रद्दी समझते थे), वह तो इस विषय में सारे पंजाब में प्रथम निकले, तथा जो योग्य और मेधावी थे वह लगभग सबके सब फ़ेल सुने गए। समस्त नंबरों (Aggre-

gate No. वा संकलित संख्या) की दृष्टि से गोसाईंजी इस बार भी सारी युनिवर्सिटी में प्रथम थे, किंतु अँगरेजी के पर्चे में बहुत थोड़े से नंबर कम होने के कारण फ़ेल ठहराए गए। इस आश्चर्यजनक संवाद को पाकर न केवल तीर्थरामजी अपने संबंधियों और मित्रों सहित विस्मय को प्राप्त हुए, वरन् कॉलेज के प्रोफ़ेसर और प्रिंसिपल भी। प्रोफ़ेसर महोदयों ने बहुत प्रयत्न किया कि गोसाईंजी के अँगरेज़ी पर्चे दुबारा देखे जायँ, परंतु सब व्यर्थ हुआ। क्योंकि उस समय युनिवर्सिटी में कोई ऐसा नियम नहीं बना था कि किसी अनुत्तीर्ण छात्र का पर्चा दुबारा देखने के लिये परीक्षक को आदेश किया जाय। इसलिये फ़ेलो महोदयों ने प्रोफ़ेसरों की एक न मानी, और न गोसाईंजी की प्रार्थना स्वीकृत हुई।

गोसाईंजी के परीक्षाफल के कारण युनिवर्सिटी में नए नियम का जारी होना

सुना जाता है कि इस आश्चर्यजनक परीक्षा-परिणाम से गोसाईं तीर्थरामजी के हृदय पर जो आघात हुआ उसे लेखनी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, पर कॉलेज के प्रोफ़ेसरों तथा शिक्षा के हितैषियों के हृदयों में भी ऐसी खलबली मची कि प्रत्येक की लेखनी से क्रमशः समाचारपत्रों में लेख प्रकाशित होने लगे, और युनिवर्सिटी के फ़ेलो महोदयों

से आग्रह किया जाने लगा कि भविष्य के लिये कोई ऐसा नियम बना दें जिससे कि परीक्षक महोदयों को किसी पर्चे की पुनः परीक्षा करने की हिदायत हो सके, और भविष्य में विद्यार्थीगण किसी परीक्षक की लापरवाही और प्रमाद से फ़ेल होने न पावें, तथा छात्रों का व्यर्थ में उत्साह भंग न हो। जब चारों ओर से ऐसा हाहाकार मचा, तो युनिवर्सिटी ने भविष्य के लिये यह रूल पास किया कि जिस विद्यार्थी के किसी विषय में नियत नंबरों से ५ नंबर कम हों या समस्त नंबरों के नियत योग से ५ नंबर कम हों, तो वह तत्काल फ़ेल न किया जाय, वरन् उसे विचाराधीन (Under consideration) रखकर उसके पर्चे दुबारा परीक्षकों के पास पुनरावलोकनार्थ भेजे जायँ, इसलिये कि यदि वह पर्चा लापरवाही से देखा गया हो अथवा उसमें अधिक नंबर दिए जाने की गुंजायश हो, तो उसे ठीक नंबर देकर पास किया जाय।

इस विधान से भविष्य के लिये तो विद्यार्थियों को कुछ सुगमता और प्रोत्साहन हो गया, परंतु वर्तमान दशा किसी प्रकार भी उस समय ठीक होने न पाई; इसलिये गोसाईं तीर्थराम-जैसे सुयोग्य और मेधावी छात्र भी उस वर्ष रह गए। इस आकस्मिक विपत्ति के आने से जैसी-जैसी चोटें गोस्वामीजी के चित्त पर समय-समय पर लगती थीं, वह उनके पत्रों से स्पष्ट हो रही हैं।

१४ मई, १८९२

"संबोधन पूर्वोक्त ।

मैं आपको एक अद्भुत बात लिखता हूँ कि पहले इतना तो आपको किसी क़दर मालूम ही है कि इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में बहुत-से योग्य और निपुण विद्यार्थी अँगरेज़ी में रह गये हैं। अब जौन-सा विद्यार्थी अँगरेज़ी की परीक्षा में प्रथम रहा है, वह इतना अयोग्य (नालायक़) था कि अँगरेज़ी का प्रोफ़ेसर भी उसे परीक्षा में कदापि भेजना नहीं चाहता था। सब लोग आश्चर्य में हैं कि यह प्रथम क्योंकर रह गया ?

आपका दास—तीर्थराम"

चार दिन के पश्चात् गोसाईंजी फिर गुरुजी को इस प्रकार लिखते हैं—

१९ मई, १८९२

"संबोधन पूर्वोक्त ।

मैंने एक प्रकार से अपना सारा वृत्तांत लिखकर साहब को दिखा दिया था। वह पर्चों के पुनः देखे जाने की सम्मति नहीं देते (क्योंकि उन दिनों वह स्वयं युनिवर्सिटी के वाइस चैन्सलर थे, और युनिवर्सिटी के क़ायदों के विरुद्ध वह कोई सम्मति नहीं दे सकते थे—लेखक)। मगर साहब ने युनिवर्सिटी में मेरी बाबत बहुत कुछ कहा था कि इसको (अर्थात् मुझे) रियायत मिल जानी चाहिए (अर्थात् मेरा पक्ष किया जाना चाहिए), किंतु उसकी कोई बात मानी नहीं गई। आज युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) ने यह विज्ञापन दिया है कि जिन्होंने बी० ए०, एम्० ए० पास किया हो और आयु उनकी २१ वर्ष से अधिक न हो और गणित अथवा विज्ञान-शास्त्र में विलायत का एम्० ए० उत्तीर्ण करना चाहते हों,

वे प्रार्थना-पत्र भेजें। जिसका सबसे अधिक अधिकार होगा, उसी को उपर्युक्त छात्रवृत्ति देकर विलायत भेजा जायगा। और जब वह विलायत से उत्तीर्ण होकर आवे, उसको बड़ी ऊँची पदवी दी जायगी। अब यदि मैं इस बार उत्तीर्ण हो जाता, तो मुझको यह छात्रवृत्ति अवश्य मिल जानी थी। प्रथम मेरी आयु के विचार से, द्वितीय मेरे गणित-शास्त्र में नंबरों के कारण से, तृतीय मेरे आचरण के संबंध से। पर अब क्या हो सकता है। आप दया रक्खा करें।

आपका दास—तीर्थराम"

गोसाईंजी का बी० ए० में दुबारा प्रविष्ट होना

जब युनिवर्सिटी ने किसी की न सुनी, तो विवश होकर गोसाईंजी दुबारा बी० ए० में प्रविष्ट हो गए और यद्यपि बुरे परिणाम से उनका चित्त बहुत दुःखी था और सरकारी छात्रवृत्ति भी बंद हो गई थी, तो भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और लगातार अनशन (उपवास) करके बी० ए० पास करने की ठान ली। किसी कवि ने कहा है "वही जो इधर खार उधर है गुले खंदाँ।" अर्थात् वही जो एक ओर विपत्ति पर विपत्ति लाता है, वही दूसरी ओर आराम और सुख के सामान इकट्ठा करता है। ठीक यही गोसाईंजी के साथ भी हुआ। बी० ए० में दुबारा प्रविष्ट होने से पूर्व उनका दुःखी मन कभी-कभी यों पुकार उठता था कि हाय! छात्रवृत्ति तो बंद हो गई, शिक्षा जारी रखने में भोजन इत्यादि की सहायता कौन करेगा, साल-भर की फ़ीस और

पुस्तकों का व्यय, तथा और सब व्ययों का कष्ट कौन उठाएगा ? इत्यादि, इत्यादि। उनका मन कोई सहारा न देखकर कभी-कभी अत्यंत दुःखी वा उदास होता, और कभी-कभी ईश्वर की अपार कृपा पर भरोसा रखकर कुछ धीरज और शांति धारण करता था। इसी व्याकुल अवस्था में एक बार अपने मौसियाजी को गोसाईंजी ने यों लिख मारा कि—

"यदि तीर्थराम इच्छानुसार शिक्षा न प्राप्त कर सका, तो उसकी यह लालसा चिता तक जायगी, और संभव है बहुत शीघ्र संसार से विदा होना पड़े।"

सुना गया है जब उनका मन किसी तरह ठीक शांति न प्राप्त कर सका, तो गोसाईंजी एक दिन एकांत में जाकर ईश्वर का ध्यान करने लगे, और नीचे लिखा श्लोक ज़ोर-ज़ोर से पढ़ते हुए रोने लगे—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव-देव॥

तुम्हीं मेरे माता-पिता हो, तुम्हीं बंधु और मित्र हो, ऐ मेरे देवों के देव ! तुम्हीं मेरे सब कुछ हो, यह विद्या और धन इत्यादि तुम्हीं हो।

और बोले—प्रभो ! अब वस्तुतः आपके सिवाय राम का कोई सहायक नहीं। अब तो राम आपका और आप राम के हो लिए। राम का काम तो सदैव आपकी इच्छा

पर चलना, आपका ध्यान करना, और पढ़ने से आपकी सेवा करना होगा, और आपका काम राम की हर प्रकार सहायता करना होगा, जिसमें यह उत्तम संकल्प सत्य हो। अब तो राम पूर्ण रूप से आपका हो गया! हो गया!! हो गया!!! हे प्रभो, अब चाहे आप उसे रक्खो चाहे मारो, वह तो अब कुंदन के डले की तरह आपके द्वार पर गिर गया है, चाहे आप उसे गला लें और चाहे सुंदर बना लें। यह सब आपकी इच्छा पर निर्भर है।

कुंदन के हम डले हैं जब चाहे तू गला ले।
बावर[1] न हो, तो हमको ले आज आज़मा ले॥
जैसे तेरी ख़ुशी हो सब नाच तू नचा ले।
सब छानबीन कर ले, हर[2] तौर दिल जमा ले॥

राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा[3] है।
याँ[4] यों भी वाह वा है और वों[5] भी वाह वा है॥

या दिल से अब ख़ुश होकर कर हमको प्यार प्यारे।
ख़्वाह तेग़[6] खैंच ज़ालिम टुकड़े उड़ा हमारे॥
जीता रक्खे तू हमको या तन से सर उतारे।
अब राम तेरा आशिक़ कहता है यों पुकारे॥

राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा है।
याँ यों भी वाह वा है और वों भी वाह वा है॥

---

१. विश्वास। २. सर्व प्रकार से। ३. मरज़ी। ४. इस जगह, यहाँ। ५. वैसे भी। ६. तलवार।

लाला झंडूमल हलवाई, मिशन-कॉलेज

बी० ए० में विद्यार्थी राम का सहायक

देहली

(१६१२)

झंडू हलवाई की समय पर सहायता

इस पूर्ण निश्चय के साथ दूसरे दिन उठते ही गोसाइंजी कॉलिज में दुबारा प्रविष्ट होने के लिये चले गए। ईश्वर पर पूर्ण भरोसे का विश्वास भी जादू-भरा प्रभाव तत्काल दिखाता है। अभी गोसाइंजी को प्रविष्ट हुए बहुत थोड़ा ही समय बीता होगा कि झट कॉलिज के हलवाई झंडूमल ने उनके पास आकर निवेदन किया—"सालभर रोटी आप मेरे ही घर खाया करें।" इस चमत्कार को देखकर गोसाइंजी अपने गुरुजी को २ मई, सन् १८९२ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"आज मैं कॉलेज में प्रविष्ट हो गया हूँ। हमारे कॉलेज का जो हलवाई * है, उसने मुझे पहले भी कई बार बड़ी प्रीति से कहा था कि मैं रोटी उसके घर से खा लिया करूँ, और आज फिर

---

* यह हलवाई लाला झंडूमल थे। इन्होंने इस विपत्ति के समय गोसाईंजी की केवल भोजन देकर ही सहायता नहीं की, वरन् कई बेर कपड़े भी बनवाए। उन्हें मुफ़्त रहने के लिये मकान भी ले दिए। तात्पर्य यह कि जहाँ तक हो सका इन्होंने हर प्रकार गोसाईंजी की सहायता की। मानो ईश्वर ने ऐसी विपत्ति के समय गोसाईंजी की सहायता के लिये अपना मुख़्तार कॉलेज में शायद इसी हलवाई को ही नियुक्त कर रक्खा था। क्योंकि स्वामीजी के अनेक पत्रों से विदित होता है कि इस देवता-तुल्य हलवाई ने कॉलेज के जीवन में सबसे अधिक आतुरता (तपाक) से गोसाईंजी की सहायता की थी।

उसने हाथ जोड़कर कहा था। मैंने आज उसको कह दिया है कि अच्छा, खा लिया करूँगा।"

प्रिंसिपल साहब का चुपके-से रुपए देना

इस दरिद्रता के अवसर में गोसाईंजी को न केवल एक हलवाई से ही सहायता मिली, वरन् विश्वास की दृढ़ता ने कॉलेज के प्रोफ़ेसरों इत्यादि के दिलों को भी सहायता के लिये हिला दिया। गोसाईंजी, गुरुजी को ११ जून, १८९२ ई० के पत्र में इस प्रकार लिखते हैं कि—

"आज एक व्यक्ति ने हमारे प्रिंसिपल महोदय को मेरे लिए ४३) रुपए दिए हैं। साहब ने मुझे बुलाया था और कहने लगे कि यह ले लो। मैंने कहा कि किसने दिए हैं? वह कहने लगे कि हम नाम नहीं बताएँगे (मैं ख़्याल करता हूँ कि शायद वह अपनी गिरह से ही दे रहे हों)। फिर मैंने कहा—आधे इनमें से आप कॉलेज के कामों में व्यय करें और आधे मुझे दे दें। यह भी न माना। फिर मैंने कहा कि अच्छा मैं गिलबर्टसन साहब को (जो हमें गणित पढ़ाते हैं, और मेरी आधी फ़ीस अदा करते हैं, उनको) व्यर्थ में कष्ट देना नहीं चाहता, उनकी जगह इम्तहान तक आधी फ़ीस मुझसे ले लो। वह कहने लगे—इस बात का फ़ैसला गिलबर्टसन साहब से करना होगा। सो मैंने रुपए लाकर लाला अयोध्यादासजी को दे दिए हैं।.......... इत्यादि।"

इन सहायताओं के अतिरिक्त गोसाईंजी को प्राइवेट ट्यूशन से भी समय-समय पर बहुत सहायता मिलती थी। फिर भी इस विद्यार्थी-जीवन में आप अत्यंत सरलता से

रहते थे। वर्तमान काल के फ़ैशन कालर, नैकटाई इत्यादि से तो आपको आरंभ ही से घृणा थी, परंतु अपने देशी पहनावे में भी आप इतने सादे और किफ़ायतशुआर (मितव्ययी) थे कि बी० ए० क्लास में केवल मोटे गाढ़े (खद्दर) के कपड़े और देशी जूता पहना करते थे। एक बेर अपने जूते के विषय में (५ जुलाई, १८९२ ई० के पत्र में) अपने गुरुदेव को लिखा था कि—

"कल रात को जब मैं दूध पीने गया, तो मेरी जूती का एक पैर शायद किसी की ठोकर से नाली में जा पड़ा। जब दूध पीकर जूती पहनने लगा, तो एक पैर तो पहन लिया, दूसरा इधर-उधर देखा, कहीं नहीं मिला। हलवाई * दिया लेकर सारी नाली ढूँढ़ आया, पर न मिला। दो लड़कों को पैसा देने का वादा करके कहा—कि ढूँढ़ दो, उनको भी न मिला। पानी बड़े ज़ोर से चल रहा था, शायद कहीं का कहीं चला गया होगा। मेरे मकान में एक पुरानी ज़नानी जूती पड़ी हुई थी, सवेरे एक अपनी जूती का पैर और एक वह ज़नानी जूती का पैर पहनकर कॉलेज में गया। वह मेरी जूती अब बिलकुल पुरानी हो गई थी, सो आज मैंने सवा नौ आने (॥~)।) में एक नई जूती मोल लेकर पहनी है। मेरा आपकी ओर बड़ा ध्यान रहता है, आप मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहना।"

---

* यह हलवाई रुलियाराम था, जो उन दिनों लाहौर में लोहारी दरवाज़े के भीतर चकला बाज़ार में दुकान करता था।

बी० ए०-परीक्षा में प्रवेश

धीरे-धीरे परीक्षा में बैठने के दिन आ पहुँचे। इस अवसर पर तीर्थरामजी की सज्जनता और विश्वास के प्रभाव से यद्यपि और बहुत-से लोग सहायता के लिये तैयार हो गए थे, परंतु इस शुभ कार्य में भाग लेने का सौभाग्य गणित के प्रोफ़ेसर गिलबर्टसन साहब को मिला। गोसाईंजी अपने २३ जनवरी, १८९३ के पत्र में गुरुजी को लिखते हैं कि—

"जब मैं कॉलेज पहुँचा, तो चपरासी मुझे बुलाकर प्रोफ़ेसर गिलबर्टसन साहब (गणित-शास्त्र के प्रोफ़ेसर) के पास ले गया। उन्होंने मुझे एक बहुत तहों में बंद दर बंद काग़ज़ की पुड़ी दी। और कहा "जाओ"। उस समय घंटा बज गया और मैं उस पुड़ी को जेब में डालकर पढ़ने में प्रवृत्त हो गया। परंतु आज मेरे पास एक पैसा भी ख़र्चने को न था, तीन घंटे के पीछे मैंने अलग जाकर उस पुड़ी को खोला, उसमें तीस रुपए थे। मालूम होता है कि ये तीस रुपए केवल परीक्षा में बैठने के लिये प्रोफ़ेसर साहब ने दिए थे, क्योंकि उन दिनों बी० ए०-परीक्षा का प्रवेश-शुल्क केवल तीस रुपए ही था। मैं तत्काल प्रोफ़ेसर साहब के पास गया और कहा—'मुझे इतने रुपए की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इससे पहले लाला अयोध्यादास से प्रवेश के लिये रुपए ले लिए थे। आप बीस रुपए वापस ले लें।' किंतु उन्होंने न माना।............इत्यादि।"

बी० ए० के आज़मायशी इम्तहान का नतीजा

परीक्षा के प्रवेशपत्र लिए जाने के पश्चात् बी० ए०

कक्षा का आज़मायशी इम्तहान (Trial Examination) कॉलेज में हुआ। गोसाईंजी अपने कॉलेज में सबसे प्रथम रहे। इस परीक्षा के परिणाम का समाचार अपने गुरुजी को गोसाईंजी अपने ११ मार्च, १८९३ ई० के पत्र में इस प्रकार देते हैं—

"आज हमारे रोल-नंबर (Roll Number) आ गए हैं। मेरा नंबर ८७ है। हमारी आज़मायशी परीक्षा का परिणाम (Result) भी निकला है। मुझे परमेश्वर ने सर्वोपरि उत्तम रक्खा है। जितने नंबर प्रथम श्रेणी में रहने के लिये चाहिएँ, उससे मेरे ६० अधिक हैं। अँगरेज़ी में भी बड़ा ही अच्छा रहा हूँ। और एक गणित-शास्त्र के पर्चे में १५० में से १४८ नंबर मिले हैं। पर मैं जानता हूँ कि यह सब आपकी ही कृपादृष्टि का फल है। आपने मुझ पर दया-दृष्टि रखनी।"

बी० ए० की वार्षिक परीक्षा

जब वार्षिक परीक्षा आरंभ हो गई, तो गोसाईंजी के हृदय में न केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने का विचार और चाव हिलोरें ले रहा था, अपितु गुरु-भक्ति भी उमड़-उमड़कर तरंगायित हो रही थी। आपने अपने २१ मार्च, १८९४ के पत्र में इस प्रकार लिखा है—

"महाराजजी! मेरा प्रतिक्षण आपके चरणों में ध्यान रहा है, आप अभी तक नहीं आए। बड़ा शोक लगा हुआ है। परसों (गुरुवार) और अतरसों (शुक्रवार) हमारी गणित की परीक्षा है। अँगरेज़ी की परीक्षा हो चुकी है। महाराजजी! यदि मेरी ६०)

रुपए छात्रवृत्ति लग जाय, तो पहले तीन मास की छात्रवृत्ति सारी आपने रख लेनी, और जो उपहार मिले वह भी आप ही का। और वैसे तो आप जानते ही हैं कि मैं स्वयं सारा ही आपका हूँ। यदि मैं गणित-शास्त्र के चारों पर्चे ही मारे-के-मारे कर आऊँ, तब मुझे तसल्ली होगी। यदि आपकी दया हो, तो यह बात तनिक भी कठिन नहीं।

आपका दीनदास--तीर्थराम"

बी० ए० की वार्षिक परीक्षा का परिणाम

उस वर्ष गोसाईंजी न केवल आज़मायशी परीक्षा में ही प्रथम रहे, वरन् वार्षिक परीक्षा में भी वैसे ही प्रथम और उत्तम श्रेणी में सफल हुए। परिणाम निकलने के समय गोसाईंजी स्वयं लाहौर के बाहर थे। गुजराँवाला के पते पर गोसाईंजी के एक सहपाठी ने मिशन-कॉलेज, लाहौर से उनके बी० ए० में उत्तीर्ण होने का आनंद-समाचार अपने १७ एप्रिल, १८६३ के पत्र में इस प्रकार भेजा था—

"मुबारकबाद (बधाई) देता हूँ, आप पंजाब-भर में प्रथम रहे हैं। आपके नंबर ३१० हैं, और प्रथम श्रेणी (फ़र्स्ट डिवीज़न) में रहे हो और आपको वैसे ही दो छात्रवृत्तियाँ भी मिलेंगी। द्वितीय लछमणदास, तृतीय ग़ुलाम सरवर और चतुर्थ टोपनराम रहे हैं। सारे विद्यार्थी हमारे कॉलेज से २१ के लगभग उत्तीर्ण हुए हैं। और समस्त विद्यार्थी सारे पंजाब-भर में ५० के लगभग उत्तीर्ण हुए हैं। बंदा आपको अवश्य तार द्वारा सूचना देता, परंतु इस बंदे का अपना चित्त बहुत व्याकुल है, इसलिये क्षमा रक्खें।"

अपनी बी० ए० की परीक्षा के संबंध में स्वामीजी ने अपने एक "विश्वास" नामक व्याख्यान में इस प्रकार कहा था कि "जब राम बी० ए० की परीक्षा दे रहा था, तो परीक्षक ने गणित के पर्चे में १३ प्रश्न देकर उन पर लिख दिया कि इन तेरह प्रश्नों में से कोई से ९ प्रश्न हल करो।" राम के हृदय में विश्वास उमड़ रहा था, उसने उसी अवसर में सब १३ के १३ प्रश्न हल करके लिख दिया कि इन १३ प्रश्नों में से कोई-से ९ जाँच लो। यद्यपि इन १३ प्रश्नों में से औरों ने कठिनता से ३ या ४ प्रश्न हल किये थे।

अपने एक पत्र में अपने पिताजी को गोसाइंजी ने इस प्रकार लिखा था—

"आपका पुत्र तीर्थराम प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के अतिरिक्त युनिवर्सिटी-भर में प्रथम रहा है। अब साठ रुपया मासिक छात्रवृत्ति मिलेगी, यह सब परमेश्वर की कृपा है, मेरी निजी योग्यता की इसमें कोई गति नहीं।"

एक दूसरे पत्र में गोसाइंजी अपने मौसियाजी को इस प्रकार लिखते हैं कि—

"मुझे दो छात्रवृत्तियाँ मिलेंगी, एक २५) की दूसरी ३५) की। यह सब ईश्वर की कृपा है।"

एक तीसरे पत्र में लिखते हैं कि—

"पंजाब-युनिवर्सिटी का कनवोकेशन उत्सव हो चुका है, मुझे ९०) नक़द और सोने का पदक डिप्लोमा इत्यादि के अतिरिक्त मिला है।"

एम्० ए० की शिक्षा के लिये गवर्नमेंट-कॉलेज में प्रविष्ट होना

मिशन-कॉलेज में उन दिनों एम्० ए० क्लास नहीं खुला था, अतः बी० ए० पास करने के बाद एम्० ए० की पढ़ाई आरंभ करने के लिये गोसाईंजी गवर्नमेंट-कॉलेज, लाहौर में मई, १८९३ में जाकर प्रविष्ट हुए। इस साल गोसाईंजी की आयु केवल साढ़े उन्नीस वर्ष की थी. परंतु ध्यान देने की बात है कि इस आयु में गोसाईंजी की लेखनी प्राकृतिक दृश्यों के कैसे शुद्ध और चित्ताकर्षक चित्र खींचती थी। आप अपने १० जुलाई, १८९३ ई० के पत्र में गुरुजी को लिखते हैं कि—

"यहाँ कल बड़ी वृष्टि हुई। आज मैं कॉलेज से पढ़कर सैर करता हुआ डेरे (घर पर) आ रहा हूँ। इस वक़्त बड़ा सुहाना समय है। जिधर देखता हूँ या जल दृष्टि में आता है या हरियाली। ठंडी-ठंडी पवन हृदय को बड़ी प्रिय लगती है। आकाश में बादल कभी सूर्य को छुपा लेते हैं, कभी प्रकट कर देते हैं। नाले-नालियों से पानी बड़े वेग से बह रहा है। गोलबाग़ के वृक्ष फलों से भरपूर हैं। टहनियाँ झुक कर पृथिवी से आ लगी हैं। यही प्रतीत होता है कि अनार, आड़ू, आम, इत्यादि अभी गिरे कि गिरे। कबूतर, कव्वे और चीलें बड़ी प्रसन्नता से वायु की सैर कर रहे हैं। वृक्षों पर पक्षी बड़े आनंद से गायन कर रहे हैं। तरह-तरह के पुष्प खिले हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो मेरा स्वागत करने के लिये आँखें खोले मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। पृथिवी पर हरियाली

क्या है, मानो हरी मख़मल का विछौना विछा है। सरू और सपेदा (लम्बे-लम्बे वृक्ष) अभी स्नान करके सूर्य की ओर ध्यान करके एक टाँग से खड़े हैं, मानो संध्या-उपासना में मग्न हैं। आकाश की नीलता और सफ़ेदी ने अद्भुत वहार वनाई है। मेढक वर्षा की खुशियाँ मना रहे हैं। प्रत्येक दिशा से आनन्द के झंकारे (ह्लाद) वज रहे हैं, मानो पृथिवी और आकाश का विवाह होनेवाला है, जिसकी संतान कार्त्तिक और मार्गशीर्ष के दो सतोगुणी महीने होंगे। इस समय मुझे आप याद आते हैं। क्योंकि मैं आपको यह सब वस्तुएँ दिखा नहीं सकता, केवल लिख देता हूँ।

अव मैं डेरे (घर पर) आ पहुँचा हूँ। आपका पत्र मिला है, अत्यंत हर्ष प्राप्त हुआ है। अव मैं अपने अध्ययन का कार्य आरंभ करने लगा हूँ, क्योंकि परसों वुधवार को हमारी (मासिक) परीक्षा है। यह पत्र चलते-चलते रास्ते में पेन्सिल से लिखा गया था, और घर पर आकर इस कार्ड पर इसकी नक़ल करता हूँ।"

पढ़ाने का चाव

परीक्षा-प्राप्त करने के साथ-साथ स्वामीजी को पढ़ाने का भी वड़ा शौक़ था। वी० ए०-परीक्षा में अपने वहुत से सहपाठियों को पढ़ाते थे, और इनका वहुत-सा समय नियत ट्यूटियों के अतिरिक्त अपने सहपाठियों के पढ़ाने में व्यय हुआ करता था। आप चाहे कितने ही व्यतिव्यस्त क्यों न हों, किंतु जव किसी ने कोई प्रश्न पूछा, अपना काम छोड़कर झट उसकी ओर लग जाते थे।

यह चाव एम्० ए० में प्रविष्ट होने के पश्चात् पहले से

भी दुगुना-तिगुना बढ़ गया। अब आप अपनी शिक्षा के साथ-साथ किसी नौकरी की खोज का भी विचार करने लगे। आपने १७ जुलाई, १८९३ ई० के पत्र में गुरुजी को लिखा कि—

"आज मैंने कुछ खबर सुनी है कि वैदिक कॉलेज का गणित का प्रोफ़ेसर छुट्टी लेना चाहता है, यदि आप परमात्मा को कहकर फ़िलहाल उसकी जगह मुझे करा दें, तो यह मेरे और आपके अत्यंत प्रसन्नता का समाचार है।"

जब किसी कारण यह जगह नहीं मिली, तो फिर रावलपिंडी की ओर ध्यान दिया, क्योंकि वहाँ के आर्ट्स-कॉलिज में एक गणित के प्रोफ़ेसर की आवश्यकता थी। इतने में मिशन-कॉलिज, लाहौर में ही गणित के प्रोफ़ेसर की जगह खाली होने लगी, क्योंकि वहाँ के प्रोफ़ेसर साहब अपने घर विलायत को छुट्टी पर जाने लगे थे।

गोसाईंजी ने इसी कॉलिज में शिक्षा भी प्राप्त की थी, एवं यहाँ के प्रोफ़ेसरों ने और विशेषतः गणित के प्रोफ़ेसर ने ही इन्हें शिक्षा में बड़ी सहायता दी थी, इसलिये इस कॉलिज की सेवा करना अपना कर्तव्य समझकर गोसाईं-जी ने उस गणित के प्रोफ़ेसर की जगह विना वेतन के ही कार्य किया, और कॉलिज के सभी कक्षा के विद्यार्थियों को एक साल तक गणित पढ़ाते रहे, तथा साथ-साथ अपनी एम्० ए०-क्लास की शिक्षा भी गवर्नमेंट-कॉलिज में प्राप्त करते रहे।

गवर्नमेंट-कॉलेज के प्रिंसिपल से अचानक भेंट

गोसाईंजी की सबके साथ सहानुभूति, सरल प्रकृति, अंतःकरण की शुद्धता, निष्कपट व्यवहार और सुंदर बोली प्रत्येक के हृदय को आकर्षित करती थीं। जो कोई इन्हें कॉलेज में या बाहर मिल जाता, उनके उत्तम गुणों और उत्तम बर्ताव से एक बार तो अवश्य मोहित हो जाता। आपने अपने कॉलेज के प्रिंसिपल के साथ अचानक भेंट होने का समाचार अपने १७ जुलाई, १८९३ ई० के पत्र में अपने गुरुजी को इस प्रकार लिखा है—

"आज मैं दरिया की सैर को गया था। नावों के पुल पर फिर रहा था कि मि० बैल गवर्नमेंट-कॉलेज के प्रिंसिपल (बड़े साहब) वहाँ आ निकले। भले प्रकार से मिले। कई प्रकार की बातें हुईं, मेरी ऐनक के विषय में और इस विषय में कि मैं छाता क्यों नहीं लगाता, क्योंकि उस समय बादल आया हुआ था, और छोटी-छोटी बूँदें पड़ रही थीं, इत्यादि-इत्यादि।

फिर मुझे अपनी गाड़ी में बिठा लिया और शहर की ओर लाए। रास्ते में मेरी पढ़ाई के विषय में बातें हुईं। और मुझे लगभग सौ पद (शेर) अँगरेज़ी-भाषा के कंठस्थ थे, मैंने वह सुनाए। गणित-शास्त्र के संबंध में कहा कि मैं इसकी प्रत्येक शाखा की कम-से-कम चार या पाँच पुस्तकें अवश्य पढ़ा करता हूँ, और जो अँगरेज़ी-साहित्य की पुस्तकें आजकल मैं देखता हूँ वह मैंने बताईं। बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने मेरे पिता-माता के

विषय में पूछा कि वह धनाढ्य हैं या नहीं। मैंने उत्तर दिया, नहीं। फिर उन्होंने पूछा कि मेरा विचार एम्० ए० की परीक्षा के पश्चात् क्या करने का है? मैंने उत्तर दिया कि मेरा अपना कुछ संकल्प नहीं, जो ईश्वर की इच्छा होगी, उसी के अनुसार मैं अपना संकल्प कर लूँगा। यों यदि मेरी कोई इच्छा है तो यह है कि वह काम करूँ जिससे मैं अपने जीवन का एक-एक श्वास परमात्मा की सेवा में अर्पण कर सकूँ। और परमात्मा की सेवा लोगों की सेवा करने में होती है, और लोगों की सेवा में सबसे अच्छी तरह गणित पढ़ाने से कर सकता हूँ। इत्यादि।

उन्होंने भी बहुत-सी बातें मेरे अनुसार कीं, और यह भी कहा कि हम तुम्हारे पक्ष में जितना भी हो सकेगा, यत्न करेंगे (अब यह साहब पंजाब-विश्वविद्यालय के स्थानापन्न रजिस्ट्रार भी हो गए हैं)।

इतने में उनकी कोठी, जो कॉलेज के ठीक समीप है, आ गई। पर वह मुझे उस जगह लाए जहाँ विद्यार्थी व्यायाम किया करते हैं, और उन्होंने व्यायाम करते हुए विद्यार्थी दिखाए। फिर उन्होंने पूछा कि तुम किस प्रकार का व्यायाम किया करते हो। मैंने चारपाई वाले व्यायाम का नाम लिया। उन्होंने एक चारपाई (खाट) मँगवाई। मैंने एक सौ साठ बार उसे ऊपर उठाया और नीचे रक्खा। फिर उन्होंने और विद्यार्थियों से कहा कि चारपाई से व्यायाम करें, उनमें से कोई भी बीस से अधिक बार न कर सका। इसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों का दूसरे प्रकार का व्यायाम देखने के पश्चात् वह सबको सलाम करके अपनी कोठी की ओर चल दिए। और मैंने किंचित् आगे बढ़कर कहा कि जी! मैं आपकी कृपा का अत्यंत अनुगृहीत हूँ। फिर मुझको सलाम करके

अपनी कोठी में प्रवेश हो गए। और मैं अपने घर की ओर चला आया।

महाराजजी! यह सब आपकी कृपा का फल है।"

सिविल सर्विस की छात्रवृत्ति

जिस वर्ष गोसाइँ तीर्थरामजी ने बी० ए० में सर्वोत्तम सफलता प्राप्त की, उस वर्ष पंजाब-युनिवर्सिटी की ओर से इँगलैंड भेजने के लिये किसी उत्तम और श्रेष्ठ विद्यार्थी का नाम घोषित होना था। गवर्नमेंट-कॉलेज के प्रिंसिपल साहब मि० बैल, जिनसे गोसाइँजी की अकस्मात् भेंट हुई थी, और जो उस समय युनिवर्सिटी के स्थानापन्न रजिस्ट्रार थे, गोसाइँ तीर्थरामजी की बहुत प्रशंसा करते थे, और चाहते थे कि गोसाइँजी पंजाब-प्रांत की तुलनात्मक परीक्षा में प्रविष्ट होकर इक्सट्रा असिस्टेंट के उत्तम पद पर विराजमान हो जायँ। परंतु गोसाइँजी की आंतरिक इच्छा गणित की शिक्षा देने की थी और यही अभिलाषा उन्हें इँगलैंड ले जाने के लिये उभारती थी, किंतु चूँकि तीर्थरामजी को वस्तुतः "सच्चा राम" (Rama Truth) बनना था, और सांसारिक उलझनों के स्थान पर आध्यात्मिक डिपार्टमेंट में प्रविष्ट होना था, इसलिये विश्वनियंता ने, जिसके सुप्रबंध के सामने सांसारिक बुद्धियों और आविष्कारों के सूर्यों का प्रकाश धुँधला रहता है, वह दो सौ पौंड की छात्रवृत्ति, जो

गोसाईंजी को मिलनी थी, किसी दूसरे विद्यार्थी को दिला दी।

चित्त की वृत्ति

इस प्रकार जब गोसाईंजी इँगलैंड जाने से रोके गए, तो प्रिंसिपल साहब और अन्य मित्रों ने पूछा कि अब आपका संकल्प क्या है? गोसाईंजी ने उत्तर में प्रत्येक से यही कहा कि "मैं या तो (गणित का) आचार्य होना चाहता हूँ या उपदेशक (I wish to be either teacher or preacher)।" इस उत्तर से स्पष्ट प्रतीत होता है कि गोसाईंजी सिविल सर्विस और वैरिस्टरी को स्वतः घृणा की दृष्टि से देखते थे, और उनकी चित्त की वृत्ति धार्मिक थी। इसलिये सांसारिक बातों और पदों से उन्हें अत्यंत घृणा थी। इन दिनों उनका मन धार्मिक विचारों में ऐसा लीन था कि संसार की अन्य बातें उनके मन पर तनिक भी प्रभाव न डालती थीं। आपने २५ दिसंबर, १८९३ ई० के पत्र में अपने गुरुजी को लिखा कि—

"आज यहाँ दादा भाई नौरोजी (जो भारतवर्ष का मनुष्य पारलीमेंट का मेम्बर है) तीन बजे की गाड़ी में आया है। इतने ठाट-बाट के साथ उसका स्वागत किया गया कि जिसका कुछ अंत नहीं। कांग्रेसवालों ने मानो उसको ब्रह्मा और विष्णु की पदवी दे दी है। कई सुनहरे द्वार बनाए गए हैं। उसकी गाड़ी नगर में अभी तक फिरा रहे हैं। लाखों मनुष्य साथ-साथ जा रहे हैं।

उसके चारों ओर दीपमाला है और बड़े ज़ोर के जंकारे (उच्चह्लाद) बज रहे हैं। साधारण लोगों के चित्तों में अत्यंत जोश आ रहा है। इतना जोश कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। पर मेरे चित्त पर इन सब बातों से तनिक भी प्रभाव नहीं हुआ। यह बड़े शुक्र (धन्यवाद वा ईश्वर-कृपा) की बात है।"

सादगी और सरलता

गोसाईंजी की सादगी कमाल दर्जे तक पहुँची हुई थी। अँगरेज़ी ढंग के सूट-बूट से तो आपको चिड़-सी थी, परंतु मूल्यवान् कपड़े भी नहीं पहनते थे। एम्० ए० में भी केवल गाढ़े (मोटे खद्दर) के कपड़े पहना करते थे। प्रायः अपने घर में ही कपड़े बनवाते और सिलवाते थे, बाज़ार से बहुत कम ख़रीदते थे। इस विषय में वह अपने ८ मार्च, १८९४ ई० के पत्र में गुरुजी को लिखते हैं कि—

"पिछले दिनों मुझे कपड़ों की बड़ी तंगी थी, धोबी ने महीने-भर कपड़े नहीं दिए थे, इसलिये मैंने अपने पड़ोसी दर्ज़ी से एक चोग़ा, एक कुर्ता और एक पाजामा मोल ले लिया था। इसमें दो रुपए से दो पैसा कम लगे थे।"

गोसाईंजी के एक सहपाठी लिखते हैं कि एक दिन गोसाईंजी बड़े असमंजस में देखे गए। पूछने पर मालूम हुआ कि युनिवर्सिटी का वार्षिक उत्सव (Convocation) होनेवाला है, उसमें सर्टिफ़िकेट और पदक प्राप्त करने के लिये आपका सम्मिलित होना आवश्यक है। बोले कि इस

अवसर पर विलायती चोगा और बूट पहनने पड़ेंगे और यह बात मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। कुछ देर वार्तालाप होने के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि ये दोनों वस्तुएँ किसी सहपाठी से उस दिन माँग ली जायँ।

एम्० ए० में दिनचर्या

९ फ़रवरी, १८९४ ई० के पत्र में गोसाईंजी अपनी दिनचर्या के विषय में अपने गुरुजी को इस प्रकार लिखते हैं—

"मैं आजकल लगभग ४ बजे सवेरे उठता हूँ और सात बजे तक पढ़ता रहता हूँ, फिर शौच आदि से निबटकर नहाता हूँ, और व्यायाम करता हूँ। तत्पश्चात् पंडितजी की ओर जाता हूँ। मार्ग में पढ़ता रहता हूँ। वहाँ एक घंटे के पश्चात् भोजन पाकर उनके साथ गाड़ी में कॉलेज जाता हूँ। कॉलेज से घर आते समय रास्ते में दूध पीता हूँ। घर कुछ मिनट ठहरकर नदी (रावी) को जाता हूँ, वहाँ जाकर नदी-तट पर कोई आध घंटे के लगभग टहलता रहता हूँ। वहाँ से वापस आते समय सारे नगर के इर्द-गिर्द बाग़ में फिरता हूँ। वहाँ से घर आकर कोठे पर टहलता रहता हूँ। इतने में अँधेरा हो जाता है, परंतु स्मरण रहे कि मैं चलते-फिरते पढ़ता बराबर रहता हूँ। अँधेरा पड़ने पर व्यायाम करता हूँ और लैम्प जलाकर सात बजे तक पढ़ता हूँ, फिर भोजन पाने जाता हूँ और प्रेम * की ओर भी जाता हूँ। वहाँ से आकर कोई दस-बारह मिनट अपने मकान के वले के साथ व्यायाम करता हूँ। फिर

* प्रेम से तात्पर्य प्रेमनाथ है। यह उस विद्यार्थी का नाम है, जिसके घर जाकर गोसाईंजी पढ़ाया करते थे।

गोस्वामी तीर्थराम एम

कॉनवोकेशन में डिगरी पाते समय

लाहौर (१८९६)

कोई साढ़े दस बजे तक पढ़ता हूँ और लेट जाता हूँ। मेरे अनुभव में यह आया है कि यदि हमारा उदर ठीक आरोग्यावस्था में हो, तो हमें अत्यंत हर्ष, प्रसन्नता, एकाग्रता, ईश्वरस्मरण, और अंतःकरण की शुद्धि प्राप्त होते हैं। बुद्धि और स्मृति का बल अति तीव्र हो जाता है। प्रथम तो मैं खाता ही बहुत कम हूँ, द्वितीय जो खाता हूँ उसे खूब पचा लेता हूँ।......

आजकल राय मेलाराम का * पुत्र जो एफ़० ए० में पढ़ता है, मुझे कई संदेश भेज चुका है कि मैं उसे पढ़ाना स्वीकार करूँ। पर मैंने अभी कोई उत्तर नहीं दिया। समय कहाँ से लाऊँ? कठिन यह है कि जिनको पढ़ाने लगता हूँ, वह फिर छोड़ते बिलकुल नहीं। कोई-न-कोई उपाय से मुझे रख लेते हैं। प्रेम और मैत्री से बाँध लेते हैं।"

सहनशक्ति

गोसाइँजी दुःखों को बड़े धीरज और शांति से सहन किया करते थे। एक दिन आपके घर से पत्र मिला कि श्रीमती तीर्थदेवी (भगिनी महोदया) का स्वर्गवास हो गया। आपको उनकी असामयिक मृत्यु से अत्यंत शोक हुआ। चुपचाप रावी नदी की ओर चल दिए। एकांत में पहुँचकर रक्त के सच्चे जोश को आँसुओं द्वारा बहाकर परमात्मा के दरबार में प्रार्थना की कि "साहस के साथ दुःखों

---

* राय मेलाराम के सुपुत्र राय बहादुर लाला रामशरणदास से यहाँ अभिप्राय है।

को सहन करने की शक्ति दें।" आप अपने मौसियाजी को अपने एक पत्र में लिखते हैं कि—

"मैं इन दिनों बड़े शोक और दुःख की अवस्था में रहा हूँ, क्योंकि मेरी बहन, जो मेरी सम्मति में समस्त पंजाब की स्त्रियों के लिये लज्जा, शीलता, सुस्वभाव, सहनशीलता, परिश्रम और पवित्र विचार इत्यादि में एक आदर्श थी, कालवश हो गई है।"

ऐसे ही १० जनवरी, १८६४ ई० के पत्र में अपने गुरुदेव को लिखते हैं कि—

"अपनी बहन के विषय में मुझे कल ही ज्ञात हो गया था। मुझे जो दुःख हुआ है, उसका न लिखना अच्छा है। मैं बड़ा ही रोया हूँ। मेरी उसके साथ अत्यंत प्रीति थी।"

एम्० ए० में हृदय की अवस्था

आजकल की शिक्षा का प्रभाव प्रायः यह देखने में आता है कि ज्यों-ज्यों कॉलेज के दर्जे पास होते जाते हैं, त्यों-त्यों धर्म को जवाब मिलता जाता है। पुरानी सभ्यता, ईश्वर-ध्यान या गुरुभक्ति का परिहास उड़ाया जाता है और मन भौतिक उन्नति, विषय-विलास तथा कोट-पतलून की बनठन में लिप्त होने लग जाता है। किंतु गोसाईं तीर्थरामजी के चित्त पर शिक्षा से बिलकुल उल्टा ही प्रभाव पड़ा, यद्यपि गृहस्थ के गुरु (भगत धन्नारामजी) गोसाईंजी की अपेक्षा विद्या-संबंधी योग्यता में बहुत ही पीछे थे। न वह कोई कक्षा उत्तीर्ण थे, और न किसी भाषा में पंडित। केवल

सीधे-सादे, परंतु शुद्ध हृदय, वाणी के सच्चे और ऋषि थे। तो भी उनके साथ गोसाईंजी के हार्दिक प्रेम और प्रतिष्ठा कॉलेज की भौतिक शिक्षा के प्रभाव से तनिक भी कम होने नहीं पाई। कम तो क्या, उल्टा विद्या की उन्नति के साथ-साथ गुरुभक्ति भी दिनदूनी रातचौगुनी उन्नति करती रही। विद्यार्थी-काल में गोसाईंजी प्रत्येक कार्य को गुरुजी की आज्ञा से करते थे, और जो काम भी पूरा होता, वह सब गुरु-कृपा या ईश्वर-कृपा से पूर्ण हुआ निश्चय किया करते थे। यदि किसी भ्रम के कारण गुरुजी ज़रा रुष्ट हो जाते थे, तो पत्रों द्वारा बार-बार क्षमा-प्रार्थना करते थे। एक बार संयोग से गोसाईंजी से सदैव से अधिक पैसा ख़र्च हो गया और गुरुजी की अप्रसन्नता का पत्र आया, तो आप उसके उत्तर में ३० दिसंबर, १८९३ ई० को इस प्रकार लिखते हैं कि—

> "गर कुशी बर जुर्म बख़्शी, दस्तो-सर बरआस्तानम्।
> बंदाए फ़र्मां चे बाशद, हर चेः फ़रमाई बरआनम्॥

अर्थ—चाहे आप मारें, चाहे क्षमा करें, मेरा सिर और हाथ दोनों आपकी देहली पर हैं। दास का आदेश क्या हो सकता है, जैसी आप आज्ञा दें, मैं उसका पालन करूँ।

महाराजजी! जब आपका पत्र मुझे मिला, अत्यंत प्रसन्नता हुई; परंतु पत्र पढ़कर चित्त अति शोकातुर हुआ, क्योंकि आप दास पर रुष्ट हैं। आप अब क्षमा कीजिएगा, क्योंकि मेरे-जैसे

अनुभव-हीन से भूल-चूक बहुधा हो जाती हैं। 'मनुष्य गिर-गिर कर सवार होता है' और कई बार बड़े बुद्धिमान् भी चूक जाते हैं। 'तैराक डूबते आए हैं।' आप अब यहाँ कब पधारेंगे? जब तक आपका कुशल-पत्र या आप स्वयं यहाँ न आएँगे, मुझे बड़ी चिंता रहेगी। मुझे प्रतीत होता है कि इन दिनों आपको तंगी होगी, इसलिये यदि आप आज्ञा दें, तो मैं यहाँ से कुछ अर्ज़ * करूँ अर्थात् सेवा में कुछ नक़दी भेजूँ आप दास पर किसी प्रकार से रुष्ट न होवें। इस वर्ष मैंने ऐसी एक भी पुस्तक नहीं ख़रीदी, जो मेरी वार्षिक परीक्षा में उपयोगी न हो। पहले यह स्वभाव मुझे था, पर अब आपकी दया से दूर हो गया है। ख़र्च मुझसे निःसंदेह अधिक हो जाता है और मैं प्रयत्न करता हूँ कि कम हो। ख़र्च दूध इत्यादि में होता है। मैं जब कांग्रेस का उत्सव देखने गया था, तो इस उद्देश्य से गया था कि वहाँ जो बंगाल, मदरास, बंबई, मध्यप्रांत, दक्षिण इत्यादि के अति उत्तम प्रकार के व्याख्यानदाता (Lecturers) आये हुए हैं, उनके व्याख्यान की विधि आदि देखूँ। नौरोजी के आने के दिन मैंने इस बात का धन्यवाद किया था कि लोगों को जोश व ख़रोश में देखकर मुझे जोश न आया; सो अब भी मैं आपके चरणों को धन्यवाद देता हूँ कि इन सब बोलनेवालों को सुनकर मुझे जोश न आया।"

जैसे गुरुभक्ति उन्नति करती गई, वैसे ही धर्म में श्रद्धा-भक्ति भी शिक्षा के साथ-साथ वेग से वृद्धि पाती गई। जब

---

* गुरुजी की भेंट में जब कुछ रुपए भेजना हो तो उसे "अर्ज़ करूँ" का संकेत गोसाईंजी ने बना रक्खा था, उसी संकेत को यहाँ गोसाईंजी ने वर्ता है।

तीर्थरामजी लोअर प्राइमरी में शिक्षा पाते थे, तो उस समय के गुरु मौलवी मोहम्मदअलीजी वर्णन करते हैं कि गोसाइँ तीर्थरामजी प्रतिदिन कथा सुनने धर्मशाला में जाते थे। कथा दो बजे होती थी और यही स्कूल का समय होता है, इसलिये मैंने उसे जाने से रोका। होनहार तीर्थराम ने रोकर प्रार्थना की कि "ऐ उस्तादजी * ! रोटी खाने की छुट्टी चाहे न दी जाय, परंतु कथा सुनने की आज्ञा अवश्य दे दें।" इन कथाओं ने गोसाइँजी के चित्त को आस्तिक बना दिया था कि बात-बात में गोसाइँजी ईश्वर की कृपा और भगवत् पर भरोसा मुख्य समझते थे। यह ईश्वर पर विश्वास दिन-दिन उन्नति करता हुआ गोसाइँजी के रोम-रोम में अब ऐसा व्याप्त हो गया कि यदि गुरुजी भी इस विश्वास को तनिक छोड़ते दिखाई देते, तो उन्हें भी सचेत करने में तनिक भी भूल नहीं करते थे। आप ७ फ़रवरी, १८६४ ई० के पत्र में गुरुजी को लिखते हैं कि—

"आप अपने असली स्वरूप की ओर ध्यान करने का प्रयत्न करें, संबंधियों की तनिक भी परवाह न करें। सत्संग, अच्छे

---

* ग्रामीण पाठशालाओं के मास्टरों को 'उस्तादजी' कहते हैं। इन मदरसों में सवेरे से शाम तक पढ़ाई होती है, और बीच में एक बार बच्चों को भोजन करने के लिये छुट्टी दी जाती है।

ग्रंथ, एकांत-सेवन द्वारा अपने स्वरूप में निष्ठा होती है, और अपने स्वरूप में निष्ठा होने से सारा संसार सेवक बन जाता है।"

आगे चलकर १८ फ़रवरी, १८९४ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"संसार की कोई भी वस्तु विश्वास और भरोसा करने के योग्य नहीं है। उन लोगों पर परमेश्वर की अत्यंत कृपा है जो अपना आश्रय और विश्वास केवल परमात्मा पर रखते हैं, और हृदय से सच्चे साधु हैं। ऐसे महापुरुषों के चरणों में परमेश्वर की सारी सृष्टि ग़ुलामी (दासता) करती है।"

फिर १८ मार्च, १८९४ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"सत्संग, उत्तम ग्रंथ और भजन—बंदगी, ये तीन चीज़ें तीनों लोक का राजा बना देती हैं, और हमारा कुसंग परमेश्वर को हमसे अप्रसन्न करवा देता है जिसके कारण हम पर तरह-तरह के कष्ट आते हैं। एकांत-सेवन से और थोड़ा-सा खाने से परमात्मा स्वयं आकर हमारा सत्संग करते हैं।"

इस वर्ष के सारे पत्रों से सिद्ध होता है कि गोसाईंजी में आस्तिक भाव और ईश्वर पर विश्वास अपने गुरुजी से भी कहीं अधिक बढ़ गया था, जिससे गुरुजी की ओर से उपदेश मिलने के स्थान पर अब उल्टे गोसाईंजी की ओर से उपदेश प्रवाहित होने लगा। तो भी गोसाईंजी की नम्रता और गुरुभक्ति अत्यंत प्रशंसा के योग्य है। संयोग से यदि किसी कमी को दूर करने में वह अपना आंतरिक

विश्वास गुरुजी को लिखते, तो बड़े डरते हुए, प्रेम-भरे शब्दों में लिखते जिससे गुरुजी कहीं अप्रसन्न न हो जायँ। गुरुजी के पत्र यद्यपि रोष और व्यंग्यपूर्ण आते थे, परंतु आप उत्तर बड़ी ही नम्रतापूर्वक, सत्यता और भक्ति-पूर्ण शब्दों में देते थे। ४ जून, १८९४ ई० को कहीं बहुत ही रोष का भरा हुआ पत्र गुरुजी के पास से आया होगा, परंतु आप उसके उत्तर में लिखते हैं कि—

"मैं पत्र बराबर नियमानुसार सेवा में भेजता रहा हूँ, कदाचित् आपको देर से मिलता होगा अथवा मेरा आदमी डाक में डालना भूल जाता होगा। वस्तुतः संसार की कोई भी वस्तु अविनाशी नहीं। जो मनुष्य इन वस्तुओं पर भरोसा करता है (और अपनी प्रसन्नता का निर्भर परमात्मा पर नहीं रखता), वह अवश्य हानि उठाता है। संसार के धनी पुरुष बड़ी पोशाकों-वाले नंगों के समान हैं। अर्थात् ये लोग हैं तो बिलकुल नंगे और कंगाल, परंतु अपने-आपको बड़ी पोशाकोंवाला समझते हैं। ऐसे बड़ी पोशाकोंवाले नंगों से हमें क्या सुख मिल सकता है। आप इस दास पर सदैव दयादृष्टि रखना और अपना दीन-सेवक समझना। कोई चिंता न करना, आप हर प्रकार प्रसन्न रहना, किसी प्रकार भी अप्रसन्न न होना, मैं आपका टहलुवा हूँ।"

इन्हीं दिनों में गुरुजी की अपने संबंधियों के साथ कहीं घर में खटपट हो गई और उन्होंने इस बखेड़े का हाल गोसाईंजी को लिख दिया। परंतु गोसाईंजी का तत्त्ववेत्ताओं, ज्ञानियों-जैसा उत्तर इस विषय पर भली भाँति

प्रकाश डालता है कि स्वामीजी का चित्त एम्० ए० की शिक्षा पाते समय भी कैसा धार्मिक और शांति-भरा था। गोसाईंजी ५ जून, १८९४ ई० को गुरुजी को उत्तर देते हैं कि—

"महाराजजी! परमेश्वर बड़ा चंगा (अच्छा) है, मुझे बड़ा ही प्यारा लगता है। आप उसके साथ सुलह (मैत्री) रखा करें। आपके साथ जो कभी-कभी किंचित् कठोरता का व्यवहार करता है, यह उस (ईश्वर) के विलास हैं। वह आपके साथ हँसना-खेलना चाहता है। हमें चाहिए कि हँसनेवालों से रुष्ट न हो जायँ। किसी अन्य पत्र में मैं आपकी सेवा में उसकी कई बातें बताऊँगा (वर्णन करूँगा)। वास्तव में वह बड़ी ही मोतियोंवाला है।

यह पत्र मैं मेज़ पर रखकर लिख रहा हूँ। यहाँ प्रातः थोड़ी-सी खाँड (चीनी) गिरी थी। उस खाँड के पास मेज़ पर चार-पाँच कीड़ियाँ एकत्र हो रही हैं और वह सब मेरी लेखनी की ओर और अक्षरों की ओर तक रही हैं, और आपस में बड़ी बातें कर रही हैं। जितनी बातचीत मैंने उनसे सुनी है वह विनयपूर्वक लिखता हूँ (परंतु पहले मैं इतना निवेदन करना चाहता हूँ कि चाहे मेरे अक्षर बहुत ही बुरे और निषिद्ध तथा कुरूप हैं, पर उन कीड़ियों की दृष्टि में तो चीन देश के नक़शो-नगार—सुंदर तथा आकर्षणीय चित्रों—से कम नहीं)। जो कीड़ी सबसे पहले बोली, वह बड़ी अनजान और निर्दोष बच्ची थी। अभी बहुत छोटी बच्ची थी।

पहली कीड़ी कहती है—'देख, बहन! इस लेखनी की

चित्रकारी। काग़ज़ पर क्या गोल-गोल घेरे डाल रही है। इसकी डाली हुई लकीरों अर्थात् अक्षरों को सब लोग बड़ी प्रीति से अपने नेत्रों के पास रखते हैं, अर्थात् पढ़ते हैं; और जिस काग़ज़ पर यह (लेखनी) चिह्न कर दे, अर्थात् लिख दे, उस काग़ज़ को लोग हाथों में लिए फिरते हैं। काग़ज़ पर मानो मोती डाल रही है, क्या रँगामेज़ियाँ (चित्रकारियाँ) हैं। कोई-कोई अक्षर तो बिलकुल हमारी और हमारी मौसी के पुत्रों के चित्रों की भाँति दिखाई देते हैं। क्या ही सुंदर हैं।

क़लम गोयद कि मन शाहे-जहानम्।
क़लमकश रा बदौलत मी रसानम्॥

अर्थ—लेखनी कहती है कि मैं जगत् की अधिष्ठात्री (या जगत् की विधात्री) हूँ और लेखक को कुबेर भंडारी बना देती हूँ।

इस लेखनी में प्राण नहीं हैं, परंतु हमारे-जैसे प्राणियों को बीसियों बार उत्पन्न कर सकती है।' इतना कहकर पहली कीड़ी तो चुप हो गई।

अब दूसरी बोली। यह कीड़ी पहली की अपेक्षा से कुछ बड़ी थी और अधिक दीर्घदृष्टि रखती थी। बोली—'मेरी भोली बहन! तू देखती नहीं है कि लेखनी तो बिलकुल निर्जीव वस्तु है, यह तो बिलकुल कुछ काम नहीं कर सकती। दो अँगुलियाँ उसे चला रही हैं। जितनी प्रशंसा तूने लेखनी की है, वह सब अँगुलियों की होना उचित है।'

अब एक इन दोनों से बड़ी और सयानी कीड़ी बोली—'तुम दोनों अभी अनजान हो, अँगुलियाँ तो पतली-पतली रस्सियों के सदृश हैं, वह क्या कर सकती हैं। वह मोटी बाँह (भुजा) इन सबसे काम ले रही है।'

अब इन कीड़ियों की माता बोली—'यह सब लेखनी,

अँगुलियाँ, कलाई और भुजा इत्यादि इस बड़े मोटे धड़ के आश्रय से काम कर रहे हैं। यह सब प्रशंसा उस धड़ के लिये लागू है।'

इतना कहकर जब कीड़ियाँ ज़रा चुप हो गईं, तो मैंने उनको यह कहा—'ऐ मेरे दूसरे स्वरूपो! यह धड़ भी जड़रूप है। इसको भी एक और वस्तु का आश्रय है, अर्थात् प्राण का। इस-लिये यह सब प्रशंसा उस प्राण के ही योग्य है।'

जब मैंने इतना कहा, तो मेरे हृदय में आपकी ओर से यह आवाज़ आई। और वह आपके वचन भी मैंने उन कीड़ियों को सुना दिए। उनका सार मैं लिखता हूँ।

'मनुष्य के प्राण से परे भी एक वस्तु है, अर्थात् परमात्मा। उस वस्तु के आश्रय सर्वभूत चेष्टा करते हैं। संसार में जो कुछ होता है, उसी की इच्छा से होता है। कठपुतलियाँ विना तार-वाले (पुतलीगर) के नहीं नाच सकतीं। बाँसुरी (मुरली) विना बजानेवाले के नहीं बज सकती। इसी प्रकार संसार के लोग विना उस (ईश्वर) की आज्ञा के कोई काम नहीं कर सकते। जैसे तलवार का काम यद्यपि मारना है, तथापि वह विना चलाने-वाले के नहीं चल सकती. इसी प्रकार से चाहे कुछ मनुष्यों का स्वभाव कितना ही बुरा क्यों न हो, पर जब तक उन्हें परमेश्वर न उकसाए (प्रेरणा करे), वह हमें कष्ट नहीं पहुँचा सकते। जैसे महाराजा के साथ संधि करने से शेष सब राज्याधिकारी हमारे मित्र बन जाते हैं, इसी प्रकार परमात्मा को प्रसन्न रखने से सारी सृष्टि हमारी अपनी हो जाती है।'

महाराजजी! आपका कृपापत्र मिला था, अत्यंत हर्ष का कारण हुआ था। महाराजजी! यदि आप यहाँ रहना चाहें, तो बड़े हर्ष की बात है। और यदि वहाँ आप एक आदमी रखना चाहें, तो आप निःसंदेह रख लें। जहाँ इतना खर्च हो रहा है,

वहाँ एक आदमी का ख़र्च भी परमात्मा बड़ी अच्छी तरह से दे देंगे। मेरी ओर से कोई फ़र्क़ नहीं। जिस प्रकार से चित्त चाहे, आप करें।

मुझे किसी पर किंचित् क्रोध नहीं है। मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। बहुधा क्रोध में आकर मनुष्यों के मुख से कई बातें निकल जाती हैं, हमें सब क्षमा कर देनी चाहिए, आप भी क्षमा कर दें। आप उनसे मेल (सुलह) अवश्य कर लें। भोजन चाहे आप उनका खायँ, चाहे न खायँ, पर संधि अवश्य कर लें, और सब अपराध क्षमा कर दें। साधुओं का क्षमा भूषण होता है।

आप इन दिनों कुछ अचाह (इच्छारहित) हुए थे, इसलिये आपके पिताजी आपके पास आए थे। यह पत्र स्वतः इतना लम्बा हो गया। क्षमा कीजिए। परमेश्वर आपको बड़ी ख़ुशी देगा।

आपका दीन दास—तीर्थराम"

एम्० ए० के समय में भोजन

प्रायः गोसाइँजी सतोगुणी भोजन किया करते थे, और दूध को सबसे अधिक पसंद करते थे। परंतु एम्० ए० में आकर आप कदाचित् अधिक प्रवृत्ति के कारण या अन्य कारणों से आवश्यक समझकर केवल दूध पर निर्वाह करने लगे, और बहुत काल तक उनका यह हल्का आहार रहा। आप ११ मार्च, १८९४ ई० के पत्र में अपने गुरुजी को लिखते हैं कि—

"महाराजजी ! मैं इन दिनों केवल दूध पर निर्वाह करता हूँ। और मेरा मस्तिष्क बहुत अच्छी प्रकार से काम करता है। शरीर में बल किसी से कम नहीं। मन भी शुद्ध रहता है। यदि आप

भी इसी प्रकार केवल दूध आदि पर निर्वाह करने का स्वभाव डाल लें, तो मुझे बड़ी ख़ुशी हो। ख़र्च की कुछ चिंता (परवाह) न करें। दूध पीना फ़ज़ूलख़र्ची नहीं है। दूध अधिक वर्तने से ख़र्च कदापि अधिक नहीं होता, और यदि अधिक हो भी, तो भी कुछ चिंता नहीं है।"

वस्तुतः गोसाइंजी को इस आहार के जारी रखने से अनुमान से भी अधिक शक्ति लाभ हुई। कहाँ तो प्रतिदिन रोगग्रसित रहना और कठिनता से एक-दो मील चलना, और कहाँ अब इस हल्के दुग्धाहार से प्रतिदिन बिलकुल स्वस्थ रहना और मीलों ही बिना थकावट के पैदल चलना। इस दुग्धाहार के प्रभाव के संबंध में गोसाइंजी ने आगे चलकर अपने २३ दिसंबर, १८९५ ई० के पत्र में लिखा है कि—

"मुझे आठ दिन रोटी खाए हो गए हैं, तब से केवल दूध पीता हूँ, किंतु आज पूरे तीस मील का चक्कर बतौर सैर लगा आया हूँ, और ज़रा मालूम तक भी नहीं हुआ।"

काम में आनंद

यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि बी० ए० पास करने के बाद गोसाइँ तीर्थरामजी गणित-शास्त्र में इतनी ख्याति लाभ कर चुके थे कि बहुत-से कॉलेजों के बी० ए० और एम्० ए० के विद्यार्थी आपसे गणित सीखने आया करते थे। कदाचित् इन दिनों आप एक अँगरेज़ विद्यार्थी

को भी ड्यूटी (कर्तव्य) की भाँति पढ़ाया करते थे। और अपने कॉलेज में केवल एक घंटा नाममात्र के लिये जाया करते थे, और अपना शेष समय मिशन-कॉलेज में एफ़० ए० और बी० ए० के विद्यार्थियों को गणित सिखाने में व्यय करते थे, मानो एक ही समय में आप गवर्नमेंट-कॉलेज में एम्० ए० क्लास के विद्यार्थी थे, उधर मिशन-कॉलेज में गणित के आनरेरी (अवैतनिक) प्रोफ़ेसर थे। इनके अतिरिक्त अन्य प्रोफ़ेसरों के परीक्षा के पत्र जाँच करने के लिये आपके पास आ जाते थे। इसलिये गोसाईंजी के पास काम बहुत बढ़ गया था, और दिन-रात काम में प्रवृत्त रहते थे।

३ जुलाई, १८९४ ई० के पत्र में आप अपने गुरुजी को लिखते हैं कि—

"मैं कल बड़ा ही काम में प्रवृत्त रहा हूँ और रात के दो बजे सोया हूँ, और आज सवेरे ५ बजे फिर काम के लिये उठ खड़ा हुआ हूँ। इसलिये कल पत्र नहीं लिख सका। क्षमा कीजिएगा। मिशन-कॉलेज के लड़के बड़े ही प्रसन्न होते हैं। यह आपकी दया है।"

इस प्रकार अत्यंत प्रवृत्ति होने पर भी गोसाईंजी को काम में हद से बढ़कर आनंद आता था, और काम की सफलता का रहस्य भी भली भाँति मालूम था। आप अपने ४ मार्च, १८९४ ई० के पत्र में गुरुजी को लिखते हैं कि—

"आज मैं देर के बाद विनयपत्र भेजने लगा हूँ। इन दिनों

मुझे अत्यंत काम रहा है। वल्कि आज मैं सोया भी पाँच घंटे से कम हूँ। प्रोफ़ेसरों का काम भी करनेवाला हूँ। सर्टिफ़िकेट अत्यंत उत्तम मिले हैं। आप सर्व प्रकार से प्रसन्न रहा करें, किसी प्रकार की चिंता न करें। यदि हम किसी काम को करना चाहें, तो मेरे विचार में हमको चाहिए कि अपने मन को किंचित् न डोलने दें (उसको अडोल, अचल और निस्पंद रक्खें); परंतु उस काम के करने के लिये अपनी इंद्रियों को किंचित् स्थिर (निश्चेष्ट) न होने दें। उनको हिलाते और चलाते रहें और कर्म में अत्यंत प्रवृत्त रक्खें। इस प्रकार से हमको अवश्य और अत्यंत शीघ्रता से सिद्धि प्राप्त होती है। कृष्णजी * ने भी ऐसा ही कहा है।"

आर्थिक कठिनाइयाँ

छात्रवृत्तियों से यद्यपि लगभग साठ रुपया मासिक आ जाता था, किंतु गृहस्थी और अन्य ख़र्चों का बोझ गोसाईंजी पर इतना बढ़ गया था कि एक पैसा भी उनके पास और ख़र्च को न बचता था, हर समय वे पैसा ही रहते थे। ऐसी तंगी के दिनों में गोसाईंजी इस चिंता में थे कि एम० ए० की परीक्षा का प्रवेश-शुल्क किस प्रकार दिया जाय।

* विद्यार्थी-जीवन में गोसाईंजी को कृष्णगीता पढ़ने का बड़ा शौक़ था, वरन् एक बार अपने गुरुजी को लिखते हैं कि मैंने अभी गीता का भोग पाया है। यह परम उत्तम ग्रंथ है। इसको समझकर पढ़ने से परमेश्वर पर इतना विश्वास हो जाता है, जितना सांसारिक पुरुषों को अपने शरीर पर होता है। इसलिये यहाँ कर्म के रहस्य में आप गीता का उल्लेख करते हैं।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि गोसाइँजी का ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था, और जब कभी कोई कठिनता सामने आती, तो झट ईश्वर के ध्यान में चित्त लगा देते, और सब कुछ भगवत्कृपा पर ही छोड़ देते थे। इस तंगी के काल में भी वह तनिक भी निरुत्साह नहीं हुए, वरन् पूर्ण विश्वास से आप अपने गुरुजी को १३ नवंबर, १८६४ ई० के पत्र में ऐसे सूचना देते हैं कि—

"जो परमात्मा अब तक सहायता करता रहा है, अब भी अवश्य करेगा। साहस छोड़ने की कुछ भी आवश्यकता नहीं।"

ऐसे दृढ़ विश्वास से ईश्वर-भरोसे पर अपने-आपको छोड़ना था कि गोसाइँजी के पास झट उनके मौसाजी के यहाँ से सहानुभूतिपूर्ण पत्र आया। गोसाइँजी प्रसन्नता में आकर गुरुजी को अपने २१ नवंबर, १८६४ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"मासड़ (मौसाजी) का पत्र आया था, वह लिखते हैं कि परीक्षा में प्रवेश के लिये रुपया हमारे अतिरिक्त और किसी से न लेना। परमात्मा के गुण कोई किस मुख से गावे।"

इस प्रकार अपने मौसाजी से प्रवेश-शुल्क की सहायता लेकर वह एम्० ए० की परीक्षा में प्रविष्ट हुए।

एम्० ए० में सफलता

इस प्रकार अनेक कठिनाइयों से सामना करते हुए आपने

एम्० ए० की परीक्षा दी, और एप्रिल, १८९५ ई० में उसका परिणाम निकला। आप अत्यंत सफलता-पूर्वक उत्तीर्ण हुए। आप अपने पत्र में अपने कृपालु, उपकारी और सहायक डॉक्टर रघुनाथमलजी को लिखते हैं कि—

"आज मेरा नतीजा निकला है। परमात्मा ने दया की है। मैं पास हो गया हूँ। परीक्षा अत्यंत कठिन हुई थी। कभी भारतवर्ष की किसी युनिवर्सिटी में गणित के इतने कठिन पर्चे नहीं आए। यह केवल परमात्मा की दया और आपके आशीर्वाद का फल है।"

यद्यपि इस परीक्षा में गोसाईंजी ने बी० ए० की तरह विपुल नंबर प्राप्त नहीं किए थे, फिर भी ए० और बी० दोनों कोर्सों में सफलता प्राप्त की। और इससे पूर्व पंजाब-युनिवर्सिटी में एम्० ए० का कोई विद्यार्थी गणित के दोनों कोर्सों में कदाचित् ही उत्तीर्ण हुआ हो। इस जीवनचरित के पाठक प्रकृति के इस महापुरुष और भावी साक्षात् प्रकृति की मूर्ति राम के विचारों का अभी से अनुमान लगा सकते हैं कि सफलताओं पर सफलताएँ होने पर भी आप अपने कृपालुओं को नहीं भूले, परमात्मा को नहीं विसारा, गुरुभक्ति और गुरुसेवा का भाव कम होने नहीं दिया। प्रत्येक समय और प्रत्येक दशा में यही सोच-विचार जारी रहा कि "यह परमात्मा की कृपा का फल है। यह गुरुजी की कृपा और दया है।" इत्यादि। और गुरुजी से ऐसी अभेदता कि अभी परीक्षा का फल

नहीं निकला था कि आप १८ एप्रिल, १८९५ ई० के पत्र में उनको लिखते हैं कि—

"आपने जो एम्० ए० की परीक्षा दी है, उसका परिणाम अभी नहीं निकला। जब आपके पास हो जाने की खबर आएगी, मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यह सब आप ही का काम है, मुझे कोई आतुरता नहीं। जिस दिन आपकी खबर निकालने की इच्छा हो, उसी दिन सही।"

एम्० ए० पास होने के बाद क्लास खोलने का संकल्प

एम्० ए० में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् आपके कुछ पत्रों से स्पष्ट होता है कि बरेली-कॉलिज में आपको जगह मिल सकती थी, पेशावर-स्कूल के हेडमास्टर की जगह मिल सकती थी; परंतु आप किसी कारण-वश वहाँ नहीं गए। अपने एक पत्र में आप लिखते हैं कि—

"गवर्नमेंट-कॉलेज के प्रिंसिपल मि० बैल और अन्य कॉलेजों के प्रिंसिपल मुझे बहुत कुछ आशाएँ दिलाते हैं और मि० बैल ने तो उस समय तक जब तक कि इस कॉलेज में स्थान रिक्त न हो, मुझे इस बात पर तत्पर किया है कि मैं गणित के प्राइवेट क्लास खोलूँ और एफ़्० ए० वालों से दस-दस रुपए और बी० ए० वालों से पंद्रह-पंद्रह रुपए मासिक फ़ीस लेकर उन्हें गणित पढ़ाऊँ।"

निदान मई, १८९५ ई० में मि० बैल ने अपने खर्च से इस प्रकार के विज्ञापन इत्यादि छपवाए और दीवारों पर बाद

को लगवा दिए थे, अतः कुछ समय पश्चात् गोसाईंजी प्राइवेट क्लास खोलकर पढ़ाने भी लगे। इन क्लासों के अतिरिक्त कॉलेज के दो-एक प्रोफ़ेसर महोदय भी गोसाईंजी से गणित की शिक्षा प्राप्त करने लगे। किंतु यह सब काम बड़े परिश्रम का था, गोसाईंजी का स्वास्थ्य एम्० ए०-परीक्षा के परिश्रम के कारण प्रथम ही से ख़राब हो चुका था, अब इन क्लासों के खोलने और प्रोफ़ेसरों को सहायता देने से उनको निरंतर काम करना पड़ा जिससे कार्य का पहले से भी अधिक भार हो गया, इसलिये उनका स्वास्थ्य पहले से अधिक ख़राब हो गया, और उनको विवश होकर अपनी जन्मभूमि मुरालीवाला (ज़िला गुजराँवाला) में जाना पड़ा।

नौकरी

कुछ महीनों में स्वास्थ्य लाभ करके गोसाईंजी फिर लाहौर में वापस आए, और कोई नौकरी करने से प्रथम सार्वजनिक कार्य में पग रखने लगे। ४ जुलाई, १८९५ ई० के पत्र से सिद्ध होता है कि आप सनातनधर्म-सभा की शिक्षा-समिति के सभ्य बनाए गए और वहाँ के इंट्रेंस क्लास की परीक्षा लेना भी उन्हें सौंपा गया। उसके पश्चात् फिर सनातनधर्म-सभा की सब-कमेटी के सेक्रेटरी बनाए गए। इस कमेटी के मेम्बर निम्न-लिखित सज्जन थे—

१. पं० ईश्वरीप्रसादजी, २. पं० भानुदत्तजी, ३. पं०

गणपतिजी, ४. पं० दुर्गादत्तजी, ५. पं० शिवदत्तजी, ६. ला० अयोध्यादास साहब बी० ए० और ७. गोसाईंजी स्वयं। इन सार्वजनिक सेवाओं के साथ-साथ गोसाईंजी को मालूम नहीं किस कारण से ड्राइंग सीखने का भी शौक़ पैदा हो गया; और आप ला० हंसराजजी प्रिंसिपल वैदिक कॉलेज, लाहौर से इस विद्या के सीखने की आज्ञा लेकर अपने गुरुजी को ५ नवंबर, १८९५ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"लाला हंसराजजी को मैं जाकर मिला था। उनसे ड्राइंग-विद्या विना फ़ीस सीखने की आज्ञा मुझे मिल गई है। वैदिक कॉलेज में। आप गुलाम पर दयादृष्टि रक्खा करें।"

इस शौक़ के थोड़े ही दिनों बाद आप स्यालकोट अमेरिकन मिशन-हाईस्कूल में, १८९५ ई० में, सेकेंड मास्टर के पद पर नियुक्त हो गए।

स्यालकोट पहुँचने के कुछ ही दिन बाद तमाम स्कूलों के लड़कों में यह बात प्रसिद्ध हो गई थी। मिशन-हाई-स्कूल में एक ऐसे टीचर आए हुए हैं, जो लाखों-करोड़ों का गुणा स्मृति से बतला देते हैं। इनकी इस प्रकार प्रसिद्धि से दूर-दूर के विद्यार्थी स्यालकोट मिशन-स्कूल में आने लगे। आपका वेतन केवल ८०) था। उस समय भी आपके वेतन का अधिक भाग आपके विद्यार्थी-जीवन की छात्रवृत्ति की

भाँति विद्यार्थियों की सहायता में खर्च होता था। जिस लड़के का जी चाहता, आपका नाम लेकर हलवाई से अपनी इच्छानुसार दूध पी लेता था। शारिरिक व्यायाम का आपको बहुत बड़ा शौक़ था, और विद्यार्थियों से आपका मेल-जोल इतना अधिक बढ़ गया था कि जो वस्तु वह चाहते थे, आप बिना देर लगाए ला देते थे। आपकी सरल प्रकृति, दयालुता, सहानुभूति, निःस्वार्थता इन दिनों भी ऐसी प्रसिद्ध थीं कि स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं।

नीचे लिखी एक घटना से आपकी सरलता और पवित्रता पर प्रकाश पड़ता है। कहा जाता है कि जब आप पहले स्यालकोट में नौकर होकर गए, तो वहाँ पहुँचने के थोड़े ही समय के बाद आपके पास खर्च चुक गया था, अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वहाँ के ही एक परिचित से दस रुपए उधार लिए। यों तो ऋण सभी कोई लेते हैं और चुका भी देते हैं, किंतु गोसाइंजी-जैसे निःस्वार्थ, सरल स्वभाव और ईश्वर-भक्ति से रँगे हुए व्यक्ति के ऋण चुकाने का भी विचित्र ढंग था। अर्थात् आप जब तक स्यालकोट में रहे, उस व्यक्ति को प्रतिमास १०) देते रहे। वह बार-बार इनकार करता था, परंतु आप अपने उपकारी के उन दस रुपयों के उपकार को बार-बार स्मरण करते और रुपए दे देते थे।

स्यालकोट आने से पहले लाहौर की सनातनधर्म-सभा को तो अपनी सेवाओं से लाभान्वित किया ही था, किंतु यहाँ की सनातनधर्म-सभा और अन्य सत्संगियों को भी अपने प्रेम-भरे उपदेशों से बहुत लाभ पहुँचाया।

१८ अक्टोबर, १८९५ ई० के पत्र में आप अपने गुरुजी को लिखते हैं कि—

"आपकी दया से यहाँ आनेवाले सब लड़के ईश्वर (ख़ुदा) बन गए हैं (ईश्वर-भाव में रँग गए हैं), परंतु भजन भी किया करेंगे।"

और २१ अक्टोबर, १८९५ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"कल उन्होंने (सनातनधर्म-सभावालों ने) मेरे व्याख्यान का विज्ञापन नहीं दिया था, परंतु आपकी कृपा से मेरे बोलते-बोलते सनातनधर्म-मंदिर का मैदान आदमियों से बिलकुल भर गया था, डिपटी साहब और बड़े-बड़े पदाधिकारी भी थे। देश पर भी बोला था। परंतु लोगों के नेत्र अश्रुओं से पूर्ण दृष्टिगोचर होते थे, और तालियाँ भी बहुत बजी थीं।"

एक और पत्र में अपने मौसाजी को लिखते हैं कि—

"यहाँ की सनातनधर्म-सभा की भी मेरे कारण बड़ी प्रसिद्धि हो गई है। जब मैं अपने कर्तव्यों का तन-मन से भली भाँति पालन करता हूँ, तो एक आनंद-सा आ जाता है, जिसके आगे राजकोष भी कोई चीज़ नहीं। यहाँ के तमाम लोग हिंदुस्तानी और अँगरेज़ मेरे कृपालु बन गए हैं।"

वास्तविक बात तो यों है कि गोसाईंजी स्वयं प्रेम के पुतले और दया की मूर्ति थे, अतः जो कोई भी उनके पास आता, वह उनके साथ वैसा ही हो जाता था। ऐसे महापुरुष के आगे सांसारिक कोष और खज़ाने क्या अस्तित्व रखते हैं।

बोर्डिंग-हाउस के निरीक्षक होना

स्यालकोट मिशन-हाईस्कूल का बोर्डिंग-हाउस भी था, वहाँ के सुपरिंटेंडेंट एक मुसलमान शिक्षक थे। ५ मार्च, १८९६ ई० के पत्र में गोसाईंजी ने अपने गुरुजी को लिखा है कि—

"पिछले दिनों यहाँ के मुसलमान सुपरिंटेंडेंट साहब ने एक अनुचित कार्य किया, अर्थात् हिंदुओं की क़सम का मांस बोर्डिंग-हाउस में मँगवाया। इस बात की ख़बर हो गई। सो उसको निकाल दिया गया है। अब बोर्डिंग का सुपरिंटेंडेंट मेरे सिवाय कोई हिंदुस्तानी नहीं बन सकता, इसलिये मुझको इंतिज़ाम सँभालना पड़ा है। आज वहाँ (बोर्डिंग में) चले जाना होगा। जो जगह मैंने वहाँ ली है, वह इस जगह से बहुत अच्छी है, और आपको वहाँ बहुत सुख होगा। एकांत भी है।"

मिशन-कॉलेज, लाहौर का प्रोफ़ेसर होना

केवल कुछ मास तक ही स्यालकोट में बोर्डिंग-हाउस के निरीक्षक का कर्तव्य पालन किया था कि एप्रिल, सन् १८९६ ई० में गोसाईंजी मिशन-कॉलेज, लाहौर में गणित

के आचार्य नियुक्त हो गए, और पहली मई, सन् १८९६ ई० में इस सीनियर प्रोफ़ेसर की कुर्सी को सुशोभित किया। आपके एक पत्र से प्रकट होता है कि इन दिनों आप एस्० सी० डी० (डॉक्टर ऑफ़ साइंस) की डिगरी प्राप्त करना चाहते थे, जिसे उस समय तक किसी हिंदुस्तानी ने प्राप्त नहीं किया था। किंतु जैसा कि आपको सिविल सर्विस को विवश होकर तिलांजलि देनी पड़ी, ऐसे ही गणित-विद्या के पढ़ाने के शौक़ में आपको इसे भी त्यागना पड़ा।

सच्चा मानसिक वैराग्य

इस प्रोफ़ेसरी के काल में भी जैसा त्याग गोसाईंजी के चित्त में हिलोर मारता था, किसी में कदाचित् ही दिखाई दिया होगा। जितनी तनख़्वाह या और रुपया युनिवर्सिटी से प्राप्त होता, उसे तत्काल अधिकारी पुरुषों को बाँट दिया करते, और अपने पास अपने लिये केवल एक या दो ही रुपए शायद बचाते। गोसाईंजी अपने ५ जून, १८९६ ई० के पत्र में गुरुजी को लिखते हैं कि—

"मैं तो बिलकुल ही आपका हूँ। किसी वस्तु को अपना नहीं समझा हुआ। सांसारिक द्रव्य को एकत्र करना आनंद का कारण नहीं समझा हुआ। न भूषण बनाने का और न पदार्थों के उपार्जन करने का विचार है। आपकी कृपा से वृक्ष की छाया घर के बदले, भस्म वस्त्रों के बदले, भूमि शय्या के बदले, और

भीख का टुकड़ा खाने के लिये यदि मिल जाय, तो भी बड़ा आनंद माना हुआ है। किस धन के लिये मैं आपको कष्ट दूँ? यदि भिक्षुकों की भाँति रहने के लिये मुझे आज्ञा दें, तो मैं सब कुछ छोड़कर साधुओं के समान रहने को तैयार हूँ। कॉलेज में काम भी करता रहूँगा, जो कुछ वहां से मिले, जिस प्रकार आपका चित्त चाहे खर्च लिया करना। हमारे घर भी जो उचित समझें, दे दिया करना। यह दीन दास तो केवल काम करने और परमात्मा को चित्त में धारण रखने से वह सुख पाता है कि जो किसी बाह्य विषय-सुख और आडंबर अथवा ठाट-बाट की तनिक भी आवश्यकता नहीं रखता। मुझे तो ईश्वर-निमित्त काम करने से जो सुख होता है, वही वेतन पर्याप्त है। मेरा वेतन जाने और आप जानें। मेरा आत्मा तो इन पदार्थों से न घटता है, न बढ़ता है, सदा आनंदरूप है। यह सब आपकी कृपा का फल है।"

कृष्ण-भक्ति

इस आंतरिक त्याग के दिनों में गोसाईंजी का अत्यंत प्रेम भगवान् कृष्णचंद्र से हो गया। कृष्णगीता का अध्ययन तो प्रतिदिन उन्नति पर था ही, और कई बार गीता का पारायण भी कर डाला था, परंतु अब कृष्ण भगवान् की भक्ति की यह दशा पहुँची कि दिन-रात अपने प्यारे की याद के सिवाय और कुछ न सूझता था। हर समय उसके दर्शन की लालसा चित्त को विक्षिप्त बनाए रखती थी। जहाँ भी कहीं कृष्ण का नाम सुना, झट वहीं प्रेम-समाधि

लग जाती थी। यदि कहीं बाँसुरी की-सी ध्वनि सुनाई दे जाती, तो वहीं चित्त बेसुध हो जाता। चुनांचि आप प्रति-दिन सवेरे कई घंटे रावी नदी के तट पर अपने मनमोहन की स्मृति में लवलीन रहते थे। अपने मित्रों और अन्य साथियों से वृथा वार्तालाप और परिहास नहीं किया करते थे, सदैव धर्म के संबंध में वार्तालाप किया करते थे। इस भक्ति की दशा का सविस्तर वर्णन गोसाईंजी के उस समय के एक मित्र या परिचित ने "कुलभास्कर" नामक पत्र में इस प्रकार छपवाया है—

"एक दिन संध्या को रावी नदी के पार वन में गोसाईंजी टहलते थे। आकाश पर घनघोर घटा छा रही थी। काले-काले बादलों को देखकर कुछ देर तो आप समाधिस्थ-से रहे, और फिर बड़े ज़ोर से रोकर कहने लगे—हे कृष्ण! हे घनश्याम! ये श्याम-रंग के बादल आपका रंग हैं। ये मुझे व्याकुल कर रहे हैं। प्यारे! इतना क्यों तरसाते हो? बताओ तो सही, कौन-से कुंज में तुम छिपे हुए हो? अरे बादल! तू ऊँचाई से बहुत कुछ देख सकता है। फिर बताओ, मेरा कृष्ण कहाँ है? अच्छा, मैं समझ गया। तूने भी उसके वियोग की व्यथा में अपना श्यामवर्ण बना रक्खा है। क्या मुझे उस प्यारे कृष्ण का दर्शन प्राप्त न होगा? यह संसार बिना उस कृष्ण-दर्शन के काट खायगा। ये वियोग की व्यथा किसके आगे रोऊँ? हे कृष्ण! तुम्हारे लिये मित्र और संबंधियों से मुँह मोड़ा, संसार की लाज-शरम छोड़ी; किंतु तुम्हारे नाज़-नख़रों का ठिकाना ही नहीं। तुम्हारे सिवा मेरा कौन है?

फिर बादलों को ग़ायब होते देखकर कहने लगे—ओ भाई

बादल ! जाते हो, तो जाओ ! परंतु मेरा संदेशा कृष्ण के पास लेते जाओ। तुम देखते हो कि मेरी आँखों से आँसू बह रहे हैं। उस बेवफ़ा को मेरी ओर से कहना—

मज़ा बरसात का चाहो, मेरी आँखों में आ बैठो।
सियाही है, सुफ़ेदी है, शफ़क़ है अब्रे-बारां है॥

प्राणेश ! कब तक तरसा करूँ ? अब रहा नहीं जाता। या तुम यमराज को भेजकर मेरा अंत कर दो, या अपने दर्शनरूपी मीठे शरबत से इस दर्शनाभिलाषी की प्यास बुझाओ। यह तुम्हारी कैसी रीति है कि प्रेम की अग्नि से तो मेरा हृदय जले-भुने, और तुम दूर से ही तमाशा देखो ? सूर्य को बिना माँगे ही आपने तेज दे दिया, चंद्रमा को शीतलता और सौंदर्य दे दिया, फूलों को बिना हाथ फैलाए विविध प्रकार के रंगों से मालामाल कर दिया, एक मुझी को ज्ञान का दान करने से क्या आपका कोष सूना हो जायगा ? हे कृष्ण ! यदि दर्शन नहीं दोगे तो यह प्राण-पखेरू शरीर-पिंजर से उड़ जायगा, और आपकी याद में आँखें खुली रह जायँगी—

बलबम रसीद जानम् तो बया कि ज़िंदा मानम्।

अर्थ—मेरे प्राण तो ओष्ठ तक पहुँच गए, तू आ कि मैं जीवित हो जाऊँ।

'प्यारे बादल ! बस ये ही शब्द दोहरा देना।' इतना कहकर 'हे कृष्ण ! हे कृष्ण !' बोलते हुए मूर्छित होकर गिर पड़े।

आप रात को दो बजे तक जिस प्रेम में मग्न रहते थे। आपके इस हार्दिक प्रेम की अवस्था से बहुत थोड़े लोग परिचित थे। परंतु थोड़े ही दिनों बाद आपकी आत्यंतिक भक्ति की अवस्था सभी को प्रकट हो गई। लाला अयोध्याप्रसाद वकील, होशियारपुर ने बताया है कि "गोसाईं तीर्थरामजी एक बार लाहौर में भाई

नंदगोपाल के मंदिर में रामायण की कथा सुन रहे थे। कुछ मिनट बाद कथा के मध्य में ही बच्चों की तरह होंठ बनाकर रोने लगे, यहाँ तक कि डारें मारने लगे। कथावाचक पंडितजी ने बहुत मना किया, धीरज दिलाया; परंतु सब निष्फल हुआ। अंत में विवश होकर कथा बंद करनी पड़ी। धीरे-धीरे व्याकुलता बढ़ती गई, मानो—'मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।'

कथाओं के सुनने के पश्चात् रो-रोकर आप यही कहते सुनाई देते थे—'हे कृष्ण! मुझ पर दया कीजिए। दर्शन दीजिए। क्या मैं किष्किंधा के वानरों से भी गया-बीता हूँ? क्या मैं भिल्लनी से भी नीच प्राणी हूँ? यदि आप न मिले, तो चूल्हे में जाय यह विद्या, मिट्टी में मिल जाय यह प्रतिष्ठा और भाड़ में जाय यह शरीर।'

एक बेर कॉलेज में गरमियों की छुट्टियों के बाद आपने यह संकल्प किया कि बहुत पढ़ाया, दिन-रात परिश्रम किया, अब ये छुट्टियाँ तो ईश्वर-भजन में ही बितावेंगे। सवेरे उठकर रावी पहुँचे और अपने प्यारे के ध्यान में निमग्न हो गए। इतने में कोयल की आवाज़ सुनकर चौंक पड़े, कहने लगे—'अरी कोयल! तेरी आवाज़ में यह हृदय-वेधकता कहाँ से आई? क्या तूने उस बंसीवाले को देख लिया है? जान पड़ता है, उससे तू आवाज़ उधार लाई है। तूने उस कृष्ण प्यारे को देख लिया है। सच बता, वह हमसे किस तरकीब से और कब मिलेगा? अरी आँखो! यदि तुम श्याम नहीं देख सकती हो, तो अभी फूट जाओ। अरे हाथो! यदि तुम प्यारे कृष्ण के चरणों को नहीं छू सकते, तो मैं तुम्हें रखकर क्या करूँगा? गल जाओ। मर जाओ......'

उस महीने में किसी दूसरे दिन घबराकर फिर बोलने लगे—'हे भगवन्! एक दिन और बीत गया, आपके दर्शन नहीं प्राप्त

हुए। क्या इसी तरह मेरा जीवन नष्ट हो जायगा? इस जन्म में तो मैंने कोई पाप भी नहीं किया, फिर आपके वियोग के विषय वेदना क्यों सह रहा हूँ?'

'अच्छा, मैं पापी गुनहगार ही सही। अब तो मैं आपकी शरण आया हूँ। क्षमा कर दीजिए। एक झलक दिखा दीजिए। हे नाथ! यदि प्राण अर्पण करने से आप मिलते हैं, तो ले लीजिए, ये प्राण भी आज आपकी भेंट किए देता हूँ। मुझे आपके दर्शन की चाह है।.........', यह कहते-कहते बिलख-बिलखकर रोने लगे। आँसुओं से कपड़े तरबतर हो गए, रोना बंद ही नहीं होता था। मूर्च्छित हो गए। जब आँखें खुलीं, तो एक काला साँप फुनकार मारता हुआ आपके सामने आ खड़ा दिखाई दिया। आप उसको देखते ही उठ बैठे, और 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए लपके कि 'महाराज! आपने इस रूप में दर्शन दिया।' यह कहते हुए फिर गिर पड़े, और बेहोश हो गए। होश में आए, तो साँप चला गया था। बोलने लगे—'नाथ! मिले तो सही, परंतु मन की मन ही में रही। मैं तो आपकी श्यामसुंदर मूर्ति के दर्शन करना चाहता हूँ। मैं आपको उसी सुंदर रूप में देखूँगा, जिस पर गोपियाँ आसक्त हुई थीं। हे मनमोहन!...........' यह कहते हुए फिर मूर्च्छित हो गए। उस समय आपके एक मित्र ने द्वार के भीतर पग रक्खा, जो आपकी यह संपूर्ण दशा देख रहा था। वह कहने लगा—'गोसाईंजी! धन्य है वह माता, जिसने आप-जैसे पुत्र को उत्पन्न किया।' इतने में आप सचेत हुए, और बड़े उच्च स्वर से कहने लगे—'अरे वह हमारा मनमोहन कहाँ गया? अभी तो मेरे सामने खड़ा था। हाय! अब जीवन व्यर्थ है।' मित्र बोला—'गोसाईंजी! जिसे आप खोज रहे हैं, वह आपके हृदय के भीतर ही है।' यह सुनकर आपने अपने कपड़े फाड़ डाले,

और वक्षःस्थल नोचना आरंभ कर दिया। खून निकल आया। कहने लगे—'अरे मनमोहन! यदि तुम हृदय में ही हो, तो बचकर कहाँ जाओगे। अभी खोल डालता हूँ।'

मित्र घबराया। गोसाईंजी के दोनों हाथ पकड़कर कहने लगा—'महाराज! धीरज धरिए। भगवान् आपको मिलेंगे।' गोसाईंजी बोले—'क्यों नाथ! क्या बाहर आ गए? यदि कुछ देर और न आते, तो देखते कि मैं आपको कहाँ से निकालता।' यह कहकर फिर अचेत हो गए। संध्या को उठे। उस समय चित्त बिलकुल शांत था, और छुट्टियाँ भी बिलकुल समाप्त हो चुकी थीं। मानो इस बेर छुट्टियाँ प्रेम और भक्ति की उमंगों और चोटों में व्यतीत हुईं।"

फिर जब अगस्त, १८९६ ई० में कॉलेज की छुट्टियाँ आईं, तो इसी तरह कृष्ण-भक्ति से घायल राम को मथुरा-वृंदावन जाने की सूझी। पंडित दीनदयालजी आपके मित्र और परिचित थे, और वह मथुरा-वृंदावन प्रायः जाया करते थे, इसलिये उनके साथ आप व्रजभूमि की यात्रा को चले, और पंडितजी का कुल खर्च अपने पास से दिया। मथुरा पहुँचकर आप गुरुजी को अपने ९ अगस्त, १८९६ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"आज हम व्रज की यात्रा को चले हैं। तीन-चार दिन लगेंगे। गोवर्धन, बरसाना, नंदग्राम, गोकुल, बल्दाऊ यह सब स्थान देखेंगे। आशा है कि सितंबर मास में आपके चरण-कमलों में उपस्थित हो जाऊँगा। आपने तो पत्र पूर्व पते पर ही लिखना। तीन महात्माओं के दर्शन हुए। पता—श्रीवृंदावनधाम, केशी घाट,

नारायण स्वामीजी महाराज के द्वारा तीर्थराम को मिले। पंडित दीनदयालजी की ओर से जय श्रीकृष्णचंद्र महाराज की।"

अपने अन्य पत्रों में इस व्रजभूमि की आप बहुत प्रशंसा करते हैं। और यात्रा करते समय पग-पग पर अपने प्यारे का स्मरण करते जाते हैं। एवं स्थान-स्थान पर प्यारे कृष्ण के निवास आदि के चिह्न देखकर उनका हृदय बल्लियों उछलता था, उसके नाम सुनने से घड़ी-घड़ी समाधि लग जाती थी। अपने प्यारे के प्रेम में मग्न हुए आपने एक व्याख्यान भी अँगरेज़ी में मथुरा में दिया था। नगर के प्राय: सभी धनवान् और रईस सुनने आए थे। सभी ने उपदेश सुनकर "बलिहारी-बलिहारी" उच्चारण किया।

कृष्ण महाराज के दर्शन

उस अपरिमेय भक्ति का यह फल मिला कि गोसाईंजी की बार-बार समाधि केवल कृष्णजी के नामोच्चार से ही लग जाती थी। गृहस्थ-जीवन में गोसाईंजी ने अपने मुख-कमल से इस जीवनी के मूल-लेखक (श्रीनारायण स्वामीजी से) इस प्रकार कहा था कि—"आज हमारे गोलू यार (कृष्ण महाराज) ने स्नान करते समय खूब दर्शन दिए, और परस्पर प्रगाढ़ आलिंगन हुआ। परंतु मिलने के थोड़े ही समय पश्चात् हाथ पर हाथ मारकर अंतर्धान हो गए, और मुझे वैसे ही अपने प्रेम में बिलखता और रोता छोड़ गए।"

इस प्रकार समाधि और दर्शन की अवस्था गोसाईंजी पर बार-बार हो जाती थी, तथा सूरदास और मीराबाई की भाँति भगवान् कृष्ण के प्रेम में वह बहुत दिनों तक पागल बने रहे।

नारायण स्वामी के चित्त पर प्रभाव

इस कृष्ण-भक्ति के समय में गोसाईंजी के व्याख्यान "ईश्वर-प्रेम"-विषय पर लाहौर की सनातनधर्म-सभा में हुआ करते थे। व्याख्यान क्या होते थे, मानो प्रेम के आँसुओं की बहिया उमड़ आती थी। उपदेश करते समय आपके कपड़े आँसुओं से भीग जाते थे, और कभी-कभी घिग्घी बँध जाती थी। सुननेवाले भी प्रेम से घायल होकर सुन्न-से रह जाते थे, और देर तक उसी (सुन्न) अवस्था में रह जाते थे। एक बार व्याख्यान देते-देते—"हाय! मेरे कृष्ण को लोग काला कहते हैं। हे कृष्ण! तू भी काला, मेरा हृदय भी काला, फिर तू मुझे क्यों नहीं मिलता?" कहते हुए रो पड़े, और इतना रोए कि व्याख्यान बंद करना पड़ा। इन्हीं दिनों आपके कई व्याख्यान प्रेम और भक्ति-विषय पर अजमेर, शिमला, अमृतसर, स्यालकोट और पेशावर में हुए। पेशावर में आप अपने एक व्याख्यान "तृप्ति" में इतने राए कि आपकी आवाज़ तक नहीं निकल सकती थी। इस विषय में श्रीनारायण स्वामी का यह निजी अनुभव है कि अमृतसर

में सनातनधर्म-सभा के वार्षिक उत्सव पर जो प्रभाव आपके व्याख्यानों से लोगों के चित्त पर पड़ा, वह किसी दूसरे उपदेशक के व्याख्यान से कदापि नहीं हुआ था। विशेषतः कृष्ण-गीता और कृष्ण-लीला के व्याख्यानों ने जो प्रभाव लेखक (श्रीमन्नारायण स्वामीजी) के हृदय पर किया, उसका वर्णन नहीं हो सकता। उन दिनों लेखक (श्रीमन्नारायण स्वामीजी) यद्यपि कट्टर आर्यसमाजी विचारवाला था, और कृष्ण महाराज को केवल एक महात्मा पुरुष मानता था, औरों के समान उन्हें ईश्वर का अवतार स्वीकार नहीं करता था, और प्रचलित भागवती एवं व्रजविलास की कृष्ण-लीलाओं को जीवन का एक गंदा ढंग मान किया करता था। और यही कारण था कि उसे कृष्ण की व्रज-लीलाओं से अत्यंत घृणा थी, एवं भगवद्गीता के प्रति भी कोई श्रद्धा न थी। किंतु गोसाईं तीर्थरामजी महाराज के उन भक्ति-भरे व्याख्यानों से हृदय पर कुछ ऐसा जादू-भरा प्रभाव पड़ा कि नारायण-जैसा अश्रद्धालु व नास्तिक चित्त भी गोसाईंजी की प्रेम-तरंगों से विगलित होकर प्रवाहित होने लगा, वह श्रीमद्भगवद्गीता और कृष्ण-लीला के रहस्यपूर्ण अर्थों को समझने की ओर झुक गया और निरंतर इस गीता की प्रसिद्ध व्याख्याओं और भाष्यों का अध्ययन करने लगा। और यह सब उसी प्रभाव का फल हुआ कि लेखक (नारायण स्वामी)

धार्मिक अनुसंधान करने को उद्यत हो गया और ईश्वर-प्रेम ने उसके हृदय में घर कर लिया, जिसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि उसको इन्हीं गोसाईंजी के चरणों में उसने ला डाला।

जगद्गुरु शंकराचार्यजी के दर्शन

इन्हीं दिनों द्वारका-मठ के मठाधीश श्री ११०८ जगद्गुरु शंकराचार्यजी महाराज लाहौर में आ पधारे। आप उपनिषदों, वेदांतदर्शन के पारदर्शी विद्वान् थे, हिंदू-शास्त्र और संस्कृत-भाषा के अद्वितीय पंडित थे। उनके अगाध ज्ञान का प्रकाश सूर्य के प्रकाश में भी अपना प्रकाश करता था, और इस बात की घोषणा के लिये प्रचलित प्रथा के अनुसार उनके सिंहासन के इधर-उधर घी की मशालें जला करती थीं। वह संस्कृत-भाषा में अत्यंत पांडित्यपूर्ण एवं प्रभावशाली व्याख्यान दिया करते थे। भारत के लगभग सभी प्रांतों में आपकी प्रसिद्धि का झंडा ऊँचा था। जब इनका दौरा हिंदुस्तान में हो रहा था, उस समय गोसाईंजी, जो ईश्वर-प्रेम की मूर्ति प्रसिद्ध थे, सनातनधर्म-सभा, लाहौर के अनेक सार्वजनिक कार्यों में भाग लिया करते थे। जब जगद्गुरुजी के शुभागमन का समाचार लाहौर में पहुँचा कि वह एक ही दो दिन में आनेवाले हैं, तो गोसाईंजी के भीतर उनके दर्शनों की लालसा प्रदीप्त हो उठी, और जब तक उनके दर्शन न कर लिए तब तक उनके हृदय की व्याकुलता दूर

न हुई। उस समय सनातनधर्म-सभा का बहुत-सा काम गोसाईंजी के ही सिपुर्द रहता था, अतः जगद्गुरु की सेवा और स्वागत-सत्कार का बहुत कुछ भार गोसाईंजी के भाग में आ गया, इस कारण आपको जगद्गुरु शंकराचार्य की सेवा-शुश्रूषा और सत्संग का शुभ अवसर अनायास ही मिल गया। जगद्गुरुजी की कभी-कभी उपनिषदों की कथा, कभी-कभी वेदांत पर उपदेश और उनके सत्संग ने गोसाईंजी के पवित्र हृदय पर ऐसा जादू-भरा प्रभाव किया कि प्रेम के पीलेपन पर ज्ञान की लाली प्रदीप्त होने लगी। उनके हृदय में जिस भारी वेग से कृष्णदर्शन-लालसा की तरंगें उठती थीं, अब वही समस्त वेग आत्मसाक्षात्कार की प्रबल जिज्ञासा में उमड़ने लगा। अब गोसाईंजी के चित्त की वृत्ति उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों और वेदांत के प्रकरण ग्रंथों के अध्ययन की ओर उलट पड़ी। अब वृंदावन और मथुरा-यात्रा करने के स्थान पर प्रतिवर्ष गरमियों की छुट्टियों में उत्तराखंड अर्थात् हरद्वार और ऋषीकेश इत्यादि जाकर एकांत-सेवन की लालसा भड़कने लगी। दिनभर में जब भी ज़रा अवसर मिलता, झट वेदांतविचार और आत्मध्यान में निरत हो जाते थे। गोसाईंजी अपने २२ फ़रवरी, १८९७ ई० के पत्र में अपने गुरुजी को लिखते हैं कि—

"जब अवकाश मिलता है, वेदांत के ग्रंथ अँगरेज़ी में देखता हूँ,

और छुट्टी के दिन चित्त एकाग्र करने का भी अधिक समय मिलता है। आनंद केवल अपने स्वरूप में स्थित होने में है, और अधिकार समस्त संसार पर अपना ही है ; बिना प्रयोजन ही हम अपने-आपको औरों के अधिकार में अर्थात् दूसरों के अधीन कल्पना कर लेते हैं।.........''

गोसाईंजी के इसके बाद के कई पत्रों से सिद्ध होता है कि भगत धन्नारामजी (गोसाईंजी के गृहस्थकाल के गुरु) शायद कृष्ण-भक्ति के लालायित नहीं थे, केवल वेदांत की शिक्षा के ही प्रशंसक थे, इसलिये वेदांत को व्यवहार में लाने के लिये अर्थात् वेदांतनिष्ठ बनने के लिये निरन्तर गोसाईंजी को प्रेरणा किया करते थे। इस विषय में वह शायद इस बार बहुत बड़ी ताकीद गोसाईंजी को कर बैठे होंगे, जिसके उत्तर में गोसाईंजी १८ एप्रिल, १८९७ ई० को भगतजी को इस प्रकार लिखते हैं कि—

''मैं आपकी कृपा से अपना समय व्यर्थ व्यय नहीं करता, अधिकतर वेदांत की ही चर्चा होती है। भविष्य में आपकी आज्ञानुसार अन्य प्रकार का वार्तालाप बिलकुल त्याग देने का प्रयत्न करूँगा।.........''

हरिचरण की पौड़ियों में निवास

गोसाईंजी जिस घर में रहते थे, वह वाटर-वर्क्स के निकट था। बहुत समय तक वहीं रहते रहे, किंतु जब वेदांत के अध्ययन और अभ्यास की लालसा प्रबल हुई और एकांत-सेवन की अधिक इच्छा हुई, तो अपने मकान को

एकांत न समझकर एक अति उत्तम मकान हरिचरण की पौड़ियों में किराए पर ले लिया। आप पहली अगस्त, १८९७ ई० में इस उत्तम और स्वच्छ भवन में आ गए, और इसमें आते ही आप भगतजी को लिखते हैं कि—

"हम इस नए मकान में आ गए हैं, यह हरिचरण की पौड़ियों में है। हरिचरणों में (तीर्थ) श्रीगंगाजी का निवास है, और तीर्थ (राम) को भी हरिचरणों में ही रहना उचित है। यहाँ जब से आया हूँ, हरिचरणों में ही ध्यान है। और अपने स्वरूप के श्रीगंगाजल में आपकी दया से स्नान कर रहा हूँ।"

इस मकान में आकर गोसाइंजी एकांत-सेवन (आत्म-विचार) में यथाशक्ति अपना सारा समय देने लगे। और ज्यों-ज्यों एकांत-अभ्यास से आपको आनंद मिलने लगा, उसके प्रकट किए बिना उनकी लेखनी नहीं रुकी। आप ५. अगस्त, १८९७ ई० के पत्र में भगतजी को लिखते हैं कि—

"आजकल तो वेदांतविचार और भजन एकांत-सेवन ही को सारा समय देता हूँ। इसमें वह आनंद है कि छोड़ने को जी नहीं चाहता।............."

आगे चलकर लिखते हैं कि—

"यदि व्यवहार-काल में चलते-फिरते और सब काम करते हमारी वृत्ति ब्रह्माकार रहे, और उस उत्तम लोक से कभी नीचे न उतरे, तो धन्य है हमारा जीवन, अन्यथा मनुष्य-देह निष्फल खो दी।"

इस तरह प्रतिदिन के अभ्यास से जब वेदांत का

व्यावहारिक फल मिलने लगा, तो लेखनी वेदांत की सत्यता का वर्णन किए बिना न रह सकी। आप ६ अगस्त, १८९७ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"वस्तुतः थोड़ा-सा अभ्यास करने से शास्त्रों के बिलकुल अनुसार परिणाम प्रकट होते हैं। संसार में यदि कोई वस्तु सत्य है, तो वेदांत-शास्त्र है।"

इसी मकान में आकर गोसाईंजी की मस्ती दिनदुगुनी रातचौगुनी उन्नति करने लगी। इसी स्थान पर आपके पास वेदांत-प्रेमियों के झुंड के झुंड आने लगे, और इसी मकान में स्वामी विवेकानंदजी को अपने साथियों सहित भोज दिया गया। इसी मकान में लेखक (श्रीमन्नारायण स्वामीजी) को गोसाईंजी का लगातार सत्संग और दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, और इसी मकान से वेदांतस्वरूप झंडा "रिसाला अलिफ़" लेखबद्ध होकर लेखक (श्रीमन्नारायण स्वामीजी) के द्वारा लहराना आरंभ हो गया। तथा इसी मकान से जब एकांत-अभ्यास से राम की मस्ती पूर्ण यौवन पर आई, तो राम को अपने स्त्री-पुत्रों सहित बाहर बनों में जाने की तरंग उमड़ी, अर्थात् इसी मकान से राम जंगलों में वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करने के लिये पधारे। मानो अपनी उस लेखनी को, जो मकान में पधारते ही प्रवाहित हुई थी, अपने आचरण से अक्षर-अक्षर सत्य

कर दिखाया और राम का निवास सदैव के लिये हरिचरणों में, अर्थात् अपने स्वरूप के पवित्र पगतल में ही हो गया।

राम-समर्पण

इसी मकान में रहते-रहते जब नित्यप्रति के अभ्यास में मस्ती बढ़ने लगी और संसार से दिन-प्रतिदिन मुख मुड़ने लगा, अर्थात् वैराग्य की मात्रा अत्यंत बढ़ने लगी, तो गोसाईंजी ने अपना तन-मन सदैव के लिये प्यारे के ध्यान में अर्पण कर दिया, और बिलकुल निःसंबंधी होकर अपने शारीरिक माता-पिता को २५ अक्टोबर, १८९७ ई० के पत्र में इस प्रकार लिख दिया कि—

"मेरे परम पूज्य और प्यारे पिताजी ! चरण-वंदना। आपका कृपापत्र मिला, अत्यंत हर्ष प्राप्त हुआ। आपके पुत्र तीर्थराम का शरीर तो अब बिक गया। बिक गया राम के आगे। उसका अपना नहीं रहा। आज दीपमालिका को अपना शरीर हार दिया और महाराज को जीत लिया। आपको धन्यवाद हो। अब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, मेरे स्वामी से माँगो। तत्काल वह स्वयं दे देंगे, या मुझसे भिजवा देंगे। पर एक बार निश्चय के साथ आप उनसे माँगो तो सही। उन्नीस-बीस दिन से मेरे सारे काम बड़ी निपुणता से अब वह आप करने लग पड़े हैं, आपके क्यों न करेंगे। घबराना ठीक नहीं। जैसी उसकी आज्ञा होगी, वैसा वर्ताव में आता जायगा। महाराज ही हम गुसाइयों का धन हैं। अपने निज के सच्चे और अमूल्य धन को त्यागकर संसार की झूठी कौड़ियों के पीछे

पढ़ना हमको उचित नहीं। और कौड़ियों के न मिलने पर शोक करना तो बहुत ही बुरा है। अपने वास्तविक धन और संपत्ति का आनंद एक बार ले तो देखो।"

संन्यास-आश्रम की उमंगें

इस आत्मसमर्पण के पश्चात् राम के हृदय की कुछ विचित्र दशा हो गई। अब दिन-रात अपने स्वरूप में स्थित रहने के सिवाय और कुछ नहीं सूझता था। वरन् लोगों को पत्र लिखने भी बंद हो गए, और तो क्या, अपने पूजनीय भगतजी को भी प्रतिदिन पत्र लिखना बंद हो गया। भगतजी की बार-बार ताकीदों के पाने पर आप ६ नवंबर, १८६७ ई० को लिखते हैं कि—

"महाराजजी!..........यद्यपि मैंने इतने दिन पत्र नहीं लिखा, किंतु सिवाय आपके स्वरूप में रहने के और कोई काम भी नहीं किया। जब अपना आप ही गए, तो पत्र किसको लिखें।"

जब इस प्रकार गोसाईंजी के हृदय की अवस्था का स्वतंत्रता और त्याग से परिपूर्ण होना पत्रों से प्रतीत हुआ, तो भगतजी शायद बहुत-से उद्धरण देकर आंतरिक त्याग से उनकी वृत्ति को नीचे लाने का प्रयत्न करने लगे। भगवान् जाने क्या उपदेश भगतजी ने लिख भेजा होगा, परंतु गोसाईंजी ६ दिसंबर, १८६७ ई० को उसका उत्तर इस प्रकार लिखते हैं कि—

"आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ, अत्यंत आनंद हुआ। आपकी अत्यंत दया है। बहुत आनंद है।

मैं तो आप कुछ नहीं करता, उचित समय पर सब काम अपने आप ही रहे हैं। किसी दिन मस्ती और संसार की ओर से बेहोशी बिना बुलाए आ जायँ, तो मेरा क्या अपराध! बिना किए काम हो रहे हैं। सूर्य और शेषनाग तो हमारे दास हैं। हमारा काम तो शेषनाग की शय्या पर आराम करना है। सूर्य को हम प्रकाशित करते हैं, और आज्ञाधीन बनकर वह चक्कर लगाता है। स्वरूप तो सबका एक ही है, पर स्वरूप में स्थिति की आवश्यकता है। और तुर्यावस्था तथा समाधिकाल की कहाँ महिमा नहीं आई?

श्रीरामचंद्रजी तथा श्रीकृष्णचंद्र परमात्मा स्वयं ऐसे महात्माओं के चरणों पर सिर रखते रहे हैं। याज्ञवल्क्य और अष्टावक्रजी की पदवी राजा जनक से बढ़कर है। राजा जनक और कृष्ण परमात्मा तो बी० ए० श्रेणी के हैं और याज्ञवल्क्य तथा अष्टावक्र इत्यादि एम्० ए० श्रेणी के *। मान (सत्कार) यद्यपि बी० ए० और

* इस उदाहरण से गोसाईंजी का प्रयोजन यह है कि श्रीकृष्ण और राजा जनक गृहस्थ (स्त्रीपुत्रवाले) होते हुए आत्मनिष्ठ ज्ञानी थे और याज्ञवल्क्य एवं अष्टावक्र विरक्त निहंग ज्ञानी थे। पूर्वोक्त दो बी० ए०-क्लास के हैं और पश्चादुक्त एम्० ए०-क्लास के। यद्यपि मान में दोनों समान हैं, तथापि सचाई को छुपाना ठीक नहीं। जो श्रेष्ठतम है, उसे वैसा ही कहना उचित है। इस कथन से आप भगत धन्नारामजी को यह ढारस दिलाते प्रतीत होते हैं कि यद्यपि संन्यासावस्था श्रेष्ठतम है, पर आप ऐसा न डरें कि मैं अभी से विरक्त संन्यासी ही हो जाऊँगा। मेरे संबंध में तो कुछ काल तक ऐसा भय व संकोच न करना चाहिए। अर्थात् अभी कुछ दिन मैं गृहस्थ ही रहूँगा, पर मैं यह जानता हूँ कि संन्यासी गृहस्थ से श्रेष्ठ है, शायद अंत में मैं भी संन्यास ले लूँ।

एम्० ए० का एक समान होता है, पर सचाई को छुपाना ठीक नहीं। जो बड़ा है, उसको बड़ा ही कहना उचित है।

दास के विषय में अभी कुछ काल तक कोई चिंता तथा भय नहीं करना चाहिए। मलाईवाला दूध और वह भी मिसरी से मिला हुआ तो एक ओर से पीने को मिलता है, और बाजरा वा ज्वार की रोटी दूसरी ओर से। मैं यह नहीं कहता कि बाजरा तथा ज्वार की रोटी बुरी है (क्योंकि वह भी तो मैं ही हूँ), पर मेरे उदर के अनुसार नहीं—मेरे उदर में तो दूध मिसरी ही पचते हैं।

जब राजाधिराज के काम बिना हाथ-पाँव हिलाए हो रहे हैं, तो वह मज़दूरों के साथ मिलकर टोकरी क्यों ढोए ?

बटलोई में गरम जलानेवाले पानी में उबलने से बचने के लिये बटलोई से बाहर जा पड़ना ही उचित है, बटलोई के साथ लगे रहना उचित नहीं।

श्रीशंकराचार्यजी ने गीता-भाष्य में अत्यंत स्पष्ट रीति से सिद्ध कर दिखाया है कि अंत में कर्म का नितांत त्याग हो जाना चाहिए, यद्यपि आप उन दिनों वह थोड़ा बहुत कर्म करते ही थे। दास के लिये भी ऐसे दिन आने में अभी देर है।

काश आनाँ कि ऐब-मन जुस्तंद।
रूयत ऐ दिलस्ताँ बदीदंदे॥

अर्थ—ईश्वर करे जिन्होंने मेरे पाप (अपराध) देखे हैं, ऐ प्यारे! वह तेरा मुख देखें।

ईं ख़िर्क़ः कि मन दारम, दर रहने-शराब-औला।
वईं दफ़तरे-बेमानी ग़र्क़े-मये-नाब-औला॥

अर्थ—यह कंथा जो मैं रखता हूँ, निजानंद-रूपी मदिरा के बदले गिरवी रक्खी है, और ये निरर्थक पुस्तकें उस आनंद-रूपी वास्तविक मदिरा में डूबी हुई हैं।

अंतिम पद्य का तात्पर्य यह है कि ये ग्रंथ, पुस्तकें, दफ़्तर इत्यादि नितांत व्यर्थ, निरर्थक और निष्फल हैं, यदि उनके पढ़ने से यह परिणाम नहीं निकलता कि हम उनको शुद्ध मस्ती की मदिरा में ऐसा डाल दें कि वहाँ बिलकुल गल-सड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ। और उनका नाम तथा चिह्न-मात्र शेष न रहे, बल्कि मदिरा-रूप ही हो जायँ। मदिरा से अभिप्राय अद्वैतानुभव की मस्ती या नशा है।

यह वस्त्र अर्थात् गृहस्थ मुर्दे का कफ़न (शव-वस्त्र) हैं, यदि अंत में इनको बेचकर अनुभव-रूपी मदिरा के रंग में हम रत्ते (रँगे) नहीं जाते, इति। विशेष आनंद।"

इसी प्रकार फिर १३ दिसंबर, १८९७ ई० के पत्र में गुरुजी को लिखते हैं कि—

"आपकी दया से आनंदस्वरूप के साथ संग बढ़ता जा रहा है। वाह धन्य हो! इत्यलम्, विशेष आनंद।

पहला कार्ड लिख रहा था कि आपके तीन कार्ड और मिले। बहुत ही आनंद हुआ। आपने जो लिखा है, नितांत ही ठीक और उचित लिखा है। जो आपकी इच्छा है, वही होगी। करने-करानेवाले सब आप हैं। वैराग्य की तरंगें जो यहाँ आती हैं, आपकी भेजी हुई हैं, और आप ही रोकते हो? अद्भुत लीला है। वाह! क्या ख़ूब खेल है। बलिहार!

सबके लिये संन्यास ठीक नहीं और संन्यास का संसार में न होना भी उचित नहीं। प्रत्येक रंग की सामग्री संसार में बनाई हुई है। किसी को हँसाना, किसी को रुलाना और आप अलग खड़े होकर कौतुक देखना, यह हमारा काम है, जिस प्रकार आतिशबाज़ अनार के मसाले को गरम-गरम आग से जलाता है और उस बेचारे मसालहा से शूँशूरूपी हाय-हाय का शोर कराता है, पर

आप सदा प्रसन्न रहता है, साक्षी-रूप बनकर। कुछ फल पककर भी वृक्ष के साथ लगे रहते हैं, पर कुछ फल पककर गिर पड़ते हैं। इति, विशेष आनंद।"

इसके पश्चात् गोसाईंजी का गुरुजी से भी अपनी अभेदता का अभ्यास इतना अधिक बढ़ गया कि अब पत्रों में अपना नाम तक लिखना उन्होंने बंद कर दिया। २५ दिसंबर, १८९७ ई० के पत्र में आपने गुरुजी को इस प्रकार लिखा कि—

"संबोधन पूर्वोक्त।

रात के आठ बजनेवाले हैं। व्यायाम कर चुका हूँ। भीतर नितांत शुद्ध है। और अत्यंत आनंद की अवस्था है। इस समय अत्यंत प्रेम के साथ आपका स्मरण हुआ। आप धन्य हैं, जिनकी कृपा से इस प्रकार आनंद के समुद्र में स्नान होते हैं। आप पर बलिहार, संपूर्ण एकता (अभेदता) की दशा है। आपसे इस समय एक बालमात्र भी किसी बात में किंचित् अंतर नहीं—

मन तो शुदम, तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जाँ शुदी।
ता कस न गोयद बाद अज़ीं, मन दीगरम तो दीगरी॥

भावार्थ—मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं देह हुआ तू प्राण हुआ।
अब कोई यह न कह सके ! मैं और हूँ तू और है॥

लेखक

आप स्वयं"

अद्वैतामृतवर्षिणी सभा

अब वेदांत की शिक्षा गोसाईंजी के चित्त को प्रफुल्लित कर रही थी। इस आनंद के रंग में खूब गोते लगाते

रहने के विचार से आपने अपने घर पर ५ फ़रवरी, सन् १८९८ ई० को एक अद्वैतामृतवर्षिणी सभा स्थापित कर दी, और उसका शुभ संवाद वह अपने गुरुजी को इस प्रकार देते हैं—

"यहाँ एक अद्वैतामृतवर्षिणी सभा स्थापित की है, जिसमें अधिकतर साधु-महात्मा ही सम्मिलित हैं। उसके एकत्रित होने का स्थान मेरा ही घर है, और प्रत्येक वीरवार (वृहस्पतिवार) को सब इकट्ठा होते हैं जिसमें उपदेश आदि भी होते हैं, परंतु केवल वेदांत पर।"

इस सभा का उद्देश्य अन्य सभाओं की तरह लोगों में शोर-गुल फैलना या दूसरों को निम्न और तुच्छ समझकर उन्हें ठीक रास्ते पर लाना नहीं था, वरन् अपने हृदय और मस्तिष्क को हर समय वेदांत-विचार में निमग्न रखने और उसके श्रवण, मनन और निदिध्यासन से निजानंद का लाभ उठाना था। इसलिये सप्ताह-भर में एक ही दिन गोसाइंजी जो महात्माओं के सत्संग से सभा में श्रवण करते शेष छः दिन वह एकांत में उसका मनन व निदिध्यासन करते रहते थे, और जो आनंद इस तरह के वेदांत-विचार तथा एकांत-सेवन में उनको मिलता, उसे गुरुजी को सूचित करते। १५ फ़रवरी, १८९८ ई० के पत्र में गोसाइंजी गुरुजी को लिखते हैं कि—

"इसमें कुछ संदेह नहीं कि जो आनंद एकांत-सेवन और

अंतर्मुख होने में है, वह कहीं नहीं ; और करोड़ों अश्वमेध-यज्ञ किए हुए हों तो हरदम स्वरूप में निष्ठा रहती है।"

बाहर होली भीतर समाधि

इस वेदांत-विचार व एकांत-अभ्यास से गोसाईंजी का मन यहाँ तक रँग गया कि अब इधर-उधर के प्रभाव उनको अपने स्वरूप से तनिक भी विचलित नहीं कर सकते थे, वरन् उनके इधर-उधर चाहे कुछ ही पड़ा हो, मन अपने निजानंद में आरूढ़ रहता था। ८ मार्च, १८९८ ई० के पत्र में गोसाईंजी अपने गुरुजी को इस प्रकार लिखते हैं कि—

"मिडिल-परीक्षा का परिणाम कल निकल गया। मेरे मकान के समीप इस समय बड़ा रौला (शोर) होली के कारण पड़ रहा है। पर आपकी कृपा से चित्तरूपी गृह के भीतर किसी प्रकार का शोर (शब्द) नहीं। आनंद है। जिस प्रकार शिवजी के चारों ओर भूत-प्रेत रौला और चीत्कार-हाहाकार मचाते रहते हैं, पर वह आनंद की समाधि में निर्विघ्न मग्न रहते, इस प्रकार संसार के जीव अज्ञान की कालिमा और गुलाल मुखों पर मले अपने निज स्वरूप को छुपाकर सदैव शोर मचाते रहते हैं, तथापि शिव-स्वरूप अपने आप में किसी क़दर निवास होने के कारण क्षीर-समुद्र में रहने का सुख है,......।"

मिज़ाजपुरसी का उत्तर

संयोग से इन दिनों गुरुजी किसी पत्र में उनकी मिज़ाज-पुरसी कर बैठे। उनके उत्तर में गोसाईंजी ने अपने १९ मार्च, १८९८ ई० के पत्र में इस प्रकार लिखा कि—

"आपके कृपापत्र मिले। अत्यंत आनंद का कारण हुए। एक राजा ने एक महात्मा से पूछा कि आपका चित्त कैसा है? उन्होंने उत्तर दिया कि—'जिसकी इच्छा बिना एक पत्ता न हिल सके, जिसकी आज्ञा सूर्य और चंद्र मानें, जल और वायु जिसकी आज्ञा को एक क्षणमात्र के लिये न तोड़ सकें, जहाँ चाहे हर्ष भेज दे और जहाँ चाहे शोक भेज दे। और ऐ राजन्! जिसकी आज्ञा के बिना तेरे मुख के दाँत नहीं हिल सकते, और जिसकी इच्छानुसार राजाधिराजों की नाड़ियों में रुधिर चक्कर लगाता है, ऐसे सामर्थ्यवान् के आनंद का क्या ठिकाना है। हे राजन्! तू आप ही अनुमान कर ले।'

राजा बोला—धन्य हो आप, ऐसा ही है। जिसका अल्पज्ञ भाव उठ गया है, और जिसकी जीव-बुद्धि नष्ट हो गई है, और जो ब्रह्ममय हो गया है, वह प्रजापति-स्वरूप हुआ समस्त जगत् के सारे काम कर रहा है। और उसकी सारी इच्छाएँ हर समय पूरी हो रही हैं। और वह आनंद का समुद्र है।

'अहो अहं! यस्य मे नास्ति किंचन्।
अथवा यस्य सर्वं यद्वाङ्मनसि गोचरं॥'

भगवान् शंकर कहते हैं—'वाह! कैसा सुंदर और आश्चर्य है मेरा अपना आप कि जिस मेरे अपने आपका जितना यह जगत् है (जो कुछ दृष्टि, श्रवण और चिंतन में आ सकता है) यह सब कुछ जिस मेरे अपने आपका है (परंतु ऐसा होते हुए भी मेरे अपने आपका कुछ नहीं है, ऐसा जो मैं हूँ, उसके तईं मेरा बहुत-बहुत नमस्कार और प्रणाम है।'

आजकल काम बहुत अधिक रहा। परीक्षाओं के निकट होने के कारण से कॉलेज की परीक्षाओं के लिये भी प्रश्नपत्र भी बनाने थे। साथ इसके विद्यार्थियों के कष्ट भी निवारण करने पड़ते हैं। किंतु चित्त एकांत में रहा।"

कटासराज-तीर्थ की यात्रा

एप्रिल, १८९८ ई० में गोसाईंजी ने कटासराज-तीर्थ की यात्रा की। इन दिनों इस तीर्थ पर बड़ा भारी मेला होता है। इस मेले में बहुत-से महात्मा विद्वान् पुरुष इकट्ठा होते हैं; और कितने ही जिज्ञासु तो केवल महात्माओं के दर्शनार्थ और उनके मनोहर उपदेश सुनने की कामना से इस मेले पर प्रतिवर्ष निरंतर जाते हैं। गोसाईंजी के गुरु भगत् धन्नारामजी अपनी जन्मभूमि गुजराँवाला छोड़कर इसी कटासराज के मेले पर आए थे। यहाँ के उत्तम जल-वायु और महात्माओं के दर्शन से आनंदित होकर और अपने व्यवसाय को पुष्कल परिणाम में देखकर वह कटासराज के निकट पिंडदादनखाँ ग्राम में ही ठहर गए थे। कई वर्ष वहाँ बिताने के बाद गोसाईंजी को उनके निकट रहने और उनसे कथा इत्यादि सुनने का अवसर मिला, जिस सत्संग और कथा के प्रभाव से बालक तीर्थराम का मन उन पर न्योछावर हो गया था। संभव है, भगतजी से ही कटासराज की महिमा सुनकर गोसाईंजी ने इस तीर्थ की यात्रा का संकल्प किया हो। परंतु वहाँ पहुँचकर गोसाईंजी के चित्त पर जो प्रभाव हुआ, वह उनके निम्न-लिखित पत्र से प्रकट हो रहा है—

"कटासराज के रस्ते ने जो उपदेश किया, वह बिलकुल ठीक

है। जो सुख एकांत-सेवन और निजधाम में है, वह कहीं भी नहीं—

हे मृग ! तेरी सुगंध सों, भयो यह बन भरपूर ।
कस्तूरी तो निकट है, क्यों धावत है दूर ॥

अपना ही आनंद जगत् के पदार्थों में आनंद भावना कर दिखलाता है । सब वेद-किताब भी हमारे ही भीतर हैं ।"

गोसाईंजी के पत्रों से स्पष्ट होता है कि इस यात्रा से लौटने के बाद उनको पहले की अपेक्षा एकांत-सेवन की लटक और आत्माभ्यास की चटक बहुत लग गई । और इस चटक लगने के बाद मन की दशा प्रतिदिन बहुत शांत, स्थिर और अचल होती गई । आप अपने २५ मई, १८९८ ई० के पत्र में लिखते हैं—

"आपका कृपापत्र मिला । आनंद हुआ । आपकी दया से चित्त तो प्रतिदिन अचल होता जाता है, उसमें तनिक भी अंतर नहीं आता । मेरे शरीर के व्यवहार से चित्तवृत्ति का अनुमान करना ठीक नहीं । पिछले दिनों काम ज़रा बहुत रहा ।"

गणित पर गोसाईंजी का व्याख्यान और रचना

इन्हीं दिनों गोसाईंजी ने विद्यार्थियों के लाभ के लिये गणित पर अँगरेज़ी में एक व्याख्यान दिया, जो बाद में "गणित में कैसे उन्नति कर सकते हैं ?" (How to excel in mathematics) नाम से एक पुस्तक के आकार में छापा गया । जहाँ तक पता लगाने से ज्ञात हुआ, यह

भाषण और रचना अँगरेज़ी-भाषा में गोसाईंजी की प्रथम थी, इससे पूर्व कोई रचना किसी तरह की गोसाईंजी की लेखनी से अँगरेज़ी में नहीं निकली थी। इस रचना के पश्चात् वह अधिकतर उर्दू-भाषा में लिखने लगे। इस रचना ने गोसाईंजी की ख़ूब प्रसिद्धि कर दी।

पहली जून, १८९८ ई० के पत्र में लिखते हैं कि—

"......पुस्तक पर विज्ञापनों के सहित एक सौ पचीस रुपया ख़र्च आया है। पुस्तक की एक सौ प्रतियाँ मैंने मुफ़्त बाँट दी हैं। भारत के अँगरेज़ी गणितज्ञों ने अति उत्तम सम्मतियाँ इसकी उपमा में दी हैं।"*

उत्तराखंड की यात्रा

कृष्ण-भक्ति के काल में गोसाईंजी जब अवकाश पाते, झट मथुरा-वृंदावन की ओर चल देते थे, और अपनी छुट्टियों का लगभग सारा समय वहाँ ही रासलीला आदि देखने में व्यतीत किया करते थे। परंतु जब से एकांत-सेवन और निजानंद की चाट लगी, तब से अवकाश पाते ही

---

* इस उपयोगी व्याख्यान के प्रकाशित होने के दो वर्ष पश्चात् गोसाईंजी गृह-संबंध त्यागकर जंगलों में पधारे थे, अतः इसके दुबारा प्रकाशित होने का संयोग नहीं हुआ था। पहले अँगरेज़ी की रामग्रंथावली के चतुर्थ खंड के अंत में इसे संयुक्त कर दिया गया था, अब नवीन आवृत्ति के आठवें भाग में इसे दे दिया गया है। जो गणित के विद्यार्थी इससे लाभ उठाना चाहें, वह श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग से इसे पा सकते हैं।

हरद्वार, ऋषीकेश इत्यादि स्थानों की सैर का विचार मन को घेरने लगा। १८९८ ई० की गरमियों की छुट्टियों में एकांत-सेवन का अधिक आनंद लेने के विचार से आप हरद्वार, ऋषीकेश और तपोवन को गए।

अपने १४ अगस्त, १८९८ ई० के पत्र में हरद्वार की सैर और एकांत-अभ्यास की लटक का इस प्रकार वर्णन करते हैं कि—

"आज ठाकुरदास को लाहौर भेज दिया है। इतने दिनों में यहाँ के दर्शनीय स्थानों को देखा है, संतों के दर्शन किए हैं। अब आज तृप्त होकर अपने घट के द्वार बंद करके अपने घर में घट जाने को जी चाहता है। महाराजा जम्मू की हवेली में ठहर रहा हूँ। मेरे रहने का कमरा हरद्वार में सबसे उत्तम है।"

उत्तराखंड में एकांत-निवास व आत्म-साक्षात्कार

हरद्वार से चलकर गोसाईंजी ऋषीकेश पहुँचे, और जितना खर्च उनके पास था, उसे सब महात्माओं की सेवा में खर्च कर दिया। आप नंगे बदन, दीवाने बने, बिलकुल अकेले, कुछ उपनिषदें साथ लिए वहाँ से तपोवन एकांत-अभ्यास के लिये पधारे। यह तपोवन ऋषीकेश से केवल कुछ मील की दूरी से ही आरंभ हो जाता है, और इसमें एक ब्रह्मपुरी-मंदिर है जो ऋषीकेश से लगभग ८ मील की दूरी पर है। इस मंदिर के निकट गंगाकिनारे गोसाईंजी ने

अपना आसन जमाया, और अपने खाने-पीने की तनिक चिंता न रखकर, वरन् इस बात को सच्चे निश्चय से केवल ईश्वर पर छोड़कर, नीचे लिखे दृढ़ संकल्प से गंगाकिनारे जमकर एकांत-अभ्यास करने लगे—

बैठे हैं तेरे दर पै, तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही हो जायगा, या मरके उठेंगे॥

इस स्थल का वृत्तांत और अपनी आंतरिक अवस्था एवं आत्म-साक्षात्कार का सविस्तर वर्णन गोसाईंजी ने अपनी रचना "पर्वतीय दृश्य" (जल्वा-ए-कुहसार) के भीतर स्वयं किया है। अतएव उसे ज्यों का त्यों दूसरे खंड में अनुवाद किया जाता है ताकि सत्य के जिज्ञासुओं को राम के हृदय की अवस्था, त्याग और मस्ती का परिचय स्वयं उन्हीं की लेखनी से मिल जाय।

महानुभाव स्वामी रामतीर्थ

अमेरिका (१६०४)

द्वितीय खंड

जल्वा-ए-कुहसार

या

पर्वतीय दृश्य

अथवा

साक्षात्कार का प्रण व निजानंद-अवस्था

(परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज की
अपनी लेखनी से)
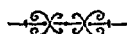
ऐ दिल ईंजा कूए-जानाँ अस्त अज़ जाँ दम मज़न।
अज़ दिलो-जानो-अहाँ दर पेशे-आनाँ दम मज़न ॥ १ ॥

जाँ नदारद क़ीमते-खिसियार अज़ जाँ वा मगो।
गर चेः जाँ दर बाख़्ती दर राहे-जानाँ दम मज़न ॥ २ ॥

गर तुरा दरदे-स्त अज़ वै हेच अज़ दरमाँ मगो।
दरदे-ओरा बिह ज़ दरमाँ दाँ ज़ दरमाँ दम मज़न ॥ ३ ॥
चूँ यक़ीं आमद रिहा कुन क़िस्सए-शक्क-ओ-गुमाँ।
चूँ अयाँ बिनमूद रुख़ दीगर ज़ बुरहाँ दम मज़न ॥ ४ ॥
इल्मे-बेदीनाँ गुज़ारो-ज़हल रा हिकमत मख़्वाँ।
अज़ ख़यालातो-फ़सूनो-अहले-यूनाँ दम मज़न ॥ ५ ॥
बा लबे मैगूँ व रुए-ख़ूबो-ज़ुल्फ़े-दिलकशश।
अज़ शराबो-शाहिदो-शमओ-शबिस्ताँ दम मज़न ॥ ६ ॥
कुफ़रो-ईमाँ रा व पेशे-ज़ुल्फ़ो-रूयश कुन रिहा।
पेशे-ज़ुल्फ़ो-रूए ओ अज़ कुफ़रो-ईमाँ दम मज़न ॥ ७ ॥
चूँकि बा ओ बर नयारी बूदन अज़ वसलश मगो।
चूँकि बे ओ हम नमी यारी ज़ि हिजराँ दम मज़न ॥ ८ ॥
मिहरे-ताबाँ चूँकि हस्त अज़ अक्से-रूयश ता बशे।
मग़रबी दर पेशे-ओ अज़ मिहरे-ताबाँ दम मज़न ॥ ९ ॥

अर्थ—(१) ऐ दिल! यहाँ प्यारे की गली है। यहाँ अपनी जान का दम भी मत मार, अर्थात् जान का घमंड मत कर वा जान की परवाह मत कर, और अपने प्यारे के आगे जान व जहान और दिल का दम मत मार, अर्थात् अपने प्यारे के सामने इस प्राण इत्यादि का घमंड मत कर, वा इन्हें प्यारा मत समझ।

(२) जान (अपने प्यारे की अपेक्षा) अधिक मूल्य नहीं रखती है, इसलिये जान का शोक मत कर। यदि तू अपने प्यारे के रास्ते में जान पर खेलता है, तो चुप रह (तू इस काम पर भी शेखी मत कर)।

(३) यदि तुझको (अपने प्यारे की प्रीति में) कुछ कष्ट है, तो उसकी चिकित्सा के विषय में कुछ चर्चा न कर। उसके कष्ट को अर्थात् उसकी प्रीति की राह में जो कष्ट हो, उसे चिकित्सा से भी उत्तम समझ और चिकित्सा के विषय में चर्चा न कर, अर्थात् चुप रह ।

(४) जब तुझे विश्वास हो गया, तो संशय-संदेह की कहानी छोड़ दे। जब उस (प्यारे) ने अपना मुखड़ा दिखा दिया, तो फिर हील और हुज्जत न कर।

(५) जिनका कोई धर्म ही नहीं है, ऐसे लोगों का ख़याल छोड़ और मूर्खता को तत्त्वज्ञान मत कह; एवं यूनान-वालों के विचारों और उनके आख्यानों का दम मत मार।

(६) मदिरा-जैसे ओष्ट, सुंदर मुखड़ा, मनहरण .ज़ुल्फ़, मदिरा और प्रियतम तथा शमा और शयनागार के विषय में भी चर्चा न कर।

(७) कुफ़्र और ईमान को उसके मुखड़े और .ज़ुल्फ़ के आगे छोड़ दे, और उस प्यारे के .ज़ुल्फ़ और मुखड़े के सामने कुफ़्र और ईमान की चर्चा न कर।

(८) याद रख, तू उस (प्यारे) से आगे नहीं बढ़ सकेगा, इसलिये तू उसके मिलाप (दर्शन) की चर्चा मत कर, और इस हेतु कि तू उस (प्यारे) के बिना भी नहीं रह सकेगा, इसलिये वियोग की भी चर्चा न कर।

(६) याद रख, प्रकाशमान सूर्य उस (प्यारे) के मुखड़े की ज्योति की एक चमक है, इसलिये ऐ मगरवी ! उसके सामने प्रकाशमान सूर्य की भी चर्चा न कर ।

मयार ऐ वक़्त ! चहरे-ग़रक़े मा दर शोर दरिया रा ।
परे-माही मगरदाँ बादबाने - कश्तिए - मा रा ॥ १ ॥
लिबासे-मा सबुकसाराँ तअल्लुक़ वर नमी तावद ।
बुवद हमचूँ हुबाब अज़ वखिया खाली पैरहन मा रा ॥ २ ॥
दमे-जाँबख़्शे-तो ता रंगे-हैरत रेख़्त दर आलम ।
ज़े भिहर आईना दर पेशे-नफ़स दीदम मसीहा रा ॥ ३ ॥
अगर लब अज़ सख़ुन गोई फ़रो वंदम जा दारद ।
कि न बुवद अज़ नज़ाकत ताबे-बस्तन मानए मा रा ॥ ४ ॥
शवद अज़ शोलए-आवाज़े-कुलकुल बज़्मे-मैं रोशन ।
सरत गरदम मकुन खामोश साक़ी ! शमए-मीना रा ॥ ५ ॥
ग़नी साग़र व कफ़ जमशेद पेशे-मैफ़रोश आमद ।
कि शायद दर वहाए वादागीरद मुल्के-दुनिआ रा ॥ ६ ॥

अर्थ—(१) ऐ नसीवे ! हमारे डुवाने के लिये दरिया को तूफ़ान में मत ला (ऐ वक़्त ! हमको डुवोने के लिये सांसारिक इच्छाओं के नद में तूफ़ान मत बरपा कर), और ऐ मछली के पर ! हमारी नौका के बादबान को मत फेर ।

(२) हम हल्के (सांसारिक संबंधों से मुक्त) लोगों का चोला संबंध की ताब नहीं ला सकता है, अर्थात् हमारा चित्त संबंधों की ओर रुचिकर नहीं हो सकता, और

हमारा कुरता (मन) बुलबुले की तरह बख़िया से ख़ाली (संबंधहीन) है।

(३) ज़ब से तेरे प्राणदाता दम ने संसार में आश्चर्य का रंग बिखेरा है, अर्थात् आश्चर्यवत् किया है, उस समय से मैंने मसीहा को तेरे प्रेम के कारण (आईना दर पेशे-नफ़स) विस्मय-पूर्ण देखा है, अर्थात् ऐ सच्चे माशूक़ ! चूँकि तेरे प्राणदाता दम (आश्वासन) ने प्रेम के रोगियों को स्वास्थ्य-दान किया है। इसलिये तेरे प्रेम के कारण अब मसीह (जिसमें चमत्कार था कि वह मुर्दे को ज़िंदा कर देता था) भी विस्मित हो रहा है, क्योंकि अब उसका चमत्कार व्यर्थ हो गया।

(४) यदि तू कहे, तो हम बात करने से ओष्ठ बंद कर रक्खें (चुप रहें), पर क्या यह उचित है ? क्योंकि तेरी सुकोमलता के कारण हमको अर्थ (रहस्य) छुपाने की शक्ति नहीं, अर्थात् स्वभावतः हमारे मुँह से तेरी प्रशंसा अवश्य निकलेगी ही और तेरा रहस्य प्रकट किए बिना हम न रहेंगे।

(५) क्योंकि मदिरा की सभा (मदिरा की) सुराही (पात्र विशेष) के शब्द के तेज से प्रकाशित हो जाती है, इसलिये ऐ साक़ी (मद्य पिलानेवाले) ! मैं तुझ पर न्यौछावर होता हूँ, तू मदिरा के शीशे की ज्योति को मत

बुझा, अर्थात् ऐ पूर्ण गुरु ! भगवत्प्रेम की मदिरा की दौर (लहर) जारी रहे, भगवान् के नाम से इसे पल-भर के लिये भी बंद न कर।

(६) ऐ गनी ! जमशेद अपने प्याले (संसार-दर्शक प्याले) को हथेली पर रक्खे हुए मदिरा-विक्रेता के पास आया कि कदाचित् मदिरा के बदले वह सुरा-व्यवसायी 'दुनिया के मुल्क' को ले ले। तात्पर्य यह कि भगवत्प्रेम की मदिरा इतनी मूल्यवान् है कि जमशेद उसके लेने में 'दुनिया के मुल्क' को या अपने उस प्याले को, जिसमें कि सारे संसार का दृश्य दिखाई देता था, अकातर-मन से देता है।

× × × × ×

गंगे ! क्या वह तेरी ही छाती है, जिसके दूध से ब्रह्म-विद्या परवरिश (पुष्टि) पाती है ?

ऐ हिमालय ! क्या तेरी ही गोद है, जिसमें ब्रह्मविद्या (गिरिजा) खेला करती है ? क्या तुम्हें भी वह दिन स्मरण है, जब पहलेपहल 'राम' 'पांडुवर्ण, शीतल-श्वास, अश्रु-पूर्ण लोचन' के साथ तुम्हारी शरण में आया था ? अकेले इन पत्थरों पर पड़े-पड़े रातें कटती थीं। आँसुओं से ये शिलाएँ तर-ब-तर होती थीं, हिचकियों का तार बँधता था। हाय ! वह परम-आनंद कहाँ है, जिसकी मस्ती में न कोई कल है न

आज, अर्थात् जिसकी मस्ती में आज वा कल की सुध नहीं रहती ?

हाय ! वह आनंद-सागर कब मिलेगा जो सांसारिक भोगों को तिनका और कूड़ा-कर्कट की तरह बहा ले जाता है ? ज्ञान का मार्तंड प्रचंड कब मध्याकाश पर आएगा ? शारीरिक भोग और इंद्रियों के विषय धुंध और अंधकार की तरह कब साफ़ उड़ जायँगे ? गंगा का जल तो कहीं पर भी गरम नहीं होता। हे भगवन् ! वह समय कब आएगा कि ब्रह्मज्ञान के उन्माद की बदौलत राम के चित्त पर स्वप्न में भी भय और आशा (favours & frown) अधिकार पाने के अयोग्य हो जायँगे ? पाप और शोक (sin & sorrow) भूत-काल की तरह कब गए-बीते होंगे। तुरीया अवस्था क्या ग्रंथों में ही लिखी जाने को है, अन्यथा वह तुरीया कहाँ है ? नंगे सिर, नंगे पैर, नंगे शरीर, उपनिषदें हाथ में लिए दीवाना-सा 'राम' पहाड़ी जंगलों में फिर रहा है।

ख़ूने-जिगर शराब तिरश्शोह है चश्मे-तर।
साग़र मिरा गिरौ नहीं अबरे-बहार का॥

अर्थ—अपने जिगर का ख़ून तो मेरी शराब है और आँसुओं से तर आँखें मेरे लिये वर्षा की बूँदें हैं। मेरे प्याले को बहार के बादल की आवश्यकता नहीं।

नालाहाए कुलबा-ए-अहज़ाँ तसल्ली बख़्श नेस्त।
दर बियाबाँ मी तवाँ फ़रयाद ख़ातिरख़्वाह कर्द॥

अर्थ—शोक-घरवाला रुदन संतोषजनक नहीं है, जंगल में जाकर मनमानी पुकार कर सकते हैं, अर्थात् वन में खुले दिल से अपने प्यारे की याद में रुदन हो सकता है।

वर्गे-हिना पै जा के लिखूँ दर्दे-दिल की बात।
शायद कि रफ़्ता-रफ़्ता लगे दिलरुबा के हात॥

पहाड़ की खोह का, पर्वत की कंदरा का पीड़ा-पूर्ण आर्त-नाद को सहानुभूति-पूर्ण उत्तर देना कभी नहीं भूलेगा।

इश्क़ का मनसब लिखा जिस दिन मेरी तक़दीर में।
आह की नक़दी मिली स्वहरा मिला जागीर में॥

गंगा-तट पर प्रण

बस, तख़्त या तखता, अर्थात् राजसिंहासन या चिता, माता-पिता! तुम्हारा लड़का अब लौटकर नहीं जायगा। विद्यार्थी लोगो! तुम्हारा विद्या-गुरु अब लौटकर नहीं जायगा। गृहस्थ लोगो! तुम्हारा नाता कब तक निभेगा? 'बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनाएगी' या तो सब संबंधों से रहित होगा या तुम्हारी सब आशाओं के ऊपर एक साथ पानी फिर जायगा। या तो राम की आनंदघन तरंगों में घर-बार सब निमग्न होगा (तुरीया अतीत), और या राम का शरीर गंगा की लहरों के समर्पण होगा, तन-बदन (देह-भाव) का अंत होगा। मर कर तो सभी की हड्डियाँ

गंगा में पड़ती हैं, किंतु यदि साक्षात्कार न हुआ और शरीर-भाव की गंध बनी रह गई, तो राम की हड्डियाँ और मांस जीते-जी मछलियों की भेंट होंगे।

बनके परवाना तिरा आया हूँ मैं ऐ शमा-ए-तूर।
बात वह फिर छिड़ न जाए यह तक़ाज़ा और है॥

नैन मेरे सुख क्यों नहीं सौंदे।
कड पाँधा पतरी देख दिन मेरे॥
काग मेरे घर नित्त उठ लौंदे।
नैन मेरे सुख क्यों नहीं सौंदे॥

यदि राम के चरणों में गंगा न बही, तो राम का शरीर गंगा पर अवश्य बहेगा।

करे रथांग शयने भुजंगं याने विहंगं चरणेषु गांगम्॥

अर्थ—चक्र हाथ में, सोने के लिये सर्प की शय्या, सवारी में गरुड़ और चरणों में गंगा।

आँखें जल बरसा रही हैं। ठंडी और लंबी साँस मानो तीक्ष्ण वायु के समान मेघ का साथ दे रही हैं, अंदर झड़ी लग रही है, बाहर भी बरसात ज़ोर पर है। रुदन और पुकार के साथ राम के अंतःहृदय से यह आवाज़ निकल रही है—

गंगा तैथों सद बलहारे जाऊँ। (टेक)

हाड़ चाम सब वार के फेकूँ, यही फूल बताशे लाऊँ। गंगा०
मन तेरे बँदरन को दे दूँ, बुद्धि धारा में बहाऊँ। गंगा०
चित्त तेरी मछली चब जावें, अहं गिरि-गुहा में दबाऊँ। गंगा०
पाप-पुण्य सभी सुलगाकर, यह तेरी ज्योति जगाऊँ। गंगा०

तुझमें पड़ूँ तो तू बन जाऊँ, ऐसी डुबकी लगाऊँ। गंगा०
पंडे जल थल पवन दशो दिक्, अपने रूप बनाऊँ। गंगा०
रमण करूँ सत धारा माँहीं, नहीं तो नाम न राम धराऊँ। गंगा०

गंगा-किनारे के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े हुए मानो संध्या कर रहे हैं, और मनोहर लता-पता में रंग-रंग के फूल खिले हुए नन्हें बच्चों की भाँति मुसका रहे हैं। हवा आकर उन्हें झूले झुला रही है। ठंडी-ठंडी पवन मंद-स्पंद से मन लुभा रही है।

बादे-सबा के झोंकों से शाखों का झूमना।
और झूम-झूमकर वह रुखे-गुल को चूमना॥

चारों ओर यह दशा है कि राम चिंतित है कि "पीठ किस ओर करके बैठूँ"। एक से एक बढ़कर सुहाना (सुहावना) है। पर्वतों के ढलुवाँ पर हरे-हरे बासमती के खेत लहलहा रहे हैं। इन खेतों में पहाड़ों से उतरता हुआ निर्मल जल बह रहा है। यह जल मुक्त-पुरुषों की भाँति ब्रह्मस्वरूप श्रीभागीरथी में मिलकर उससे अभेद हो रहा है। श्रीभागीरथी की शोभा कौन वर्णन करे। क्या विराट् भगवान् का हृदय-स्थान यही है? उसकी गंभीर और शीतल प्रकृति और उसकी ओंकार अनहद-रूपी ध्वनि चित्त की चुलबुलाहट और मलिनता को दूर कर रही है। किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर गंगा-जल के विचित्र शांति-भरे कुंड बन रहे हैं। उजियाली में तो चमकती-दमकती गंगा है कि करोड़ों मोती कूट-कूट

कर भरे हैं। मेरी जान ! यह मरजानवाला सुर्मा आँखों में क्या ठंढक देता है, हृदय की आँखों को भी प्रकाशित करता है। गंगा अपनी महान् शीतलता और निर्मलता से विष्णुपन दिखाती, और महाशक्ति तथा कलकल-नाद से सिंह की भाँति गरजने एवं अस्थियों को चबाने (बहा ले जाने) से शाक्तपन प्रकट करती, विष्णु और शिव दोनों की झलक मारती हुई बाबापुरी (जगत्) को कृतार्थ करने जा रही है। गंगा की तरंगें इस स्थान पर निहंग के समान रव करती और वेग से छलाँगें भरती चली जा रही हैं। यहाँ तह पर बहुत बड़े-बड़े पत्थर होंगे। लहरें झाग-झाग हुई जाती हैं, मौजें (लहरें) किस वेग के चक्कर खाती हैं। यह देखो, गंगा की धारा भयानक झरना बन रही है, पानी सबका सब एकदम गिरा, फिर उछला। गंगा के प्रमत्त वेग को जतानेवाली फेन नाच रही है, मानो गर्जनशील सिंह के बाल (mane) लहरा रहे हैं। इस आवेश के साथ गंगा मानो यह कह रही है कि ऐ अहंकाररूपी मृग! आ, मैं तेरा शिकार करूँ। ऐ अज्ञानरूपी गीदड़ ! आ, तेरे देहाध्यास और अहंभाव की हड्डियाँ चबा जाऊँ, पसलियाँ अलग-अलग कर दूँ। ऐ मोहरूपी पत्थर! आ, मैं तुझे चीर डालूँ, पहाड़ों को काटकर आई हूँ, अब तेरी बारी है।

इस समय कुल अज्ञान की सेना न मालूम कहाँ अंतर्धान हो गई, न अंधकार का कहीं पता लगता है, न अविद्या (तिमिर) का। इन हरे-भरे पहाड़ों का इस प्रकार प्रकाश और आनंद से परिपूर्ण होना किस बात पर दाल है, अर्थात् किसका संकेत करता है? यह शीतलता और आनंद क्या शुभ-संवाद सुना रहे हैं? 'राम' की मनोकामना यहाँ पूर्ण हो जायगी, सब कामनाएँ तिरोहित हो जायँगी।

मुज़्दह ऐ दिल कि मसीहा नफ़से मी आयद।
कि ज़ इनफ़ासे-ख़ुशश बूए-कसे मी आयद॥

अर्थ—ऐ दिल! ख़ुश हो कि कोई मसीहा (परम ज्ञानी) आ रहा है, और उसके सुंदर श्वासों से किसी ब्रह्मवित् की गंध आ रही है।

किस आनंद के साथ 'राम' स्नान करता है, जल उछालता है और आनंद-ध्वनि करता है।

नदियाँ दी सरदार, गंगारानी। छींटें जलदे देन वहार, गंगारानी०
सानूँ रख जिंदड़ी दे नाल, गंगारानी। कदे वार कदे पार, गंगा०
सौसौ ग़ोते गिन-गिन मार, गंगारानी। तेरियाँ लहराँ रामअस्वार, गं०

Mother of mighty rivers,
Adored by saint and Sage!
The much beloved peerless Ganga
Famous from age to age.

अर्थ—शक्तिशाली नदियों की जन्मदात्री! ऋषि-मुनियों

ने तेरी आराधना की है। अत्यंत प्रिय तथा अनुपम गंगे! तेरी कीर्ति चिरकाल से व्यापक है।

Unconscious roll the surges down,
But not unconscious thou,
Dread spirit of the roaring flood,
For ages worshipp'd as a God,
And worshipp'd even now.
Worshipp'd, and not by serf or clown,
For sages of the mightiest fame,
Have paid their homage to thy name.

(Dutt)

अर्थ—तेरी अचेतनरूप लहरें लुढ़कती फिरती हैं, परंतु उनके समान तू भी अचेतन नहीं है; क्योंकि तेरे गरजते हुए प्रवाह का यह भयानक रूप चिरकाल से ईश्वर-तुल्य पूजा गया है, और अब भी पूजा जाता है। उसकी पूजा मूढ़ और दासों ही ने नहीं, वरन् सर्वोच्च प्रतिष्ठावाले ऋषि-मुनियों ने भी की है, जो तेरे नाम के प्रेमी वा भक्त हैं।

(रमेशचंद्र दत्त)

Sacred Ganga, ample bosomed,
Sweeps along in regal pride,
Rolling down her limpid waters,
Through high banks on either side.

अर्थ—विशाल वक्षःस्थल (भारी पाट) वाली पुनीत गंगा अपने निर्मल जल को दोनों ओर के ऊँचे तटों से उछालती हुई महानता के गौरव में वह रही है।

संध्या होने को है। एक छोटी-सी पहाड़ी पर राम बैठा है। विचित्र दशा है। न तो उसे उदासी नाम दे सकते हैं, न शोक और न दुःख ही। सांसारिक पुरुषोंवाला हर्ष भी यह नहीं है। उसे जागता नहीं कह सकते, सोया भी नहीं कह सकते, कदाचित् यह उन्मत्त हो। पर यह तो कोई सांसारिक उन्माद नहीं है। क्या रस-भीनी अवस्था है। दूर के वृक्षों में से घड़ियाल और शंख की ध्वनि आने लगी। कदाचित् कोई मंदिर है। आरती हो रही है। वह देखो, सामने ऊँची पहाड़ी की चोटी से दो-तीन फ़ीट की ऊँचाई पर त्रयोदशी का चंद्रमा भी अपना शीतल प्रकाश-मान मुखड़ा लिए आ रहा है। क्या यह आरती में सम्मिलित होने आया है? सम्मिलित क्यों, यह तो अपने दमकते हुए प्रकाशमान मुख की ज्योति बनाकर अपने आपको सदाशिव पर वार रहा है। आरती-रूप बन रहा है। आहा! सारी प्रकृति आरती में सम्मिलित हो गई। चारों ओर से कैसी ध्वनि आने लगी। ऐ चाँद! तू आगे बढ़ जानेवाला कौन है? प्यारे! अकेला मत रह। अपनी हड्डियों और तन-बदन को आग की तरह सुलगाकर तेरी

तरह 'राम' अपने आपको इस आरती में क्यों न वार डालेगा?

....

....

उन दिनों 'राम' की खोज करता-करता एक पत्र पहाड़ों में आ मिला। उसका उत्तर—

सिर्रे-बेसरनामा रा पैदा कुनम्।
आशिक़ाँ रा दर जहाँ शैदा-कुनम्॥

अर्थ—बे-नामो-निशान के भेद को मैं इसलिये प्रकट करता हूँ कि संसार में उसके प्रेमी उस पर वारे जायँ।

एक पत्र मिला जिसमें—

(१) घर आने के विषय में प्रेरणा थी। यह पत्र तत्काल परमधाम को रवाना कर दिया गया, अर्थात् श्रीगंगाजी में प्रवाह दिया गया।

रे रंग नहीं मेरा कतने दा।
जोरी बन्ह के भोरे न घत माए॥
पीड़ाँ पीड़ के जान नपीड़ लीती।
मासा मास नाहीं रत्ती रत्त माए॥
चरखा वेख के रंग कुरंग होया।
सइयाँ विच बाहाँ केढ़ी वत माए॥
मत्ती इश्क़ हुसैन न मत्त सुझै।
मत्ती ढूँढियाँ दी मारी मत्त माए॥

भावार्थ—हे माता! गृहस्थरूपी चर्खा कातने की

मेरी अवस्था नहीं; मुझे बलपूर्वक इस बंधन में मत डाल। गृहस्थ के दुःख दे-देकर तूने मेरे प्राण निचोड़ लिए हैं, अब तो शरीर में माशा-भर मांस और रत्ती-भर खून नहीं है। गृहस्थरूपी चर्खे को देखकर तो मेरा रंग कुरंग हुआ जाता है। अब तू ही बतला कि मैं इन सहेलियों में कैसे बैठूँ। प्रेम में निमग्न व्यक्ति को ऐ हुसैन! कोई (सांसारिक) मति नहीं सूझती; बल्कि उसे मति देनेवालों की अपनी मति मारी जाती है।

(२) लोगों के गिले-उलाहनों का डर दिखाया था। सो भगवन्! अब तो हम हैं और गंगा—

कफ़न बाँधे हुए सर पर किनारे तेरे आ बैठे।
हज़ारों ताने अब हम पर लगा ले जिसका जी चाहे॥

तीरों-ऐसे लांछन यहाँ कुछ असर नहीं कर सकते!

गर न मानद दर दिलम् पैकाँ गुनाहे-तीर नेस्त।
आतिशे-सोज़ाने-मन आहन गुदाज़ उफ़्तादा अस्त॥

अर्थ—यदि मेरे दिल में तीर की नोक नहीं चुभती, तो तीर का दोष नहीं; क्योंकि मेरे हृदय में जो प्रेम की आग भड़क रही है, उसमें यदि लोहा भी पड़े तो गल जाता है।

ता न ख़्वाहद सोख़्त अज़ मा बर न ख़्वाहद दाश्त दस्त।
इश्क़ बस मा रा चो आतिश दर क़फ़ा उफ़्तादा अस्त॥

अर्थ—प्रेमाग्नि मेरी परिच्छिन्न अहंता को जब तक

जला न लेगी, तब तक मेरा पीछा न छोड़ेगी ; क्योंकि प्रेम मुझे अग्नि के समान जलाने के लिये मेरे पीछे पड़ा हुआ है।

तुम्हारा 'राम' तो अब पूरा हो गया, पूरा। न घर का न घाट का (यद्यपि मालिक मलिका लाट का)।

(३) घर के किसी मामले के शोक के विषय में पूछो, तो महान् आश्चर्य है कि तुम्हें सच्चे और असली घर से ग़ाफ़िल रहने का शोक नहीं।

(४) आपने सब लोगों के सांसारिक काम-काज में तन-मन से लगने का संकेत करके बुलाना चाहा है। अच्छा, यदि लोगों के बहुमत पर ही सत्य का निर्णय करना स्वीकार हो, तो बताइए आदम (हज़रत आदम) से लेकर इंदम (अब) तक बहुमत (majority) उन लोगों का है जो वर्तमान जीवन के काम-धंधे को अपने व्यवहार से सच कहनेवाले हैं या उनका जो पृथिवी-तल की धूलि के लगभग प्रत्येक परमाणु में अपनी जिह्वा से बोल रहे हैं कि संसार झूठा है ?

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

अर्थ—जिसका आदि और अंत अव्यक्त है, केवल मध्य-मध्य व्यक्त है, ऐसे के लिए रोना-धोना किस काम का ?

(५) भगवन् ! आप ही की आज्ञा पालन हो रही है, अर्थात् आपसे बहुत शीघ्र मिलने का प्रयत्न हो रहा है। शरीर की दृष्टि से तो वियोग कदापि दूर हो नहीं सकता, चाहे कितने ही निकट हो जायँ, फिर भी जहाँ एक शरीर है वहाँ दूसरा शरीर नहीं आ सकता, अन्यथा एक शरीर दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता (पर ऐसा होता नहीं, अतः शरीर की पृथक्ता अनिवार्य है)। सच्ची बात तो यह है कि वियोग को दूर करने के लिये 'राम' रात-दिन यत्नशील है, द्वैत का नाम और चिह्न नहीं रहने देगा। आपका अंतरात्मा, आपके हृदय में, आपकी आँखों में, वरन् सबके हृदय और सबके जिगर में 'राम' अपना घर देखे बिना चैन नहीं लेगा। आओ, आप भी पाँच नदियों (रक्त, मूत्र, स्वेद, वीर्य और राल) के कीचड़-रूपी शरीर से अपने निज धाम (वास्तविक स्वरूप) की ओर प्रस्थान करो। इस पंचनद से उठकर सच्चे धाम (असली स्वरूप) की पहाड़ियों पर खिंच-खिंचकर पधारिएगा। मिलना अब केंद्र ही पर उचित है, जहाँ पर मिले फिर जुदाई नहीं हो सकती। वृत्त पर छुपन-लुकन (hide and seek) खेलते-खेलते कहाँ तक निभेगी। 'राम' ने तो यदि स्वयं गंगा को अपने चरणों से निकलती हुई न देखा, तो लोग उसका शरीर गंगा के ऊपर बहता हुआ अवश्य देखेंगे।

मैं कुश्तगाने-इश्क़ में सरदार ही रहा।
सर भी जुदा किया, तो सरे-दार ही रहा॥

सीप से मोती निकला हुआ फिर सीप में वापस नहीं आता।

फिर ज़ुलेख़ा न नींद-भर सोई।
जब से यूसफ़ को ख़्वाब में देखा॥

गंगा में पड़ी हुई हड्डियाँ वारिसों को वापस कैसे मिल सकती हैं? हाँ, मिलने की इच्छा रखनेवाले अपनी हड्डियाँ भी गंगा के समर्पण कर दें, तो कदाचित् मेल हो जाय। कुछ कठिन तो नहीं, नित्य-प्राप्त की प्राप्ति है, नित्य-तृप्त की तृप्ति।

इश्क़ का मनसब लिखा जिस दिन मेरी तक़दीर में।
आह की नक़दी मिली सहरा मिला जागीर में॥

कब सबुक़दोश रहे क़ैदिए-ज़िंदाने-वतन।
बूए-गुल फाँदती है बाग़ की दीवारों को॥
ख़ूने-आशिक़ चेह कार मी आयद।
न शवद गर हिनाए-पाए-दोस्त॥

अर्थ—प्रेमी का ख़ून किस काम का यदि वह प्रियतम के पैरों की मेंहदी नहीं बनता, अर्थात् प्रेमी का ख़ून अपने मित्र के पैरों में लगे, इससे बढ़कर उसका और कोई उपयोग नहीं।

शुद फ़िदाए-पाए-जानाँ जाने-मन।
मुसहफे-रूयश बुवद क़ुरआने-मन॥ १॥

दर सरम हरदम सरे-आज़ादगीस्त।
क़ैदे-तन बाशदऽकनूँ ज़िंदाने-मन ॥ २ ॥
सिजदए-मस्ताना अम बाशद नमाज़।
दर्दे-दिल बा ओ बुवद ईमाने-मन ॥ ३ ॥

अर्थ—(१) (क्योंकि) मेरी जान प्यारे के पैरों पर फ़िदा (निछावर) हो गई, इसलिये उसके चेहरे की किताब (उसके मुखमंडल का दर्शन) मेरा क़ुरान है।

(२) मेरे मस्तिष्क में हर समय स्वतंत्रता का ख़याल है, शरीर की क़ैद अब मुझे जेलघर मालूम होती है।

(३) मेरी नमाज़ मेरा मस्ताना सिजदा है, और उसके साथ दिल का दर्द मेरा ईमान है, अर्थात् उसके प्रेम में हृदय की पीड़ा मेरा ईमान है।

ज़िकरे-ख़ुदा व फ़िक्रे-नान् मीशवद ईं नमीशवद।
इश्क़े-सनम व बीमे-जाँ मीशवद ईं नमीशवद ॥

अर्थ—ऐ प्यारे ! मेरे से ईश्वर का भजन तो हो, पर उदर-भरण की चिंता कभी न हो। इसी तरह मुझसे प्यारे का प्रेम तो हो, पर उसमें प्राणों का भय कभी न हो।

मे रसी दर काबा ज़ाहिद-ज़ूद अज़ राहे-तरी।
ज़ोहदे-ख़ुश्को सौमे तो बे दीदए-गिरियाँ अबस ॥

अर्थ—ऐ ज़ाहिद (तपस्वी) ! तू जल के मार्ग से काबे तक शीघ्र पहुँचेगा, रोज़ा रखने और शुष्क तपस्या से कुछ न होगा, जब तक कि प्रेम के आँसुओं से तेरे नेत्र पूर्ण न हों।

दर दबिस्ताने-मुहब्बत अबजद अज़ ख़ुद रफ़्तगी-अस्त।
मानिए-बिस्मिल्ला आँ फ़हमद कसे को बिस्मिल अस्त ॥ १ ॥
रह नवर्दाने-मुहब्बत रा पयाम अज़ मा रसाँ।
काँदरीं रह यक क़दम अज़ ख़ुद गुज़श्तन मंज़िल अस्त ॥ २ ॥

अर्थ—(१) प्रेम की पाठशाला में अबजद (क, ख) क्या है ? आपे से बाहर अर्थात् बेख़ुद हो जाना। बिस्मिल्ला का अर्थ तो वह जानता है, जो पहले स्वयं बिस्मिल (घायल) हो चुका हो।

(२) प्रेम के मार्ग पर चलनेवालों को हमारी ओर से संदेशा पहुँचा दो कि इस मार्ग में अपने से अर्थात् अहंता से एक क़दम दूर होना ही मंज़िल है।

नहीं कुछ ग़र्ज़ दुनिया की न मतलब लाज से मेरा।
जो चाहो सो कहो कोई बसा अब तो वही मन में ॥

एक काले साँप का पैरों-तले आना। व्यालभूषण 'राम' प्यार करने को हाथ बढ़ाता है।

मेरे प्यारे का यह भी प्यारा है।
मेरी आँखों का यह भी तारा है॥

(साँप का दौड़ जाना)

× × × × ×

अपरोक्ष (अंतर्दृष्टि)

घना जंगल, पानी का किनारा, जंगल का उपवन खिला हुआ, एकांत, कुछ उपनिषदें समाप्त।

× × × ×

ऐ वाक्-इन्द्रिय ! क्या तुझमें है शक्ति उस आनंद के वर्णन करने की ? धन्य हूँ मैं ! कृतकृत्य हूँ मैं !

जिस प्यारे के घूँघट में से कभी हाथ, कभी पैर, कभी आँख, कभी कान कठिनता के साथ दिखाई देता था, दिल खोलकर उस दुलारे का आलिंगन प्राप्त हुआ। हम नंगे; वह नंगा; छाती छाती पर है। ऐ हाड़-चाम के जिगर और कलेजे ! तुम बीच में से उठ जाओ। भेद-भाव ! हट। फ़ासले ! भाग। दूरी ! दूर हो। हम यार, यार हम। यह शादी (आनंद) है कि शादी-मर्ग (आनंदमयी मृत्यु अथवा आनंदनिमग्न मौत)। आँसू क्यों छमाछम बरस रहे हैं ?

....

क्या यह विवाह-काल की झड़ी है, अथवा मन के मर जाने का मातम (शोक) ? संस्कारों का अंतिम संस्कार हो गया। इच्छाओं पर मरी पड़ी। दुःख दरिद्र उजाला आते ही अँधेरे की तरह उड़ गए। भले-बुरे कर्मों का बेड़ा डूब गया।

बड़ा शोर सुनते थे पहलू में दिल का।
जो चीरा तो इक क़तरए-ख़ूँ न निकला॥

शुक्र है, आई ख़बर यार के आ जाने की।
अब कोई राह नहीं है मेरे तरसाने की॥

आप ही यार हूँ मैं ख़त-ओ-किताबत कैसी।
मस्ती-ए मुल *हूँ मैं हाजत नहीं मयख़ाने की॥

वह तुरिया जो उन्क़ा (पक्षी) की भाँति तिरोहित थी, हम स्वयं ही निकले ; जिसको अव्यक्त अर्थात् अन्य पुरुष (third person) की तरह स्मरण करते थे, वह उत्तम पुरुष अर्थात् मैं ही निकला। अन्य पुरुष अब अंतर्धान हो गया। ॐ हम, हम ॐ। हम न तुम, दफ़्तर गुम। ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

× × × × ×

आँसुओं की झड़ी है कि अभेदता का आनंद दिलाने-वाली वर्षा-ऋतु? ऐ सिर ! तेरा होना भी आज सुफल है। आँखो ! तुम भी धन्य हो गई। कानो ! तुम्हारा पुरुषार्थ भी पूरा हुआ। यह आनंदमय मिलाप मुबारक हो, मुबारक हो, मुबारक हो। मुबारक का शब्द भी आज कृतार्थ हो गया।

शाद बाश ए अशअशे-सौदाए-मा।
ऐ दवाए-जुम्ला इल्लतहाय मा॥
ऐ दवाए-नख़वतो-नामूसे-मा।
ऐ तो अफ़लातूनो जालीनूसे-मा॥

अर्थ—ऐ मेरे पगलेपन के आह्लाद ! ऐ मेरे समस्त

---

* आनंदस्वरूप।

रोगों की ओषधि ! ऐ मेरे अभिमान और मान की ओषधि ! ऐ मेरे लिये जालीनूस और अफ़लातून ! तू आनंदवान् हो।

अथवा ऐ मेरे प्रेमोन्माद के आह्लाद ! तू आनंदवान् हो। तू ही तो मेरे समस्त रोगों की ओषधि है। तू ही मेरे अभिमान और मान की ओषधि है, तू ही मेरे लिये अफ़लातून और जालीनूस है।

अहंकार का गुड्डा और बुद्धि की गुड़िया जल गए। अरे नेत्रो ! तुम्हारा यह काला बादल बरसाना धन्य हो। यह मस्ती-भरे नैनों का सावन धन्य (मुबारक) है।

यार असाडे ने अँगिया सिलाया।
असाँ खोल तनी गल ला लिया॥
असाँ घुट जानी गल ला लिया।
मस्त दिहाड़े सावन दे आए।
सावन यार मिलावन दे आए॥

भाग ले ओ यार ! भाग। कहाँ भागेगा ? आकाश पर छुपेगा ? मैं वहाँ मौजूद। कैलास पर नट जा, मैं वहाँ उपस्थित। समुद्र में जा लेट, तुझसे पहले पहुँचा हूँ। अग्नि में घुस जा, मेरा ही मुख है। समस्त शरीरों में मैं, समस्त नाम और रूपों में मैं, सारे शरीर व देह तथा नाम-रूप सब स्वयं मैं। कौन बोले ? कौन कहे ? गूँगे का गुड़। अहा हा हा हा हा ! मैं कैसा सुंदर हूँ ? मेरी सोहनी सूरत, मेरी मोहनी

मूरत, मेरी झलक, मेरी डलक, मेरा सौंदर्य, मेरा लावण्य ! इसको मेरी आँख के सिवा कोई आँख देखने की ताव (ताक़त) नहीं ला सकती ।

मैं अपनी महिमा में मस्त पड़ा हूँ । पर हाय ! मेरे सौंदर्य का कोई ख़रीदार नहीं, मेरे यौवन का ग्राहक कोई नहीं । इस अनमोल हीरे को कौन ख़रीदे ?

भुल घत सी आन के कौन केहड़ा ।
नहीं दिसदा दूसरा होर कोई ॥

मैं ख़ुद ही आशिक़ हूँ, ख़ुद ही माशूक़ । आशिक़ हूँ कि माशूक़ हूँ ? मैं तो इश्क़ हूँ ।

× × × × ×

बाहर जब दृष्टि जाती है, तो हर पत्ता और फूल 'तू ही' 'तू ही' के स्वर से स्वागत करता है । भीतर से आनंद के बादल अपनी गरज में सब कुछ निमग्न कर रहे हैं । धीरे-धीरे अंग ढीले (गति-हीन) । देश-काल कहाँ चले गए ? फ़ासला, दूरी और भीतर-बाहर कैसे ? अब आगे वर्णन कौन करे ?

× × × × ×

कई दिन इसी दशा में बीत गए, किंतु रात-दिन दिन-रात किसके ?

जित वल देखाँ तूँ ही तूँ । ताना पेटा रूँ ।

× × × × ×

तीसरे पहर का समय होगा। एक काठ के झूले पर ठीक बीच में राम नग्न बैठा है, और मेघ के स्वरूप में मेघनाद की भाँति ऊपर से गरज रहा है: बिजली बनकर अपने तेज की चमक से जल और पाषाण पर दमक रहा है: पानी बनकर अपनी बौछार से समस्त प्राणियों को अपने-अपने घोंसलों में घुमेड़ रहा है। आकाश, धरती और पहाड़ कोई दृष्टिगोचर नहीं होता। जल ही जल है। मानो गंगा भी धरती से उठकर आकाश तक जा चढ़ी है, जिससे अपने घर 'राम' में आराम करे। इन सबको तो घर मिल गए, अब घरहीन राम कहाँ विश्राम करे!

न निशेमने कि कुनम मकाँ, न परे कि बर परम अज़ मियाँ।

अर्थ—न घर है जहाँ मैं विश्राम करूँ, और न पर है जिससे मैं अपने भीतर से बाहर आऊँ।

राम जलशायी नारायण की भाँति उस जल में व्याप रहा है, बादलों पर चल रहा है, समुद्र को रम्य बना रहा है। कभी वर्षा आती है, कभी धूप; किंतु राम के यहाँ न कुछ चढ़ता है, न उतरता।

जद पाया भेद कलंदर दा।
राह खोजिया अपने अंदर दा॥
सुखवासी हो उस मंदिर दा॥
जित्थे कदे न चढ़दी लहँदी है।
मुँह आई बात न रहँदी है॥

दुनिया नहीं, पार्वती है, भंग-बूटी हर समय घोट रही है। शिव की आँख खुली, चट प्याला हाज़िर। ज़रा होश आया, नशे में बहाया।

आ मेरे भँगड़ा ! तू आ, भंग पी जा।
आ मेरे भँगड़ा ! निशंग भंग पी जा॥
भर-भर देनियाँ मैं भंग दे प्याले।
निशंग भंग पी जा, निहंग भंग पी जा॥

भंग घोटनेवाली प्रकृति नहीं, यह तो स्वयं भंग और मदिरा है। भंग और मदिरा नहीं, यह तो भंग और मदिरा का मद और मस्ती, यह तो स्वयं मैं हूँ।

न है कुछ तमन्ना न कुछ जुस्तजू है।
कि वहदत में साक़ी न साग़र न बू है॥
मिलीं दिल को आँखें जभी मारफ़त की।
जिधर देखता हूँ, सनम रू बरू है॥
गुलिस्ताँ में जाकर हर इक गुल को देखा।
तो मेरी ही रंगत व मेरी ही बू है॥
मिरा तेरा उट्ठा, हुए एक ही हम।
रही कुछ न हसरत न कुछ आरज़ू है॥

भर दे नी कटोरा भंग दा।
तेरा केड़ी गल्लों जिया संग दा ?

× × × × ×

एक अनूठा स्वप्न

गोलचंद (जिसको सर्वसाधारण कृष्ण परमात्मा कहते

हैं) राम से छुपन-लुकन (hide and seek) खेलता है। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हारकर—

राम—"अरे कहाँ छुप रहा ? न बाहर है, न भीतर है। अंतर्धान कहाँ हो गया ? बड़ा अंधेर है। हाय हाय !........

"हाँ ! हाँ !! हाँ !!! अब लगा पता। किवाड़ की आड़ में घुसे खड़े थे आप। बाहर निकल गोलू ! अब जाता कहाँ है ? कान खींचकर चपत जड़ा—मुँह फेर दूँगा !

...."

इतने में झट आँख खुल गई। अपना कान दर्द कर रहा था, और अपने ही गाल पर थप्पड़ मारता हुआ हाथ था। इस स्वप्न का रहस्य जो बताए वही यूसफ़।

× × × × ×

एक पर्चा कुछ प्रश्न उठाए हुए इस आनंद-गंगा में स्नान करने आ गया। प्रश्नों के उत्तर—

१—क्या राम अकेला है ?

उत्तर—कोई विद्यार्थी साथ नहीं, नौकर पास नहीं। बस्ती बहुत दूर है, आदमी का नाम काफ़ूर है। तारों-भरी रात आधी इधर आधी उधर है। बिलकुल सुनसान है, बियाबान है, सन्नाटे की अवस्था है। पर क्या हम अकेले हैं ? अकेली हमारी बला। अभी वर्षा बाँदी स्नान कराकर गई है, हवा लौंडी चारों ओर दौड़ रही है, सामने गंगा

अपनी गंग-गंग-गंग की रागिनी अलाप रही है, सैकड़ों सेवक चारों ओर की झाड़ियों में आराम कर रहे हैं। लो, यह शब्द किधर से आया था? कोई वन-पशु झाड़ियों में से बोल उठा "उपस्थित"। हम अकेले क्यों? पर हाँ, हम अकेले ही हैं। यह सेवक-वेवक और नहीं, हम ही हैं। सघन वृक्ष नहीं, हम ही हैं। हवा नहीं, हम हैं। गंगा कहाँ? हम हैं। तारे-वारे और चाँद नहीं, हम हैं। खुदा नहीं, हम। माशूक़ और मिलाप कैसा? प्रियतम और प्रणय कैसा? हम ही हम। अरे! एकांत का खयाल भी हमसे भाग गया, अकेले का शब्द भी अकेला छोड़ गया।

तनहास्तम तनहास्तम चिः बुलअजब तनहास्तम।
जुज़ मन न बाशद हेच शै यकतास्तम तनहास्तम॥

अर्थ—मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, कैसे आश्चर्य की बात है कि मैं अकेला हूँ। मेरे सिवाय कोई वस्तु नहीं है, मैं अद्वितीय हूँ, अकेला हूँ।

ईं नारा ओ ईं नाराज़नो नीज़ ईं स्वहरा।
अशजारो-कुहिस्तानो-शबो-रोज़ नगारा॥
बाद अंजमो-गंगाजलो-अबरो-महेतावाँ।
माशूक़ो-खुदा खास विसालो दमे-हिजराँ॥
कागज़ क़लम चश्मतो-मज़मूनो-तो खुद जाँ।
'राम' अस्त हमः, नेस्त दिगर, ओस्त, हमः आँ॥

अर्थ—यह गरज, यह गरजनेवाला, और साथ इसके

यह वन, वृक्ष, पर्वत, दिन-रात, भाँति-भाँति के रूप, पवन, तारे, गंगा-जल, मेघ व प्रकाशमान चंद्रमा, माशूक़ (प्रिय) व स्वयं परमात्मा, मिलाप व वियोग, काग़ज़, लेखनी, नेत्र, विषय और तू स्वयं यह सब 'राम' है, इतर कुछ नहीं है, वही है, सब वही है।

२—क्या राम बेकार है ?

उत्तर—मन का मानसरोवर अमृत से लबालब हो रहा है। आनंद की नदी हृदय में से बह रही है। अंतःकरण कृतकृत्य और गद्गद है। विष्णु के भीतर सतोगुण इतना भरा कि समा न सका। उस सतोगुण के स्रोत से पैरों की राह सतोगुण की गंगा जारी हो गई। ठीक इस भाँति परम आनंद से भरपूर राम भगवान्, जिसका ब्रह्मानंद समेटे से सिमटता नहीं, पूर्ण आनंद का स्रोत बनकर आनंद, आनंद की नदी संसार को भेज रहा है। प्रफुल्लता और विश्रांति की प्रभात पवन प्रेषित कर रहा है। कौन कहता है, वह बेकार बैठा है ?

अलायाईह-हुस्साक़ी मये बाक़ी बचश अज़ मा।
कि रोज़ अफ़ज़ूँ शवद इशक़त कुनद आसाँत मुश्किलहा॥ १॥
व हुस्ने-मौज ख़ेज़े-मन कि शुद तुर्फ़ा नक़ाबे-मन।
ज़ मौजे-ख़ूबी ए बहरम चेः शोर उफ़्ताद दर दिलहा॥ २॥
शबे-महताबो-बादे-ख़ुश लबे-दरिया सनम दर बर।
चसाँ दानंद हाले-मा ग़रीक़ाने-तमव्वजहा॥ ३॥

मरा दर मंज़िले-जानाँ हमाँ ऐशो हमा शादी।
जरस बेहूदा मा नालद कुजा बंदेम महमिलहा ॥ ४ ॥

हमा कारम ज़िश्रे कामी व खुद कामी कशीद आखिर।
निहाँ चूँ मानद ईं राज़े कि बूदा शमए-महफ़िल हा ॥ ५ ॥

हज़ूरी चेः हमी ख़्वाही अज़ो ग़ायब नई ऐ जाँ।
तुई उक़बा, तुई मौला, तुई दुनिया व माफ़ीहा ॥ ६ ॥

व सिदक़े-दिल अनलहक़ गो, चुनीनत् राम फ़रमायद।
कि दर यक दम ज़दन गर्दद बसालो-कितए-मंज़लहा ॥ ७ ॥

अर्थ—(१) सावधान, ऐ सुरा पिलानेवाले ! अमरमद हमसे चख जिसमें तेरा प्रेम प्रतिदिन उन्नति करता रहे और तेरी कठिनाइयों को सरल कर दे (यहाँ ईश्वर-प्रेम में निमग्न पुरुष अपने गुरु से कहता है कि हमसे प्रेम-बूँद चख जिसमें हृदय की सब ग्रंथियाँ खुल जायँ और सच्चा रहस्य प्रकट हो जाय)।

(२) मेरी लहराती हुई सुंदरता के कारण, जो मेरा एक विचित्र परदा बन गई है, और मेरे प्रेम-सागर की सुंदरता की लहर से दिलों में कितना शोर उपस्थित हो गया है, अर्थात् कितने दिल व्याकुल हो गए हैं !

(३) जब उजेली रात, मन लुभानेवाली वायु, नदी का तट और प्यारा पहलू में हो, तो हमारी ऐसी आनंद-दशा को ये लहरों में डूबे हुए लोग (संसार की

कामनाओं और प्रलोभनों में व्यथित लोग) क्या जानें ?

(४) मुझको प्यारे की मंज़िल में अत्यंत सुख और अत्यंत प्रसन्नता है। घंटा व्यर्थ कोलाहल करता है, हम चलने को ऊँट कहाँ बाँधें ? अर्थात् हमको तो यहाँ ही प्यारे का मिलाप हो गया, इसमें हमें अत्यंत आनंद है। अब नाना उपदेश का कोलाहल व्यर्थ है, हम यहाँ से टल नहीं सकते। तात्पर्य यह कि अब श्वास का शब्द व्यर्थ है, हमको जाना-आना शेष नहीं रहा।

(५) मेरे सब काम, जो अपूर्ण थे, अब पूर्ण हो गए। यह भेद क्योंकर छुपा रह सकता है, क्योंकि यह अब महफ़िलों की शमा (सभाओं का दीपक) हो गया है, अर्थात् मेरी सर्व कामनाएँ प्यारे के मिलने से पूरी हो गई हैं, यह बात छुपी नहीं रह सकती।

(६) ऐ प्यारे ! तू प्रभुत्व क्या चाहता है ? तू उससे दूर नहीं (क्योंकि वह हरएक के भीतर मौजूद है), तू ही आख़िरत (अंतिम) है, तू ही मौला (प्रभु) है, तू ही दुनिया (लोक) है, तू ही माफ़ीहा (परलोक) है।

(७) राम तुझे यह आज्ञा देता है कि सच्चे मन से अनलहक़ (अहं ब्रह्मास्मि) बोल, क्योंकि थोड़ी ही देर में "अहं ब्रह्मास्मि" की एक श्वास लेने से प्यारे का मिलाप हो जायगा और कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी।

No sin, no grief, no pain,
Safe in my happy Self,
My fears are fled. my doubts are slain
My day of triumph come.

मैं अपने आनंदस्वरूप आत्मा में सुरक्षित हूँ, वहाँ न पाप है, न दुःख है, न पीड़ा है। मेरा भय भाग गया, मेरे संशय नाश हो गए। और मेरी विजयप्राप्ति का दिन आ गया।

O Grave ! where is thy victory ?
O Death ! where is thy sting ?

ओ चिता ! (अब बता) कहाँ है तेरी जय ?
ओ मृत्यु ! (अब बता) कहाँ है तेरी वेदना ?

My Self to me my kingdom is
Such perfect joy therein I find
No worldly wave my mind can toss.
To me no gain, to me no loss.
I fear no foe, I scorn no friend,
I dread no death, I fear no end.

मुझे मेरा आत्मा मेरा साम्राज्य है, इस प्रकार मैं उसमें पूर्ण आनंद पाता हूँ। कोई सांसारिक तरंग मेरे चित्त को विचलित नहीं कर सकती। मेरे निकट न लाभ है, न हानि (दोनों समान हैं)। मुझे किसी शत्रु का त्रास नहीं, किसी मित्र से घृणा नहीं। न मुझे नाश का डर है, न मृत्यु का भय।

मैंने कहा कि रंजो-ग़म मिटते हैं किस तरह, कहो।
सीना लगा के सीने से मह ने बता दिया कि यों॥

राम बेकार कभी नहीं, संसार-भर में निकम्मे काम 'राम' ही करता है।

मिहर सरगश्ता कि आफ़ताब कुजास्त।
आब हर सू दवाँ कि आब कुजास्त॥ १॥

ख़्वाब दोशम ज़ दीदा में पुरसीद।
कि ऐ जहाँबीं ! बिगो कि ख़्वाब कुजास्त॥ २॥

मस्त पुरसाँ कि मस्त रा दीदी?
या रब ! आँ बेख़ुदी-ख़राब कुजास्त॥ ३॥

बादा दर मयकदा हमे गरदद।
गिरदे-मजलिस कि गो शराब कुजास्त॥ ४॥

यारे-ख़ुद बेनक़ाब मे गरदद।
कि मर आँ यारे-बेनक़ाब कुजास्त॥ ५॥

अर्थ—(१) सूर्य व्याकुल हो रहा है कि सूर्य कहाँ है, पानी हर तरफ़ भाग रहा है कि पानी कहाँ है?

(२) कल रात मेरी नींद मेरी आँख से पूछती थी कि ऐ जगत् को देखनेवाली आँख ! तू बता कि नींद कहाँ है?

(३) मस्त लोग पूछ रहे हैं कि तुमने मस्त को देखा? हे ईश्वर ! वह बेख़ुद और ख़राब (बदमस्त) कहाँ है?

(४) मदिरा मद्यालय में सभा के चारों ओर दौड़ती हुई पूछती फिरती है कि मदिरा कहाँ है?

(५) अपना यार तो बेपरदा फिरता है, किंतु फिर पूछता है कि वह बेपरदा कहाँ है?

चूँ कार मरदुम मी कुनंद, अज़ दस्तो पा हरकत कुनंद।
बेकार मांदम जाय-हरकत हम मनम हर जा स्तम॥ १॥
अज़ ख़ुद चरा बेरूँ जहम, गो मन कुजा हरकत कुनम।
अज़ बहर चे कारे-कुनम, मन रूहे-मतलबहा स्तम॥ २॥

अर्थ—(१) लोग जब कोई काम करते हैं, तो हाथ और पैर चलाते हैं, मैं हाथ-पैर चलाने से बेकार हूँ, क्योंकि हर जगह मैं ख़ुद मौजूद हूँ; अर्थात् मनुष्य जब काम करता है, तो चेष्टा करता है, आता-जाता है, किंतु मैं कहीं आता-जाता नहीं, इसलिये कि हर जगह मौजूद हूँ।

(२) मैं अपने से बाहर क्यों कूदूँ और क्यों चेष्टा करूँ? किसलिये कोई काम करूँ? क्योंकि समस्त आशाओं की जान तो मैं हूँ।

३—क्या यह अहंकार है?

उत्तर—घमंडी और अहंकारी कौन है? जो गाढ़ अविद्या में फँसा हो।

आँ कस कि नदानद व नदानद कि नदानद।

अर्थ—वह मनुष्य जो नहीं जानता, और इस बात को भी नहीं जानता है कि मैं नहीं जानता हूँ।

अहंकारी वह है, जो पद से, कुल से, रुपया से, विद्या से

या चमड़े की रंगत से या दर्जे (पदवी) से फटी-पुरानी बड़ाई की ख़िलअ़त उधार माँगकर पहन रहा हो, और उस पर मुग्ध हो। अर्थात् हो तो वास्तव में दूसरों से भीख माँगने-वाला, पर इस अपनी वास्तविक दरिद्रता को सम्मान का कारण ख़याल कर बैठा हो। फ़रऊन और नमरूद ने ख़ुदाई दावा किया था। नास्तिकता और भूल के होते हुए भी वह धन्य थे कि एक वेर महावाक्य "अनलहक़" (अहं ब्रह्मास्मि) तो बोल उठे। उनकी नास्तिकता और भूल केवल यह थी कि उन्होंने अपने पवित्र स्वरूप को लांछन लगाया, अपने आपको परिच्छिन्न बनाया, अपने आपको "वहदहू ला शरीक" (एकमेवाद्वितीयं) न जाना, सच्चे ध्येय को न पहचाना; अपना साझीदार एक दूसरा ईश्वर कल्पना करके उसकी नक़ल उतारना या बराबरी करना चाहा, सच्ची बड़ाई को छोड़कर बनावटी घमंड स्वीकार किया, शरीरत्व में फँसे, पैर के जूते को सिर पर चढ़ाया, अपने पैरों आप कुल्हाड़ा मारा और अपने आप ईश्वर के साथ दूसरे को सम्मिलित करनेवाले और सन्मार्ग से फिरनेवाले बने। किंतु 'राम' जो स्वयं सुमनों का श्वास, अरुण कपोलवालों में प्राण का श्वास फूकनेवाला, और मंसूर को सरदार तथा विजयी बनानेवाला है, उस 'राम' को क्या पड़ी है कि अपनी निजी महिमा तथा तेज और प्रताप को छोड़कर भिक्षावृत्ति अर्थात् घमंड और अहंकार स्वीकार करे।

नमरूद शुद मरदूद चूँ बूदश निगह महदूद चूँ।
मारा तकब्बर के सज़द चूँ किबरिया मौलास्तम ॥

अर्थ—नमरूद की दृष्टि जब परिच्छिन्न हुई, तो वह मरदूद हो गया। हमें भला यह घमंड कैसे उचित है, जब कि, हम स्वयं महान्, सर्वशिरोमणि और वस्तुतः ईश्वर हैं !

× × × × ×

४—यह पागलपन न हो ?

उत्तर—प्रायः बुद्धिमानों के द्वारा यह शिकायत सुनने में आई कि 'राम' को सन्निपात की बीमारी हो गई है, विक्षिप्तता (पागलपना) का रोग हो चला है । अच्छा सुनिए, वर्तमान काल के तर्क-शास्त्रियों का अग्रगण्य "जे० एस्० मिल" लिखता है कि दो बातों में एक को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने का अधिकार केवल उस व्यक्ति को होता है, जो दोनों विषयों से भली भाँति परिचित हो। केवल एक ही ओर का ज्ञान रखनेवाला दोनों की तुलना करने की योग्यता नहीं रखता। ऐ मिल, डैविड ह्यूम (David Hume) के अनुयायियो ! अर्थात् बुद्धि और तर्क-संपन्न व्यक्तियो ! क्या तुमने कभी इस दीवानेपन के आनंद का स्वाद लिया ? इस पागलपन का अनुभव किया ? इस सौदाईपन का मज़ा लिया ?—कभी नहीं।

दिल के जाने की ख़बर आक़िल की क्या जाने बला।
किस तरह जाता है दिल बेदिल से पूछा चाहिए ॥

तो फिर तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि इस सदाशुभ पागलपन पर एक अक्षर का भी प्रयोग करो। ऐ आनंद (ecstasy-बेख़ुदी) पर आसक्त लोगो! जाओ, मदिरा तुम्हें स्मरण कर रही है, संगीत-श्रवण बुला रहा है, सुस्वादु भोजन तैयार रक्खे हैं, सुंदरी रमणियाँ प्रतीक्षा में खड़ी हैं, जाओ; पर सुनो तो सही, सुंदरियों में, संगीत-श्रवण में, शराब और कबाब में, मद्य-मांस में, या अन्य विषयों में वह क्या है जो तुम्हें रात-दिन अपना दास बनाए रखता है? प्यारो! वह 'राम' के पागलपन की ज़रा-सी झलक है, और बस। तुम्हें लज्जा नहीं आती, कीकर के भूत (मदिरा) से कृत्रिम उन्माद (नक़ली मस्ती) उधार माँगते हो? क्षण भर के आनंद के लिये रक्त और हाड़-चाम के वारे-न्यारे जाते हो, स्त्रियों के निकम्मे होते हो, और भाँति-भाँति के विषयों में फँस जाते हो! आओ, जगत् के सम्राट् को जो मस्ती नसीब नहीं है, 'राम' उसे प्रदान करता है।

'राम' दीवाना है व लेकिन बात कहता है ठिकाने की।

जामे-शराब वहदत वाला। पी-पी हरदम रहो मतवाला॥
पी मैं वारी लाके डीक। अल्ला शाहरग थीं नज़दीक॥
सुन सुन सुन लै 'राम' दोहाई। वे अंता! क्यों अंत है चाई॥
ज़ात पाक नूँ ला न लीक। अल्ला शाहरग थीं नज़दीक॥

रो-रोकर रुपया को इकट्ठा करना और उससे जुदा होते

समय फिर रोना, यह रुपया के पीछे पागल बनना अनुचित है। अपने स्वरूप के धन को सँभालो। बात-बात में "लोग क्या कहेंगे", "हाय! अमुक व्यक्ति क्या कहेगा?" इस भय से सूखते जाना, औरों की आँखों से हर बात का अंदाज़ा लगाना, केवल जनता की सम्मति से सोचना, अपनी निजी आँख और निजी समझ को खोकर मूर्ख और पागल बनना अनुचित है। मिटाओ द्वैत का नाम और चिह्न, और अपने आपको सँभालो। क्लाक के पेंडूलम के अनुसार दुःख और सुख में कंपित और थरथराते रहना हताश कर देनेवाला पागलपन है। इसे जाने दो। अपने अकाल स्वरूप में स्थिति होने दो।

हाँ, 'राम' दीवाना है, अर्थात् बुद्धि से परे उसका निवास है। व्यर्थ जगत् की रचना करना और फिर उसी में स्वयं लुप्त हो जाना, ऐसी चेष्टाएँ दीवानों का काम नहीं तो और किसका है?

दीवानाअम दीवानाअम बा अक़्लो-हुश बेगानाअम।
बेहूदा आलम मी कुनम ईं करदमो मन ख़ास्तम॥

अर्थ—मैं पागल हूँ, मैं पागल हूँ, बुद्धि और होश से परे हूँ। व्यर्थ संसार रचता हूँ, और इसे रचकर इससे पृथक् रहता हूँ।

सौदाई नहीं, सौ+दाई=सौ दाँव जाननेवाला है;

पागल नहीं, पा+गल=पानेवाला रहस्य का है।

मीरा 'राम' की दीवानी, दुनिया बावरी कहे।
होश़ो-ख़िरद से हमको सरोकार कुछ नहीं।
इन दोनों साहबों को हमारा सलाम है॥

गर तबीबे रा रसद ज़ीं साँ जुनूँ।
दफ़्तरे-तिब रा फ़रोशोयद ब ख़ूँ॥

अर्थ—यदि वैद्य को इस पागलपन का भेद मिल जाय, तो अपने वैद्य के दफ़्तर को अपने रुधिर से धो डाले।

जुनूने कू कि अज़ क़ैदे-ख़िरद बेरूँ कशम पा रा।
कुनम ज़ंजीरे-पाए ख़्वेश्तन दामाने-स्वहरा रा॥

अर्थ—यह वह पागलपन है कि जिससे मैं अपने पैरों को बुद्धि के बंधन से छुड़ा लेता हूँ और निर्जन वन के आँचल को अपने पैरों की ज़ंजीर बना लेता हूँ, अर्थात् सदैव वन में ही निवास करता हूँ।

आ दे मुक़ाम उत्ते आ, मेरे प्यारिया! (टेक)
पा गल्ल असली पागल हो जा,
मस्त अलस्त सफ़ा, मेरे प्यारिया!
ज़ाहिर सूरत दौला-मौला,
बातिन ख़ास ख़ुदा, मेरे प्यारिया!
पुस्तक-पोथी सुट गंगा विच,
दद-दम अलख जगा, मेरे प्यारिया!
सेहली-टोपी लाह दे सिर तों,
रूँड मुँड हो जा, मेरे प्यारिया!

इज़्ज़त फोकी फूक दुनी दी,
अक धतूरा खा, मेरे प्यारिया !
झगड़े झेड़े फ़ैसल तेरे,
लेखा पाक चुका, मेरे प्यारिया !
परदे फाड़ दुई दे सारे,
इक्को इक लखा, मेरे प्यारिया !
आपे भुल भुलावें आपे,
आपे बने खुदा, मेरे प्यारिया !
मुश्कल विच तेरा प्यारा लेटे,
खोल तनी गल्ल ला, मेरे प्यारिया !

दिल ब इस्तदलाल वस्तम माँदम अज़ मक़सूद दूर ।
नर्दबाँ कर्दम तसव्वर राहे-नाहमवार रा ॥

अर्थ—युक्ति और तर्क में जब मैंने अपने मन को बाँध दिया तो मैं लक्ष्य से दूर हो गया हूँ। इसलिये ध्यान को मैंने इस तर्करूपी टेढ़े मार्ग के काटने की सीढ़ी बना ली।

अक़ल नक़ल नहीं चाहिए हमको, पागलपन दरकार ।
हमें इक पागलपन दरकार ॥
छोड़ पवाड़े झगड़े सारे, ग़ोता वहदत अंदर मार ।
हमें इक पागलपन दरकार ॥
लाख उपाय कर ले प्यारे, कदी न मिलसी यार ।
हमें इक पागलपन दरकार ॥
बेखुद हो जा देख तमाशा, आपे खुद दिलदार ।
हमें इक पागलपन दरकार ॥

स्वतंत्रता (मुक्ति)

स्वतंत्रते! स्वतंत्रते! स्वतंत्रते! हाय लिबर्टी! हाय फ्रीडम! बच्चों को सप्ताह के दिन गिनना कौन सिखाता है?—छुट्टी का दिन, रविवार। अध्यापक लोग विद्यार्थियों को छुट्टी देने से प्रायः इन्कार किया करते हैं, पर छुट्टी का स्वाद कोई उनके जी से पूछे। दफ़्तरवालों के पीले मुखों पर किस चीज़ के नाम से चमक आ जाती है?—छुट्टी। संसार के इतिहास में बड़े-बड़े विप्लव एवं युद्धकलह किस बात के लिये हुए?—स्वतंत्रता। करोड़ों प्राणियों की रक्त-नदी किस बात पर बही?—स्वतंत्रता। सामान्यतः सारे धर्म और विशेषतः हिंदू-शास्त्र किस दीप पर अपना तन, मन, धन पतंग बनाया चाहते हैं? संन्यासी अपना सर्वस्व किस पर न्यौछावर करता है?—मुक्ति (salvation) जिसका अभिप्राय है—'स्वतंत्रता'! ....

वल वे आज़ादी! ख़ुशी की रूह[1] उम्मेदों की जाँ।
बुलबुला साँ दम से तेरे पेच खाता है जहाँ॥ १॥
मुल्क दुनिया के तेरे बस इक करश्मा[2] पर लड़े।
ख़ून के दरिया बहाए नाम पर तेरे मरे॥ २॥
हाय मुक्ती! रस्तगारी[3]! हाय आज़ादी नजात[4]।
मक़्सदे-जुमला[5] मज़ाहब है फ़क़त तेरी ही ज़ात॥ ३॥

---

१. प्राण, स्वरूप। २. नख़रा, खेल, जादू। ३. छुटकारा। ४. मुक्ति। ५. सब मतों वा धर्मों का लक्ष्य।

उँगलियों पर बचे गिनते रहते हैं हफ़्ते[1] के रोज़।
कितने दिन को आयगा यकशंबा[2] आज़ादी[3]-फ़रोज़ ॥ ४ ॥
रम बरांडों के मुक़ैयद[4] सची आज़ादी से दूर।
हो गए नश्शे पै लट्टू बहरे-आज़ादी[5] सुरूर ॥ ५ ॥
साहबो ! यह नींद भी मीठी न लगती इस क़दर।
क़ैदे-तन[6] से दो घड़ी देती न आज़ादी अगर ॥ ६ ॥
क़ैद में फँसकर तड़पता मुर्ग़ है हैरान हो।
काश[7] ! आज़ादी मिले तन को नहीं तो जान को ॥ ७ ॥
लम्हा[8] जो लज़्ज़त मज़े का था वह आज़ादी का था।
सच कहूं, लज़्ज़त मज़ा जो था वह आज़ादी ही था ॥ ८ ॥
क्या है आज़ादी ! जहां जब जैसा जी[9] चाहे, करें।
खाना-पीना ऐश[10] गुलछर्रों में सब दिन काट दें ॥ ९ ॥
राग शादी नाच इशरत[11] जल्से रंगारंग के।
बंगले बाग़ाते-आली योरोपियन ढंग के ॥१०॥
क़तअ[12] टोपी की नई फ़ैशन निराला बूट का।
दिलकशो[13] बेदाग़ खिलना बदन पर वह सूट का ॥११॥
दिल को रंगत जिसकी भाए शादी[14] बेखटके करें।
धर्म की आईन[15] चुपके ताक़ पर तह कर धरें ॥१२॥
ख़चरें फ़ीटन के आगे कोचवाँ का पोश-पोश।
अबलकों[16] का बद निकलना हिनहिनाना जोश-जोश ॥१३॥
कोट पहनाता है नौकर, जूता पहनाए ग़ुलाम।

---

१. सप्ताह । २. रविवार । ३. स्वतंत्रता देनेवाला । ४. अधीन । ५. स्वतंत्रतारूपी आनंद के लिये । ६. देह के बंधन । ७. ईश्वर करे । ८. काल, घड़ी । ९. चित्त । १०. विषय-भोग । ११. विषयानंद । १२. आकार, ढंग । १३. चित्ताकर्षक । १४. ख़ुशी । १५. नियम, क़ानून, धर्म-शास्त्र । १६. घोड़ों ।

नाक चिढ़ाता है आक़ा[1]—"जल्दबे........हराम"॥ १४ ॥
मुँह में ग़टग़ट सोडावाटर या सिगारों का धुआँ।
ज़ोफ़[2] की दिल में शिकायत राम की अब जा[3] कहाँ ॥ १५ ॥
क्या यह आज़ादी है? हाय! यह तो आज़ादी नहीं।
गोए-चौगाँ[4] की परेशानी है, आज़ादी नहीं ॥ १६ ॥
अस्प[5] हो आज़ाद सरपट, क़ैद होता है सवार।
अस्प हो मुतलक़ अनाँ[6] हैरान रोता है सवार ॥ १७ ॥
इंद्रियों के घोड़े छूटे बागडोरी तोड़कर।
वह मरा, वह गिर पड़ा, असवार सिर मुँह फोड़कर ॥ १८ ॥
ताज़ी[7] तोसन[8] तंदख़ूँ पर दस्तो-पा[9] जकड़े कड़े।
ले उड़ा घोड़ा मैज़प्पाँ[10] जान के लाले पड़े ॥ १९ ॥
जाने-मन! आज़ाद करना चाहते हो आपको।
कर रहे आज़ाद क्यों हो आस्तीं के साँप को ॥ २० ॥
हाँ वह है आज़ाद जो क़ादिर[11] है दिल पर जिस्म पर।
जिसका मन क़ाबू में है, क़ुदरत है शकलो-इस्म[12] पर ॥ २१ ॥
ज्ञान से मिलती है आज़ादी यह राहत[13] सरबसर।
वार कर फेंकूँ मैं उस पर दो जहाँ का मालोज़र ॥ २२ ॥

आज़ादाश्रम आज़ादाश्रम अज़ रंज दूर उफ़्तादाश्रम।
अज़ इशवए-ज़ाले-जहाँ आज़ादाश्रम बालास्तम ॥

---

१. मालिक, स्वामी। २. निर्बलता। ३. स्थान। ४. खेल का गेंद। ५. घोड़ा। ६. नितांत बद्ध, पूरा अधीन वा रुका हुआ। ७. अरब का सरकश घोड़ा। ८. तेज़ स्वभाववाला। ९. हाथ-पैर। १०. सवार का नाम। ११. वशी अर्थात् इंद्रिय, मन को अपने वश में रखनेवाला। १२. नाम-रूप। १३. आनंद, सुख।

अर्थ—मैं स्वतंत्र हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ, मैं शोक से नितांत परे हूँ। मैं संसार-रूपी बुढ़िया के नखरों के प्रभाव से मुक्त और निर्लिप्त हूँ।

१९ वें शेर (पद) पर टिप्पणी—'मैंज़पा' का दंड।

तेज़ी और तुंदी का पुतला, आफ़त का परकाला एक घोड़ा, जिस पर अभी जीन नहीं डाला गया था, जंगल से छाँटकर लाया गया। उस पर मैंज़पा को सवार करके हाथ-पैर खूब मज़बूत कस दिए गए कि गिरने न पावे और फिर उस नख-शिख रुष्ट घोड़े को कड़ी चाबुक मारकर 'कड़वा करेला नीम चढ़ा' की भाँति गुस्से में छोड़ दिया। बिजली की गति से वह घोड़ा 'मैंज़पा' को ले उड़ा। नदी-नाले चीर गया। खाड़ियाँ फाँद गया। दीवारों पर से कूद गया। चल, चल, चल, चला चल। रेगिस्तान पार हो गया। कड़ी मंज़िलें आन की आन में काट गया। चुटकी बजाते कहीं का कहीं जा निकला। बेचारा मुसीबत का मारा सवार अधीर हो रहा है। कभी सिर दाहिने उछल-उछल पड़ रहा है, कभी बाएँ को, कभी आगे की ओर, कभी पीछे की ओर। हे भगवन्, यह कैसी सवारी है! शत्रु को भी नसीब न हो। वृक्षों की रगड़ से शरीर छिल गया, काँटों से तन छलनी हो गया। घोड़े की भाँति मुँह से फेना निकल पड़ा। शरीर से रक्त का पसीना बह चला। हे भगवन्, इस यात्रा

का अंत भी कहीं होगा। और पहुँचना कहाँ है? फूट गया भाग्य।—

> ख़ून रोता है जिगर, यह देख आज़ादी तेरी।
> हाय! 'मैज़पा' यह आज़ादी है बरबादी तेरी॥

दूसरी टिप्पणी—एक भोज में बच्चों को देखा कि मिठाइयाँ मुँह में डालने के स्थान पर जेब में ठूँस रहे थे। एक मसख़रा बोल उठा—प्यारो! कपड़े की जेब में पड़ी हुई मिठाई स्वाद न देगी, न भूख मिटाएगी। मिठाई को पेट के थैले में भरो। कौन मिठाई या उत्तम पदार्थ है जो स्वतंत्रता से बढ़कर स्वादिष्ट है। प्यारो! यह मिठाई शरीर-रूपी वस्त्र की जेब में भरी हुई क्षुधा को कदापि नहीं हटाने की। उसको अपने सच्चे थैले में भरो। घोड़े की स्वतंत्रता से आपको (जो कि सवार हो) बंधन प्राप्त होगा।

तीसरी टिप्पणी—एक पठान के लड़के को किसी बात पर उसके गुरु ने बहुत झिड़का। पठानपुत्र ने आँखें लाल करके झट तलवार निकाली। मौलवी साहब के होश उड़ गए। आगे उठ दौड़े। नंगी तलवार हाथ में लिए पठानपुत्र पीछे लगा। इतने में संयोग से बड़े ख़ाँ साहब घटनास्थल पर पधारे। दूर ही से पुकारा—"ओ उस्ताद! ओ शिक्षक! ठहरियो। ठहरियो। मेरे बेटे का पहला वार है। ख़ाली न जाय।" नवयुवको! स्वतंत्रता चाहते हो, पर बताओ तो

सही, स्वतंत्रता तुम्हें दरकार है कि तुम्हारे चतुर शिष्य (अहंकार) को ? माँगना अपने लिये और देना दूसरों को। ख़ैर, हाथ खुलने दो उसका। तुम्हीं पर हाथ साफ़ होगा। वासना स्वतंत्र होगी, तुम गए बीते।

चौथी टिप्पणी—सन् १८५७ ई० के ग़दर के दिनों में एक नवाब साहब के महल पर बाग़ी सिपाहियों ने हल्ला किया। घर का बड़ा फाटक भीतर से बंद था, किंतु घर के पिछली ओर एक पतली गली में एक दरीची (खिड़की) खुलती थी। नवाब साहब का पलँग उस दरीची के पास बिछा था। यह देखकर कि बाग़ियों ने बड़ा फाटक तोड़ना आरंभ कर दिया है, नवाब साहब को जान बचाने के लिये इस दरीची से कूदकर भाग निकलने की सूझी। किंतु वह नवाब साहब, जिनके लिये दो मनुष्यों के कंधों पर हाथ धरे बिना बग्घी में सवार होना अपनी शान को बट्टा लगाना था, आज अपने आप कूदकर कैसे जायँ; वह नवाब साहब, जिनके विचार में पैदल चलना वैसे ही बुरा और सभ्यता के विरुद्ध था जैसे बंदर का उछलना, आज अपने आप कैसे भाग निकलें। नौकर को पुकारा—"अ़लीम! ओ अ़लीम!! अरे जल्दी आ। हमें जूता पहना दे।" जब किसी की अपनी जान पर आ बनती है, तो दूसरों को बचाना भूल जाता है। भय के मारे अ़लीम की आँखों में बाग़ियों की चमकती हुई

बर्छियाँ और तलवारें नाच रही थीं। उसका रंग बदल गया था। काटो तो खून नहीं बदन में। जब नवाब साहब ने बुलाया, तो दरीची को देखते ही अलीम को अपनी रक्षा का उपाय सूझ पड़ा। जूता तो नवाब साहब को पहनाया नहीं, सीधा दरीची के पास चला गया, और कूदकर झट उस पार। वह गया, वह गया। नवाब साहब गालियों की झड़ी बाँधते ही रह गए। फिर दूसरे नौकर को बुलाया— "कलीम! ओ कलीम!! अजी आइयो। अरे जूता, जूता।" कलीम आया? ऐसी विपत्ति के समय जूता कौन पहनाता, कलीम भी झट दरीची में से कूदकर चलता बना। तीसरे नौकर सलीम को बुलाया और दीन वाणी में कहा—"ज़रा जूता पहना दो।" इतने में बड़ा फाटक आधा टूट चुका था। सलीम मियाँ के हाथ-पैर फूल रहे थे। उसने सुना ही नहीं कि नवाब साहब ने क्या हुक्म दिया। हलबली में दरीची से कूदा और भागा। हाय विपत्ति! तिलंगे भीतर घुस आए। नवाब साहब के प्राणों की कुशल नहीं।

महाशयगण! धर्म से बताना कि फ़ैशन की अधीनता, जो जूता पहनाना ही क्या, बात-बात में दूसरों का दास बनाती है, क्या यह अमीरी है? ऐसे नवाब साहब क्या मालिक और स्वामी थे, या नौकरों के नौकर (dependent)? दोहाई है! इस स्वतंत्रतारूप बंधन के लिये दोहाई है! जो व्यक्ति

अविद्या के दाँव-पेच में फँसकर इस धोकेबाज की बहुरंगी मौजों (freaks) को पूरा करने के पीछे दौड़ता है, उसे यह स्त्री बेच खाती है। वह स्वतंत्रता का दावा करने का अधिकारी नहीं।

पाँचवीं टिप्पणी—वेदांत-शास्त्र पढ़ने बैठे। जम्हाइयों पर जम्हाइयाँ आनी आरंभ हो गईं। मन कभी कहीं जाता है, कभी कहीं। ध्यान लगता ही नहीं। तबियत बेबस है। मनरूपी घोड़ा या नौकर अधिकार में नहीं है। उसे कहा जाता है—"कर यह काम।" वह सुनता ही नहीं। ऐसा पुरुष क्या मालिक, स्वाधीन वा स्वतंत्र कहला सकता है?—कदापि नहीं। जिसका अपने घर ही में अधिकार नहीं चलता, वह स्वाधीन क्या ख़ाक होगा?

छठी टिप्पणी—देश, काल और वस्तु तीनों प्रकार के बंधनों में बद्ध अर्थात् आत्मज्ञान से शून्य पुरुष कभी स्वतंत्रता का आनंद भोग सकता है?—कदापि नहीं। तीनों बंदी-गृहों में बद्ध वा आसक्त को स्वतंत्रता की डींग मारने का कभी अधिकार है?

सातवीं टिप्पणी—स्वतंत्र वही है जो देश, काल और वस्तु से मुक्त है। 'स्वामी' वही है, जो तत्त्ववेत्ता वा यति है। राजराजेश्वर वही है, जो स्वराट् है। गंगा विना यत्न किए ही अपने आप शीतल रहती है। सूर्य सदैव प्रकाश ही

करेगा, कभी अंधकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार शम, यम, दम जिसके स्वभाव में प्रविष्ट हो गए, वह स्वतंत्र है।

आठवीं टिप्पणी—(प्रश्न) स्वाभाविक उद्गार वा रुचि को रोकना प्रकृति के नियम को तोड़ना है। क्या यह पाप नहीं है? जिसको तुम स्वतंत्रता कह रहे हो, यह तो उल्टी गंगा बहाना है, पाप है।

उत्तर—निस्संदेह सच्ची स्वतंत्रता गंगा के स्रोत की ओर चढ़ना ही है, ऊर्ध्वरेता होना और तुम्हारे प्राकृतिक नियम को तोड़ना ही है। यदि क़ानून की पाबंदी रही, तो स्वतंत्रता कैसी?

क्या कामनाएँ, मानसिक इच्छाएँ वा उद्गार स्वाभाविक हैं? ज़रा ध्यान तो करो, "स्वाभाविक" शब्द का प्रयोग यहाँ किन अर्थों में हुआ है? रेल की पटरी पर धक्का खाकर ट्राली का वायु की भाँति उड़ते जाना क्या स्वाभाविक है? inertia अर्थात् जड़ता। चौगान की चोट खाकर गेंद का लुढ़कते जाना क्या स्वाभाविक है? inertia अर्थात् जड़ता। ठीक इसी भाँति मांसाहारी, तृणाहारी और सामान्य पशुओं के शरीरों से विकास (evolution) लाभ करता हुआ पुरुष जब मनुष्य का चोला पहनता है, तो उस पर पाशविक रुचियों और उद्गारों के प्रभाव का आवेश होना स्वाभाविक है।

पर यह क्यों ? पुरानी जड़ता (inertia)। पर मनुष्य की श्रेष्ठता (सर्वोत्तम होना) किस बात में है ? केवल इसमें कि उसको जड़ता (inertia) पर विजय पाने की क्षमता अर्थात् योग्यता प्राप्त है, और पिछले धक्के को निष्फल करने की उसमें शक्ति है। अतः स्मरण रहे कि इस जड़ता (inertia) की प्रकृति पर विजय पाना ही मनुष्य की मनुष्यता है। पाशविक स्वभाव पर विजय पाना मानवी प्रकृति से बाहर जाना नहीं वरन् स्वाभाविक है, और मनुष्य का परमोत्तम स्वभाव है। मानसिक कामनाओं, रुचियों तथा मन और इंद्रियों पर शक्तिमान् और स्वामी होना न तो प्रकृति के नियम को तोड़ना है और न पाप ही है। वरन् सच्चा स्वभाव कदापि चैन नहीं लेने देगा, जब तक कि अपने आपको सचमुच स्वतंत्र न कर लोगे और प्रकृति से श्रेष्ठतर न हो जाओगे।

नवीं टिप्पणी—वेताल (sphinx) की कथा योरप और एशिया में लगभग सभी स्थानों में प्रचलित है। योगवासिष्ठ में विंध्याचल के वेताल का उल्लेख है जिसके प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक यात्री को देना होगा। ठीक-ठीक उत्तर न देनेवाले के प्राण बचना असंभव हैं। ऐ संसार-यात्रा के यात्रियो ! क्या तुम उत्तर दिए बिना अपना पल्ला छुड़ा सकते हो ?— कदापि नहीं। वेताल हाथ धोकर पीछे पड़ा है। वह

खाया कि खाया। क्या उत्तर दिए बिना छुटकारा हो सकता है?—कभी नहीं। दो शब्दों में वह प्रश्न यह यह है—"स्वतंत्रता क्या है?" प्रत्येक व्यक्ति इस प्रश्न का उत्तर देने में चक्कर में पड़ा हुआ है।

नोट—गणित-विद्या जिन लोगों ने नियमानुसार नहीं पढ़ी, वह गणित के प्रश्न वैसे ही हल करते हैं जैसे नन्हें बच्चे अपनी बुड्ढी दादी से पूछी हुई पहेलियाँ बूझते हैं, अर्थात् जो मुँह में आया बोल दिया। सोचना-समझना कुछ नहीं। "एक व्यक्ति ने अपने बैंकवाले रुपयों का दसवाँ भाग धर्मार्थ व्यय कर दिया, तीसरा भाग एक स्थान पर (रायबहादुरी की उपाधि के लोभ में) चंदा दिया, सातवाँ भाग बेटी के व्याह पर नाच-रंग में व्यय कर दिया, शेष रुपयों की भूमि मोल ली। यह भूमि १७८०) की है, उसकी कुल जायदाद बताओ।"

अपरिचित लोग इस प्रश्न को इस प्रकार हल करेंगे—

कल्पना करो कि उत्तर दो हज़ार है। इससे प्रश्न की शर्तें पूरी करते हुए शेष १७८० नहीं बचे, इसे छोड़ो। अब ढाई हज़ार उत्तर कल्पना किया। इससे भी उत्तर की शर्तें नहीं पूरी हुईं। कल्पना करो कि तीन हज़ार उत्तर है। इससे भी नहीं निपटती। इसी तरह कभी कुछ कल्पना किया, कभी कुछ। भाग्य से कहीं उत्तर ठीक मिल गया;

तो खैर, नहीं तो अंधों की भाँति लाठी से रास्ता टटोलते-टटोलते जंगल में रात कर देना कहीं गया ही नहीं।

बीज तर भूमि पर पड़ा है। ऊपर पत्थर आ गया। उगते समय नन्हा वृक्ष किस ओर झुकेगा। ठीक उसी ओर बढ़ेगा जिधर निकट-से-निकट मार्ग प्रकाश (स्वतंत्रता) को हो। बीज-रूप में पुरुष ने वेताल के प्रश्न (स्वतंत्रता) का उत्तर व्यावहारिक-रूप में ऐसे दिया है कि किसी वस्तु को एक अवस्था में थिरता नहीं है, प्रत्येक वस्तु लगातार परिवर्तनशील है, अपनी पहली अवस्था से भागती जाती है, वर्तमानरूप और नाम से स्वतंत्र हुआ चाहती है, वेताल का प्रश्न हल करने में लगी है।

ब हर लहज़ा ब हर साअत ब हर दम।
दिगरगूँ मी शवद अहवाले-आलम॥

अर्थात्—प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घड़ी और प्रत्येक श्वास में संसार की अवस्था भिन्न-भिन्न रूप होती है।

वेताल का प्रश्न इस प्रकार पीछे लगा हुआ है जिस प्रकार पक्षी के पीछे बाज़। पर हाय! एक भूल से निकलने नहीं पाते कि दूसरी भूल में गिर जाते हैं। ठीक उत्तर तो एक ही हो सकता है। गलत उत्तरों की कुछ सीमा नहीं। "तवे से उतरे चूल्हे में पड़े" वाला मामला हो रहा है। ठीक उत्तर नाम-रूप के साम्राज्य में कहीं नहीं। इसीलिये

नाम और रूप की परिधि में थिरता और विश्राम, सुख और शांति दुर्लभ है।

संसार में लड़ाई-भड़ाई और उद्यम वा पुरुषार्थ (struggle for existence) के क्या अर्थ हैं? विकासवाद में पद बढ़ने से रुकावटें दूर हों, स्वतंत्रता मिले। क्या इस दौड़-धूप के चक्र में कहीं भी 'जीवन' के लिये कोई उद्योग नहीं, वरन् 'स्वतंत्रता के लिये उद्योग' से तटस्थ हो सकने की शक्ति रखता है? साइंस ने दिखा दिया कि सूर्य का अंधकार फैलाना और गंगा का गरमी करना तो कदाचित् संभव भी हो, किंतु "स्वतंत्रता के लिये उद्योग" में सम्मिलित न होनेवाले का बचाव स्वप्न में भी संभव नहीं। आलसी पैरों तले रौंदा जायगा, निकम्मा जूतों तले कुचला जायगा। कोरा तमोगुणवाला नहीं बच सकता (He is not fit to survive)। यह प्रकृति का नियम है। सब पापों का मूल क्या है?—आलस्य या सुस्ती, जिसको शास्त्रों में तमोगुण कहा गया है। आलसी वेताल का उत्तर देने में साफ़ 'नाहीं' करता है। वेताल उसे खा जायगा।

विकास की निसेनी पर तमोगुण का प्रेमी (पुरुष) चढ़ते-चढ़ते मनुष्य के शरीर में आकर स्वतंत्रता के लिये कहाँ-कहाँ टक्करें नहीं मारता, कैसी-कैसी ठोकरें नहीं खाता? वह जो भोग-विलास में पड़ गया या आलस्य में गड़ गया,

उनका मांस और रक्त तो वेताल की क्षुधा-पिपासा के काम आया। मरा, नष्ट हुआ। ऐसों को छोड़कर उन मनुष्यों की दशा पर एक दृष्टि डालिए जो स्वतंत्रता या मुक्ति की खोज में साहस नहीं छोड़ बैठे, उद्योग और परिश्रम को नहीं छोड़ बैठे।

यूसुफ़ जब मिस्र में बिकने लगा, तो एक बुढ़िया ने बहुत आगे बढ़कर नीलाम की बोली दी, और (अपनी जायदाद) आध पाव रुई को बड़े चाव से मूल्य की भाँति उपस्थित किया। शाबास, बुढ़िया! शाबास। आध पाव रुई से तो यूसुफ़ न मिला, किंतु हज़रत यूसुफ़ के ख़रीदारों में तो बुढ़िया का नाम हो गया। फ़ैशन के गुलाम स्वतंत्रता के ग्राहकों में तो गिने गए। स्वतंत्रता तो भला क्या मिलती थी। सामान्य सांसारिक मनुष्य स्वतंत्रता (वह अवस्था जहाँ सिर पर कोई दबाव न हो, बड़ाई, बड़प्पन और मनाप) के लिये उचित या अनुचित ढंग पर कोहकन (फ़रहाद) की भाँति तेशा चलाए जाते हैं। बड़ाई, बड़प्पन और शान (स्वतंत्रता) कुछ ऐसी मधुर है कि उसकी चाह के लिये कौन है, जिसका जीवन कड़ुआ नहीं हो रहा है।

व्याख्यान, उपदेश और प्रचार के अवसर पर प्रायः यह शब्द सुनाई दिया करता है—"अरे भाइयो! नम्रता, नम्रता, नम्रता, विनय और दीनता ग्रहण करो। दास बनो, दास बनो। बड़प्पन की भावना त्याग दो, इत्यादि।" या

बंदगीगाहों (मंदिरों वा मसजिदों) में इस प्रकार के शब्द अवश्य सुनाई देते हैं—"मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा। तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा।" या "हमको नौकर रक्खो, हमको नौकर राखो जी, इत्यादि।"

आपत्ति वाक्य—कर्म-सिद्धांत के अनुसार ये दासत्व के संस्कार फल दिए बिना कदापि नहीं रह सकते। भला परमेश्वर अपने निराकार-रूप में दास कैसे रक्खे, वा अपनी पत्थर या अष्टधातु की मूर्ति से कैसे नौकर रक्खे? किंतु दासपन के संस्कारों का फल देना भी अनिवार्य था। अत: वह प्रकाशस्वरूप, ज्योतिर्मय परमेश्वर श्वेत चमकीले गोरेचिट्टे शरीर धारण करके भारत को गुलाम बना रहा है।

किंतु जुड़े हुए हाथों, झुकी हुई गर्दन और निकले हुए दाँतों की तह के नीचे घर-घर में, दुकान-दुकान में, हर दफ़्तर में, हर चौक और बाज़ार में, भोजन करते समय, सोते समय, चलते-फिरते समय यह स्वाभाविक वाणी प्रत्येक के अंत:करण से लगातार आती रहती है—"बुज़ुर्गी, बुज़ुर्गी (बड़ापन), हाय महत्ता! हाय बड़ाई, स्वतंत्रते!" इस भीतरी शब्द को दबाने या रोकने के अगणित प्रयत्न किए गए, किंतु इसका बल दूना ही होता गया। गठिया के पुराने रोग की भाँति एक स्थान से नाम को हटाया भी गया, तो दूसरे स्थान पर झट फूट आया। क्या सच कहा है—

Truth crushed to earth shall rise again,
The eternal years of God are hers.

भावार्थ—सचाई यदि दबाई जाय, तो पुनः फूटकर निकल आती है, क्योंकि ईश्वर का नित्य का समय उसी के लिये होता है।

वही बंदे मार्था जो इबादतघरों (मंदिरों) में सिर रगड़-रगड़कर यह कहते हुए सुनाई देते थे—"मैं दास, मैं दीन, पापी-पातकी, सबका सेवक, आदि" वही परमेश्वर के साथ बना-बनाकर चिकनी-चुपड़ी छल-छिद्र की बातें करनेवाले अब ज़रा सुन पाते हैं कि अमुक व्यक्ति ने हमें "पापी, अधम" कह दिया है, तो झट आग-बगूला हो जाते हैं। आश्चर्य है, वही व्यक्ति जो प्रतिदिन परमेश्वर के पवित्र उपासनालय में पुकारकर प्रतिज्ञा कर आया है—"मैं दीन, अधम, पापी" वह अब बाज़ार में आकर अपने ही वचन से चिढ़ता क्यों है ? हाय ! परमेश्वर के मंदिर में झूठ बोल आया ! गंगाजली उठाकर ही नहीं, स्वयं गंगाजी में स्नान करते समय "पापी हूँ, पाप कर्मों वाला हूँ, पापात्मा हूँ, पाप से ही पैदा हुआ हूँ (पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः) इत्यादि" कहते हुए नास्तिकता की आँधी बहा आया। क्या ऐसा गंदा झूठ दंड दिए बिना रह जायगा ?

यादवों ने एक ब्राह्मण के सामने झूठ बोला था, सत्य

को छिपाया था, और का और करके दिखाया था, पुरुष को गर्भिणी स्त्री बनाया था। उसका परिणाम क्या हुआ? पीछे यादवों ने बहुत कुछ प्रयत्न किए कि दंड से छुटकारा मिल जाय, लेकिन किस प्रकार? उस * सच (बरतन-वाटी) को रेत में रगड़ते-रगड़ते मटियामेट करना चाहा, उसको सर्वथा नष्ट करने का पूरा-पूरा यत्न किया गया, परंतु 'सत्यमेव जयते नानृतम्'।

Truth crushed to earth shall rise again,
The eternal years of God are hers.

वही रगड़ा हुआ बीज फिर उगा। उसी बीज ने यादवों को नष्ट कर दिया। नाम मिटा दिया। द्वारका पर पानी फिर गया। उसी बीज ने बाण की गाँसी बनकर स्वयं कृष्ण के पाद-पद्म से आँख लड़ाई और ऐसा पाँव पर पड़ा कि कृष्ण कहाँ रहा? इस स्वाभाविक स्वतंत्रता की ध्वनि को, जो निरंतर सत् की ओर से आ रही है, हज़ारों व्याख्यान, लाखों पुस्तकें, करोड़ों सिजदागाहें

---

* यह कहानी प्रचलित है कि यादवों ने एक पुरुष के पेट पर वाटी (बरतन) बाँधकर उसे स्त्री का रूप धारण कराकर दुर्वासा ऋषि से पूछा कि महाराज यह स्त्री क्या जनेगी? उसके उत्तर में यह शाप मिला कि मुझे भी धोका देना चाहते हो? यह वह जनेगी जिससे तुम सबका नाश हो जायगा!

(उपासनास्थान) दीनता और नम्रता के रोने से नहीं दबा सकती। यह बला की गुत्थी उपस्थित करना वेताल कभी नहीं भूलेगा। दीनता-दीनता का नाम लेकर उत्तर देने में 'नहीं' करनेवाला अनुत्साह के गढ़े में गिरेगा, और असत्य उत्तर भी रोने और दाँत पीसने का कारण होगा।

असत्य उत्तर—जो लोग अहंकार (देहाध्यास) को लेकर बाहरी दबाव से स्वतंत्र अर्थात् बड़ा बनना चाहते हैं, वह प्रकृति या निज-स्वभाव की भीतरी ध्वनि का असत्य उत्तर देते हैं।

बड़ाई के सामान्य अर्थ क्या हैं?—"प्रधान होना, अपनी जाति में अद्वितीय हो निकलना, ऐसा उच्च पद पाना कि अपने समान गुणवालों की संख्या कम हो जाय। समान गुण और समान व्यवहारवालों की संख्या जितनी ही कम होगी, संसार में उतनी ही श्रेष्ठता और महत्ता अधिक गिनी जायगी। अतः संसारी लोगों के यहाँ बड़ाई वह है, जो समान गुणवालों की श्रेणी वा सीमा से बाहर निकाले, अद्वितीय बनाए, चिंताओं के बोझ से छुटकारा दे, अन्यों के खटके से निवृत्ति दे, दूसरों के भय से छुटकारा दे, नानात्व का बोझ उतार दे।"

अब वह महाशय जो इधर तो शरीर के अहंकार (little self) से परिच्छिन्न हो रहे हैं और उधर स्वतंत्र

और बड़ा बनाना चाहते हैं, सदैव असफल रहेंगे, पछताएँगे।

"मैं उत्तम वंश का हूँ"—इस बात पर मुग्ध पुरुष थोड़े दिनों में भाईबंदों को अपने ऐसा देखकर विचलित होता है। क्योंकि वह देखता है कि मैं अद्वितीय नहीं, समान गुणवाले लोग बहुसंख्यक मौजूद हैं। वेताल का प्रश्न (हाय स्वतंत्रते) फिर तीर की भाँति चुभता है। ब्रह्मविद्या जिसके व्यवहार (बर्ताव) में नहीं है, इस प्रकार का एक बड़ा भारी पंडित किसी और विद्वान् पंडित का नाम सुनकर यदि खुल्लमखुल्ला निंदा करना न आरंभ करेगा, तो मन में अवश्य वैसे ही घटने लग जायगा जैसे आरंभिक श्रेणी का बालक अपने से चतुर बालक को देख दुःख मानता है। "मैं ताज़ा एम्० ए० हूँ", इस घमंड में चूर मनुष्य का जब एकआध महीने में नशा उतरता है, तो देखता है कि मेरे-जैसे, बल्कि मुझसे अच्छे सैकड़ों पड़े हैं, मैं श्रेष्ठ नहीं, अद्वितीय नहीं। वेताल का प्रश्न फिर आग की भाँति जलाता है।

आज युनिवर्सिटी-कनवोकेशन का जल्सा है। चांसलर साहब सभा में शोभायमान हैं। फ़ेलो (सहपाठी) लोग कुर्सियों पर विराजमान हैं। दर्शकगण चारों ओर से नए ग्रेजुएटों की ओर उँगलियाँ उठा रहे हैं। नया स्नातक

मन में बड़ा प्रसन्न हो रहा है कि चौदह-पंद्रह वर्ष के परिश्रम का आज फल मिलेगा। प्रसन्नता से कपोल फूल रहे हैं। गौन (gown अर्थात् शाटक फड़काता सर्टिफ़िकेट के लिये उठा है। चांसलर साहब के सामने सम्मानपूर्वक खड़ा है। इस समय चित्त-वृत्ति कैसी एकाग्र है। ऐ आशा-रूपी वाटिका के नवयुवक! वाइस चांसलर साहब की वक्तृता सुनने से पहले राम की रामकहानी से चित्त और कान मत मोड़। प्यारे! इधर तो कंठ से लेकर पग पर्यंत घोर काला जामा (जो पूरी आयु में एक दिन भी तो काम में नहीं आता) पहनकर लोटपोट हो रहा है, उधर बेताल तमाशा देख-देखकर हँस रहा है कि "सोलह वर्ष बिता दिए, किंतु मेरे प्रश्न का उत्तर ठीक न दे सका।" यह नत-मस्तक होना, सर्टिफ़िकेट के लिये हाथ का बढ़ाना और सम्मानपूर्वक प्रणाम, सब बोल रहे हैं कि नवयुवक उपाधि प्राप्त कर रहा है, प्रमाणपत्र ले रहा है, मान पा रहा है। आनंद यह है कि एक ही काम उधर नवयुवक में अभिमान भर रहा है, उधर डिग्री प्रदान करनेवालों (फ़ेलो) युनिवर्सिटी से उसके कमतर और छोटा होने को स्पष्ट जतला रहा है। उस समय ग्रेजुएट के ख़याल में जो उन्नति का पद या स्थान है, वही उसके न्यून और छोटा होने का चिह्न है। डिग्री लेना न तो केवल

बीसियों समान गुण विद्यार्थी (फ़ेलो-ग्रेजुएट) साथ दिखा रहा है, वरन् सैकड़ों बहुत बड़े-बड़े (फ़ेलो-महाशयों) के भी एक साथ दर्शन करा रहा है। अतः बी० ए० की बड़ाई (अद्वितीय होना) के भला क्या अर्थ हो सकते हैं? ठीक इसी प्रकार संसारी पुरुष जिस बात में कभी सम्मान समझता है और अभिमान करता है, दूसरी दृष्टि से वह बात सदैव उसकी शान की कसर (कमी) जतलाती है। संसार का जीव रहकर अद्वितीय (श्रेष्ठ और स्वतंत्र) होना किसी प्रकार से संभव नहीं, पर क्या यह स्वाभाविक इच्छा (स्वतंत्रता, श्रेष्ठता) मनुष्य के भीतर हँसी-ठठोली के लिये है, केवल मख़ौलबाज़ी है, और पूरी होने के लिये नहीं है? ऐसा क्यों होगा। यह स्वाभाविक धुन, (स्वतंत्र और श्रेष्ठ होने की) यह लग्न जो रात-दिन पीछे लगी रहती है, पूरी क्यों न होगी? अवश्य पूरी होगी। किंतु परिच्छिन्न जीव होने की हैसियत से मनुष्य के भीतर की यह अग्नि कदापि-कदापि नहीं बुझ सकती।

"मैं सेठ हूँ" इस विचार का घमंड रखनेवाला शीघ्र ही देखता है कि मुझसे अधिक धनाढ्य लोग मौजूद हैं। हाय, मैं उन-जैसा कब हूँगा। मैं अद्वितीय नहीं, बड़ा नहीं। फिर वेताल का प्रश्न आकर व्याकुल करता है। बढ़ते-बढ़ते

कल्पना करो कि संसार में इँगलैंड का राज्य मिल गया, फिर रूस और फ्रांस आदि समान शक्तिवाले हृदय में खटकते रहेंगे, बोरों (Bores) का भय लगा रहेगा, आदि। प्रजा की दृष्टि में बड़े बन गये, अधीन राजाओं के संपूज्य हो गए, किंतु ज्ञान के बिना दृष्टि तृप्त न होगी, और न होगी। निःसंदेह श्रेष्ठता और स्वतंत्रता कोसों दूर रहेगी। सहस्रों महाराजाधिराज इस संसार में हो बीते हैं; क्या सब के सब आनंदित थे?—नहीं, जितनी-जितनी जिसमें ज्ञान की झलक थी, उतना-उतना वह आनंदित था।

तात्पर्य यह कि जाति, वर्ण और मत (Caste, colour and creed) की बड़ाई वास्तव में छोटाई है। "मैं उच्च जाति का हूँ, इसलिये बड़ा हूँ" राम कहता है "प्यारे, यदि तुम जाति के कारण सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय बनना चाहते हो, तो तुम सबसे नीच हो। क्योंकि उस जाति के तुम-जैसे सहस्रों मनुष्य और विद्यमान हैं। किसी विशेष जातिवाला होना तो तुम्हारे श्रेष्ठ (अद्वितीय या स्वतंत्र) होने में बाधक है।" यह अनुचित अहंकार मीठी गाजरों की भाँति तुम्हें एक दिन उदर-पीड़ा उत्पन्न करेगा। बड़े-बड़े नगरों में जब दसहरे का मेला होता है, तो लीलावाले मैदान के चारों ओर प्रायः लोहे का काँटेदार तार लगा देते हैं जिससे बिना टिकट के लोग मैदान के भीतर न

आने पावें। उस समय तार के चक्र के बाहर हिंदुओं का बड़ा भारी जमाव होता है, देह से देह छिलती है, दर्शक लोग तार के किनारे-किनारे चक्कर लगाते चले जाते हैं; पीछे से धक्के पर धक्के मिलते हैं, आगे भीड़ के कारण पैर टिकाने को जगह नहीं मिलती। इस प्रकार पिस-पिसाव में जकड़े हुए चक्र में घूमनेवाला यदि (क) स्थान से (ख) तक चला जाय तो निःसंदेह संसार की दृष्टि से बहुत उन्नति करता है। किंतु उसकी जान से पूछो कि आया स्थान (क) की अपेक्षा स्थान (ख) पर धक्कमधक्का से कुछ कम कुचला जा रहा है कि वैसा ही। प्यारे ! चाहे (क) पर पहुँच जाओ, चाहे (ग) पर, चाहे फिर (क) पर आ जाओ, जब तक चक्र में रहोगे, आगे-पीछे के दबाव से स्वतंत्रता नितांत असंभव है। हाँ, टिकट ख़रीदने पर मैदान के भीतर (अ) केंद्र को जा सकते हो। वहाँ कोई धक्कमधक्का नहीं है।

क

अ ख

ग
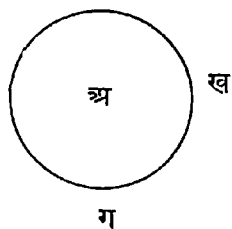
संसार में स्थान (क) वाले, अर्थात् सर्वोच्च प्रताप-शाली पुरुष, का चित्त वैसा ही डाँवाडोल, चंचल और धक्के खानेवाला होता है, जैसे स्थान (ग), अर्थात् अत्यंत अधम श्रेणी, वाले का। ऐ पीड़ा और दुःख में

रोनेवाले संसारी पुरुष ! यदि तुम अपने से संसारी पदों में बड़े लोगों को देखकर डाह और ईर्ष्या कर रहे हो, तो मुँह मोड़ो, मुँह मोड़ो इससे, भूल जाओ इस विचार को ; क्योंकि वह लोग, जो देखने में तुमसे अधिक प्रतापशाली हैं, अपने बाहरी मान और वैभव के कारण तुमसे तनिक भी अधिक सुखी और प्रसन्न नहीं हैं । हाँ, यदि उनमें ज्ञान का विकास अधिक है, तो वह अधिक आनंदित होंगे । और यदि आपके भीतर ज्ञान अधिक व्यवहार में आया हुआ है, तो आप अधिक प्रसन्न होंगे । संसार की संपत्ति और वैभव आनंद की प्राप्ति में कोई नियोगी (factor) नहीं है । वह लोग जो अपने आपको शरीर या शरीरी मानकर अपने को श्रेष्ठ और महान् बनाया चाहते हैं और अपने निकट स्थावर जंगम अधिकृतियों (मनकूला व ग़ैर मनकूला मक़बूज़ात) के ढेर लगाकर बड़े बनने की आशा रखते हैं, वे आरंभ ही में भूल कर आए हैं । केवल शून्य (०) को चाहे कहाँ तक गुण दो, वह शून्य का शून्य ही रहेगा । इस प्रकार यह गुत्थी हल नहीं होने की, व्यर्थ समय खोना है । आध पाव रुई वा रेशम से यूसफ़ नहीं मिलेगा, शांति नहीं प्राप्त होगी । देहाध्यास में फँसे हुए 'शद्दाद' ने चाहा कि नईम (स्वर्ग-वाटिका) बनाकर ईश्वर की भाँति (जो मुझसे अलग है) आनंद

मनाऊँगा। ईसप की कहानी की कुत्तेवाली कहावत उस पर ठीक उतरी, जो मुँह में मांस का टुकड़ा लिए नदी में से जा रहा था, अपनी छाया को अपने से अलग मान उस छाया के मुँहवाले मांस को छीनने के लिये पानी में झपटा, और इसी झगड़े के कारण नदी में बह गया।

फ़ुटबाल का गेंद यदि नियत झंडियों (गोल) से परे की भूमि में भी चला जाय, लेकिन झंडियों के बीच से न निकल जाय, तो व्यर्थ है। गेंद को झंडियों के भीतरी ओर वापस लाना होगा और फिर नियमानुसार झंडियों के बीच में से निकलना होगा, अन्यथा कुछ न बनेगा। ऐ शद्दाद की भाँति अहंकार (little self) को बड़ा बनानेवालो! तुम अनुचित रीति से झंडियों के उस पार की भूमि पर जा रहे हो। लौटो, पीछे हटो, पीछे को मुँह मोड़ो। सच्चे अपने आपको (आत्मा) साक्षात्कार करो, और तुम वही ईश्वर हो जिसकी नक़ल उड़ाने का प्रयत्न शद्दाद ने किया था।

धन में, भूमि में, संतति में, मान में और संसार की सैकड़ों वस्तुओं में प्रतिष्ठा ढूँढ़नेवालो! तुम्हारे सैकड़ों उत्तर सब के सब अशुद्ध हैं। एक ही ठीक उत्तर तब मिलेगा, जब अहंकार को छोड़ देह और देहाध्यास के भाव को ध्वंस कर और द्वैत (भिन्न दृष्टि) को त्यागकर सच्चे तेज और प्रताप

को सँभालोगे। इस प्रकार और केवल इस प्रकार अन्य का नाम नहीं रहने पाता, द्वैत या नानात्व का चिह्न नहीं बाक़ी रहता। परम स्वतंत्र, परम स्वतंत्र, एकमेवाद्वितीयम्, एकमेवाद्वितीयम्।

क्लेश और दुःख क्या है? पदार्थों को परिच्छिन्न दृष्टि से देखना, अहंकार की दृष्टि से पदार्थों का अवलोकन करना। केवल इतनी ही विपत्ति संसार में है, और कोई नहीं। संसारी लोगो! विश्वास करो, दुःख और क्लेश केवल तुम्हारा ही बनाया हुआ है; अन्यथा संसार में वस्तुतः कोई विपत्ति नहीं है।

Look and laugh glass or ludicrous glass हँसानेवाले या टेढ़े शीशे में से जब बच्चे सुंदर से सुंदर मनुष्य को देखते हैं, तो कैसा भयानक और डरावना रूप दिखाई देता है। ठीक इस भाँति यद्यपि "ईश्वर-सृष्टि" में कोई भी बात बुरी, भयानक और निकम्मी नहीं हैं, "भ्रांति और अविद्या का धुँधला शीशा" आँखों पर लगानेवाले भयानक "जीव-सृष्टि" से बालकों की भाँति हताश और भयभीत पड़े होते हैं।

साज़ सारंगी बजानेवाले की उँगली कभी भूल नहीं करती, क्योंकि प्रथम श्रेणी का प्रवीण है। अद्भुत की सुस्वरता (harmony) उन उँगलियों से निकल रही है। यदि

तुमको विरोधस्वर (discord) सुनाई दे रहा है, तो केवल यही कारण है कि तुम्हरी सारंगी के तार ढीले होंगे। सारंगी के कान (खूँटी) मरोड़ो, तारें कस लो, मधुर स्वर तो पहले ही से हो रहा है। तुम्हारा कभी कुछ विगाड़ हो ही नहीं सकता। दुःख-दर्द क्यों?—

गुलशने-गेती नदारद ग़ैरे-गुल।
वैह्मे-ख़ुद बगुज़ार ख़ार ईं अस्तो बस॥

अर्थ—संसार के बाग़ीचे में पुष्प से इतर कुछ नहीं। अपना भ्रम छोड़, यही एक काँटा है।

न कुछ पीरी चली बादे-सबा की।
बिगड़ने में भी ज़ुल्फ़ उसकी बना की॥

एक नवयुवक पर देवता पुष्प-वर्षा कर रहे थे, इंद्र उसे वरदान दे रहा था, अकस्मात् ऐसी धुँधली छा गई कि नवयुवक की दृष्टि से देवता ओझल हो गए। क्या देखता है कि एक मनुष्य दाएँ से उसके चुटकी ले रहा है, एक बाएँ से उसकी बाँहें मरोड़ रहा है, एक सामने से लाल नेत्र दिखा रहा है, एक पीछे से ढकेल रहा है। जब यह स्वप्न-सा दूर हुआ तो बाछें खिल गईं, न कोई धुंध था, न अहंकार, न कोई दाएँ-बाएँ से छेड़खानी ही थी, वही फूल बरस रहे थे और इंद्र के सामने प्रतर्दन की भाँति अपने आपको वर प्राप्त करते हुए मौजूद पाया।

ऐ चिंता और शोक में निमग्न पुरुषो ! ईश्वर-दृष्टि में तो आप पर फूल ही बरस रहे हैं, इंद्र वर ही दे रहा है, किंतु अपने भ्रमों के बादलों में आप नाना विपत्तियाँ भोग रहे हो। अपनी चिंताओं और शोक के स्वप्न में कुछ का कुछ पड़े रचते हो।

इस जीव-सृष्टि का परित्याग करते देखोगे कि समय कभी तुम्हारे प्रतिकूल नहीं हुआ। दैव कदापि रुष्ट और दुःख देनेवाला नहीं। काल-चक्र तुम्हें सच्ची स्वतंत्रता दिलाने पर तत्पर है।

यथार्थ आत्मज्ञान से ये चिंताओं और भ्रमों की जीव-सृष्टि का स्वप्न दूर होता है। अँगरेजी राज्य की बदौलत जाति का चमार जब मुक़ाबले में परीक्षा उत्तीर्ण करके तहसीलदार हो जाता है, तो वह अपने चमारपन का नाम भी नहीं लेता, चमड़े के काम को याद भी नहीं करता। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान की बदौलत सच्ची ईश्वरता पाते ही चमड़े गाँठने की चिंता और शोक व्यर्थ है ; संशय, चिंता या अनात्मचिंतन की सृष्टि एकदम विलीन हो जाती है।

ऐ मुक्त पुरुषों के देशवालो ! ऐ महर्षि-कुमारो ! जब देखते हो कि वह तहसीलदार, जो तुम्हारे विचार में पीढ़ियों से चमार चला आता है, चमड़ा गाँठने (शूद्रपन) के काम को स्वप्न में भी नहीं करता, तो तुम तो

अनादि काल से शंकर-स्वरूप चले आते हो, सदा से ईश्वर हो—

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो ।

तुमको क्या आवश्यकता पड़ी है वाहियात जीव-सृष्टि बनाने की।

अनात्मचिंतन, चमड़े की चिंता, शोक-खेद और संताप छोड़ो, जीव-सृष्टि क्यों बनाते हो जब कि ईश्वर-सृष्टि तुम्हारी ही है। केवल ज्ञान के प्रकाश की देर है, खेद, चिंता, दुःख, संताप, पीड़ा और व्याधि पास नहीं फटक सकेंगे। चैलंज भेजता है राम, शोक, भय, लोभ, मोह, काम आदि को ; कभी मुँह तो दिखा जायँ !

आज़ादाअम आज़ादाअम अज़ रंज दूर उफ़्तादाअम ।
अज़ इशवए-ज़ाले-जहाँ आज़ादाअम बालास्तम ॥
ज़ाले-जहाँ शनौ सख़ुन इशवए-नाज़ुकी मकुन् ।
दिल बतो नेस्त मुब्तिला तन तलमला तला तला ॥

भावार्थ—मैं स्वतंत्र हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ, शोक से नितांत दूर हूँ। संसार-रूपी बुढ़िया के नख़रे और हाव-भाव से मैं नितांत मुक्त और परे हूँ। ऐ संसार-रूपी बुढ़िया ! यह सुन, नख़रे-टख़रे मत कर ; तुझमें मेरा चित्त आसक्त नहीं, तन-तन तना-तना (सारंगी का स्वर)।

किंतु चैलंज-वैलंज कैसा ? साझीदार (भागीदार) है ही नहीं, अन्य हुआ ही नहीं, चैलंज किसको ?

अगर ग़म लश्कर अंगेज़द कि ख़ूने आरिफ़ाँ रेज़द ।
शुआए-ज़ात अंदाज़ेम व बुन्यादश बरन्दाज़ेम ॥

भावार्थ—यदि चिंता अपनी सेना को आत्मवेत्ताओं की रक्त नदी बहाने को उत्तेजित कर दे, तो भी हमारे भीतर ज्ञानाग्नि की ज्वाला उस (चिंता) की जड़ को उखेड़ (भस्म) कर डालेगी ।

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ ये नानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ ४ ॥
य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ ५ ॥
एतद्वैतत्— (कठ० अ० १, व० ४-५)

भावार्थ—जिसके प्रकाश में स्वप्न और जागरित दोनों अवस्थाएँ दिखाई देती हैं, उस अपने वास्तविक स्वरूप को, जो सर्वव्यापक और महान् है, जानते ही आत्मवेत्ता के शोक-चिंता सब उड़ जाते हैं ॥ ४ ॥

स्वयं जो इस मधु (निज-रस) के भोक्ता, समीप से समीपवर्ती और भूत-भविष्य के स्वामी आत्मा को जानता है, वह ज्ञानी फिर कभी नहीं कुढ़ता, अर्थात् न किसी आश्रय वा आधार की जिज्ञासा करता है और न किसी की अप्राप्ति पर व्याकुल होता है । निःसंदेह यह वही है ॥ ५ ॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥
(कठ० अ० १, व० १०)

भावार्थ—जो यहाँ है, निःसंदेह यही वहाँ है, और जो वहाँ है, वही यहाँ है, इस स्थान पर विपरीत देखनेवाला मृत्यु से मृत्यु में जाता है ॥ १० ॥

एक हाथ में स्वादिष्ट मिठाई और दूसरे में अशरफ़ी बच्चे को दिखाकर कहा जाय कि इन दोनों में से कौन-सी एक वस्तु तुम्हें स्वीकार है, तो नासमझ बच्चा मिठाई को पसंद करेगा जो उसी क्षण स्वाद दे जाती है । यह नहीं जानता कि अशरफ़ी से कितनी मिठाई मिल सकती है। यही दशा उन संसारी लोगों की है जो श्रेष्ठ बनानेवाली सच्ची स्वतंत्रता की अशरफ़ी को छोड़कर जुगनू की चमकवाली क्षणभंगुर स्वाद देनेवाली मिठाई अंगीकार कर रहे हैं। ग्वालपन छोड़कर अपने जन्मजात स्वत्व (राजगद्दी) को सँभालने के लिये कृष्ण भगवान् का कंस को मारना अत्यावश्यक कर्तव्य था, किंतु कंस तब मरेगा जब कुब्जा सीधी होगी । पान-सुपारी, चंदन, इत्र, अबीर आदि लिए कंस की सेवा को कुब्जा जा रही है, इतने में महाराज से भेंट हो गई । बाँके के साथ कुब्जा की बोलचाल भी अत्यंत टेढ़ी थी । एक मुक्का मारने से कुबरी की पीठ सीधी

हो गई। नाम तो कुब्जा ही रहा, किंतु सीधी होकर अपने उपकारी के चरणों पर गिरी। अब कंस से संबंध कैसा? पान-सुपारी, चंदन, इत्र, अबीर से भगवान् का पूजन किया, और उन्हीं की हो रही। सीधी कुब्जा को सहृदय सखी बनाने ही कृष्ण भगवान् की कंस पर विजय है, और स्वराज्य (पैतृक अधिकार) प्राप्त है। विषयों के वन को त्यागकर सच्चे साम्राज्य को सँभालने के लिये अहंकार (अहंता)-रूपी कंस को मारना परम आवश्यक है, नहीं तो अहंकार-रूपी कंस की ओर से होनेवाली भाँति-भाँति की पीड़ाएँ और चित्र-विचित्र अत्याचार कहीं चैन से दम न लेने देंगे। अहंकार (कंस) तब मरेगा, जब कुब्जा सीधी होकर कृष्ण (आत्मा) की भेदी (आत्मा के रहस्य को जाननेवाली) हो जायगी।

कुब्जा क्या है?—श्रद्धा, विश्वास। सर्व-साधारण के यहाँ उल्टी (कुबरी) श्रद्धा अहंकार की सेवा में दिन-रात लगी रहती है। "घर मेरा है" इस रूप में अथवा "धन-संपत्ति मेरी है" इस रूप में, "स्त्री-पुत्र मेरे हैं" इस रूप में, "शरीर और बुद्धि मेरे हैं" इस रंग में। इस प्रकार के वेशों में अनर्थ करनेवाली श्रद्धा कुब्जा (उल्टा विश्वास) प्रति समय अहंकार (देहाध्यास वा अहंता) को पुष्टि और बल देती रहती है। जब तक यह संसारासक्त दृष्टिवाली

श्रद्धा सीधी होकर आत्मा (कृष्ण) की सहगामिनी, और तद्रूपा न होगी, तब तक न तो अहंकार (कंस) मरेगा और न स्वराज्य मिलेगा। मारो ज़ोर की लात इस कुब्जा को, जमाओ विवेक-रूपी मुक्का इस उल्टे विश्वास को। अलिफ़ (।) की भाँति सीधी कर दो इस कुबरी श्रद्धा की कमर।

कद्दे-अलिफ़ पैदा कुनम् चूँ रास्त पुश्ते-नूँ कुनम्।

अर्थात्—जब नून अक्षर की पीठ को सीधा करता हूँ, तो अलिफ़ के क़द को मैं उत्पन्न कर देता हूँ।

अपने असली स्वरूप (परमात्मा) में पूर्ण विश्वास उत्पन्न करो, देह और देहाध्यास कैसे। तुम तो मुख्य ईश्वर हो।

गुफ़्तम् शहा चंदीं ग़ना दारी व मन दर फ़ाक़ा अम्।
गुफ़्ता बिया, बिगुज़र ज़े ख़ुद, ता मन तुरा क़ारूँ कुनम्॥

अर्थ—मैंने बादशाह से कहा कि आप इतने अमीर हैं, और मैं भूखों मरता हूँ। उसने उत्तर दिया कि आ, और अपने अहंकार से परे हो, मैं तुझे क़ारूँ (कुबेर) बना दूँ।

तुम तो राम हो, तुम विना कुछ और है ही नहीं। मेरा-तेरा आदि संबंध के क्या अर्थ? शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्। इस प्रकार सीधी पीठवाली कुब्जा (यथार्थ श्रद्धा) को एक श्वास और एक प्राण बनाते ही

कंस-वंश कहाँ रह जायँगे। स्वराज्य के तत्काल प्राप्त होने में क्या संशय है? यह श्रद्धा जब तक अहंकार (कंस) की सेवा में है, तब तक पीठ से टेढ़ी अर्थात् भ्रांति और भ्रम है; ज्यों ही आत्मा अर्थात् कृष्ण की सेवा में आई, त्यों ही अलिफ़ की तरह सीधी है, उत्तमताओं का भंडार है; अद्भुत सुंदरी है, उसको सदैव अपने साथ रखनेवाला (आत्म-अभ्यासी) स्वतंत्र है, और केवल वही स्वतंत्र है, अन्य कोई नहीं, अन्य कोई नहीं। इस पवित्र श्रद्धा (निश्चयात्मा) के मित्र होते ही इंद्रियों के हाव-भाव-कटाक्ष बंद हो जाते हैं, विषय-विकार दूर रह जाते हैं, इच्छाओं से पृथक्ता हो जाती है।

> चे नादाँ बूद आँ मजनूँ कि आशिक़ गश्त बर लैली।
> चो लैली रफ़्त अज़ दस्तश परेशाँ माँद दर ख़ैली॥
> अजब मन शम्से तबरेज़म् कि आशिक़ गश्ताअम् बरख़ुद।
> चो ख़ुद दर ख़ुद नज़र कर्दम न दीदम् जुज़ ख़ुदा दर ख़ुद॥

भावार्थ—वह मजनूँ कैसा मूर्ख निकला जो लैली पर आसक्त हो गया, और जब लैली हाथ से निकल गई, तो वन में व्याकुल हुआ घूमता-फिरता रहा। मैं तो विचित्र प्रकार का शम्स तब्रेज़ हूँ, जो अपने आप पर स्वयं आसक्त हूँ, और जब भीतर दृष्टि करके देखता हूँ, तो अपने में परमात्मा से इतर और कुछ नहीं देखता हूँ।

सीधी कुब्जा का जादू मंत्र केवल सत्यता है, और यह मंत्र (ॐ) ऐसा प्रभावशाली होता है कि ग्वालपन (देह-अध्यास और अहंता) के संसर्ग और संबंध एकदम तोड़ देता है। गोपियाँ (इच्छाएँ) मानो कभी थीं ही नहीं, वन-कानन से कभी प्रयोजन ही न था। सदा से राज्य ही करते चले आए हैं महाराज। ग्वालपन एक स्वप्न-सा था, बीत गया। कानन-भ्रमण एक लीला-सी थी, बंद हुई। विषय-भोग उलहना ही देते रह जायँगे।

बेवफ़ाई क्या कहूँ मैं श्याम[1] गुलरू यार की।
हमसे ख़ामोशी करें, कुब्जा से बातें प्यार की॥

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्व पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणꣳ सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः।
(तैत्तिरीय व० १, अ० १०)

अर्थ—संसार-रूपी वृक्ष का हिलानेवाला मैं हूँ। मेरी प्रसिद्धि गिरि-शृंग की भाँति ऊँची, मेरी मूल (मेरा स्वरूप) शुद्ध पवित्र है, मेरा ही अमृत (जलाल, प्रकाश) सूर्य के तेज में है, मैं प्रभापूर्ण संपत्ति हूँ। पूर्ण ज्ञान, अमर और अविनाशी मैं हूँ।

प्रश्न वा आपत्ति—ऐसे ही विचार का नाम

---

१. श्यामसुंदर।

आत्मचिंतन और ब्रह्म-अभ्यास है, तो उसे अहंकार, आत्मप्रशंसा भी और स्वार्थ कहना शोभित और उचित होगा। वह आचार्य भी अच्छे थे, जिन्होंने इस मंत्र को ब्रह्मयज्ञ की प्रतिष्ठा दी।

उत्तर—यह आपत्ति केवल वे ही बुद्धिमान् करेंगे, जो अपने आपको भी नहीं जानते। वेदांत की आत्मप्रशंसा संसार की स्वार्थ-परता और अहंता से उतनी ही विपरीत है, जितना कि वेदांत के अनुसार स्वयं आत्मा शरीर और बुद्धि आदि से परे है। मेरा सच्चा अपना आप वह नहीं है, जो तुम्हारे अपने आपसे जुदा है; वरन् मेरा सच्चा अपना आप वह है जो उससे जुदा है, जिसको सर्वसाधारण "मेरा अपना आप" कहते हैं, जिसको ऊपर वेताल की उपाधि प्रदान की गई है। यह एक ईश्वरीय नियम है। यह ईश्वरीय नियम सब नियमों की अधीनता (बंधनों) से स्वतंत्रता का मार्ग दिखाता है। यह अटल ईश्वरीय नियम छाया की भाँति सदैव साथ रहता है; और जैसे बच्चे अपनी ही छाया से भय खाते और भागते हैं, उसी तरह ब्रह्मविद्या से वंचित लोग इस वेताल की बदौलत भाँति-भाँति की दौड़-धूप और आवारागर्दी करते, अर्थात् भटकते फिरते हैं। ज्ञानवान् महात्मा जानता है कि यह ईश्वरीय नियम मेरे ही स्वरूप की स्वतंत्रता जतलाता है।

परम स्वतंत्र की दशा

आज़ादाअम, आज़ादाअम, अज़ रंज दूर उफ़्तादाअम ।
अज़ इशवए-ज़ाले-जहाँ, आज़ादाअम बालास्तम ॥ १ ॥

तन्हास्तम, तन्हास्तम, चे बुल अजब तन्हास्तम ।
जुज़ मन न बाशद हेच शै, यकतास्तम तन्हास्तम ॥ २ ॥

चूँ कारे-मर्दम मी कुनंद, अज़ दस्तो-पा हरकत कुनंद ।
बेकार माँदम, जाए-हरकत हम मनम, हर जा स्तम ॥ ३ ॥

अज़ ख़ुद चहा बेरूँ जहम, गो मन कुजा हरकत कुनम ?
अज़ बहरचे कारे कुनम, मन रूहे-मतलबहास्तम ॥ ४ ॥

चेः मुफ़लिसम, चेः मुफ़लिसम बाख़ुद न मे दारम जबे ।
अंजम, जवाहिर, महर, ज़र, जुमला मनम, यकतास्तम ॥ ५ ॥

दीवानाअम, दीवानाअम, बा अक़लो-हुश बेगानाअम ।
बेहूदह आलम मीकुनम ईं करदमो मन ख़्वास्तम ॥ ६ ॥

नमरूद शुद मरदूद चूँ ? बूदश निगह महदूद चूँ ।
मारा तकब्बुर के सज़द, चूँ किमिया हरजास्तम ॥ ७ ॥

तालिब मकुन तौहीने-मन, दर ख़ाना-अत राम अस्त वाँ ।
रू ताफ़ती अज़ मन चुरा ? दर क़ल्बे तो पैदास्तम ॥ ८ ॥

अर्थ—(१) मुक्त हूँ, मैं मुक्त हूँ, शोक-चिंता से मैं मुक्त हूँ। संसार-रूपी बुढ़िया के नखरे-टखरों से मैं मुक्त और निर्लिप्त हूँ।

(२) मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, और कैसा विचित्र-रूप से अकेला हूँ कि मेरे बिना कोई वस्तु नहीं, मैं एकमेवा-द्वितीयं हूँ।

(३) जब लोग कार्य करते हैं और हाथ-पाँव से चेष्टा करते हैं, तो मैं बेकार रहता हूँ, क्योंकि सब कर्म का अधिष्ठान मैं सर्वत्र हूँ।

(४) अपने से बाहर मैं कैसे आऊँ? और फिर कहाँ मैं जाऊँ? जो कुछ भी काम मैं करता हूँ, मैं ही उसका तात्पर्य व प्रयोजन होता हूँ।

(५) मैं कैसा निर्धन हूँ, मैं कैसा निर्धन हूँ कि अपने साथ एक जौ भी नहीं रखता हूँ। तारे, मोती, हीरे, सूर्य और सोना यह सब मैं हूँ, और अद्वैत हूँ।

(६) मैं ऐसा पागल व बेखुद हूँ कि बुद्धि व चेतनता से संबंध नहीं रखता। व्यर्थ मैं इस संसार को रचता हूँ और रचते ही इससे पृथक् हो जाता हूँ।

(७) नमरूद मरदूद क्यों हुआ? इसलिये कि उसकी दृष्टि परिच्छिन्न थी। पर मेरी तो परिच्छिन्न दृष्टि नहीं और मुझे यह परिच्छिन्न दृष्टि कैसे शोभा देती है, जब कि मैं स्वयं महान् और सर्वत्र हूँ।

(८) ऐ जिज्ञासु! मेरा अपमान मत कर, तेरे (अंतःकरण के) भीतर राम भगवान् है, वहाँ मुझे देख। मेरे से मुख क्यों मोड़ता है? तेरे हृदय में तो मैं ही प्रकट हूँ।

अपने मज़े की खातिर गुल छोड़ ही दिए अब।
रूए-ज़मीं के गुलशन मेरे ही बन गए सब॥ १॥

जितने ज़ुबाँ के रस थे, कुल तर्क कर दिए जब।
बस ज़ायक़े जहाँ के मेरे ही बन गए सब॥ २॥

ख़ुद के लिये जो मुझसे, दीदों की दीद छूटी।
ख़ुद हुस्न के तमाशे मेरे ही बन गए सब॥ ३॥

अपने लिये जो छोड़ी ख़्वाहिश हवाख़ुरी की।
बादे-सबा के झोंके मेरे ही बन गए सब॥ ४॥

निज की ग़रज़ से छोड़ा सुनने की आरज़ू को।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गए सब॥ ५॥

जब बेहतरी के अपनी फ़िकरो-ख़याल छूटे।
फ़िकरो-ख़याले-रंगी मेरे ही बन गए सब॥ ६॥

आहा! अजब तमाशा! मेरा नहीं है कुछ भी।
दावा नहीं ज़रा भी इस जिस्मो-इस्म पर ही॥ ७॥

यह दस्तो-पा हैं सबके, आँखें ये हैं तो सबकी।
दुनिया के जिस्म लेकिन मेरे ही बन गए सब॥ ८॥

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

राम मैदानों में

एक जगह से शिकायत-भरा ख़त आया कि "राम ने बिसार क्यों दिया है।" उसका उत्तर—

"...

मन आँ ताक़त कुजा दारम कि पैमाँ रा निगह दारम्।
बिया ऐ साक़ी वो बिशकन बयक पैमाना पैमानम्॥

अर्थ—मुझमें वह शक्ति कहाँ जो अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहूँ। ऐ प्रेम-मद पिलानेवाले (साक़ी-गुरु)! आ,

मेरे इन पैमाँ (प्रतिज्ञा) को तू एक पैमाने (प्रेम-प्याले) से तोड़ दे।

कोई कार्ड-लिफ़ाफ़ा पास न था और न कोई पैसा-वैसा ही पल्ले था—

दिरमो-दाम अपने पास कहाँ।
चील के घोंसले में मास कहाँ॥

इस समय संयोग से एक किताब में दो टिकट मिल गए और उधर आपका अवश्य उत्तर चाहनेवाला पत्र मिला। उत्तर लिखा गया है। इसी ढंग पर अन्य काम-धंधे तै होते हैं।

आज लैम्प में तेल नहीं और तेल मँगाने को दाम भी नहीं। पर ऐसी बातों से यह परिणाम न निकाल लेना कि हाय-हाय ! राम तंगदस्त और दुखिया है।

तवंगरों को मुबारक हो शमए-काफ़ूरी।
क़दम से यार के रोशन ग़रीबख़ाना हुआ॥

प्रकृति राम की हज़ार जान से दासी है। प्रतिक्षण राम की सेवा करने की धुन में रहती है। आज लैंप इसलिये नहीं जलाया कि कदाचित् राम सैर को जाने से रुक जाय। दिन-भर पढ़ता रहा, अब फिर पढ़ने-लिखने लग गया, तो स्वास्थ्य में बाधा पड़ जायगी।

इश्क़ के बीमार को अच्छा शिफ़ा करे।

(दासी प्रकृति) आज रात नदी पर चाँदनी का आनंद

दिखाया चाहती है। राम परले दर्जे की अमीरी और बादशाही करता है। जब रुपए सम्मुख आते हैं, झटपट उनको मुक्त कर देता है और फिर इस चैन (निःशंक) और बेफ़िकरी (निश्चितता) से काटता है कि महाराजाधिराजों के तेज और प्रताप को हँसी के योग्य (ridiculous) बना देता है।

भला भला, जानियाँ ! मौजा लुट्टियाँ ज्ञानियाँ।
ख़ुशी रहना कार है, सोग सोगियाँ द्वार है॥

पहले तो बड़ी चिंता के साथ आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न हुआ करता था, अब आवश्यकताएँ बेचारी अपने आप पूरी होकर सामने आ जायँ, तो उन पर आँख पड़ जाती है, अन्यथा उनके भाग्य में 'राम' का ध्यान कहाँ ? वह आवश्यकताएँ जो अभी पूरी नहीं हुईं (अधूरी हैं), उनसे पूरे 'राम' को क्या प्रयोजन ?

भेस बदले महफ़िले-अहबाब में बैठे थे हम।
वह समझते थे यह कोई ओपरा सा और है॥

यह शिक्षा विद्यार्थियों को क्यों नहीं दी जाती कि जब किसी आवश्यकता को दूर करने के समान मौजूद न हों, तो वह आवश्यकता ही भान होने न पाए। ख़ूब याद रक्खो कि सामानों के मौजूद न होने में जो आवश्यकता भान होती है, वह केवल झूठी होती है।

जज साहब जब कचहरी में विराजमान होते हैं, तो उनको कमरे के झारने-बुहारने या मेज़-कुरसी सजाने, दवात-क़लम लाने और मुक़द्दमाबाज़ों को बुलाने का कुछ ख़याल नहीं होना चाहिए। उनको तो केवल न्याय के लिये अपने मन और मस्तिष्क को शांत और प्रफुल्ल रखना ही काम है। अन्य धंधे जज साहब के कष्ट उठाए बिना अपने आप निभ जायँगे, मुक़द्दमेबाज़ अपने आप ही नियत तारीख़ पर उपस्थित हो जायँगे। वकील लोग भी अपने आप पधारेंगे। मेज़, कुरसी, दवात, क़लम आदि भी चपरासी लोग समय पर अपने आप तैयार कर रक्खेंगे।

ऐ सत्य के जिज्ञासुओ! राम तुमको विश्वास दिलाता है कि यदि तुम आत्मिक परिश्रम में रात-दिन लगे रहोगे, तो तुम्हारी शारीरिक आवश्यकताएँ अपने आप निवृत्त पड़ी होंगी। तुम्हें कुछ आवश्यकता नहीं कि तुम अपने असली आसन को छोड़कर चपरासी और दास लोगों के काम को अपना धर्म मान बैठो।

संसार में नियम है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य का पद ऊँचा होता है, शारीरिक श्रम और स्थूल (मोटे) काम से उपरामता मिलती जाती है। जैसे जज इस प्रकार का कोई काम नहीं करता, वरन् जज की उपस्थिति ही से सब काम पड़े होते हैं। जज का साक्षी होना ही चपरासियों, मुक़द्दमेबाज़ों

और अरज़ीनवीसों इत्यादि को हलचल में डाल देता है। वैसे ही कर्ता-भोक्ता की पूँछ को उतारकर सचाई के उन्माद में मग्न और मस्त की साक्षी-रूप स्थिति का होना ही काम-धंधे को पड़ा चलाता है। जिस साक्षी के भय से चंद्र-सूर्य प्रकाश करते हैं, जिसके भय से नदियाँ बहती हैं, जिसकी आशंका से वायु चलती है, ऐसे साक्षी को कामना और चिंता से क्या प्रयोजन।

यह डर से मिहर[1] आ चमका, अहाहाहा ! अहाहाहा !!
उधर मह[2] बीम से लपका, अहाहाहा ! अहाहाहा !!
हवा अठखेलियाँ करती है मेरे इक इशारे से।
है कोड़ा मौत पर मेरा, अहाहाहा ! अहाहाहा !!
इकाई ज़ात में मेरी असंख्यों रंग हैं पैदा।
मज़े करता हूँ मैं क्या-क्या, अहाहाहा ! अहाहाहा !!
कहूँ क्या हाल इस दिल का कि शादी मौज मारे है।
है इक उमड़ा हुआ दरिया, अहाहाहा ! अहाहाहा !!
यह जिस्मे-'राम' ऐ बदगो[3] ! तसव्वर[4] महज़[5] है तेरा।
हमारा बिगड़ता है क्या, अहाहाहा ! अहाहाहा !!

गुल[6] को शमीम[7] आब[8] गुहर[9] और ज़र[10] को मैं,
देता हूँ जब कि देखूँ उठाकर नज़र को मैं।
शाहों को रोब[11] और हसीनों को हुस्नो-नाज़[12],

---

१. सूर्य । २. चाँद । ३. निंदक। ४. भ्रम । ५. केवल । ६. पुष्प । ७. सुगंध। ८. चमक। ९. मोती। १०. सोना। ११. प्रताप। १२. सौंदर्य व नख़रे।

देता बहादुरी हूँ बला शेरे-नर को मैं।
सूरज को सोना, चाँद को चाँदी तो दे चुके,
फिर भी तवाफ़[1] करते हैं देखूँ जिधर को मैं।
अबरुए-कहकशाँ[2] भी अनोखी कमंद है,
बेक़ैद हो असीर[3] जो देखूँ उधर को मैं।
तारे झमक-झमक के बुलाते हैं 'राम' को,
आँखों में उनकी रहता हूँ जाऊँ किधर को मैं।

आप ही डाल साया को उसको पकड़ने जायँ क्यों?
साया जो दौड़ता चले कीजिए वाय-वाय क्यों?
दीदा-ए-दिल[4] हुआ जो वा[5] खुब गया हुस्ने-दिलरुबा[6]।
यार खड़ा हो सामने आँख न फिर लड़ाए क्यों?
गंजे-निहाँ[7] के कुफ़्ल पर सिर ही तो मुहरे-शाह है।
तोड़ के कुफ़्लो-मुहर को कंज[8] को ख़ुद न पाए क्यों?
अहलो-अयालो-मालो-ज़र[9] सबका है बार[10] 'राम' पर।
अस्प[11] पै साथ बोझ धर, सिर पै उसे उठाए क्यों?
जब वह जमाले-दिलफ़रोज़[12] सूरते-मिहरे-[13]नीमरोज़।
आप ही हो नज़ारासोज़[14] परदे में मुँह छुपाए क्यों?
दशनए-ग़मज़ा जाँसिताँ[15] नाविके-नाज़े-बेपनाह।

---

१. नाच। २. दूधिया मार्गरूपी भवें। ३. क़ैद। ४. दिल का नेत्र। ५. खुला। ६. प्यारे का सौंदर्य। ७. गुह्य भंडार वा ख़ज़ाना। ८. ख़ज़ाना वा रत्न। ९. घर-बार और धन-दौलत। १०. बोझ। ११. घोड़ा। १२. दिल को प्रकाशने वाला सौंदर्य। १३. मध्याह्न के सूर्य समान रूपवाला प्यारा। १४. प्रकट वा मूर्तिमान्। १५. प्राण हरनेवाला कटाक्ष। १६. अथाह नख़रे का तीर।

तेरा ही अक्से-रुख़[1] सही सामने तेरे आए क्यों ?
आप में यार देखकर आईना[2] पुर सफ़ा[3] कि यों।
मारे खुशी के क्या कहूं शशदर-सा[4] रह गया कि यों ॥
रो के जो इल्तमास[5] की दिल से न भूलियो कभी।
परदा हटा दुई मिटा मह[6] ने भुला दिया कि यों ॥
मैंने कहा कि रंजो-ग़म[7] मिटते हैं किस तरह कहो।
सीना लगा के सीने से मह ने बता दिया कि यों ॥
गरमी हो इस बला की हाय ! भुनते हों जिससे मर्दोज़न[8]।
अपनी ही आबो-ताब[9] है, खुद ही हूँ देखता कि यों ॥
दुनिया व आक़बत[10] बना, वाह वा जो जुह्ल[11] ने किया।
तारों-सा[12] मिहरे-'राम' ने, पल में उड़ा दिया कि यों ॥

शरीर कठिन रोग से पीड़ित होता है। ज्वर, खाँसी, पीड़ा और पेचिश अपने-अपने बल की परीक्षा करते हैं। उस अवसर पर 'राम' का गाना।—

वाह वा ऐ तप व रेज़श[13] वाह वा।
हब्बाज़ा[14] ऐ दर्दो-पेचिश वाह वा ॥
ऐ बलाए नागहानी[15] वाह वा।
वैलकम[16] ! ऐ मर्गे-जवानी, वाह वा ॥

---

१. मुख-छाया वा प्रतिबिंब। २. दर्पण। ३. साफ़, निर्मल। ४. आश्चर्यवत्। ५. प्रार्थना। ६. प्यारा चंद्रमुख। ७. चिंता और शोक। ८. स्त्री-पुरुष। ९. चमक, दमक। १०. लोक, परलोक। ११. अविद्या। १२. तारोंवत्। १३. ज़ुकाम। १४. बहुत खूब। १५. अचानक आपत्ति। १६. युवा-काल की मृत्यु, स्वागत।

यह भँवर, यह क़हर[1] वर्षा वाह वा।
वहरे-मिहरे-राम[2] में क्या वाह वा॥
खाँड का कुत्ता, गधा, चूहा, वला।
मुँह में डालो ज़ायक़ा है खाँड का॥
पगड़ी पाजामा दुपट्टा अँगरखा।
ग़ौर से देखा तो सब कुछ सूत था॥
दामनी तोड़ी व माला को घड़ा।
पर निगाहे-हक़[3] में है वही तिला[4]॥
मोतियाबिंद दिल की आँखों से हटा।
मर्ज़ो-सिहत[5] ऐन[6] राहते-राम[7] था॥

सोने को क्या परवाह है, ज़ेवर (आभूषण) रहे चाहे न रहे। सोने की दृष्टि से तो ज़ेवर कभी हुआ ही नहीं। सोने के ज़ेवर के ऊपर भी सोना, नीचे भी सोना, चारों ओर भी सोना, और बीच में भी सोना, हर ओर सोना ही सोना है। आभूषण तो केवल नाम-मात्र है। सोना सब दशाओं में एकरस है। मुझमें नाम और रूप ही कभी स्थित नहीं हुए, तो नाम-रूप के परिवर्तन और रूपांतर रोग और नीरोग का क्या प्रवेश है? यह मेरी एक विचित्र आश्चर्य महिमा का चमत्कार है कि मैं सबमें भिन्न-भिन्न "अहं" कल्पित कर देता हूँ, जिससे यह सब लीला

---

१. दैवी कोप। २. सूर्यरूपी राम के समुद्र में। ३. तत्त्वदृष्टि। ४. स्वर्ण। ५. रोग-नीरोग दशा। ६. ठीक, सचमुच। ७. राम का आनंद व सुख।

व्यक्ति-व्यक्ति में विभक्त होकर मेरा-तेरा का शिकार (आखेट) हो जाती है। एक दूसरे को अफ़सर-मातहत, गुरु-शिष्य, शासक-शासित, दुःखी-सुखी स्वीकार करके मदारी की पुतलियों की तरह खेल दिखाने लगते हैं।

यह मेरी काल्पनिक बनावट मेरे प्रतिबिंब या आभास के कारण अपने आपको कुछ मान बैठी है। इसके कारण मुझमें कदापि भिन्नता नहीं आती, क्योंकि समस्त अस्तित्व और सृष्टि जो इंद्रिय-गोचर है, मुझसे है। पिंजरे में चिड़िया उछलती है, कूदती है, प्रसन्न होती है, शोक भी मानती है: किंतु व्याध जानता है कि इसमें क्या शक्ति है, चुप तमाशा देखा करता है। आनंदस्वरूप मैं सदा एकांत हूँ। आप ही आप मेरे में नानात्व का बाधक होना क्या अर्थ रखता है?

अंदर-बाहर, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे हम ही हम।
उर में, सिर में, नर में, सुर में, पुर में, गिर में हम ही हम॥

समुद्र की सैर

समुद्र के किनारे राम खड़ा है। पेच खाती हुई तरंगें चरणों में लहरा रही हैं। तेज़ हवा कपड़े उड़ा रही है। समुद्र का गंभीर गर्जन जगत् के ख़याल को लीन कर रहा है।

शरीर में गति नहीं । क्या दशा है । राम कहाँ है ?....

....

....

जिस तरफ़ अब निगाह जावे है ।
आब[1] ही आब नज़र आवे है ॥

विशाल, विशाल सागर । सब जल ही जल । जल ही जल शुष्क धरती के खयाल को चित्त-पटल से धो रहा है । बड़े-बड़े नगर और बाजार, सड़कें, एवं नागरिकों के परस्पर में लड़ाई-झगड़े, कोलाहल आदि यहाँ पर स्वप्न-से प्रतीत हो रहे हैं । समुद्र के सामने संसार कोई वस्तु नहीं जान पड़ता ।

लेकिन जब दृष्टि तनिक ऊपर उठाकर देखते हैं, तो चारों ओर तना हुआ नीलवर्ण महाकाश का तटहीन सागर ऐसा विशाल, विशाल, विशाल दिखाई पड़ता है कि उसमें धरतीवाला बड़ा-बड़ा सागर नितांत डूब जाता है, नाम और चिह्न सब खो बैठता है ।

तिस पर आश्चर्य यह है कि अनंत महाकाश स्वयं आनंदस्वरूप राम में तुच्छ और अदृश्य हो जाता है । जैसे सूर्य की किरणों में मृगतृष्णा दिखाई देती है, वैसे ही इतना बड़ा महाकाश 'राम' के प्रकाश में भान होता है ।

---

१. जल ।

आफ़ताबम् आफ़ताबम् आफ़ताब।
ज़र्राहा दारंद अज़ मन रंगो-ताब॥

अर्थ—मैं सूर्य हूँ, मैं सूर्य हूँ, मैं सूर्य हूँ, और सब पदार्थ मेरे से ही चमक-दमक पाते हैं।

शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ अजर-अमर अज अविनाशी।
जासु ज्ञान से मोक्ष हो जावे, कट जावे यम की फाँसी॥ टेक॥

अनादि ब्रह्म अद्वैत द्वैत का जामें नाम-निशान नहीं।
अखंड सदा सुख जाका कोई आदि-मध्य-अवसान नहीं॥
निर्गुण निर्विकल्प निरुपमा जाकी कोई शान नहीं।
निर्विकार निरवयव माया का जामें रंचक भान नहीं॥
यही ब्रह्म हूँ मनन निरंतर करें मोक्ष-हित संन्यासी।
शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ अजर-अमर अज अविनाशी॥ १॥

सर्वदेशी हूँ, ब्रह्म हमारा एक जगह अस्थान नहीं।
रमा हूँ सबमें मुझसे कोई भिन्न वस्तु इन्सान नहीं॥
देख विचारो सिवा ब्रह्म के हुआ कभी कुछ आन नहीं।
कभी न छूटे पीड़-दुःख से जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं॥
ब्रह्मज्ञान हो जिसे उसे नहीं पड़े भोगनी चौरासी।
शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ, अजर-अमर अज अविनाशी॥ २॥

अदृष्ट अगोचर सदा दृष्ट में जाका कोइ आकार नहीं।
'नेति-नेति' कह निगम ऋषीश्वर पाते जिसका पार नहीं॥
अलख ब्रह्म लियो जान जगत् नहीं, कार नहीं कोई यार नहीं।
आँख खोल दिल की टुक प्यारे कौन तरफ़ गुलज़ार नहीं॥
सत्यरूप आनंदराशि हूँ कहें जिसे घट-घट वासी।
शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ अजर-अमर अज अविनाशी॥ ३॥

कश्मीर की सैर

हवाए खुश, फ़िज़ाए खुश, सदाए-आबशारे-खुश ।
बहारे खुश, नगारे खुश, चनारे-सायादारे-खुश ॥

अर्थ—सुंदर पवन है, सुंदर खुला मैदान है, सुहावना झरनों का शब्द है, सुंदर ऋतु है, सुंदर भाँति-भाँति का दृश्य है, और सुंदर छायादार चुनार के पेड़ हैं।

ऐ राम ! यह निर्दयता ठीक नहीं। प्रकृति ने तेरे लिये नाना रंग के दुपट्टे रँगवाए हैं, नए-नए वस्त्र पहने हैं, और तू उसकी ओर आधी-दृष्टि भी नहीं डालता। यह निर्दयता मत कर। चल दर्शन दे।

हमः आहुवाने-सहरा सरहा निहादा बर कफ़ ।
ब उमेद-आँकि रोज़े ब शिकार ख़्वाही आमद ॥

अर्थ—जंगल के सारे मृग सिरों को हाथ पर लिए हुए इस आशा से खड़े हैं कि कदाचित् तू किसी दिन उनकी ओर शिकार के लिये आयगा।

अज़ीज़ाँ वक़्तो-साअत मी शुमारंद ।
रफ़ीक़ाँ चश्मो-दिल दर इंतज़ारंद ॥

अर्थ—प्रियजन समय और घड़ियाँ गिन रहे हैं, और मित्रगण हृदय और नेत्रों से उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सरव क़दा चमाँ-चमाँ, बर लबे-जू रवाँ-रवाँ ।

फ़रशे-रहे तो कुमरियाँ, तालाए-शाँ व पा कुशा ॥

अर्थ—बहते हुए दरिया के किनारे पर लंबे सरू-वृक्ष (माशूक़) नाच रहे हैं, और बुलबुलें (सुंदरियाँ) तेरे मार्ग का बिछौना बन रही हैं। तू अपने शुभागमन से इन्हें भाग्यमान् बना।

प्रथम दृश्य

पहाड़ी खेत थिएटर (नाटकघर) की बेंचों के ढंग पर सुसज्जित हैं। एक के पीछे दूसरा अधिक ऊँचाई पर बिछा हुआ है। पानी ऊपर से गिरता हुआ साग का सारा एक बेंच पर एक-साँ फिर जाता है। वहाँ के हरे-भरे धानों को सींचने के बाद दूसरी बेंच पर उतरता है; और इसी प्रकार तीसरी पर। प्रातःकाल हरे-भरे खेत में पानी की सफ़ेद झलक इस प्रकार मालूम देती है, जैसे किसी प्यारे प्रेमपात्र के गोरे शरीर का हरे वस्त्रों में दृष्टिगोचर होना। किंतु दोपहर को दूर से देखा जाय, तो सफ़ेद पानी ही पानी दिखाई देता है, और पहाड़ चाँदी का-सा बन जाता है।

एक हरे तख़्ते पर से 'राम' जा रहा है। वीरान सुनसान हरा मैदान है। प्रफुल्लित करनेवाली वायु बिना रोक-टोक के हर समय चलती रहती है। विशाल मैदान आकाशमंडल (horizon) के सदृश नहीं है, वरन् उस सुंदरी के मस्तक की भाँति गोलाकार

है जो सौंदर्य के मद में मस्त होकर चंद्रमा को आँखें दिखा रही हो। घास क्या है, अत्यंत नरम साफ़ चादरें बिछी हैं। जान पड़ता है, स्वर्ग की सुंदरियाँ (अप्सराएँ) इसी स्थान पर नाचकर देवराज इंद्र के "खुशनूदी-मिज़ाज के परवाने" (प्रसन्न करने के पत्र) प्राप्त किया करती हैं।

भला हुआ हरि बीसरो, सिर से टली बलाय।
जैसे थे वैसे भए, अब कछु कहा न जाय॥
मुख से जपूँ न कर जपूँ, उर से जपूँ न राम।
राम सदा हमको भजे, हम पावें विश्राम॥
राम मरे तो हम मरे ? हमरी मरे बलाय।
सत्त पुरुष लियो जान जब, मरे न मारा जाय॥
हद टप्पे सो औलिया, बेहद टपे सो पीर।
हद बेहद दोनों टप्पे, ताका नाम फ़क़ीर॥
हद हद कर ड़े सब गए, बेहद गया न कोय।
हद बेहद मैदान में, रह्यो कबीरा सोय॥
मन ऐसो निर्मल भयो, जैसे गूँगा-नीर।
पीछे-पीछे हर फिरे, कहत कबीर-कबीर॥

× × × × ×

द्वितीय दृश्य

सुरा के प्याले के रूप में पहाड़ों की आकृति, ठीक बीच में शुद्ध शीतल जल, पानी अत्यंत मीठा सुस्वादु, अमृत का स्रोत। वृक्ष अत्यंत ऊँचे, घन की छायावाले। बेलें प्राकृतिक हिंडोलों की शोभा दे रही हैं। आनंददायक

झूलने लटक रहे हैं। 'राम' झूलता है और गाता है।—

दरिया से हुबाब[1] की है यह सदा[2],
तुम और नहीं हम और नहीं।
मुझको न समझ अपने से जुदा,
तुम और नहीं हम और नहीं॥
जब गुंचह[3] चमन में सुबह[4] को खिला,
तब कान में गुल[5] के यह कहने लगा।
हाँ, आज यह उक़दा[6] है हम पै खुला,
तुम और नहीं हम और नहीं॥
आईना मुक़ाबिले[7]-रुख़ जो रखा,
झट बोल उठा यों अक्स[8] उसका।
क्यों देखके हैराँ यार हुआ,
तुम और नहीं हम और नहीं॥
नासूत[9] में आके यही देखा,
है मेरी ही ज़ात से नश्वोनुमा[11]।
जैसे पम्बह[12] से तार का हो रिश्ता[13],
तुम और नहीं हम और नहीं॥
तू क्यों समझा मुझे ग़ैर[14] बता,
अपना रुख़े-ज़ेबा[15] न हमसे छुपा।
चिक पर्दा उठा टुक सामने आ,
तुम और नहीं हम और नहीं॥

---

१. बुलबुला। २. आवाज़, शब्द। ३. पुष्पकली। ४. प्रातः। ५. पुष्प। ६. रहस्य। ७. मुख के सामने दर्पण। ८. प्रतिबिंब। ९. जाग्रत्। १०. स्वरूप। ११. पुष्टि-वृद्धि। १२. रुई का गुफ्फा। १३. संबंध। १४. अन्य। १५. सुंदर मुख।

दाने ने भला खिरमन[1] से कहा,
चुप रह इस जा[2] नहीं चूँनो-चरा[3]।
वहदत[4] की झलक कसरत[5] में दिखा,
तुम और नहीं हम और नहीं॥

इधर-उधर राम की सेना कलोल कर रही है। छोटे-छोटे मुमूलों जैसे भाँति-भाँति के विहंग (पक्षी) बेल-बूटों पर फुदक रहे हैं, और प्रसन्नता-पूर्ण ध्वनि में चहचहा रहे हैं।

सफ़ेद-सफ़ेद झाग के भीतर से नीला पानी इस प्रकार झलक रहा है, जैसे गोरे रंग पर नीली-नीली नसें। किसी-किसी स्थान पर पानी के नीचे पत्थरों की यह चमक है कि यदि "सर्वत्र अपना घर न समझनेवाला" कोई मनुष्य यहाँ हो, तो तत्काल उसके चित्त में यही आए कि जैसे बने इन पत्थरों के टुकड़ों को चुराकर घर अवश्य ले जाऊँ। किंतु घर कैसा? यह वह स्थान है कि जब एक बेर देखा, तो यहीं घर कर बैठने की इच्छा होती है, छोड़ने को जी नहीं चाहता। हाय रे संसार की कामना और वासना! तेरे रस्से कैसे दृढ़ हैं, ऐसे आनंद-पूर्ण अंक (आलिंगन) से भी लोगों को खींच ले जाती है; फिर गरमी में रुलाती है और मिट्टी में मिलाती है।

---

१. अनाज का ढेर। २. स्थान, जगह। ३. क्यों, कब, कैसा अर्थात् वाद-विवाद। ४. एकता। ५. अनेकता।

प्रश्न—यहाँ लोक-परलोक लुप्त है, आनंद ही आनंद है। स्वर्ग या बहिश्त कहीं इसी का नाम न हो ?

राम—हाँ ! खूब समझे। शुभ कर्मोंवाला भाग्यशाली जगत्-जंजाल से छुट्टी पाकर कहीं इधर आता है, कुछ देर आराम करता है, फिर पूर्वले संस्कारों से खिंचा हुआ गिर जाता है। अतएव यही स्वर्ग है।

अगर फ़िरदौस बर रूए-ज़मीन अस्त।
हमीनस्तो-हमीनस्तो-हमीनस्त॥

अर्थ—यदि भूमि पर कोई स्वर्ग है तो यही है, यही है; यही है।

किंतु मेरा स्थान (परम धाम) यह नहीं, क्योंकि मेरे आनंद का वह आकर्षण है कि संसार की कोई कामना उस पर अधिकार नहीं जमा सकती, और उससे नहीं हटा सकती ; वहाँ से लौट आने के क्या अर्थ ?

रुख़सत दे बाग़वाँ कि ज़रा देख लें चमन।
जाते हैं वाँ जहाँ से फिर आया न जायगा॥

मान मान मान कहा मान ले मेरा।
जान जान जान रूप जान ले मेरा॥
जाने विना स्वरूप, ग़म न जायगा कभी।
कहते हैं वेद बार-बार बात यह सभी॥
नैनन के नैन जो है सो बैनन के बैन है।
जिसके बग़ैर शरीर में न पलक चैन है॥

ऐ प्यारी जान ! जान तू भूपों का भूप है।
नाचत है प्रकृति सदा मुजरा अनूप है॥

× × × × ×

तृतीय दृश्य

कूकरनाग के समीप एक पहाड़ी चोटी पर 'राम' आसन जमाए बैठा है। चारों पहाड़ों पर क्यारियों के ऊपर क्यारियाँ हैं, मानो कुर्सियाँ बिछी हैं। उन कुर्सियों पर पवन, वरुण, आदित्य, कुबेर आदि देवतागण विराजमान हैं। शाहंशाह राम का दरबार लगा है। नीचे मैदान में धानी, हरे, लाल, पीले रंगों के (घास के) क़ालीन और ग़लीचे बिछे हुए हैं। इस कौतुकालय में कंचनियाँ (नदियाँ) विचित्र बाँकपन से नाच रही हैं, और मीठी ध्वनियाँ करती हुई मन लुभा रही हैं। वाह रे मनोहरता ! जिसने निकट जाकर आँख लड़ाई, उसी से यह हावभाव कि हाँ मेरे हृदय में तेरा स्थान है (स्वच्छता)। बेलों के हार डाले, लाल-पीले फूल कानों में पहने, झूम-झूमकर ये ऊँचे-ऊँचे वृक्ष क्या कर रहे हैं? नदियों के सौंदर्य की शोभा बढ़ा रहे हैं।

दिलबर दिलरुबाए-मन मेकुनद अज़ बराय-मन।
नक़्शो-निगारो-रंगो-बू ताज़ा बताज़ा नौ बनौ॥

अर्थ—दिल का हरनेवाला प्यारा मेरे लिये नए-नए और भाँति-भाँति के बनाव-शृंगार करता है।

मैंने ठीक नहीं कहा, क्योंकि जिन (नदियों) को हम चंचल कंचनियाँ समझते थे, वे नाग और नागिनियाँ हैं; काट खानेवाले (अत्यंत शीतल) सर्प हैं कि लहराते-लहराते, बल खाते, साँ-साँ मचाते चले जा रहे हैं। शंकर (अमरनाथ) ने अपने साँप भेजे हैं कि 'राम' के आगे नाच दिखाएँ।

सैर कर और दूर से गुल[1] देख उस गुलज़ार के।
पर बना अपने गले का इनको मत ज़िन्हार[2] हार ॥

बाज़ीचा-ए[3]-अतफ़ाल है दुनिया मेरे आगे।
होता है शबो-रोज़[4] तमाशा मेरे आगे ॥
होता है निहाँ[5] ख़ाक में सहरा[6] मेरे होते।
घिसता है जबीं[7] ख़ाक पै दरिया मेरे आगे ॥
जुज़[8] नाम नहीं सूरते-आलम[9] मेरे नज़दीक।
जुज़ वहम नहीं हस्तिए-अशिया[10] मेरे आगे ॥

× × × × ×

चतुर्थ दृश्य

सड़क के दोनों किनारों पर आमने-सामने पंक्तियों में शमशाद (सरू-वृक्ष) आकाश से बातें करते हुए खड़े हैं,

---

१. पुष्प। २. कदापि। ३. बच्चों का खेल-स्थान। ४. रात-दिन। ५. लुप्त। ६. वन, जंगल। ७. पेशानी, माथा। ८. इतर, सिवाय। ९. जगत् का रूप। १०. वस्तु का अस्तित्व।

मानो लंबे क़द वाले प्यारे (प्रेम-पात्र) हैं कि हरे वस्त्र धारण किए हुए शरीर से शरीर मिलाए 'राम' की प्रतीक्षा में पंक्ति बाँधे हैं। विचित्र दृश्य है। किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर तो शमशाद ऐसे सटे खड़े हैं कि बेचारों का कंधे से कंधा छिलता है, और आकाश की ओर यों सिर किए हैं कि यदि उदयाचल निर्मल हो और सड़क पर ठहरकर आकाश की ओर दृष्टि उठाई जाय, तो भुवन-भास्कर (धूप) में दिन दोपहर के समय तारों का दिखाई देना कुछ बड़ी बात नहीं है।

एक दिन ऐसी सड़क पर अनंतनाग के निकट घोड़े पर सवार 'राम' जा रहा था। बादल घिर रहे थे। हवा शमशादों की ज़ुल्फ़ों से अठखेलियाँ कर रही थी। एकाएक घटा समस्त आकाश में छा गई।

> वह आई, वह आई, वह आई घटा।
> गुलिस्ताने-आलम पै छाई घटा॥
> घटा काली-काली धनुप लाल-लाल।
> कन्हैया के अबरू पै जैसे गुलाल॥

पीछे से एक सुरीली आवाज़ निकली। वायु पर सवार होकर फैलने लगी। बादलों तक गुंजार से समस्त लोक भर गया। यह एक पहाड़ी बालक बाँसुरी बजा रहा था। कैसा समा बँध गया। अहाहाहा! दिल के सातवें परदे तक वह

सुरें थँम गईं। अब किसमें शक्ति थी कि घोड़ा बढ़ाकर आगे निकल जाय। ध्वनि की ताल के साथ घोड़े का पग उठने लगा। मील एक चले गए और ख़याल तक नहीं आया।

अब ज़रा ग़ौर कीजिए, उस बाँसुरी से गोलचंद (कृष्णचंद्र) का गोपियों को साँप की तरह बिलों से खींच लाना और दीवार पर चित्रवत् बनाए रखना क्या कठिन था?

एक दिल था सो वह भी खो बैठे।
अच्छे ख़ासे फ़क़ीर हो बैठे॥
अब बिठाएँगे आपको किस जा।
एक मुद्दत के दिल को रो बैठे॥

आँ शोलारू ब ग़मज़ा दिलम रा कबाब कर्द।
मारा चिः कर्द ? ख़ानए-ख़ुद रा ख़राब कर्द॥

अर्थ—उस प्रकाश-स्वरूप प्यारे ने अपने एक संकेत (कटाक्ष) से मेरे चित्त को भुन दिया। इससे हमारा क्या बिगड़ा, उल्टा अपना ही घर उसने बरबाद कर दिया (क्योंकि मेरा वही दिल उसका घर था)।

× × × × ×

पंचम दृश्य

दोनों ओर हरे-भरे पहाड़, घन की छाया, बीच में नहर के तट पर 'राम' जा रहा है। हरी-हरी कोंपलों, प्यारी-

प्यारी पत्तियों, मनोहर बालछड़ और नरम-नरम घास से आँखें कृतार्थ हो रही हैं, और चित्त प्रफुल्लित। पग-पग पर झरनों की बहार और टेढ़े-तिरछे प्राकृतिक बागीचे निजानंद के नशे में निमग्न कर रहे हैं। हरे-भरे वृक्षों के झुरमुट कानों में फूल, गले में वेलों के हार डालकर चढ़ती जवानी के खुमार में बरातियों का-सा शृंगार कर रहे हैं।

बर लबे-जूए-जहाँ बा साज़ो-वर्गे-ताज़ाए।
हर ज़माँ आयद ख़रामाँ यारे-ख़ुश रफ़्तारे मा॥

अर्थ—संसार की नहर के किनारे मेरा अच्छी चालवाला मित्र नए-नए सामानों के साथ हर समय ठुमक-ठुमक आता है।

प्राकृतिक सुंदर सुमन, 'राम' की एक मनोरम दृष्टि पर अपना-अपना यौवन बेचने को मीनाबाज़ार लगाए, परे के परे (झुंड के झुंड) जमाय जमा हैं।

यूनानी मैथालोजी से सुना है कि सौंदर्य की परी फेन में से उत्पन्न हुई थी। किंतु "शुनीदा कै बुवद मानिंदे-दीदा", अर्थात् सुना हुआ देखा हुआ कैसे हो सकता है। यहाँ झरनों की फेन प्रत्यक्ष नृत्य करती देख लो।

पानी इतना तो गहरा, किंतु निर्मल ऐसा कि प्यारी गंगी (गंगाजी) स्मरण आती है। गोपियाँ यदि यहाँ नहातीं, तो गोलचंद को कभी आवश्यकता न पड़ती कि इनको नग्न-

शरीर देखने के लिये पानी से बाहर निकलने का कष्ट देता। यह झलकने-झलकने ऊँचे झरने! चाँदी की कमंद और रस्से मालूम देते हैं कि जिनको पकड़कर परलोक (स्वर्ग) को चढ़ जायँ, या यह हीरे के गातवाली कंचनियाँ (चादरें) हैं, जो सिर के बल नृत्य करती हुई सेवा में भूमि चूम रही हैं, और अत्यंत सुरीली आवाज़ से 'राम' की महिमा के गीत गाती जाती हैं?

आब अज़ बराए दीदनम मी आयद अज़ फरसंगहा।
बेखुद शुदा अज़ खुर्रमी ग़लताँ शवद बर संगहा॥

अर्थ—जल मेरे दर्शनार्थ पत्थरों से निकल रहा है, और प्रसन्नता में मुग्ध हुआ पत्थरों पर पेच खा रहा है।

आज व्यायाम नहीं किया, आओ कुछ देर इस झरने के नीचे छाती रखते हैं, यथेष्ट व्यायाम हो जायगा। अपनी छाती के क्षेत्र और जल की गति के वर्ग इत्यादि पर गणित-शास्त्र की रीति से जल का दबाव मालूम करेंगे, किंतु उफ़ (आश्चर्य)! यह ज़ोर का पानी, यह तो कुल गणित-सणित को बहाए ले जा रहा है, ईंटों से भी चढ़-बढ़कर है। इसके आगे छाती रखने से तो यही उत्तम होगा कि चार-पाँच पत्थर मारकर कलेजा चीर दिया जाय। ऐ पानी! तेरी नरमी, जो प्रसिद्ध उदाहरण है, आज क्या हुई? तुम्हारी शीतलता कहाँ बह गई कि इस गरमा-गरमी के

साथ दौड़े जा रहे हो ? यह आवेशोत्तेजन, यह तुंदी-तेज़ी, यह गरमी क्यों ?

जल का उत्तर—(क) मैं तो सदा शीतल हूँ। स्पर्श करके देख लो। तन ठिठुर न जाय, तो सही। यह गरमी-वरमी तमाशा करनेवाले की समझ (दृष्टि) में है।

(ख) मैं तो प्रतिक्षण नरम ही हूँ। आपकी ज़बरदस्ती है कि उल्टा मुझमें कठोरता आरोपित या कल्पित हुई है।

प्यारे पाठको ! ज़रा विचार करना, संसार-समुद्र की तीक्ष्णता और कटुता कहाँ ? तुम्हारी अपनी कृपा है कि जगत् धुँधला और अंधकार-पूर्ण दृष्टिगोचर होता है।

ख़ंजर की क्या मजाल कि इक ज़ख़्म कर सके।
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू॥

बादा अज़ मा मस्त शुद नै माज़ मैं।
हम ज़ मा दाँ बूए-गुल आवाज़े-नै॥

अर्थ—मद्य हमसे मस्त होती है, न कि हम मद्य से। इसी प्रकार पुष्प की गंध और बाँसुरी की ध्वनि तू हम ही से समझ।

तुम ही जगत् बन रहे हो।

प्रश्न—यदि वास्तव में यही बात है, तो क्या कारण है कि सचाई स्पष्ट नहीं होती। मैं ही जगत् का मूल और फिर मैं ही भय करूँ ? समझ में नहीं आता। आपकी इन

शांतिपूर्ण बातों से हमारे हृदय की तपन नहीं बुझती। माया बड़ी प्रबल है, क्या करें ?

ज़े हरफ़े-सरद नासह गरमी-ए-इश्क़म न गर्दद कम।
नियंदाज़द ज़ जोशे-ख्वेश्तन सैलाबे-दरिया रा॥

अर्थ—उपदेश करनेवालों की ठंढी बातों से मेरे इश्क़ की गरमी कम नहीं हुई। क्योंकि मेरे निजी जोश से जो भीतर इश्क़ की बाढ़ है, उसका अंदाजा नहीं लग सकता।

राम—सच है। जब तक अपने आपको स्वयं लेक्चर न दोगे, दिल की तपन क्यों बुझने की है ?

तो ख़ुद हिजाबे-ख़ुदी ऐ दिल ! अज़ मियाँ बर ख़ेज़।

अर्थ—अपना आवरण तू आप बना हुआ है, अतएव ऐ दिल ! अपने भीतर से तू आप जाग।

हमबग़ल तुझसे रहता है, हर आन 'राम' तो।
बन परदा अपनी वस्ल में हायल हुआ है तू॥

अपने हाथों से अपना मुँह कब तक ढाँपोगे ?

बर चेहरा-ए-तो नक़ाब ता कै।
बर चश्मा-ए-ख़ोर सहाब ता कै॥

अर्थ—तेरे चेहरे पर परदा कब तक रहेगा, सूर्य पर बादल कब तक रहेगा ?

साहस से काम लो। माया कुछ वस्तु ही नहीं। ज़रा से पत्ते की ओट में पहाड़ को छिपा रहे हो। जब साहस

का समुद्र ज्वार पर आता है, तो कौन-सा हिमालय है जिसको कूड़ा-कर्कट की तरह बहाकर आगे नहीं ले जा सकता। वह कौन-सा समुद्र है जिसे तुम नहीं सुखा सकते, वह कौन-सा सूर्य है जिसे परमाणु नहीं बना सकते ?

वह कौन-सा उक़दा[1] है जो वा[2] हो नहीं सकता।
हिम्मत करे इनसान, तो क्या हो नहीं सकता॥

प्रश्न—परदे और घूँघट का काम ही क्या, निरवयव और निराकार में हाथ-पाँव की चर्चा ही क्या अर्थ रखती है ? एक ही पवित्रात्मा में ये कहाँसे आ गए ? वह कौन-सी शक्ति थी जिसने सर्वशक्तिमान् पर अधिकार प्राप्त किया ? और यह किस प्रकार हो सकता है कि मेरा ही चेहरा अपने आपको ढाँप ले ?

राम—**हजाबे-जलवा हम यकसर हुजूमे-जलवा हस्त ईंजा।**
नक़ाबे नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरयानी॥

अर्थ—उसके तेज का पुंज ही यहाँ तेज का परदा बना हुआ है, जिस प्रकार नदी को और कोई परदा नहीं, बल्कि नदी की बाढ़ ही नदी का परदा हो जाती है।

चादर से मौज[3] की न छुपे चेहरा आब[4] का।
बुरक़ा[5] हुबाब[6] का न हो बुरक़ा आब का॥

---

१. रहस्य, घुंडी। २. खुलना। ३. लहर। ४. जल। ५. परदा। ६. बुलबुला।

जब वह जमाले[1]-दिल फ़रोज़ सूरते-मिहरे नीमरोज़[2]।
आप ही हो नज़ारासोज़[3] परदे में मुँह छुपाए क्यों?

सुंदर मुख पर से अंधकार का आवरण दूर करो और हृदय के नेत्रों में ज्ञान का अंजन लगाओ।

हमसे खुल जाओ वक़्ते-मयपरस्ती एक दिन।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे-मस्ती एक दिन॥

हिजाबे-नौ उरूसानी ज़ शौहरे-खुद नमी मानद।
अगर मानद शबे-मानद शबे-दीगर नमी मानद॥

अर्थ—नई दुलहिन की लज्जा अपने पति के साथ तो नहीं रहती, और यदि रहती भी है तो केवल एक रात रहती है, दूसरी रात नहीं रहती। ऐ लो!

मिक़राज़े-मौज[4] दामने-दरिया[5] कतर गई।
वहदत[6] का बुरक़ा फट गया, सारी सितर[7] गई॥

गला फाड़-फाड़कर जल पुकार रहा है—

मनम खुदा ओ बबांगे-बलंद मी गोयम्।
हर आँ कि नूर दिहद मिहरो-माह रा ओयम्॥

अर्थ—मैं पुकार-पुकारकर कहता हूँ कि मैं खुदा हूँ। जो चंद्रमा और सूर्य को प्रकाश देता है, वही मैं हूँ।

---

१. दिल को प्रकाशनेवाला। २. मध्याह्न के सूर्यवत् रूपवाला प्यारा। ३. प्रकट वा मूर्तिमान्। ४. तरंगरूपी क़ैंची। ५. दरिया का पल्ला अर्थात् किनारा। ६. एकता। ७. चादर वा परदा उठ गया।

प्रश्न—तुम तमाशा देखने आए हो कि सब वस्तुओं को खा जाने? सबकी शोभा, सबकी चमक-दमक तुम ही हो? तुम इस कवि-वाक्य के अनुरूप हो क्या?—

चाँदनी देखे अगर वह महजबीं[1] तालाब पर।
अक्से-रुख[2] की ताब[3] पानी फेर दे महताब[4] पर॥

राम—क्या आज इस कवि-वाक्य के अनुरूप हुआ हूँ? मेरे विषय में वेद कहता चला आता है—

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व्वं
तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति॥
(मुण्डक उप०, अध्याय २, खं० २, मं० १०)

अर्थ—न वहाँ सूर्य चमकता है, न चंद्र और तारे, न ये बिजलियाँ चमकती हैं, तो फिर अग्नि कहाँ? उसी के चमकने पर यह सब कुछ (जगत्) चमकता है, उसी की चमक से यह सब चमक रहा है।

(१) पहाड़ों का यों लंबी ताने यह सोना।
यह गुंजान दरख्तों का दोशाला होना॥
वह दामन में सब्ज़ा की मख़मल बिछौना।
नदी का बिछौने की झालर पिरोना॥
यह राहत मुजस्सम यह आराम मैं हूँ।
कहाँ कोहो-दरिया, यहाँ मैं ही मैं हूँ॥

---

१. चंद्रमुख प्यारा। २. प्रतिबिंब। ३. चमक। ४. चंद्र।

नोट—झालरदार मख़मल के बिछौने पर दोशाला ओढ़े कुंभकर्ण की तरह लंबे पर्वतीय शृंखला का विस्तारित होना ठीक मस्ती (घन-सुषुप्ति, आनंदमय-कोष) का स्वरूप है। इस सुषुप्ति या आनंदमय-कोष में प्रकाश या आनंद (कूटस्थ) मैं हूँ। मुझे जानने पर यह सुषुप्तिरूप पहाड़, नदी आदि कहाँ रहने पाते हैं ? तत्त्व-वस्तु का पता लगते ही भ्रांति दूर हो जाती है।

ऐ ज़ रूयत गुलिस्ताँ हा शर्मसार।
दर गुलो-गुलज़ार चूनत याफ़्तम् ॥

अर्थ—जब मैंने तुझको बाग़ में देखा, तो बाग़ को तेरे मुख के आगे शरमिंदा पाया, अर्थात् तेरा-सा सौंदर्य बाग़ में कहाँ ?

(२) सफ़ेद-सफ़ेद बादल कभी घोड़े के रूप में, कभी रेल के रूप में, कभी मनुष्य की आकृति में पहाड़ों पर हाथी की मस्त चाल से चलते हुए स्वप्नावस्था की चंचल दशा दिखा रहे हैं। प्रकृति इस अवस्था में भी स्त्रियोंवाले हाव-भाव नहीं छोड़ती। अपने पति 'राम' की आनंद-दृष्टि प्राप्त करने के लिये कभी रोती है, कभी हँसती है—

यह पर्वत की छाती पै बादल का फिरना।
वह दम भर में अबरों[1] से पर्वत का घिरना ॥

---

1. बादल।

गरजना, चमकना, कड़कना, निखरना ।
छमाछम छमाछम यह बूँदों का गिरना ॥
अरूसे-फ़लक[1] का वह हँसना यह रोना ।
मेरे ही लिये है फ़क़त जान खोना ॥

(३) कोसों तक प्रकृति की वाटिका का चले जाना, वर्ण-वर्ण के फूल चारों ओर खिले हुए—

यह वादी[2] का रंगीन गुलों से लहकना ।
फ़िज़ा[3] का यह बू से सरापा महकना ॥
यह बुलबुल सा ख़ंदाँ लबों[4] का चहकना ।
वह आवाज़े-नैं[5] का वहर सू लपकना ॥
गुलों की यह कसरत इरम[6] रूबरू है ।
यह मेरी ही रंगत, यह मेरी ही बू है ॥

(४) एक और मनोहर स्थान—

जो जू[7] और चश्मा[8] है नग़मा[9] सरा है ।
किस अंदाज़ से आब[10] बल खा रहा है ॥
यह तकियों पै तकिए हैं रेशम बिछा है ।
सुहाना समा मन लुभाना समा है ॥
जिधर देखता हूँ जहाँ देखता हूँ ।
मैं अपनी ही ताब और शाँ देखता हूँ ॥

(५) झरनों की बहार—

---

१. आकाशरूपी दुलहिन । २. घाटी । ३. मैदान । ४. हँसते ओष्ठ । ५. बाँसुरी की आवाज़ । ६. स्वर्ग । ७. नहर । ८. झरना । ९. शब्द कर रहा है । १०. जल ।

नहीं चादरें नाचती सीम-तन[१] हैं।
यह आवाज़ पाज़ेब हैं नाराज़न[२] हैं॥
फुहारों के दाने ज़ुमुर्रद[३] फ़िगन हैं।
सफ़ाई अहा! रूए-मह[४] पुर-शिकन[५] हैं॥
सबा[६] हूँ मैं गुल[७] चूमता बोसा लेता।
मैं शमशाद[८] हूँ झूमकर दाद देता॥

(६) बड़े-बड़े ऊँचे पहाड़ों को कशमीर में "पीर" कहते हैं (जैसे पीर पंचाल, पीर भुंजाल, रतन-पीर आदि)। इसका कारण यह विदित होता है कि जैसे पीर (बुड्ढा) सफ़ेद सिरवाला होता है, इन पहाड़ों की चोटियाँ भी बर्फ़ के कारण प्रायः सफ़ेद ही रहती हैं।

किंतु आनंद यह है; क्या जानें इन पीरों ने धूप में बाल सफ़ेद किए हैं। सिर तो बुड्ढे हो गए, किंतु युवापन की सब उमंगें जी में हैं। इनके हृदय हरे-भरे हैं, अर्थात् चोटियों को छोड़कर नीचे से अत्यंत ही हरे-भरे हैं। बाहर का यह कथन इन पर घटित होता है—

पीरी में न किस तरह करूँ ऐशे-जहाँ की।
दिन ढलते ही होता है तमाशा गुज़री का॥

देवदार के ऊँचे वृक्ष सुरा-सुराहियों की सूरत रखते हैं।

---

१. चाँदी की देहवाली। २. शोर मचाती हैं। ३. रत्न गिरानेवाले। ४. चाँद का मुख। ५. बल डाले हुए। ६. पवन, समीर। ७. पुष्प। ८. सरू-वृक्ष।

इनमें स्थान-स्थान पर कलकल-नाद करते हुए सोते बह रहे हैं; मानो बोतलों में से कुल-कुल के साथ सुरा निकल रही है। यह मस्ती स्वरूप 'राम' ही की एक मौज है।

मेरे सामने एक महफ़िल सजी है।
हैं सब सीम-सर पीर[1], पुरसब्ज़ जी[2] है॥
शजर[3] क्या हैं? मीना पै मीना धरी है।
न झरनों का झरना है, कुलकुल लगी है॥
लुंढाए ये शीशे कि बह निकलीं नहरें।
हैं मस्ती मुजस्सिम[4] यह या अपनी लहरें॥

(७) श्रीनगर से अनंतनाग को नौका में जाना—

रवाँ आबे[5]-दरिया है कश्ती रवाँ है।
सबा[6] नुज़हत[7]-आगीं सुबहदम[8] व ज़ाँ है॥
यह लहरों पै सूरज का जलवा अयाँ[9] है।
बलंदी पै बर्फ़ एक तजल्ली-फ़शाँ[10] है॥
ज़हूर[11] अपने ही नूर[12] का तूर[13] पर है।
पदीद[14] अपनी ही दीद[15] कुल बहरो[16] बर है॥

(८) झील "डल" में इधर-उधर के सुर्जीत पहाड़ों का प्रतिबिंब पड़ रहा है और पानी को हवा हिला रही है;

---

१. चाँदी के सिरवाले अर्थात् सफ़ेद बालोंवाले बुड्ढे (हिम के पर्वत)। २. दिल हरा-भरा है। ३. वृक्ष। ४. मस्ती स्वरूप। ५. दरिया का जल। ६. समीर। ७. सुगंधि से पूर्ण। ८. प्रभात। ९. प्रकट। १०. चमक रही है। ११. दृश्य, प्रकटीकरण। १२. सूर्य। १३. पर्वत का नाम। १४. सृष्टि। १५. दृष्टि। १६. जल-थल।

इस रूप में हल्की हवा के झोंकों से इतने बड़े पहाड़ हिलते दिखाई देते हैं। क्या आनंद है, आश्चर्य है।

डलकता है 'डल' दीदए-महलक़ा[1]-सा।
धड़कता है दिल आईना पुरसफ़ा[2] का॥
हिलाता है कोहों[3] को सदमा[4] हवा का।
खिले हैं कँवल फूल, है इक बला का॥
यह सूरज की किरणों के चप्पे लगे हैं।
अजब! नाव भी हम हैं ख़ुद खे रहे हैं॥

सूर्य नौका की भाँति डल में कंपित दिखाई देता है, और उसी सूर्य की किरणें चप्पों के समान नौका चलाने-वाली हैं। मैं ही वह सूर्य हूँ जो नौका बना है, मैं ही खेने के औज़ार (साधन) हूँ।

(९) अमरनाथ की चढ़ाई, पूर्णमासी की रात—

चढ़ाई मुसीबत, उतरना यह मुश्किल।
फिसलनी बरफ़ तिस पै आफ़त यह बादल॥
क़यामत यह सर्दी, कि बचना है बातिल[5]।
यह बू बूटियों की कि घबरा गया दिल॥
यह दिल लेना, जाँ लेना किसकी अदा[6] है?
(शिवजी जो मेरा ही अंतरात्मा है)
मिरी जाँ की जाँ जिस पै शोख़ी फ़िदा है।
(उमा, पार्वतीजी)

---

१. चंद्रमुख के नेत्रवत्। २. निर्मल दर्पण। ३. पर्वतों को। ४. झोंका। ५. मिथ्या। ६. नख़रा।

(अर्थात् शिवजी जो मेरा ही अंतरात्मा है, जिस पर कि पार्वतीजी आसक्त हैं।)

(१०) पूर्णमासी की रात—

अजब लुत्फ़ है कोह पर चाँदनी का।
यह नेचर ने ओढ़ा है जाली दुपट्टा॥
दिखाता है आधा, छिपाता है आधा।
दुपट्टे ने जोबन किया है दोबाला॥
नशे में जवानी के माशूक़ नेचर।
है लिपटी हुई 'राम' से मस्त होकर॥

(११) अमरनाथ का अत्यंत विस्तृत ईश्वरीय हाल (जिसे लोग गुफा कहते हैं)।

बरफ़ जिसमें सुस्ती है, जड़ता है, लाशै[1]।
अमर लिंग अस्तादा[2] चेतन की जा है॥
मिले यार, हुआ वस्ल[3], सब फ़ासला तै।
यही रूप दायम[4] अमरनाथ का है॥
वह आग, उपासक, तअय्युन[5] मिटा सब।
रहा 'राम' ही 'राम' में तू मिटा जब॥

हे राम !

हर सू कि दवीदेम हमा सूए-तो दीदेम।
हरजा कि रसीदेम सरे-कुए-तो दीदेम॥ १॥
हर क़िबला कि बुगज़ीद दिल अज़ बहरे-अबादत।

---

१. असत, तुच्छ। २. खड़ा। ३. मिलाप। ४. नित्य। ५. उपाधि, देहाध्यास।

आँ क़िबलए-दिल रा ख़मे-अबरुए-तो दीदेम ॥ २ ॥
हर सरवे-रवाँ रा कि दरीं गुलशने-दहर अस्त ।
बर रुस्तए-बुस्ताने-लबे-जूए-तो दीदेम ॥ ३ ॥
अज़ बादे-सबा बूए-खुश्त-दोश शमादेम ।
बा बादे-सबा क़ाफ़िला-ए-बूए-तो दीदेम ॥ ४ ॥
रूए-हमा ख़ूबाने-जहाँ रा ब तमाशा ।
दीदेम बले ज़ आईना-ए-रूए-तो दीदेम ॥ ५ ॥
दर दीदए-शुहलाए-बुताने-हमा आलम ।
करदेम नज़र नर्गिसे-जादूए-तो दीदेम ॥ ६ ॥
ता मिहरे-रुख़त बर हमा ज़र्रात न ताबद ।
ज़र्राते-जहाँ रा ब तगो-पूए-तो दीदेम ॥ ७ ॥

अर्थ—(१) जिस ओर हम दौड़े, वह सब दिशाएँ तेरी ही देखीं, अर्थात् सब ओर तू ही था । और जिस स्थान पर हम पहुँचे, वह सब तेरी ही गली का सिरा देखा, अर्थात् सर्वत्र तुझे ही पाया ।

(२) जिस उपासना के स्थान को हृदय ने प्रार्थना के लिये ग्रहण किया, उस हृदय के पवित्र धाम को तेरी भ्रू का झुकाव देखा, अर्थात् उस स्थान पर तू ही झाँकता दृष्टिगोचर हुआ ।

(३) हर सरवे-रवाँ (प्रिय वृक्ष अर्थात् प्रेमपात्र) को जो कि इस संसार-वाटिका में है, उसे तेरी नदी-तट की वाटिका का उगा हुआ देखा, अर्थात् जो भी इस जगत् में प्यारा दृष्टिगोचर हुआ, वह सब तेरे ही से प्रकट हुआ दिखाई दिया ।

(४) कल रात हमने पूर्वी वायु से तेरी सुगंध सूँघी और उस प्राची पवन के साथ तेरी सुगंध का समूह देखा, अर्थात् उसमें तेरी ही सुगंध बसी हुई थी।

(५) संसार के समस्त सुंदर पुरुषों के मुखमंडलों को कौतूहल के लिये हमने देखा, किंतु तेरे मुखड़े के दर्पण से उनको देखा, अर्थात् इन समस्त सुंदरों में तेरा ही रूप पाया।

(६) समस्त संसार के प्यारों की मस्त आँख में हमने जब देखा, तो तेरी जादू-भरी नरगिस (आँख) देखी।

(७) जब तक तेरे मुखमंडल का सूर्य समस्त परमाणुओं पर न चमके, तब तक संसार के परमाणुओं को तेरी ही ओर दौड़ते हुए देखा, अर्थात् जब तक तेरी किरण न पड़े, तब तक सत्य का जिज्ञासु तेरा ही इच्छुक रहेगा।

सेर नियम सेर नियम अज़ लबे-खंदाने-तो।
ऐ कि हज़ार आफ़रीं बर लबो-दंदाने-तो॥ १॥
सोसने-तेग़े कशीद ख़ूने समन रा बरेख़्त।
नेग़ व सोसन कि दाद? नर्गिसे-ख़ूँख़्वारे-तो॥ २॥
आईनए जाँ शुदस्त चेहरए-जाबाने-तो।
हर दो यके बूदाएम जाने-मन व जाने-तो॥ ३॥

अर्थ—(१) तुझको हँसते हुए देखकर मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ, मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ; पर प्यारे! तेरे अधर और दाँतों पर बलिहार।

(२) सोसन (पुष्प) ने चमेली का रुधिर बहाने को तलवार खींची, सोसन को तलवार किसने दी ? तेरी ख़ूँख़्वार नरगिस (पुष्परूपी नेत्र) ने। क्योंकि नेत्रों की आकृति की तुलना नरगिस के पुष्प से की जाती है।

(३) तेरा चमकता हुआ मुखड़ा मेरे प्राण का दर्पण हुआ। इस प्रकार मेरे प्राण और तेरे, दोनों एक ही हुए, क्योंकि तेरे मुखड़े में मेरे प्राण और मेरे मुखड़े में तेरे प्राण दिखाई देते हैं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

वनवास

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
दुश्मने-जाँ[1] हो न कोई मिहरबाँ कोई न हो॥ १॥
पड़िए गर बीमार तो आकर कोई पूछे न बात।
और गर मर जाइए तो नौहा-ख़्वाँ[2] कोई न हो॥ २॥

रुख़सत ऐ ज़िंदाँ[3]! जुनूँ ज़ंजीर-दर[4] खड़काए है।
मुज़्दह[5] ख़ारे-दश्त[6] फिर तलवा मेरा खुजलाय है॥

फिर बहार आई चमन में ज़ख़्मे-गुल[7] आले[8] हुए।
फिर मिरे दाग़े-जुनूँ आतश के परकाले हुए॥

जीते राम की हड्डियाँ गंगा में पड़े दो वर्ष बीत गए।

---

१. जान का शत्रु। २. रोनेवाला, शोक करनेवाला। ३. क़ैद-ख़ाना। ४. द्वार की ज़ंजीर। ५. शुभ संवाद। ६. जंगल का काँटा। ७. पुष्प के घाव। ८. ताज़ा हुए।

कशमीर-यात्रा को लगभग एक वर्ष हो चुका है।

किसी व्यक्ति को मालूम हो जाय कि यह मृगतृष्णा है, फिर वहाँ पानी भरने क्यों जायगा? यदि किसी के मारे-बाँधे चला भी जाय, तो उसका पग उत्साह से नहीं उठेगा।

संसार के विषयों की असलियत खुल गई, संसार की वस्तुओं की क़लई उतर गई, तो उनमें जी कैसे लगे? जो कुम्हार अपने चक्कर को चलाते-चलाते छोड़कर अलग अपनी गद्दी पर जा बैठा हो, वह चक्कर पिछले धक्के (inertia) के कारण कुछ देर अवश्य चलता रहता है। आख़िर कब तक! उसकी गति मंद पड़ती जायगी और धीरे-धीरे मालिक के हाथों बिना वह चक्कर स्वयं शीघ्र थम जायगा।

जिस शरीर का कर्त्ता-भोक्ता जीव अपनी सच्ची गद्दी पर आसन ग्रहण कर चुका हो, वह शरीर कब तक कुम्हार के चक्कर की भाँति घूमेगा? सांसारिक संबंध ढीले पड़ते जायँगे और धीरे-धीरे विदेह दशा आच्छादित हो जायगी।

कब सबुकदोश[1] रहे क़ैदिए-ज़िंदाने वतन[2]।
बूए-गुल[3] फाँदती है बाग़ की दीवारों को॥

अकबर का बाप हुमायूँ बादशाह मर गया, लेकिन कई

१. निःसंबंध। २. देश के क़ैदख़ाना का क़ैदी। ३. पुष्प-सुगंध।

दिन तक लोग मुल्लाशिकेवी कवि को (जिसकी आकृति हुमायूँ से बहुत मिलती-जुलती थी) राज-सिंहासन पर बैठा हुआ पाकर यही समझते रहे कि हुमायूँ जीवित है और राज कर रहा है। पर कहाँ तक छुपे? मालूम हो ही गया। ज्ञान होते ही ज्ञानी तो शरीर छोड़ बैठा, मर गया; किंतु सांसारिकों की दृष्टि में काम-काज करता मालूम होता है। निभेगी कहाँ तक?

कई तारे आकाश में टूट पड़ने के बाद भी इस भूमि के निवासियों को दूरी के कारण सैकड़ों, वरन् सहस्रों वर्षों तक दृष्टिगोचर होते रहते हैं; पर एक दिन टूटते दिख ही जाते हैं। जो रोटी एक बार खाई जाय, फिर हाथ में कैसे रह सकती है? अहंकार को जब शिवोऽहं ने खा लिया, तो फिर क्या काम देगा?

> मन अज़ आँ हुस्ने-रोज़अफ़ज़ूँ कि यूसफ़ दाश्त दानिस्तम्।
> कि इश्क़ अज़ पर्दाए-असमत बुरूँ आरद ज़ुलेख़ा रा॥

अर्थ—मैं यूसफ़ के प्रतिदिन बढ़नेवाले सौंदर्य से जान गया कि प्रेम ज़ुलेख़ा को सतीत्व के पर्दे से बाहर निकालेगा।

> मैं जो शौक़ से क़दम बढ़ा के चला,
> लगी रस्ते में कहने यह बादे-सबा[1]।

---

1. समीर।

तुझे ज़िंदा न छोड़ेगी नाज़ो-अदा[1],
मुझे उस गुले-होशरुबा[2] की क़सम ॥

अंततः आया वह दिन कि सारे काम-काज छुट गए।

दिलबरा चूँ रुख़ नमूदी शुद नमाज़े-मन क़ज़ा।
आफ़ताबे चूँ बरायद सिजदा के बाशद रवा ॥

अर्थ—ऐ प्यारे! जब तूने मुखड़ा दिखाया, तो मेरी नमाज़ क़ज़ा (भंग) हो गई क्योंकि जब सूर्य निकल आता है, तो नमाज़ कब उचित होती है।

इश्क़ के मकतब में मेरी आज बिस्मिल्लाह है।
मुँह से कहता हूँ अलिफ़ दिल से निकलता आह है॥

बेख़ुदी फ़ारिग़-अज़ मसीहम् कर्द।
दर्द-मा बूद ख़ुद दवाए मा॥

अर्थ—मेरी बेख़ुदी ने मुझको मसीह (अच्छा करनेवाले) से बेपर्दा कर दिया। इस प्रकार मेरा दर्द (बेख़ुदी) स्वयं मेरी दवा हो गया।

जिस प्रकार मृतक को इस संसार से प्रेत जानकर लोग कीर्तन करते हुए घर से बाहर छोड़ आते हैं, उसी तरह सब प्रियजन और परिजन मारू-राग गाते हुए 'राम' को गंगा की ओर रवाना कर आए।

---

१. नख़रा-टख़रा। २. अचेत करनेवाला प्यारा।

मना ! तैंने राम न जानिया रे ! राम न जानिया रे।
मना ! तैंने राम न जानिया रे॥
जैसे मोती ओस का रे, तैसे यह संसार।
देखत ही को झिलमिला रे, जात न लागी वार॥
मना ! तैंने राम न जानिया रे।
सोने का गढ़ लंक बनायो, सोने का दरबार।
रत्ती इक सोना न मिला रे, रावन मरती बार॥
मना ! तैंने राम न जानिया रे।
दिन गँवाया खेल में रे, रैन गँवाई सोय।
सूरदास भजो भगवंता, होनी होय सो होय॥
मना ! तैंने राम न जानिया रे।
राम न जानिया रे ! मना ! तैंने राम न जानिया रे॥

रेलवे-स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर प्रेम-भरे इष्ट-मित्र रो रहे हैं, और गा रहे हैं—

अलविदा[१] ऐ मेरी रियाज़ी[२] ! अलविदा।
अलविदा ऐ प्यारी रावी[3] ! अलविदा॥
अलविदा ऐ अहले-ख़ाना[४] ! अलविदा।
अलविदा मासूमे-नादाँ[५] ! अलविदा॥
अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन[६] ! अलविदा।
अलविदा ऐ शीतोष्ण ! अलविदा॥
अलविदा ऐ कुतुबो-तदरीस[७] ! अलविदा।
अलविदा ऐ ख़ुब्सो-तक़दीस[८] ! अलविदा॥

---

१. विदा हो। २. गणित-विद्या जो राम पढ़ाते थे। ३. लाहौर के दरिया का नाम है। ४. घर-बार। ५. भोलेभाले बाल-बच्चे। ६. मित्र-शत्रु। ७. पुस्तक व उसका पढ़ाना। ८. पाप-पुण्य।

अलविदा ऐ दिल ! ख़ुदा ! ले अलविदा ।
अलविदा 'राम' ! अलविदा, ऐ अलविदा !

कैसा चालाकी में तू यकता[1] है ऐ दस्ते-जुनूँ[2] ।
दस तो क्या इक तार भी बाक़ी नहीं दस्तार[3] में ॥

दीवानगी[4] से दोश[5] पै ज़ुन्नार[6] भी नहीं ।
यानी हमारी जेब में इक तार भी नहीं ॥

जब जेब ही नहीं, तो तार कैसा !

यारो ! वतन से हम गए, हमसे वतन गया ।
नक़्शा हमारे रहने का जंगल में बन गया ॥

पैरहन मे बदरम दम बदम अज़ ग़ायते-शौक़ ।
कि वजूदम हमा ओ गश्त व मन ईं पैरहनम ॥

अर्थ—ईश्वरीय लगन की अधिकता से मैं अपने वस्त्र को दिन-प्रतिदिन फाड़े डालता हूँ। क्योंकि मेरा वजूद (तन) समग्र वही हो गया और (व्यक्तिगत) मैं उसका यह वस्त्र हो गया हूँ।

मुझे इस दर्द में लज़्ज़त है ऐ जोशे-जुनूँ अच्छा।
मेरे ज़ख़्मे-जिगर के हर घड़ी टाँके उधेड़े जा।
रहा है होश कुछ बाक़ी उसे भी अब निबेड़े जा
यही आहंग[7] ऐ मुतरिब-पिसर[8] इक और छेड़े जा ॥

---

१. अद्वितीय । २. पागलपन । ३. पगड़ी । ४. पगलेपन से । ५. कंधा । ६. यज्ञोपवीत । ७. स्वर । ८. गायक-पुत्र ।

दर दिलम इश्क़ ज़ि लैला काफ़ीस्त ।
ख़्वाहिशे-वस्ल ज़िना ना इन्साफ़ीस्त ॥

अर्थ—मेरे दिल में लैली का प्रेम काफ़ी (पर्याप्त) है, इसलिये अन्य से मिलने की इच्छा रखना अन्याय है ।

पेश आमदम शहे-बंदा रा गुफ़्तम शहा कम कुन बला ।
गुफ़्ता चिरा गर आशिक़ी हरदम बला अफ़ज़ूँ कुनम् ॥

अर्थ—सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होकर मैंने कहा कि ऐ सौंदर्य के सम्राट् ! बला को कम करो । उत्तर दिया कि यदि तू आशिक़ है, तो हर वक़्त बला को मैं अधिक करूँगा जिससे तुम्हारे प्रेम की परीक्षा हो ।

जीने का न अंदोह[१] न मरने का ज़रा ग़म ।
यक-साँ[२] हैं उन्हें ज़िंदगी और मौत का आलम[३] ॥
वाक़िफ़ न बरस से न महीने से वह इकदम ।
शब[४] की न मुसीबत न कहीं रोज़[५] का मातम[६] ॥
दिन-रात घड़ी पहर महो-साल[७] में ख़ुश हैं ।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में ख़ुश हैं ॥ १ ॥

कुछ उनको तलब[८] घर की न बाहर से उन्हें काम ।
तकिया की न ख़्वाहिश है न बिस्तर से उन्हें काम ॥

---

१. शोक । २. एक समान । ३. अवस्था । ४. रात । ५. दिन । ६. शोक । ७. वर्ष व मास । ८. माँग, ज़रूरत ।

अस्थल की हवस दिल में न मंदिर से उन्हें काम।
मुफ़लिस से न मतलब न तवंगर[1] से उन्हें काम॥
मैदान में बाज़ार में चौपाल में ख़ुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में ख़ुश हैं॥ २॥

उनके लिये तो—

गर न्यामतें खाता रहा दौलत के दस्तरख़्वान पर।
मेवे मिठाई दूध घी हलवा-ओ-तुर्शी और शकर॥
या बाँध झोली भीख की टुकड़े के ऊपर धर नज़र।
होकर गदा[2] फिरने लगा कूचा-बकूचा[3] दर बदर॥
गर यों हुआ तो क्या हुआ, और वों हुआ तो क्या हुआ॥ १॥

था एक दिन वह धूम का निकले था जब असवार हो।
हर दम पुकारे था नक़ीब "आगे बढ़ो, पीछे हटो"॥
या एक दिन देखा उसे तनहा पड़ा फिरता है वह।
बस क्या ख़ुशी क्या ना ख़ुशी, यक-साँ है सब ऐ दोस्तो!॥
गर यों हुआ तो क्या हुआ, और वों हुआ तो क्या हुआ॥ २॥

या इशरतों[4] के ठाट थे, या ऐश[5] के असबाब थे।
साक़ी[6] सुराही गुलबदन[7] जामो[8]-शराबे-नाब[9] थे॥
या बेकसी की दर्द से बेहाल थे बेताब थे।
कुछ रह नहीं जाता यहाँ आख़िर को नक़्शे-आब[10] थे॥
गर यों हुआ तो क्या हुआ, और वों हुआ तो क्या हुआ॥३॥

एक वह दिन था जब ठंढी लंबी साँस खींचता, पीली

---

१. धनी। २. मँगता। ३. गली-गली, द्वार-द्वार। ४. विषय-भोग। ५. विषयानंद। ६. मदिरा पिलानेवाला। ७. पुष्प के तनवाला प्यारा। ८. प्याला। ९. अंगूर की शराब। १०. जलाकार।

रंगत के साथ छुप-छुपकर तार-तार रोता-धोता गंगा में डूबने की कामना से 'राम' यहाँ आया था—

वजहे-ज़र अज़ रूए-दारद-चश्मे लूलू बारे-मन।
क़ल्बे-मन नक़्दे-रवाँ जाँ रूए दर बाज़ारे-मन॥ १॥
पेश जाँ कि बैज़ए-ज़र्री फ़ितद बर तिश्ते-ज़र।
दर ख़रोश आयद ख़रूस अज़ नालाहाए-ज़ारे-मन॥ २॥

अर्थ—(१) इश्क़ की वजह से मेरी मोती बरसानेवाली आँख रुपयाकार है, अतएव मेरा हृदय भी इश्क़ (प्रेम) के कारण मेरे बाज़ार में सिक्के की तरह जारी है।

(२) पहले इसके कि श्वेत वा रजतवर्ण सूर्य आकाश में उदय हो, मुर्ग मेरे आर्तनाद से शोर डालने लग जाता है, अर्थात् मेरे आर्तनाद से मुर्ग जागता है और बोलता है कि प्रभात हो गया।

"गंगा, तैथों सद बलिहारे जाऊँ;
गंगा, तैथों सद बलिहारे जाऊँ।"

आज वह समय है कि उसी गोली गंगी (श्रीगंगाजी) में कपड़ा-लत्ता, वरन् शरीर का प्रत्येक रोम डालकर परम-आनंद के साथ मौज में लहरा-लहराकर 'राम' गा रहा है—

"सद बलिहारे जा गंगे ! मैथों सद बलिहारे जा।" इत्यादि।

हाजी बसूए-काबा रवद अज़ बराय हज।
अल्हमद गो कि काबा बियायद बसूए-मा॥

अर्थ—यात्री यात्रा के लिये काबा की ओर जाता है, परमात्मा को धन्यवाद दे कि काबा मेरी ओर आता है।

बाज़ आमदम बाज़ आमदम ता वक़्त रा मैमूँ कुनम्।
बाज़ आमदम बाज़ आमदम ता दर्दे, दिल-अफ़ज़ूँ कुनम्॥ १॥
बाज़ आमदम बाज़ आमदम ता बहरे-बीमाराने-दिल।
अज़ अश्के-चश्मो-आहे-शब वज़ ख़ूँ जिगर माजूँ कुनम्॥ २॥
बाज़ आमदम बाज़ आमदम ता दिलबर आँ दिलबर निहम।
अज़ हरचे जुज़ दिलबर बुवद, अज़ शहरे-दिल बेरूँ कुनम्॥ ३॥
बाज़ आमदम बाज़ आमदम चीज़े नदारम जुज़ अलिफ़।
क़द्दे-अलिफ़ पैदा शवद चूँ रास्त पुश्ते-नूँ कुनम्॥ ४॥
बाज़ आमदम बाज़ आमदम दिल-दादए शोरीदए।
ख़ुद रा मगर लैली कुनाँ आँ यार रा मजनूँ कुनम्॥ ५॥
गुफ़्तम शहा दर हिजरे-तो बस क़तराहा बारीदाअम।
गुफ़्ता चिः ग़म हर क़तरा रा मन लूलुए-मकनूँ कुनम्॥ ६॥
गुफ़्तम शहा चूँ हाज़री फ़र्दा चिः हाजत बादा रा।
गुफ़्ता बिरौं, ख़ुद रा चिबौं, ता बादा रा अकनूँ कुनम्॥ ७॥
गुफ़्तम शहा दर पर्दाहा ख़ुद रा चरा दारी निहाँ।
गुफ़्ता कि गर बेरूँ शवम सीसद चो तो मजनूँ कुनम्॥ ८॥

अर्थ—(१) मैं फिर लौट आया हूँ, मैं फिर लौट आया हूँ, जिससे समय को धन्य बनाऊँ। मैं फिर लौट आया हूँ, मैं लौट आया हूँ, जिससे हृदय की पीड़ा बढ़ाऊँ।

(२) मैं फिर लौट आया हूँ, मैं लौट आया हूँ, जिससे हृदय के बीमार के लिये अपनी आँख के आँसू रात की आह और रोदन और जिगर (यकृत्) के रक्त से माजून बनाऊँ।

(३) मैं बार-बार लौट आया हूँ, जिसमें चित्त को उस दिलबर (प्यारे) से लगाऊँ और जो कुछ दिलबर के अतिरिक्त हो, उसको हृदय-नगर से बाहर निकाल दूँ।

(४) मैं बार-बार लौट आया हूँ, जिसमें सिवाय अलिफ (अद्वैत) के और कोई वस्तु न रक्खूँ, और जब मैं नून (अहंकार) की पीठ को सीधा करूँ तो अलिफ़ जैसा सीधा आकार उत्पन्न हो जाय।

(५) मैं बार-बार वापस आया हूँ : क्योंकि मैं आशिक़ (प्रेमी) और पागल हूँ, किंतु अपने आपको लैली बनाए हुए हूँ, जिसमें उस प्यारे को मजनूँ बनाऊँ।

(६) मैंने कहा, ऐ बादशाह ! तेरी जुदाई में मैंने बहुत-से आँसू गिराए हैं। उसने उत्तर दिया कि कुछ चिंता न कर, मैं तेरे (आँसू के) प्रत्येक बूँद को गुप्त मोती (दुर्रे-नासुफ़्ता) बना दूँगा।

(७) मैंने कहा, ऐ बादशाह ! जब कि तू उपस्थित है, तो कल पर वादा पूरा करने की क्या आवश्यकता है ? उसने उत्तर दिया कि जा, अपने आपको देख, जिससे कि मैं अभी का वादा (दर्शन का इक़रार तत्काल) पूरा करूँ।

(८) मैंने कहा, ऐ बादशाह ! तू अपने आपको परदों में क्यों छिपाए रखता है ? उसने उत्तर दिया कि यदि मैं बाहर प्रकट हो जाऊँ, तो तुझ-जैसे हज़ारों को मजनूँ बना दूँ।

बादलों की गरज के उत्तर में गूँजनेवाले पहाड़, सदैव प्रसन्नता में सिर के बल नाचनेवाले झरने और आनंद-दायिनी गंगा की आवाज़ यह गीत गा रहे हैं—

गंगा का है किनार, अजब सब्ज़ाज़ार है।
बादल की है बहार हवा ख़ुशगवार है॥
क्या ख़ुशनुमा पहाड़ पै वह चश्मसार[१] है।
गंगाध्वनि सुरीली है क्या लुत्फ़दार[२] है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ १॥
वक़्ते-सबाहे[३]-ईद तमाशा तयार है।
गुलगूना[४] मुँह पै मल के खड़ा गुल अज़ार[५] है॥
शाहे-फ़लक[६] से या जो हुई आँख चार है।
मारे शरम के चेहरा बना सुर्ख़ नार[७] है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ २॥
क़तरे हैं ओस के कि दुरों[८] का क़तार है।
किरणों की उनमें बर्क़[९] वे नज़ाकत यह तार हैं॥
मुर्ग़ाने-ख़ुशनवा[१०]! तुम्हें काहे की आर[११] है।
गाओ बजाओ, शब[१२] का मिटा दिल से बार[१३] है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ३॥
माशूक़[१४] क़द दरख़्तों पै बेलों का हार है।
नें[१५] नें ग़लत है, ज़ुल्फ़ का पेचाँ यह मार[१६] है॥

---

१. झरना। २. आनंददायिनी। ३. ईद की प्रातः। ४. उबटना। ५. फूल-जैसा गालोंवाला प्यारा। ६. सूर्य। ७. अग्निवत् लाल। ८. मोती। ९. बिजली। १०. सुरीले पक्षी। ११. लज्जा। १२. रात। १३. बोझ। १४. प्रियाकार। १५. नहीं, नहीं। १६. साँप।

वाह वा, सजे सजाए हैं, कैसा शृंगार है।
अशजार[1] में चमकता है ख़ुश आबशार[2] है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ४॥
अशजार सर हिलाते हैं, क्या मस्त वार हैं।
हर रंग के गुलों से चमन लाला ज़ार[3] हैं॥
भौंरे जो गूँजते हैं पड़े ज़र-निगार[4] हैं।
आनंद से भरी यह सदा[5] ओंकार है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ५॥
गंगा के रू[6]-सफ़ा से फिसलती न गर नज़र।
लहरों पै अक्स[7] मिहर[8] का क्यों बेक़रार[9] है॥
विष्णु के शिव के वर का असासा[10] यह गंग है।
याँ मौसमे-ख़िज़ाँ[11] में भी फ़सले-बहार[12] है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ६॥
साक़ी[13] वह मै पिलाता है, तुर्शी[14] को हार है।
दिलदारे-ख़ुश[15] अदा तो सदा हमकनार[16] है॥
वाह क्या मज़े से खाने को ग़म का शिकार है।
दर्शन शराबे-नाबे-सख़ुन[17] दिल के पार है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ७॥

---

१. वृक्षों में। २. झरना। ३. सुर्ख़ रंग। ४. सुनहरे परोंवाले ५. ध्वनि। ६. निर्मल रूप। ७. प्रतिबिंब। ८. सूर्य। ९. चंचल। १०. संपत्ति, माल। ११. पतझड़ी ऋतु। १२. बसंत-ऋतु। १३. प्रेममद पिलानेवाला (गुरु)। १४. खटाई अर्थात् विषय-वासना। १५. अच्छे नख़रे-टख़रोंवाला प्यारा। १६. साथ, बग़ल में। १७. अंगूर की शराबवत् उपदेश।

बाहर निगाह कीजे तो गुलज़ार है खिला।
अंदर सरूर[१] की तो भला हद कहाँ, दिला ! ॥
कालिज क़दीम का यह सरे-मू नहीं हिला[२]।
पढ़ाता मारफ़त का सबक़ "मेरा यार" है ॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है ॥ ८ ॥

ऐ जाँ! बियाबिया[३] कि ईं दुनियाए-दीगरअस्त[४]।
आबे-दिगर, हवाए-दिगर[५] जाय दीगरअस्त ॥
ख़ूबाँ[६] ज़ ख़्वेश दूरओ-दर जहल अफ़गनंद।
ख़ूबअस्तो-जहल दूर कुनद जाय दीगरअस्त[७] ॥
साधू फ़क़ीर का तो इसी पर मदार[८] है।
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है ॥ ९ ॥

मस्ती मुदाम[९] कार यही रोज़गार है।
गुलबीं[१०] निगाह[११] पड़ते ही फिर किसका ख़ार[१२] है॥
क्यों ग़म से तू निज़ार[१३] है क्यों दिलफ़िगार[१४] है।
जब 'राम' क़ल्ब[१५] में तेरे ख़ुद यारे-ग़ार[१६] है ॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है ॥ १० ॥

---

१. मस्ती। २. बाल बाँका नहीं हुआ, अर्थात् पढ़ाना बंद नहीं हुआ। ३. आ-आ। ४. यहाँ का संसार ही और है। ५. जलवायु और स्थान भी यहाँ अन्य प्रकार का है। ६. सुंदर जन अपने स्वरूप से भूले अज्ञान में पड़े हुए हैं। ७. अज्ञान दूर हो जाने पर यह स्थान ही और हो जाता है। ८. आश्रय। ९. नित्य मस्ती। १०. पुष्प (गुण) देखनेवाली। ११. दृष्टि। १२. काँटा (दोष)। १३. दुर्बल, उदास। १४. घायल चित्त। १५. हृदय। १६. भीतर का यार अर्थात् सच्चा मित्र वा अंतर्यामी।

ॐ

गंगोत्तरी का रास्ता

केवल कमर पर कपड़ा ओढ़े राम चला जा रहा है और गा रहा है। क्या ?—"ॐ"

एक स्थान पर तो दस मील तक अत्यंत ऊँची दीवारों की तरह एक दूसरे के आमने-सामने पहाड़ों का सिलसिला चला गया है। इनके बीच में एक ओर पहाड़ से टकराती झकोले खाती गंगा बही जाती है, दूसरी ओर के ढालू पहाड़ में एक पतली पगडंडी खुदी हुई है। रात के दो या तीन बजे का समय होगा। सन्नाटा छाया हुआ है। बादल घिरा हुआ है। पक्षी पंख नहीं मारता। ऐ लो! बिजली चमकी, बादल कड़का, वर्षा पहाड़ों से बल-प्रयोग करने लगी। मार्ग पर पत्थर और वृक्ष गिरने लगे—अरारा, धम, अरारा, धम। राम के सिर पर छाता नहीं। पाँव बिलकुल नंगे हैं। हाथ में छड़ी भी नहीं। गरम कपड़े का सहारा नहीं।

वफ़सुरदनम हमा तन अलम व तरद्दुद आवला दर क़दम।
चो ग़ुबारे-नाला फ़सुर्दनम चो सरश्के-नंगे-रवानियम ॥ १ ॥
न नशीमने कि कुनम मकाँ न परे कि बर परम अज़ मियाँ।
न कुनी व इरवाए-इम्तहाँ, सितम आशियाने-रहाईयम ॥ २ ॥

अर्थ—(१) मुरझाने में तो यह सारा तन शोक-स्वरूप है।

चलते-चलते पाँव में छाले पड़ गए हैं, रोने के गुबार की तरह मेरा मुरझाना है। और लज्जा के आँसुओं की तरह मेरा चलना है।

(२) न कोई घोंसला (घर) है कि जहाँ मैं ठहर जाऊँ, और न पर ही है कि जिससे मैं उड़ जाऊँ। ओहो! दुःख है कि तू परीक्षा के रगड़े में मेरी मुक्ति भी होने नहीं देता।

दश्ते-पैमाई से है अपने बियाबाँ नाज़ाँ।
अपने पाबोस से है ख़ारे-मुग़ीलाँ नाज़ाँ॥

यह वह स्थान है कि जहाँ दिन दोपहर को भी मनुष्य का गमन कम होता है। यहाँ अँधेरी रात में कौन चल रहा है? उसके सिवा और कौन होगा, जो सुषुप्ति की घोर निशा में भी जागता है। सदोदितोऽहम्, सदोदितोऽहम्।

इसी दशा में चलते-चलते टूटी हुई सड़क सामने मिलती है। मार्ग बंद है, परंतु वह कौन-सी रुकावट है जो राम को रोक सकती है। काँटेदार झाड़ियों को पकड़-पकड़कर, पत्थरों को टटोल-टटोलकर राम पहाड़ के ऊपर चढ़ रहा है। जहाँ बकरी की भी गति कठिन है 'राम' वहाँ मौजूद है।

वजहाने-जलवा रसीदाअम सेह हज़ार पर्दा दरीदाअम।
समरे-निहाले-हक़ीक़तम, चमने-बहारे-ख़ुदाइयम॥ १॥

सरे-काबा गरम फ़सूने-मन, दिले-दैर जोशशे-ख़ूने-मन।
मगुज़र ज़ सैरे-जुनूने-मन, कि क़यामते-हमा जाइयम ॥ २ ॥

अर्थ—(१) अनुभव (आत्म-साक्षात्कार) के संसार में मैं पहुँच गया हूँ, और तीन हज़ार परदे फाड़े हैं। अब मैं तत्त्व के पेड़ का फल और ईश्वरीय बसंत-ऋतु की वाटिका हूँ।

(२) मेरा ध्यान करते ही काबे का सिर जलने लगता है, और मंदिर का हृदय मेरे रक्त से खौलने लगता है। मेरे उन्माद की सैर से दूर मत हो, क्योंकि मैं सर्वत्र प्रलय-रूप हूँ, अर्थात् मेरे दर्शन से सब नानात्व नष्ट हो जाता है।

पहाड़ की चोटी पर किस ज़ोर से ॐ ! ॐ !! ॐ !!! की ध्वनि सुनाई दे रही है। अरे पिछली रात के सोनेवालो! क्या यह कूक तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँची ? तुम्हारी नींद अभी तक नहीं खुली ? बादलो ! जाओ, संसार-भर में ढिंढोरा फेर दो, "ॐ"। बिजली ! दौड़ो। प्रकाश के अक्षरों में लिखकर दिखा दो, "ॐ"।

उत्तर में बादल गरज-गरजकर पत्थरों को जगाते हैं। बिजली वृक्षों और जानवरों को प्रकाश से जगमगा देती है। राम की आज्ञा को प्रकाश ने आँखों पर स्वीकार किया, आकाश ने सिर पर स्वीकार किया।

भारत जागा, जागा, जागा।

फ़लक गुफ़्त अहसन मलिक गुफ़्त ज़ेह।

अर्थ—आकाश से ध्वनि आई, शाबास। देवताओं ने कहा बहुत खूब, अर्थात् आकाश ने धन्यवाद कहा और देवताओं ने हर्ष प्रकट किया। ॐ, ॐ, ॐ।

ऐ गुलामी! अरे दासपन! अरी दुर्बलता! अब समय है, बाँधो बिस्तर, उठाओ लता-पता। भागो, छोड़ो मुक्त पुरुषों के देश को।

बादल तुम्हारे शोक में रो भी रहे हैं। बह जाओ गंगा में, डूब मरो समुद्र में, गल जाओ हिमालय में।

इस भयानक और विपत्ति-पूर्ण अवसर पर राम निःशंक-भाव से मृत्यु को डाँट रहा है। क्या उसे प्राणों का भय नहीं है? जिससे कोई स्थान खाली ही नहीं है, उसको भय कहाँ। मृत्यु की क्या शक्ति है कि राम की आज्ञा के बिना दम मारे। राम का यह शरीर नहीं गिरेगा, जब तक भारत सुधर न जायगा।

यह शरीर कट भी जायगा, तो भी इसकी हड्डियाँ दधीचि की हड्डियों की तरह किसी न किसी इंद्र का वज्र बनकर द्वैत के राक्षस को चकनाचूर कर ही देंगी। यह शरीर मर जायगा, तो भी इसका ब्रह्मबाण चूकेगा नहीं।

अश्वत्थामा के "ब्रह्मशर" की तरह राम का "ब्रह्मबाण" द्वैतदृष्टि और द्वैतज्ञान के वंश का बीज शेष नहीं छोड़ेगा। गर्भ में जो भेद-रूपी बच्चे-कच्चे हैं, उनको भी उड़ा देगा।

इस शुद्ध फुरना के आगे कौन ठहर सकता है ? यह ज्ञानगोला (star-shell) खाली जानेवाला नहीं। गये के सिरवाले अहंकार-रूपी रावण का बंद-बंद जुदा।

पड़ा नफ़्स को कि रावन है इससे काम नहीं।
जला के ख़ाक न कर दूँ तो "राम" नाम नहीं॥

बया ऐ सब्ज़ ख़ंगे-मन बिनह बर आस्मांहा सुम।
बख़ेज़ ऐ मुर्दा दुनिया! क़ुम, बइज़्नी क़ुम, बइज़्नी क़ुम॥

अर्थ—ऐ मेरे सब्ज़ घोड़े (मन)! आ, आकाश पर अपनी टाप रख, अर्थात् लोक-परलोक से ऊपर उठ। ऐ मुरदा (जड़) सृष्टि! उठ, मेरी आज्ञा से उठ, मेरी आज्ञा से उठ।

प्रभात का वेला (समय) है। ख़ुदमस्ती में झूमता हुआ 'राम' जा रहा है। किसी समय मौज में नाचने लग पड़ता है।

चारों ओर पहाड़ियों को सफ़ेद (बर्फ़ की) साड़ियाँ ओढ़े देखकर मारे क्रोध के मुख तमतमाने लगा—

"तुमने विधवा का वेश क्यों धारण कर रक्खा है? देखती नहीं हो, कौन आ रहा है?"

पहाड़ियों से ठंढी आह (शीतल पवन) निकलती है—

"हाय! रँगरेज़ जल गया, आज अभी तक नहीं आया।"

राम के दृष्टि उठाते ही काँपता-काँपता लाल रँगरेज़ (सूर्य) आता है। तत्काल पहाड़ियों के दुपट्टे भगवे हो गए।

रँग दे रे रँगरेज़ ! चुनरिया रँग दे।
माटी की चदरिया हमरी चुनरिया, दोनों को जोगिया रँग दे।
रँग दे रे रँगरेज़ ! चुनरिया रँग दे॥

मैं पिया ! तोरे रँग में समाय रही।
और रंग मोहे काहे प्रिय होवे, प्रीतम-रँग में लुभाय रही।
मैं पिया ! तोरे रँग में समाय रही॥
रंग वही, रँगरेज़ वही, मैं चश्क चुनरिया रँगाय रही।
मैं पिया ! तोरे रँग में समाय रही॥
हमरे पिया हम पिय की री सजनी, पिया पर ज्योरा गँवाय रही।
मैं पिया ! तोरे रँग में समाय रही॥

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

नोट—ये उपर्युक्त हृदय की अवस्था और पत्रों के उत्तर गोसाईं तीर्थरामजी ने स्वयं लिखे थे, और सन् १९०१ ई० में "जल्वा-ए-कुहसार" (पर्वतीय दृश्य) के शीर्षक से प्रकाशित हुए थे। किंतु पूरे दो वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८९८ ई० में उपर्युक्त पत्रों के जो उत्तर गोसाईंजी ने सीधे अपने श्रद्धास्पद गुरुदेव को लिखकर भेजे थे, वह उनके असली पत्र भी पाठकों के लिये यहाँ उद्धृत किए जाते हैं, इससे उन्हें ज्ञात हो जायगा कि उस समय राम की

हृदय और मस्तिष्क की अवस्था कैसी उत्तम और श्रेष्ठ थी कि घटना के दो साल बाद भी अपने पत्रों के विषय को उनकी अनुपस्थिति में ज्यों का त्यों लिख सके।

[१]

घर आने की प्रार्थना पर उत्तर

हृषीकेश समीपस्थ तपोवन

२३ अगस्त, १८६८

"संबोधन पूर्वोक्त।

एक कृपापत्र मिला, जिसमें घर आने के लिये प्रेरणा थी। इस पत्र को लेकर मैंने तत्काल परमधाम को भेज दिया, अर्थात् श्रीगंगाजी में प्रवाह कर दिया। यदि गृहस्थसंबंधी किसी शोक के विषय में पूछो, तो आपकी अत्यंत कृपा है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

अर्थ—इन पदार्थों के आदि और अंत का पता नहीं। केवल मध्य-मध्य का पता है, ऐसी अवस्था में शोक किस काम का? रहा लोगों के गिले-उलाहने, सो उनके विषय में यह प्रार्थना है—

कफ़न बाँधे हुए सिर पर तिरे कूचे में आ बैठे।
हज़ारों ताने अब हम पर लगा ले जिसका जी चाहे॥

भावार्थ—ऐ प्यारे! तेरे दरवाज़े पर कफ़न सिर पर ओढ़े हुए हम बैठे हैं, अर्थात् तेरे लिये मरने को तैयार हैं। अब हमें कोई चिंता नहीं, जिसका जी चाहे, हज़ारों ताने लगा ले।

हे भगवन्! आप ही की आज्ञा पालन कर रहा हूँ। अपने घर (निज धाम) को जा रहा हूँ। आपके वास्तविक स्वरूप से

मिल रहा हूँ। पंजाब जो पाँच नदियों (रक्त, वीर्य, मूत्र, स्वेद, राल) से मिलकर बना हुआ हमारा शरीर है, इसके अध्यास को त्यागकर ही अपने वास्तविक धाम (हरिद्वार) की प्राप्ति होती है।

इस समय रात के दस बज चुके हैं। न मनुष्य है, न मनुष्यत्व का चिह्न है, अंदर से अनाहद (अनाहत) की घनघोर है और बाहर से श्रीगंगाजी ने अनाहत की गर्जना लगा रक्खी है। भीतर से शांति है और बाहर से आनंद। यार (अपने स्वरूप) से मिलनेवाली अँधेरी रात ने जगत् के नामरूप पर कालिमा फेर रक्खी है, अर्थात् जगत् को बाहर और भीतर दोनों ओर से शून्य कर रक्खा है। इस अँधेरी रात्रि में क्या भीतर क्या बाहर? सम्मुख छलकते हुए अमृत की नदियाँ बह रही हैं। ऐसे समय संसार का स्मरण कराना? हाय, शोक!

ऐ सिकंदर! न रही तेरी भी आलमगीरी।
कितने दिन आप जिया जिसलिये दारा मारा॥

भावार्थ—ऐ बादशाह सिकंदर! तेरी भी विश्वविजय अंत में न रही। यह बता, तू कितने दिन आप जिया जिस क्षणभंगुर जीवन के लिये तूने अपने भाई दारा को मारा।

चिः निस्बत ख़ाक रा ब आलिमे-पाक।

भावार्थ—पर आप-जैसे शुद्धात्मा महापुरुष की भला उस विलासी तथा देहाध्यासी सिकंदर से क्या तुलना।

घरवालों को कह दो कि मिलना अब केंद्र पर ही उचित है, जहाँ पर मिलने से फिर जुदाई (वियोग) न हो।

वृत्त

स्फुरत्स्फारज्योत्स्ना धवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तं ध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ॥

(भर्तृहरि वैराग्यशतक)

भावार्थ—जहाँ पर उज्ज्वल और विस्तरित चाँदनी के सदृश जल है, ऐसे गंगातट पर सुखपूर्वक बैठा रहूँ। जब सारे शब्द (अथवा ध्वनियाँ) बंद हों, तब रात्रि में शिव-शिव-शिव (प्रणवरूप)हृदय-वेधक ध्वनि द्वारा सांसारिक दुःख और शोक से मुक्त होकर आनंदाश्रुओं से नेत्रों का होना सफल करूँ। ऐसे मेरे दिन कब आएँगे?

राजा लोग राज-पाट का त्याग करके ऐसे आनंद की इच्छा करते थे। देवतागण स्वर्ग वैकुंठ का ध्यान छोड़कर इस गंगातीर की कामना रखते थे। तो क्या मेरी ही प्रारब्ध फूट गई, जो इस प्राप्त आनंद को छोड़कर झूठे पदार्थों के पीछे दौड़ूँ ?

लोग तीर्थों पर आया करते हैं। तीर्थ कभी लोगों के पास चलकर नहीं जाते। घरवालों को कह दो कि तीर्थ में रमण करनेवाला जो तीर्थराम परमात्मा है, उसके चरणों में चलें, तब तीर्थराम गोसाईं का मिलाप हो सकता है। नहीं तो नहीं। जब तक हमारे घर में सत्संग-रूपी गंगा न बहेगी, मेरा वहाँ चित्त नहीं लगेगा। एक पल-भर नहीं ठहर सकूँगा।

मरे हुओं को मिलने के लिये लोग उनको संदेशा भेजकर अपने पास नहीं बुला सकते। अलबत्ता आप मरकर उनसे मिल सकते हैं। हम तो मर चुके। जीते-जी ही मर चुके। घरवाले हमको बुलाने का यत्न न करें। हम-जैसे हो जायँगे, तो तब मेल बहुत सुगमता से हो सकता है।

मुरालीवाला यदि मुरारीवाला होकर तीर्थ बन जाय, तो तीर्थों को रमणीक बनानेवाला तीर्थराम वहाँ आ सकता है। सत्त्वगुण की गंगा जहाँ न हो, हमारा वहाँ होना कठिन है।

जब सभी को अंत में सूखे फूल (हड्डियाँ) बनकर गंगा में आना है, तो क्यों नहीं अपने हरे फूल की न्याई शरीर को ज्ञान-गंगा में आनंदपूर्वक प्रवाह कर देते ? अथवा अपनी अस्थियों को ईंधन बनाकर, मज्जा-रूपी घृत डालकर प्राण-रूपी वायु से ज्ञानाग्नि में स्वाहा कर देते ? और इस प्रकार नरमेध का पुण्य लेते ?

यहाँ आठ पहर में केवल रात्रि को संतों के दर्शन के लिये कभी बाहर निकलना होता है। नहीं तो कोई आना-जाना नहीं। और आठ दिन में केवल आदित्यवार को ब्राह्मणों और संन्यासियों की सभा में व्याख्यान देने के लिये जाना पड़ता है। और कहीं नहीं।

पाँच-छे दिन हुए, कोई सौ के लगभग महात्माओं का भोजन कराया था। अत्यंत आनंद हुआ। यहाँ सत्वगुण का प्रभाव था। इन दिनों बालमुकुंद और ठाकुरदास दोनों को रवाना कर दिया हुआ है।

आपका अपना आप
तीर्थराम"

नोट—गोसाईं तीर्थरामजी इस बार तीव्र वैराग्य के कारण हरिद्वार, हृषीकेश और तपोवन एकांत-अभ्यास के लिये आए थे। उनके पिताजी ने उन्हें कुछ पत्र लिखे होंगे। जब उनके एक पत्र का भी उत्तर उनको नहीं मिला, तो उन्होंने भगत धन्नारामजी से पत्र लिखने के लिये प्रार्थना की। इस पर भगतजी ने अपनी ओर से बहुत युक्तिसहित विस्तारपूर्वक गोसाईंजी को घर में शीघ्र वापस आने के लिये लिखा, जिसका यह उत्तर है। पर इस उत्तर के पश्चात् फिर गोसाईंजी की लेखनी ने भगतजी को पुनः उस पदवी तथा उपमा से नहीं संबोधन किया, जो आज तक वह सन् १८८६ से करते आए थे।

[२]

क्या हम अकेले हैं ?

ब्रह्मपुरी, तपोवन
लछमण झूला के समीप
३० अगस्त, १८९८

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अर्थ—पूर्ण वह (लोक) है, पूर्ण यह (लोक) है, पूर्ण से पूर्ण निकाल लिया जाय, पूर्ण का पूर्ण लिया जाय, तो पूर्ण ही शेष रह जाता है ।

क्या हम अकेले हैं ?

तनहास्तम तनहास्तम दर बेहरो-वर यक्तास्तम ।
जुज़ मन नबाशद हेच शै मन जास्तम मन मास्तम ॥

भावार्थ—मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, पृथिवी और समुद्र में भी अद्वितीय हूँ । मेरे से अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है । मैं ही भूमि हूँ, मैं ही जल हूँ ।

कोई विद्यार्थी साथ नहीं, नौकर पास नहीं, ग्राम बहुत दूर है । मनुष्य का नाम काफ़ूर (कपूरवत् उड़ा हुआ) है । अरण्य है, सुनसान है ; तारों-भरी रात, आधी इधर, आधी उधर, पर क्या हम अकेले हैं ?

अकेली हमारी बला ! अभी वर्षा लौंडी स्नान कराकर गई है । हवा बाँदी चारों ओर दौड़ रही है । वह किसी प्यारे ने वृक्षों में से आवाज़ दी "हाज़िर जनाब" (प्रतीत होता है, सिंह-नाद है अथवा हस्ती की गरजना) । सैकड़ों नौकर हमारे झाड़ियों में दबे बैठे हैं, बिलों में शयन कर रहे हैं ।

हम अकेले क्यों ?

पर हाँ हम अकेले हैं । नौकर-चाकर कोई अन्य नहीं, हम

ही हैं; यह वृक्ष नहीं हैं, हम ही हैं; पवन नहीं, हम ही हैं; गंगा कहाँ? हम हैं; यह चाँद नहीं, हम हैं; परमात्मा नहीं, हम हैं; प्रियवर कौन? हम हैं; अभेदता वा एकता क्या? हम हैं। अरे "अकेले" का शब्द भी हमसे दौड़ गया।

ईं नारह ओ ईं नारह-ज़नो नीज़ ईं सहरा।
अशजारो कोहस्तानो शबो रोज़ो नगारा॥
ईं यारो माशूक़, वसालो दमे-हिजराँ।
वाद अंजमो गंगा-जलो अबरो महे-तावाँ॥
काग़ज़ क़लम चश्मतो मज़मूनो तो ख़ुद जाँ।
ईं जुमलगी रामअस्त मरा दाँ मरा दाँ॥

अर्थ—यह गरज, यह गरजनेवाला, और यह अरण्य, वृक्ष, पर्वत, रात, दिन, भाँति-भाँति के चित्र, यह प्रेमी और प्रेमपात्र, मिलाप और विरह का समय, वायु, तारे, गंगा-जल, बादल और चमकता हुआ चाँद, काग़ज़, लेखनी और तेरे नेत्र, विषय और ऐ प्यारे! तू स्वयं, यह सब के सब 'राम' है, ऐसा मुझको समझ, ऐसा मुझको समझ।

हमारा पता पूछो तो यह है

निशानम बेनिशाँ में दाँ। मकानम दर क़लब मे ख़्वाँ॥
जहाँ दर दीदाअम पिन्हाँ। मरा जोयंद गुस्ताख़ाँ॥

भावार्थ—मेरा निशान बेनिशान समझ। मेरा स्थान अपने हृदय में देख। जगत् मेरी दृष्टि में छुपा है। मुझको विरक्तजन ढूँढ़ते हैं।

क्या हम बेकार (निष्क्रिय) हैं?

मन का मानसरोवर अमृत से परिपूर्ण हो रहा है, और आनंद की नदी हृदय में से वह रही है। प्रत्येक रोम कृतकृत्य है। विष्णु के भीतर सत्त्वगुण इतना भरपूर हुआ कि समा न सका।

उस सत्वगुण के स्रोत से चरणों के द्वारा गंगा-जल बनकर सत्व-गुण वह निकला। ठीक उसी प्रकार से इस समय

नारा (जल या सत्वगुण) में शयन करनेवाला } =नारायण

तीर्थ (जल-रूप-सत्वगुणी) में रमण करनेवाला } =तीर्थराम नारायण

या तीर्थों को रमणीय (शोभावाला) बनानेवाला } =तीर्थराम नारायण

सत्त्वगुण या आनंद से भरपूर हो रहा है। उसका ब्रह्मानंद समेटे से समिटता नहीं। परमानंद की सरिता या स्रोत बनकर यह तीर्थराम साक्षात् विष्णु, पूर्णानंद की धारा जगत् को कृतार्थ करने के लिये भेज रहा है। प्रसन्नता और विश्रामता की प्रभातवायु संसार को भेज रहा है। कौन कहता है वह बेकार (निष्कर्मी) बैठा है? मैं सच कहता हूँ, इस तीर्थराम के दर्शनों से कल्याण होता है, वह गंगा है, वह तुरीया राम है, वह राम है।

धन्य भूमि धन्य काल देश वह,
धन्य माता, धन्य कुल, धन्य संबंधी।
धन्य धन्य लोचन करिहैं दरस जो,
राम तिहारो सर्वत्र सम-धी॥

मेरी

बाँकी अदाएँ देखो! चंद का-सा मुखड़ा पेखो। (टेक)
वायु में बहते जल में, बादल में मेरी लटकें।
तारों में, नाज़नीं में, मोरों में मेरी मटकें॥
बाँकी अदाएँ देखो! चंद का-सा मुखड़ा पेखो।
चलना ठुमक-ठुमककर, बालक का रूप धरकर।
घूँघट अवर उलटकर, हँसना यह बिजली बनकर॥

शबतन गुल और सूर्य, चाकर हैं तेरे पद के।
यह आन बान सजधज, ऐ राम ! तेरे सदक़े॥
बाँकी अदाएँ देखो ! चंद का-सा मुखड़ा पेखो।
जगत् सारा वार डारूँ, राम तेरे नाम पर।
इंद्र ब्रह्मा वार डारूँ, राम तेरे धाम पर॥

मैं कैसा सुंदर हूँ ! मेरी सोहनी सूरत, मेरी मोहनी मूरत, मेरी झलक, मेरी डलक, मेरा सौंदर्य, मेरी कांति, इसको मेरे नेत्रों से अतिरिक्त किसी की आँख देखने की शक्ति नहीं रखती।

आजकल लक्ष्मण झूले से परे गंगातट पर पर्वतों में निवास है। गंगा क्या है, विराट् भगवान् का हृदय। परमात्मा के हृदय या छाती पर परमात्मा का आत्मा बनकर विश्राम करता हूँ।

लेखक
राम"

[३]

हरिद्वार
१६ सितंबर, १८६८

ॐ

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

अर्थ—उस परम स्वरूप के दर्शन से हृदय की सब ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, सारे संशय दूर हो जाते हैं, और सब कर्म नष्ट हो जाते हैं।

बाहर जिस ओर ध्यान करता हूँ, प्रत्येक परमाणु से इस झंकार की गूँज उठती है—"तत्त्वमसि" (तू ही है, तू ही है)। अंदर की ओर मुख करता हूँ तो यह ढोल कुछ और सुनने नहीं देता—"अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ),

मैं कहाँ हूँ, मैं क्या हूँ, मेरे महलों में कौन, कब, क्या, इत्यादि "क्यों, कब" की गति नहीं। मन को बंदरों ने छीन लिया, बुद्धि गंगा में बह गई। चित्त को चीलें चबा गईं। अहंकार मछलियों की भेंट हुआ। पापों को हवा उड़ा ले गई। सारा संसार जीत लिया है। मेरा अटल राज, बड़े-बड़े प्रताप।

नास्ति ब्रह्म सदानन्दमिति मे दुर्मतिः स्थिता ।
क्व गता सा न जानामि यदाह तद्वपुः स्थितः ॥

अर्थ—मैं ब्रह्म नहीं हूँ, ऐसी मेरी गधे की बुद्धि थी। मैं नहीं जानता कि अब वह बुद्धि कहाँ छुप गई, किधर उड़ गई, कहीं दृष्टि में नहीं आती।

चशमे-लैला हूँ दिले-क़ैस व दस्ते-फ़रहाद ।
बोसा देना हो तो दे ले, है लबे-जाम मेरा ॥

अर्थ—लैली की आँखें हूँ, मजनूँ का दिल और फ़रहाद का हाथ हूँ। मेरा अधर समीप है, यदि चूमना हो तो चूम ले।

लेखक
राम"

[४]

लाहौर
२८ सितंबर, १८६८

"आ मेरे भंगिया ! तू आ भंग पी जा ।
आ मेरे भंगिया ! निशंग भंग पी जा ॥
भर-भर देनीयाँ मैं भंग दे प्याले ।
निशंग भंग पी जा, निहंग भंग पी जा ॥

दुनिया नहीं, पार्वती है। भंग सर्वकाल घोट रही है। शिव की आँख खुली, प्याला झट हाज़िर हुआ। बल्कि इसको भंग या मदिरा कहना भी ठीक नहीं। यह तो शराब का नशा है, या तो

भंग की मस्ती है। आपको मेरी क़सम, सच कहो, इस मस्ती और आनंद के बिना जगत् तीन काल में कभी कुछ और भी हुआ है? कदापि नहीं।

मैं यह नशा, यह मस्ती, शिव, भला क्या सोचूँ, क्या समझूँ? राम क्या सोचे-समझे?

(१) सोचना अविज्ञात वस्तु के लिये होता है, उसे सब विज्ञात हैं।

(२) सोचना अप्रकट वस्तु के लिये होता है, उसके लिये सब प्रकट हैं।

(३) सोचना किसी इष्ट-प्राप्ति के निमित्त होता है, उसकी समस्त इच्छाएँ सदा प्राप्त हैं। जिसको संसार में सोच, समझ और बुद्धि कहते हैं, यही महान् मूर्खता है।

जित देखूँ तित भरया जाम।
पी-पी मस्ती आठों याम॥
नित्य - तृप्त सुख - सागर नाम।
गिरे-बने हम तो आराम॥
देखा-सुना खपाना काम।
तीन लोक में है विश्राम॥
क्या सोचे क्या समझे राम।
तीन काल जिसको निज धाम॥

महावाक्य

घुंड कढ़के क्यों चन्न मुँह उत्ते, ओहले रहों खलो?
फ़क़ीरा! आपे अल्लाह हो॥ १॥
तेरे घट विच राम वसेंदा, क्यों पया भरना हैं तो?॥ २॥ फ़क़ी०
राम रहीम सब बंदे तेरे, तैनूँ किसदा भौ?॥ ३॥ ,,

तू मौला नहीं बंदा चंदा, झूठ दी छड दे खो। ॥ ४ ॥ फ़क़ी०
छड मौहरा सुन राम दोहाई, अपना आप न कोह ॥ ५ ॥ ,,

राम"

[५]

राम का नाच

१ अक्तूबर, १८९८

"लेखक, श्रीधन्नाराम *, स्थान, स्थानातीत।

मा रा नकुनेद यादे-हरगिज़। मा खुद हस्तेम याद बे मा ॥

भावार्थ—मुझको आप स्मरण कदापि न करें, हम स्वयं अपने अहंकार से रहित हुए स्मृति-स्वरूप हो गए हैं।

रो के जो इल्तमास की, दिल से न भूलिए कभी।
दुई मिटा, अहद बना, उसने भुला दिया कि यूँ ॥

भावार्थ—मैंने प्रार्थना की कि मुझे चित्त से कदापि न भूलिए। पर उसने अपना द्वैत-भाव मिटा दिया, और इस प्रकार मुझे और परिच्छिन्न अपने आप दोनों को भुलाकर पूछा, क्या इस तरह ?

आज तो नाचने को चित्त चाहता है। } (टेक)
नाचूँ मैं नटराज रे, नाचूँ मैं महाराज। }
सूरज नाचूँ, तारे नाचूँ, नाचूँ बन महताब रे।
ज़र्रा नाचूँ, समुद्र नाचूँ, नाचूँ मोघरा काज रे ॥ १ ॥
तन तेरे में मन † हो नाचूँ, नाचूँ नाड़ी नाड़ रे।
बादर नाचूँ, वायु नाचूँ, नाचूँ नदी अरु नाव रे ॥ २ ॥

---

* यह पत्र गोसाईं तीर्थरामजी ने अपने गुरुजी से ऐसा अभेद होकर लिखा है कि लेखक की जगह अपना नाम लिखने के बदले अपने गुरु का नाम लिख मारा है।

† मन के स्थान पर कहीं दम भी लिखा है।

गीत राग सब होवत हरदम, नाचूँ पूरा साज़ रे।
घर लागो रँग, रँग घर लागो, नाचूँ पापा दाज रे ॥ ३ ॥
मधुवा लव, बदमस्तीवाला, नाचूँ पी-पी आज रे।
राम ही नाचत, राम ही बाजत, नाचूँ हो निरलाज रे ॥" ॥ ४ ॥

[६]

व्याधि-रूपी भाँड़ों का मुजरा (नाच)

लाहौर

६ नवंबर, १८९८

ॐ श्री

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, आनंदामृत, शांति-निकेतन, मंगलमय शिव-रूपं, शुद्धमपापविद्धम्।

हमारे शरीर-रूपी महल में कुशलता-रूपी कंचनी को अपना राग-रँग सुनाते और तमाशा दिखाते बहुत काल हो गया था। अब ज्वर, उदर-पीड़ा, श्वास-रोग और खाँसी-रूपी भाँड़ों के मुजरे की बारी थी। सो उन्होंने एक पूरा सप्ताह अपनी शोर-गुल वाली (हूहाकार-रूपी) नक़लों से धूम मचाए रक्खी। कॉलेज का जाना बंद रहा, आज भाई गुरुदास और बाबा बूटामल भी यह तमाशा देखकर मुरारीवाला को पधारे हैं।

अमृतसर जाना हो, तो वीरवार से पहले चले जाना।

लेखक

ॐ"

[७]

ॐ श्री

२८ नवंबर, १८९८

"संबोधन पूर्वोक्त।

शरीर में श्लेष्मा अभी है। मिशन-कॉलेज की नौकरी में

शायद कोई हलचल शीघ्र पड़ जाय । भीतरी आनंद दिन-प्रतिदिन अधिकतर है ।

मरे न टरे न जरे हरे तम, परमानंद सो पायो।
मंगल मोद भरयो घट भीतर, गुरु श्रुति 'ब्रह्म त्वमेव' बतायो ।
लय मुझमें सब गयो रह बाकी, वासुदेव सोऽहं कर झाकी ।
टूटी ग्रंथी अविद्यानाशी, ठाकुर सत्य राम अविनाशी ।
ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

राम"

[८]

६ दिसंबर, १८९८

"संबोधन पूर्वोक्त ।

आनंद, आनंद, आनंद, बहुत आनंद है ।

रात और दिन केवल पृथिवी ही के लिये हैं, सूर्य में न रात है, न दिन है । वहाँ तो प्रकाश ही प्रकाश है । सुख, दुःख, तृष्णा और संतोष सांसारिक लोगों के लिये हैं, आप तो परमानंदघन हो । प्रकाश ही प्रकाश हो ।

राम—अहनिश का सूर्य में नाश ।
अहं प्रकाश, प्रकाश प्रकाश ॥
अग्नि को ठंढक लगे, जल को लगे प्यास ।
आनंदघन मम राम से क्या आशा को आश ॥

इकाई ज़ात में मेरी असंखों रंग हैं पैदा ।
मज़े करता हूँ मैं क्या क्या, अहाहाहा ! अहाहाहा !!

राम"

[६]

बिना कौड़ी राम बादशाह

११ दिसंबर, १८९८

"संबोधन पूर्वोक्त ।

कृपापत्र मिला । जिसमें लिखा था कि "पता नहीं आप क्या ख़्याल करते रहते हैं ।" निश्चय जानो कि जिस तरह आपके गुजराँवाले शरीर को पता नहीं कि :तीर्थराम क्या ख़्याल करता रहता है, ठीक उसी तरह आपके लाहौरवाले शरीर को भी कुछ पता नहीं कि राम क्या ख़्याल करता रहता है । राम में कोई ख़्याल दृष्टि में नहीं आता । कोई ख़्याल हो, तो दिखाई दे । निःशंक-स्वरूप और निर्मल चिदाकाश में ख़्याल-रूपी धूलि कहाँ ?

राम—चिदाकाश निर्मल घन माँहिं ।
फुरना धूल कदाचित् नाँहिं ॥

पत्र लिखने में विलंब का एक यह कारण है कि कोई कार्ड-लिफ़ाफ़ा पास नहीं था । कोई पैसा इत्यादि भी पल्ले न था । आज एक पुस्तक में से तीन टिकट मिल गए, और आपका उत्तर माँगता हुआ कार्ड सम्मुख पाया । पत्र लिखा गया है ।

यही हाल खाने-पीने-संबंधी पदार्थों के विषय में रहता है । आज लैंप में तेल नहीं है, इसलिये आज रात घर नहीं ठहरेंगे । नगर के चारों ओर सैर की जायगी । दोनों हाथों में लड्डू हैं ।

पूर्वोक्त वृत्तांत से यह परिणाम न निकाल लेना कि हाय ! हाय !! राम बड़ा धनहीन और दुःखी रहता है, कदापि नहीं । इस बाह्य निर्धनता और तंगी के कारण से ही आत्यंतिक धनाढ्यता और बादशाही कर रहा है । यह पाठ पक्का हो गया है कि जब किसी अर्थ को सिद्ध करने के साधन उद्यत न हों, तो

उसकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती (और वास्तव में जब साधन पास न हों, तो आवश्यकता का प्रतीत होना केवल झूठी भूख है)। पहले तो बड़ी चिंता के साथ आवश्यकताओं को पूरा करने का यत्न हुआ करता था। पर अब आवश्यकताएँ बेचारी स्वयं पूरी होकर सम्मुख आ जायँ, तो उन पर दृष्टि पड़ जाती है, नहीं तो उनके भाग्य में राम का ध्यान कहाँ ? प्रारब्ध-कर्म और काल-रूपी सेवकों को सौ बार आवश्यकता हो, तो आकर राम बादशाह के चरण चूमें। नहीं तो उस शाहंशाह को क्या परवाह है इस बात की कि अमुक सेवक मुजरा कर गया है कि नहीं।

राम—सौ बार ग़रज़ होवे तो धो-धो पिएँ क़दम।
क्यों चर्ख़ो-मिहरो-माह पै मायल हुआ है तू॥
ख़ंजर की क्या मजाल कि इक ज़ख़्म कर सके।
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू॥

राम"

[१०]

ॐ

२५ दिसंबर, १८९८

"संबोधन पूर्वोक्त।

छुट्टियों में अभी तक तो कहीं शरीर के जाने का विचार नहीं, कुछ पता भी नहीं।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः॥

भावार्थ—हम चल हैं, हम चल हैं नाहीं, हम नेरे, हम दूर।
अंदर सबके चानन हम ही, बाहर हैं हम नूर॥

राम"

इस समय के पश्चात् का जीवन-वृत्तांत गोसाईं तीर्थरामजी स्वयं नहीं लिख सके, और उनके अवशेष जीवन में अर्थात् सन् १८९९ से सन् १९०६ ई० तक, श्रीमान् नारायण स्वामीजी (जो उस समय नारायणदास कहलाते थे) उनके साथ लगभग लगातार रहे ; अतएव इस काल का जीवन-वृत्तांत उन्हीं की लेखनी से जो लिखा गया है, वह यहाँ तीसरे अध्याय में दिया जाता है ।

तृतीय खंड

निजानंद और त्यागावस्था

(ब्रह्मलीन श्रीस्वामी रामतीर्थजी महाराज के पट्ट शिष्य श्री आर० ऐस०, नारायण स्वामीजी की लेखनी से)

जब से 'राम' उत्तराखंड से वापस आए, मस्ती ने उनके जीवन की धारा बिलकुल पलट दी। निजानंद के बार-बार उमड़ते रहने से स्वरूप में लीनता की अवस्था उनमें दिनदुगुनी रातचौगुनी उन्नति पाने लगी, और सांसारिक कार्यों में तन-मन से व्यस्त रहने से चित्त मुँह मोड़ने लगा, और चित्त में त्याग व संन्यास की उमंगें उठने लगीं। यों तो वह पहले से ही एकांत-प्रेमी थे, किंतु आत्मसाक्षात्कार के बाद तो सांसारिक धंधों से जो भी समय बचता, उसमें वह एकांत-सेवन करते।

मिशन-कॉलेज से पृथक्ता और ओरियंटल-कॉलेज में नियुक्ति

इस निजानंद की लटक ने एकांत-सेवन की अभिरुचि 'राम' में इतनी बढ़ा दी कि सिवाय वेदांत-चर्चा और आत्म-चिंतन के और किसी भी काम को करने के लिये उनका चित्त तैयार न होता था। इसलिये मिशन-कॉलेज की छः घंटे की नौकरी अब कुछ दूभर मालूम देने लगी। इधर तो मन इस अधिक समय लेनेवाली नौकरी से उचाट हो गया, उधर प्रकृति ने ऐसा संयोग बना दिया कि उनको विवश होकर नौकरी छोड़नी पड़ी।

मिशन-कॉलिज में अन्य प्रोफ़ेसरों के सामने विद्वत्ता की योग्यता के अतिरिक्त 'राम' को एक विशेष महत्त्व यह भी प्राप्त था कि जहाँ मिशनरी लोग विद्यार्थियों को बाइबिल के सिद्धांत सिखाते और प्रभु ईसा के गीत सुनाते थे, वहाँ 'राम' बोर्ड पर गणित के प्रश्न समझाते समय गणित से वेदांत के सिद्धांत भी सिद्ध करते थे, और अवसर मिलने पर आत्मज्ञान के रहस्यों को अपनी अँगरेज़ी और उर्दू-कविताओं में या पंजाबी बुल्हेशाह व फ़ारसी मौलाना रूम के शेरों (पदों) को पढ़-पढ़कर आनंद में निमग्न होते और विद्यार्थियों को अपना आसक्त और अनुगामी बनाते रहते थे। और यह स्पष्ट है कि जो विद्वान् और ज्ञानी हो,

और साथ ही ईश्वर-प्रेम में भी रँगा हो, उसकी वाणी का प्रभाव विद्यार्थियों के अंतःकरण पर कैसा उत्तम फल लानेवाला होता है। कॉलेज के विद्यार्थी गोसाइंजी की विद्वत्ता और व्यावहारिक जीवन से ऐसे प्रसन्न रहते थे कि दूसरे कॉलेजों के विद्यार्थी भी विद्यार्थियों की प्रसन्नता का हसद (ईर्ष्या) करके झुंड के झुंड मिशन-कॉलेज में प्रविष्ट होने को आते और कहते कि जिस कक्षा में गोसाइं तीर्थरामजी पढ़ाते हैं, उसी में भरती होने हम आए हैं। भगवान् जाने, इस पर अन्य प्रोफ़ेसरों या मिशनरियों को ईर्ष्या क्यों हुई। उन्होंने गोसाइंजी को परामर्श के रूप में यों सम्मति दी कि "जिनके स्थान पर आप स्थानापन्न हैं, वह प्रोफ़ेसर साहब अब विलायत से आनेवाले हैं, इसलिये आपको चाहिए कि जहाँ कहीं किसी कॉलेज में स्थान रिक्त हो, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करें, अन्यथा कुछ सप्ताहों के पश्चात् ख़ाली बैठना होगा। इत्यादि"। इतना सुनना था कि गोसाइंजी का चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि वह प्रथम ही से इस लंबी नौकरी को छोड़ने का विचार कर रहे थे। उस समय संयोग से गवनमेंट ओरियंटल-कॉलेज में रीडरी का स्थान रिक्त था, और वह केवल दो घंटे की नौकरी थी जो गोसाइंजी की इच्छानुसार थी। वह उनको मिल गई। अब केवल दो घंटे वहाँ काम

करके शेष सारा समय वेदांत की चर्चा और आत्मविचार में व्यतीत होने लगा। कुछ समय पश्चात् आपको वेदांत और गणित की शिक्षा देने का काम उसी कॉलेज में सौंपा गया। उस काम से चित्त पर और भी अधिक प्रभाव पड़ा। मानो सोने पर सोहागा चढ़ गया। इस कार्य (ड्यूटी) ने गोसाईंजी के हृदय को पहले से भी अधिक उदार और मस्त कर दिया।

पुत्र-जन्म

इस मस्ती के ज़माने में गोसाईंजी के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। यह बालक उनके गाँव मुरालीवाला में उत्पन्न हुआ था, अतः भगत धन्नारामजी ने वहाँ से इस आनंद के समाचार की सूचना दी। इसका उत्तर गोसाईंजी अपने २५ फ़रवरी, १८९९ ई० के पत्र में इस प्रकार देते हैं—

समुद्र में एक और नदी आ पड़ी

"आपके एक पत्र से, जो संभवतः सरदार साहिबसिंहजी के हाथ का लिखा हुआ था, ज्ञात हुआ कि पुत्र * उत्पन्न हुआ है। समुद्र में एक नदी आ पड़े, तो कुछ अधिकता नहीं हो जाती, और नदी कोई न गिरे तो कुछ कमी नहीं हो जाती। सूर्य का जहाँ प्रकाश हो, वहाँ एक दीपक रक्खा गया, तो क्या, और न रक्खा

---

* पुत्र से तात्पर्य यहाँ गोसाईं तीर्थरामजी के दूसरे पुत्र गोसाईं ब्रह्मानंदजी से है, जो बी० ए०, एल-एल० बी० पास करने के बाद आजकल उज्जैन में नियुक्त हैं।

गया तो क्या ? जो बिलकुल उचित है, वह अपने आप ही होगा, किसी प्रकार का चिंता व सोच हम क्यों करें। यह सोच या चिंता करना ही अनुचित है। हम ज्ञानी नहीं, ज्ञान हैं; देह से प्रयोजन ही कुछ नहीं। देह और उसके संबंधी जानें और उनकी प्रारब्ध जाने। हमें क्या ?

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं, न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानंद रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

न मन हूँ न बुद्धी न हूँ चित्त हंकार,
नहीं कर्ण जिह्वा न चक्षू निराकार।
न हूँ पृथ्वी अप तेजनाकाश इव हूँ,
चिदानंद हूँ रूप शंकर हूँ, शिव हूँ॥"

इस वर्ष गोसाईंजी गरमी की छुट्टियों में कशमीर की सैर को गए, और श्रीनगर पहुँचकर अमरनाथ की यात्रा को चल दिए। सारी यात्रा केवल धोती से अर्थात् आधी नीचे और आधी कंधे पर किए हुए उन्होंने की। इस सैर वा यात्रा का संक्षिप्त और मनोरंजक वर्णन गोसाईंजी ने अपनी लेखनी से स्वयं लिखा था, जो दूसरे खंड में दिया जा चुका है। किंतु इस यात्रा से लाहौर लौट आने के बाद गोसाईंजी के चित्त की शांति, पवित्रता और मस्ती की ख्याति नगर-भर में फैल गई, और सत्य के जिज्ञासु झुंड दर झुंड में आकर उनका सत्संग करने लगे।

नारायण का आत्म-समर्पण

संयोग से इस जीवनी के मूल-लेखक श्रीमन्नारायण

स्वामीजी (जो उन दिनों नारायणदास के नाम से विख्यात थे) बाहर से लाहौर आ गए और अपने कृपालुमित्र लाला हरलाल साहब कायस्थ से (जो उस समय नाज़िर ज़िला थे) गोसाईंजी की मस्ती और शांति की प्रशंसा सुनी। वह झट उनके साथ उनके दर्शनार्थ जाने को तैयार हो गए। नारायण-दासजी यद्यपि उन दिनों न किसी सभा के सभ्य थे और न वेदांत की शिक्षा से कुछ संपर्क रखते थे, केवल वाद-विवाद में प्रवृत्त रहते थे, किंतु स्वामी दयानंदजी सरस्वती का सत्यार्थप्रकाश पढ़ जाने से प्रत्येक नवागत पंडित और स्वामी से शास्त्रार्थ छेड़ दिया करते थे। इसी भय के मारे कि शायद नारायणदासजी गोसाईं तीर्थरामजी के पास पहुँचकर उनसे भी शास्त्रार्थ छेड़ने न लग पड़ें, लाला हरलालजी उन्हें अपने साथ ले जाने से झिझकने लगे। किंतु जब लालाजी को मालूम हुआ कि नारायणदासजी के हृदय पर गोसाईंजी के अमृतसरवाले व्याख्यानों का गंभीर प्रभाव पड़ा हुआ है, और उसी प्रभाव के कारण नारायणदासजी ने भगवद्गीता का अध्ययन करना जारी कर रक्खा है, तो यह वचन लेकर कि "वह वहाँ चुपके बैठकर उनके दर्शन करते रहेंगे, किसी प्रकार का वाद-विवाद उनसे न करेंगे" लालाजी ने उन्हें अपने साथ ले जाना स्वीकार किया। तदनुसार नारायणदासजी वहाँ पहुँचकर कुछ घंटे चुपके बैठे गोसाईंजी

के दर्शन करते रहे। गोसाईंजी के मस्ती-भरे स्वरूप के दर्शन से जो गंभीर प्रभाव नारायणदासजी के हृदय पर पड़ा, उसका वर्णन जड़ लेखनी द्वारा नहीं किया जा सकता।

नारायणदासजी का हृदय उन दिनों धार्मिक विषयों में संदेहों से परिपूर्ण था, और सत्य की खोज में भड़कता रहता था। जिस किसी पंडित के पास वह अपने संदेहों को मिटाने जाते, उनसे या तो कुछ तनिक-सी शांति मिलती या नितांत खाली हाथ वापस आते। कई पक्षपाती पंडितों के यहाँ तो यह दशा होती कि जब उनके उत्तरों पर नारायणदासजी किंचित् तर्क करते या उनके उत्तर को अधिक स्पष्ट समझने के लिये तर्क के साथ उनसे प्रश्न करते, तो झट पंडित लोग प्रायः कह दिया करते कि "आप तो आर्यसमाजी हैं। आपको कौन समझा सकता है? आर्यसमाजी बड़े तार्किक होते हैं। आप जाइए, हम आपको नहीं समझा सकते, इत्यादि"। यह गोसाईंजी के हृदय की ही शांति और मस्ती थी जिसने नारायणदासजी-जैसे तार्किक के हृदय पर जादू-भरा प्रभाव डाला। और अपने शांतिदायक उत्तरों से न केवल उनके हृदय के संशयों को ही मिटा दिया, वरन् उन्हें अपना ऐसा आसक्त और भक्त बना लिया कि अंत में वह और किसी काम के न रहे, बल्कि संपूर्ण रूप से वह गोसाईंजी के ही हो गए। जब उनके चित्त के सारे संशय मिट

गए और व्याकुलता दूर हुई, तो फिर वह गोसाईंजी से नियमानुसार धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने लगे। प्रतिदिन रात्रि में वह उनसे उपनिषदों और अन्य वेदांत-तत्त्व के ग्रंथों को अध्ययन करते और तत्त्वज्ञान के प्रत्येक अंग पर उपदेश सुनते तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म संशयों को भी यथेष्ट तर्क के साथ समझते थे। इस प्रकार नारायणदासजी को सौभाग्य से जी भरकर गोसाईंजी का सत्संग करने का अवसर मिला। जब प्रतिदिन के सत्संग और 'राम' के मस्ती-भरे उपदेशों से नारायणदासजी का हृदय आनंदमय, प्रसन्न और हर प्रकार से संतुष्ट हो गया, तो गृहस्थी-अवस्था में ही नारायणदासजी ने अपने आपको पूर्ण-रूप से उनके अर्पण कर दिया।

रिसाला 'अलिफ़' का प्रकाशन

इस प्रकार जब नारायणदास जी ने अपने आपको पूर्ण-रूप से 'राम' के समर्पण कर दिया, तो अब दिन-रात उन्हीं की सेवा और उन्हीं की आज्ञाओं का पालन करना उनका कर्तव्य हो गया। नारायणदासजी प्रायः रात-दिन उन्हीं के पास रहते थे। सन् १८९९ ई० के अंत में गोसाईंजी के शरीर को ज्वर ने घेर लिया, उदर के शूल से शरीर कभी-कभी इतना व्याकुल होता था कि मूर्च्छा हो जाती थी। एक बार आधी रात को ऐसी मूर्च्छा आई कि श्वास का लौटना

रिसाला 'अलिफ़' का मुखपृष्ठ

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

آکو الف تیری درکار

ا

ملت عشق از ہمہ ملت جداست عاشقاں را مذہب و ملت خداست

आशा की सीमा से बाहर हो गया था। किंतु प्रकृति को अभी 'राम' के हाथ से बहुत कुछ कराना था, इसलिये लंबी मूर्च्छा होने के बाद चेतना भी ऐसी हुई कि रोग ध्वंस हो गया। जब शरीर पूर्ण-रूप से नीरोग हो गया, तो एक रात गोसाईंजी महाराज नारायणदासजी से इस प्रकार बोले कि—

"देखो नारायण! भारतवर्ष के भाग्य शायद जागनेवाले हैं; जो राम के शरीर को फिर आरोग्यता ने मुख दिखाया है। मस्तिष्क में अगणित विषय और विचार भरे पड़े हैं, क्या जाने इसी लिये ही आरोग्यता मिली है कि ये विचार और विषय लेखनीबद्ध हो जायँ। यदि ये विचार लेखनी द्वारा निबद्ध होकर जनता तक न पहुँचे, तो संभव है, शरीर फिर बिस्तर पर लिट जाय और भारतवर्ष के निवासियों की सेवा किए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय। इसलिये अच्छा यह है कि कोई ऐसा प्रबंध किया जाय, जिससे ये समस्त विचार लेखनी द्वारा निबद्ध होकर लोगों तक पहुँच जायँ।"

'राम' के ऐसे हार्दिक भाव सुनकर नारायणदासजी ने अपने मित्र लाला हरलालजी को सूचना दी, और परस्पर परामर्श होने के बाद यह निश्चित हुआ कि एक रिसाला जारी किया जाय, जिसमें धारावाहिक रूप से राम महाराज अपने समस्त विचार लेखनीबद्ध करके छपाते रहें। ऐसा

निश्चय होने पर गोसाइँजी महाराज की सेवा में सम्मति उपस्थित की गई। गोसाइँजी ने उसे स्वीकृत करके रिसाला जारी करने की आज्ञा दे दी। उस समय साल का अंत था, अतः गोसाइँजी ने अनुमति दी कि आगामी वर्ष के आरंभ से ही यह पत्र प्रकाशित किया जाय, और उसका नाम 'अलिफ़' (।) रक्खा जाय। गोसाइँजी के स्वभाव में सफ़ाई की रुचि बहुत थी, और उन दिनों लाहौर के छापाख़ानों में लिखाई और छपाई अच्छी नहीं होती थी, इसलिये रिसाला के लिये उन्होंने एक नया प्रेस जारी करने की आज्ञा प्रदान की। अतः इस रिसाला अलिफ़ के लिये एक नया प्रेस खोला गया, और सन् १९०० ई० के आरंभ से इसी प्रेस से रिसाला अलिफ़ प्रकाशित किया गया। प्रेस और पत्र दोनों का प्रबंध नारायणदासजी को सौंपा गया, और आरंभ में रुपए-पैसे की सहायता बाबू हरलालजी के ज़िम्मे की गई, यद्यपि वार्षिक चंदे से भी इसमें सहायता मिलती थी। इस प्रकार रिसाला अलिफ़ का प्रकाशन कुछ काल तक होता रहा और आरंभ में कुछ अंक दोबारा-तिबारा छापकर जनता तक मुफ़्त पहुँचाए गए। रिसाला अलिफ़ का प्रथम अंक 'आनंद' के विषय पर था, उसका उद्देश लोगों को अपने निजानंद का साक्षात्कार कराना था, इसलिये प्रेस का नाम भी "आनंद-प्रेस" रक्खा गया।

समुद्र की सैर

अभी रिसाले का एक ही अंक प्रकाशित हुआ था कि राम के भीतर समुद्र की सैर की तरंग उठी। इस मस्ती के ज़माने में जब कभी किसी ओर यात्रा करने का विचार उठता, तो तत्काल विना कौड़ी-पैसा साथ लिये राम चल पड़ते थे। अर्थात् न कोई नक़दी और न कोई दूसरा यात्रा का सामान अपने साथ लेते, वरन् अकेले केवल अपने परम प्यारे पर पूर्ण भरोसा रखते हुए रवाना हो जाया करते थे। इसी तरह समुद्र की सैर का विचार आते ही सायंकाल को रेल का एक टिकट लेकर अकेले ही चल दिए। उनके लौटने पर मालूम हुआ कि कराची और सक्खर में अपने आप कई ईश्वरभक्त उनकी मस्ती पर मोहित होकर उन्हें अपने-अपने स्थानों पर ले गए, और राम की इच्छानुसार उन्हें सब स्थानों को दिखा दिया। कराची पहुँचकर समुद्र की सैर का जो आनंद उठाया, उसका सविस्तर वर्णन अपनी लेखनी से लिखकर गोसाईंजी ने रिसाला अलिफ़ में छपाया था, वह दूसरे खंड में दिया जा चुका है।

राम और एक भक्त की चर्चा

रिसाला अलिफ़ जारी होने पर राम अब दिन-रात विविध प्रकार के लेख लिखने में प्रवृत्त रहने लगे। जो

मस्ती और आनंद उन्हें इस लेख और रचना के काम में अनुभव होता, वह कॉलेज के काम में कदापि नहीं प्राप्त होता था। यद्यपि गोसाईंजी को कॉलेज में केवल दो घंटे के लिये ही जाना पड़ता था, और वहाँ वेदांत और गणित ही पढ़ाना पड़ता था, फिर भी एक ही पुस्तक या विषय का बार-बार पढ़ाना और याद कराना मन को अधिक आनंदित नहीं करता था, इसलिये इस नौकरी को भी छोड़ने के लिये मन में घड़ी-घड़ी तरंगें उठती थीं। जब इन तरंगों की खबर राम-प्यारों में फैल गई, तो एक राम-प्यारा गोसाईंजी से इस तरंग को रोकने के लिये निवेदन करने आया। इस विषय पर बहुत देर तक परस्पर वार्तालाप होता रहा। इस वार्तालाप की सविस्तर सूचना उस समय किसी समाचारपत्र में छप गई थी, उसे पाठकों के विनोदार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है—

"**भक्त**—आप नौकरी क्यों छोड़ते हैं? आपका निर्वाह किस प्रकार होगा? पेट का पालना धर्म है। अपनी और अपने संबंधियों की चिंता रखनी चाहिए। दूसरे के दर पर जाने और भगवा भेस धारण करने से करतार नहीं मिलता। गृहस्थ में सब कुछ हो सकता है, और गृहस्थाश्रम को त्याग करना पाप है।

राम—(१) नौकरी करना तो नौकरों का काम है।

मैं तो केवल राम बादशाह हूँ। न मैं नौकर हूँ, न मेरा कोई मालिक है। मैं स्वयं अपने अस्तित्व में स्थित हूँ। शाह और शहंशाह मेरे आगे सिजदा करते (झुकते) हैं। मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीर और प्राण से विनिर्मुक्त हूँ। यह बड़ी भूल है कि तुम मुझको शरीर समझते हो। मैं तुम्हारी जान हूँ, तुम्हारा आत्मा हूँ, समस्त जड़-चेतन का आत्मा हूँ। पंचतत्त्व मेरे नौकर हैं। धरती और आकाश में ऐसा कूट-कूटकर भरा हुआ हूँ कि एक अणु भी मेरे अस्तित्व से रहित नहीं है। क्या मैं पेटपालू हूँ? मैं अपने सत्य-सिंहासन पर विराजमान हुआ प्रत्येक व्यक्ति, पशु-पक्षी, वनस्पति और खनिज में अविनाशी रूप से विद्यमान हूँ। जब तक अपने आपको शरीर में परिच्छिन्न समझता था, यह शरीर नौकरी करता था; अब राम ने अपनी असली आँखों से देखा, तो हर जगह अपने आपको घिरा हुआ पाया। आप कहते हैं, नौकरी! यहाँ न शरीर है, न मन है, न बुद्धि है, न प्राण है, न संसार। अब राम मालिक और नौकर एक आत्मा देखता है। पेट भेंट हो गया, दिल दरिया हो गया, मस्तिष्क अमर हो गया, हाथ-पाँव कट गए, और अमृत के स्रोत रोम-रोम से जारी हुए। आकाश प्रणाम करते-करते कमर टेढ़ी कर बैठा, सूर्य दर्शन करने से प्रकाशमान हो गया, चंद्रमा चमकने लगा, तारे प्रत्येक रात्रि को दिवाली मनाते

हैं, वृक्ष गुलदस्ता तैयार करके राम के पास आते हैं। तात्पर्य यह कि जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, यह मेरा ही चमत्कार है। ऐ प्यारे! राम में शरीर को डुबा दे, तब तुमको तत्त्व-स्वरूप का पता मिलेगा।

(२) मैं स्वयं जीविका हूँ, मेरी जीविका किसी अन्य वस्तु पर निर्भर नहीं। क्या मुझे सांसारिक वस्तुओं की स्टाकबही में दर्ज करते हो? मैं स्वयं समस्त जड़-चेतन की जीविका हूँ। प्रत्येक शरीर और प्राण को एक-एक अणु मेरे अस्तित्व से प्राप्त होता है। भोजन और वस्त्र जिसको तुम जीविका समझते हो, वह केवल तुम्हारा ख़याल है। वस्त्र और भोजन-पदार्थ वस्तुतः क्या हैं, इनका पता तो लगाओ। इनकी उत्पत्ति और इनका मूल कहाँ है? ऐ प्यारे! तुम्हारा आत्मा ही वस्त्र और भोजन के रूप में विद्यमान है। वस्त्र की असलियत कपास है। कपास वनस्पति के रूप में ॐ ॐ कहती हुई भूमि से निकली है, सूर्य का प्रकाश ही वनस्पति है। धरती की उत्पत्ति और मूलाधार सूर्य है। सूर्य की आजीविका क्या है? उसका अस्तित्व किस वस्त्र और भोजन पर निर्भर है? उसका अस्तित्व ऐ प्यारे! राम पर निर्भर है। मैं राम हूँ। जब कि सूर्य का मैं आत्मा हूँ, तो वस्त्र और भोजन की क्या दाल गलती है। जब कि शहंशाह ही मुझसे रुपया क़र्ज़ ले रहा है और मेरे संकेत

से काम करता है, तो प्रजा और सेना की चीं चीं से क्या डरना है।

(३) पेट का पालना निःसंदेह धर्म है। किंतु धर्म का पालना पेट के बाप का पालना है। ऐ प्यारे! विश्वास कर। यह तेरा केवल ख़याल है। मैं यह नहीं कहता कि तू रोटी न खा, वस्त्र न पहन, जीविका अर्जन न कर, काम-काज न कर। यह मेरा प्रयोजन ही नहीं है। मैं यह कहता हूँ कि असली और सच्चा काम अपने आपको जानना है, और शेष सब काम अपने आप हो रहे हैं। पेट के जाल में फँसकर ही तू बार-बार पेट में दौरा कर रहा है। इस मूर्खता के नाड़ा (नाल, जाल) को ब्रह्मविद्या की छुरी से काट डालो, तो पेट की चिंता जाती रहे। यह नाड़ा किसी अविद्या की छुरी से काटा हुआ फिर निकल आता है, उग आता है। मैंने तुम्हारा पेट ही भरने के लिये यह पेट भेंट किया है। मैं चाहता हूँ कि तुमको पेट से पास होकर आध्यात्मिक कक्षा में शिक्षा दी जाय। मैं चाहता हूँ कि कपड़े की खड्डी की जगह तुम कल अर्थात् मैशीन की खड्डी से काम लो। अब इक्का और बैलगाड़ी का समय जाता रहा है, अब रेलगाड़ी और टेलिग्राफ़, जहाज़ और वर्कशाप तुम्हारी सेवा में उपस्थित हैं, अब तो जल और अग्निदेवता तुम्हारी अच्छी सेवा करते हैं। यह साइंस

की उन्नति केवल पेट के लिये है। जब देवता तुम्हारी सेवा करते हैं, तो तुमको अब पेट के धर्म से कोई संबंध नहीं, वरन् सच्चे सिंहासन पर तकिया लगाकर बैठो, और बैठे-बैठे पंचतत्त्व से काम लो। ईश्वर तुम हो, तुम ही ईश्वर हो। केवल दुर्बलता से चल नहीं सकते, क्योंकि इस मूर्खता और धारणा ने कि मैं 'परिच्छिन्न व दास हूँ', अत्यंत दुबला कर दिया है। किंतु बोलने और पानी पीने और चावल पचाने की शक्ति तुमको है। जब तुम बीमार होते हो, तो संसारी व्यापार की बातें तुम्हारे दरबार में उपस्थित रहती हैं, यद्यपि तुम्हारी नीरोगता ठीक नहीं, किंतु हिसाब का लेना-देना, मुक़द्दमाबाज़ी के विचार, मित्र और शत्रु का विवेक, लाभ और हानि, यह मेरा यह तेरा, सब काम वैसे ही जारी हैं। तुमको अपने स्वास्थ्य का ध्यान कहाँ? तुम तो निराधार वस्तुओं (घर का सामान) के बिगड़ जाने से प्रतिक्षण बिगड़ रहे हो। खबर मिली कि मुक़द्दमा हार गया, बस तुम्हारा प्राण हार गया। पोस्टकार्ड में क्या लिखा है—"रामजी लिखते हैं, चावल में तीन हज़ार नफ़ा हुआ।" बस, फिर प्राण आ गया और मुँह पर लाली झलकने लगी। भैंस ने आज दूध नहीं दिया, बदमाश नौकर है, निकाल दो इसको, यह हरामी है, नमक-हराम है, इसकी सुस्ती है, इसने ख़याल नहीं रक्खा और

बच्चा दूध पी गया है। जरा नींद आ गई, स्वप्न में नौकर को गालीगलौज दे रहे हैं, लाठी लेकर भैंस को दे मारा, और मजबूत रस्सी लेकर बच्चे के गले में बाँध दी, जिसमें फिर ऐसा नुक़सान न हो। भगतजी को मत जगाओ, अब जरा आँखें लग गई हैं, अब आराम से सो रहे हैं। भगतजी इधर तो सो गए, परंतु स्वप्न में वही बेचैनी वारंट लिए उनको चिंतातुर कर रही है।

तुम न पेट ज़ुबान पदारथ हो। तुम आतमराम यथारथ हो
क्यों शोर मचाते अकारथ हो। तुम दीनदयाल पदारथ हो
राम तुमको ख़ूब नचाएगा। ख़ुद मस्ती में ही लाएगा
बंदा से ख़ुदा बनाएगा। परदा-ए-जिहालत मिटाएगा
पेट को भेंट चनाएगा। तुमको उसका ठेंट बताएगा
रामकृष्ण को क्या याद करते हो। ख़ुद आत्मदेव तुम ही हो
करो विश्वास निज आत्म पर। आत्मदेव तुम ही हो
मर्ज़ लगा है तुमको भारी। दवाई इसकी कारी है
हर एक को तुम राम ही जानो। नुस्ख़ा वाहद वारी है

(४) अपनी और संबंधियों की चिंता रखनी चाहिए। प्यारे 'बहुत अच्छा'। भगवन्! पहले तो यह जानना आवश्यक है कि अपना क्या है, और संबंधी इसका कौन है? क्या यह शरीर अपना है? शरीर अपने आप स्थित है या उसका अस्तित्व किसी अन्य वस्तु पर अवलंबित है? यदि शरीर अपने आप स्थित नहीं, तो यह

हमारा अपना क्या हो सकता है। जो आप ही लँगड़ा, लुंजा, अंधा, बहरा, गूँगा है, वह हमारा अपना कैसे ? ऐसे को अपना बनाने से सिर पर विपत्ति लेना है।

प्यारे ! यह किसके आश्रय है ? प्यारे ! यह शरीर अपने आप है या और कोई इसका अपना आप है ? आत्मा इसका अपना आप है। उसकी शक्ति से यह शरीर स्थित है। आत्मा अपने आप स्थित है, और शरीर छाया के समान अपने आप कुछ नहीं। जब शरीर स्वतः स्थित नहीं, तो कोई संबंधी न निकला, असली संबंधी तो आत्मा ही निकला। चाहे इधर देखो, चाहे उधर देखो, आत्मा ही प्रकाशमान है। अब तो आपकी जबानी सिद्ध हो गया कि असली संबंधी आत्मदेव है, जो चारों ओर विभिन्न नाम-रूपों में तरंगायित है। यह नाम और रूप आपकी ओर से कल्पित होता है, अन्यथा नाम और रूप भी कोई नहीं, केवल आत्मा ही आत्मा है, या तुम ही तुम हो। अपने आपको "ईश्वर" कहने से मत डरो। तुमको सम्राट् बताते हैं। भयभीत होने का क्या अर्थ ? शरीर से दृष्टि उठाकर यह ख़याल करो कि जो राम इस शरीर के रोम-रोम से व्यापक है, वही राम समस्त जड़-चेतन के रोम-रोम में व्यापक है। परंतु इसलिये कि राम एक है, मैं इस राम की ओर से कह सकता हूँ कि मैं राम हूँ।

यदि तुमको डर लगता है, तो मेरी ओर से ज़ोर के साथ कहा करो कि "मैं राम हूँ, मैं राम हूँ, मैं राम हूँ।" राम तुमको आज्ञा देता है और क़ानून पास करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को राम की ओर से ज़बरन् हुक्म है कि वह 'राम' का सिक्का चला दे और जाली सिक्का बंद करे, अन्यथा वह मूर्खता की जेल में गिरफ़्तार होगा। प्रत्येक शारीरिक सिक्के पर 'राम-राम' लिखा हुआ है, एक-एक अणु पर राम अंकित है। तुम्हारी जिह्वा, आँख, नाक, कान, सारा शरीर क्या है? केवल राम का सिक्का है। यदि तुमको राम कहने से भय मालूम होता है, तो यह जिह्वा तुम्हारी नहीं, जिह्वा राम की है, अतः राम की जिह्वा से पुकारो—"मैं राम हूँ, मैं ईश्वर हूँ, मैं आत्मदेव हूँ, मैं सम्राट् हूँ, मैं सर्व-व्यापक हूँ, मैं करतार हूँ।" यह वाक्य तुम्हारी ओर से नहीं, जिसकी जिह्वा है, उसी का वाक्य है। अतः तुम ब्रह्म ही ब्रह्म हो। एक मिनट में ईश्वरता मिल जाय, तो और क्या चाहिए? प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि हमारा कुछ नहीं, शरीर राम का है। राम ही तो आपका साथी है और तुमको यह आज्ञा देता है कि जिसका शरीर है, उसी की जिह्वा है। अतः उस जिह्वा से हमारा केवल वाक्य निकलता है (राम की जिह्वा से राम कहता है कि "मैं 'राम' हूँ, मैं ईश्वर हूँ।" दिन-रात ऐसा वाक्य कहना चाहिए, यह

पवित्र वाक्य है और यही सिक्का जारी होना चाहिए)। जाली सिक्का कि "मैं बंदा हूँ" अब बंद कर दो। यह सिक्का जिसके पास हो, राम के ख़ज़ाने में रवाना करते जाओ, और नया शाही सिक्का (कि राम मैं हूँ) मँगवा लो। राम ने अब हुक्म जारी कर दिया है कि जिसके पास जाली सिक्का हो, उसको राम के पास ले आओ, राम बड़ी मुहब्बत और प्रेम के साथ उस जाली सिक्के को वापस लेकर असली सिक्के के रूप में परिवर्तित कर देगा। जैसे अज्ञान बालक के हाथ में यदि चाक़ू या कोई दूसरा औज़ार नुक़सान देनेवाला हो, तो मिठाई आदि नज़राना देकर उससे छीना जाता है, तात्पर्य केवल यह है कि चाक़ू उसके शरीर पर लग जायगा। एक अपरिच्छिन्न को सीमा में लानेवाला वाक्य कि "मैं बंदा (तुच्छ वा परिच्छिन्न) हूँ", जुर्म या अपराध नहीं तो और क्या है? तुम किसको बंदा कहते हो? जब शरीर में तुम्हारा कुछ नहीं, और तुम अपनी जिह्वा से कहते हो कि "यह राम का" है और वस्तुतः रोम-रोम में राम है, तो "मैं" कौन है और "बंदा" कौन है? यहाँ तो एक ही "मैं" है, जो व्यापक है। व्यापक राम है, बंदा दिखाई नहीं देता। बंदा कहाँ है? यदि कोई बंदा है और उसका भ्रम और भ्रांति दूर नहीं होती, तो राम के पास आ सकता है, और राम उसको

एक निगाह से पार कर देगा। अमृत के स्रोत में उसे स्नान कराएगा और काग से हंस बना देगा। अपनी और संबंधी की चिंता को ईश्वरीय स्वरूप में परिवर्तित कर देगा और तुमको राम बना देगा। अतः अब तो चाँदी है, प्रकृति तुम्हारी बाँदी (चेली) है।

(५) प्यारे! राम को कोई दूसरा दिखाई नहीं देता, आपको दूसरा दिखाई देता है। यह दृष्टि का दोष है। जब राम को दूसरा दिखाई दिया, तो राम का साम्राज्य कौन सँभालेगा। राम तो अकेला है। जैसे सूर्य को कोई वस्त्र धारण करने की आवश्यकता नहीं, अपने ही स्वरूप में प्रकाशमान है, वैसे ही राम अपने स्वरूप में मग्न, आत्मिक आनंद की वृष्टि करता हुआ अपने स्वरूप में स्थित है, और लोगों को घूमता हुआ दृष्टिगोचर होता है। करतार मैं ही हूँ, अन्य करतार की आवश्यकता नहीं। गृहस्थ आत्म-पद में रहने का नाम है। अपने ईश्वरीय स्वरूप में सदैव आनंद रहने का नाम गृहस्थ है। जो आत्म-पद से अनभिज्ञ है, वह वन का पशु है, वरन् मृतक है। यदि उस गृहस्थ को त्याग करना पाप है, तो मैं अपने गृहस्थ-आश्रम अर्थात् निज आत्म में लीन हूँ; और एक मिनट मुझको आत्मिक आनंद, आत्मिकदृष्टि से फ़ुरसत नहीं। प्यारे! मैं अपने गृहस्थ में स्थित हूँ, इसलिये मैं पाप-पुण्य से रहित हूँ।

खाना राम, पीना राम, देखना राम, सुनना राम, सूँघना राम, चलना राम, राम-स्वरूप से भिन्न ध्यान करना हराम (पातक) है। इसका नाम असली गृहस्थ है। मेरे प्यारे ! होश में आओ। राम को लांछन न लगाओ। अच्छा, आपकी मरज़ी। राम भीतर से आपको चाबी लगाएगा, और तत्त्व-दृष्टि पर का परदा दूर करेगा। यह तुम्हारा अपराध नहीं, यह केवल अज्ञान है। ॐ राम।"

वनवास अर्थात् राम का वानप्रस्थ-आश्रम

इस मस्ती-भरे रिसाला अलिफ़ के अभी तीन ही अंक निकले थे कि ज्ञान की लाली राम के अंदर समा न सकी, वरन् फूट-फूटकर बाहर प्रदीप्त हुई, अर्थात् राम महाराज को केवल दस गज़ भूमि पर जमकर बैठना अथवा गृहस्थ की चारदीवारी के भीतर घिरना और नगर की भीड़भाड़ में घूमते फिरना अब कठिन ही नहीं, वरन् दुस्तर हो गया। इसलिये रँगे हुए हृदय से बेबस हुए राम जुलाई, १९०० ई० में नौकरी इत्यादि छोड़कर वन को पधारे। स्त्री-पुत्र आदि उनके साथ हुए। स्वामी शिवगणाचार्य, लाला तुलाराम (पश्चात् स्वामी रामानंद), लाला गुरुदास (बाद में स्वामी गोविंदानंद) और अमृतसर-निवासी निक्केशाह उनके साथ चले। और नारायणदासजी को भी 'राम बादशाह' ने अपने साथ अलिफ़ का झंडा लेकर चलने की आज्ञा प्रदान की।

जब राम अपने लाहौर के मोहल्ला हरचरण की पौड़ी, बच्छोवाली वाले मकान से बाहर निकले, तो मार्ग में उनके आगे भजनमंडलियाँ और कॉलेजों के विद्यार्थी वैराग्य के भजन सच्चे प्रेम से गाते हुए रेलवे-स्टेशन तक आए। रास्ते-भर राम के ऊपर फूलों की वर्षा होती रही। रेलवे-स्टेशन पर राम के प्यारों का भारी समारोह था। रेल के ठीक छूटते समय नारायणदासजी ने नीचे लिखा भजन अत्यंत अनुराग के साथ गाया। इस भजन को रात में ही 'राम' ने लिखा था—

अलविदा[1] ऐ मेरी रियाज़ी[2] ! अलविदा।
अलविदा, ऐ प्यारी रावी[3] ! अलविदा॥
अलविदा, ऐ अहले-खाना[4] ! अलविदा।
अलविदा, मासूमे-नादाँ[5] ! अलविदा॥
अलविदा, ऐ दोस्तो-दुश्मन[6] ! अलविदा।
अलविदा, ऐ शीतोष्ण ! अलविदा॥
अलविदा, ऐ कुतुबो-तदरीस[7] ! अलविदा।
अलविदा, ऐ खुब्सो-तक़दीस[8] ! अलविदा॥
अलविदा, ऐ दिल ! खुदा ! ले अलविदा।
अलविदा, 'राम' ! अलविदा, ऐ अलविदा !॥

× × × × ×

---

१. विदा हो। २. गणित। ३. लाहौर के दरिया का नाम। ४. घर-बार। ५. नन्हें बच्चे वा भोलेभाले शिशु। ६. शत्रु-मित्र। ७. पुस्तक व पढ़ाना। ८. बुरा-भला।

इस वनवास का ब्योरेवार वर्णन राम ने अपनी लेखनी से लिखकर रिसाला अलिफ़ में स्वयं छपाया था, वह द्वितीय खंड में दिया जा चुका है, पाठक महोदय उसे पढ़ चुके होंगे। किंतु उसके अतिरिक्त जो कई एक उल्लेख-योग्य बातें उसमें रह गईं, उन्हें संक्षेप से यहाँ दिया जाता है।

लाहौर से सब लोग चलकर सीधे हरिद्वार पहुँचे। लाहौर से चलते समय सब लोगों ने अपनी-अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार यात्रा-व्यय के लिये कुछ न कुछ नक़द रुपया नारायणदासजी के सिपुर्द कर दिया था, क्योंकि उस कुल रक़म के ख़ज़ानची और यात्रा के प्रबंधक नारायणदासजी नियुक्त किए गए थे। मार्ग में जो ख़र्च होता था, उसे उस फ़ंड से नारायणदासजी करते थे, और किसी के पास अलग रुपया न था। स्वामी शिवगणाचार्यजी स्वभाव के कुछ ऐसे निराले निकले कि रास्ते-भर उनकी किसी से न बनी, आज वह एक से नाराज़ हैं, तो कल दूसरे से। उनकी धारणा में कदाचित् ऐसा समा गया था कि "गोसाईं तीर्थरामजी को मैं घर से निकाल लाया हूँ, अतः मैं उनका गुरु हूँ, और शेष सब मेरे शिष्य के शिष्य हैं। इत्यादि।" इस भ्रांति-भरी धारणा के कारण वह बात-बात में सब पर हुकूमत करते और आज्ञा-पालन में तनिक भी विलंब होने से फ़ौरन् झुँझला पड़ते, एवं क्षण-क्षण

में लोगों से अप्रसन्न हो जाते थे। इससे उन्होंने लोगों का नाक में दम कर रक्खा था। राम की अर्द्धांगिनी के साथ हरिद्वार से एक और विधवा-स्त्री यात्रा के लिये चल पड़ी थी, उस बेचारी को जो उनसे कष्ट मिला वह अवर्णनीय है। इस सबका परिणाम यह हुआ कि राम को अपने प्रिय साथियों के साथ केवल आठ दिन की ही यात्रा के पश्चात् स्वामी शिवगणाचार्य से पृथक् होकर दूसरी ओर प्रस्थानित होना पड़ा, और स्वामी शिवगणाचार्यजी को दूसरी ओर अकेले यात्रा करने की प्रार्थना की गई। इस प्रकार राम अपने सब साथियों के साथ देवप्रयाग से टिहरी की ओर चल दिए, और स्वामी शिवगणाचार्य वहाँ से श्रीनगर और श्रीनगर से काठगोदाम होते हुए मैदानों में पहुँच गए। फिर वहाँ से मथुरा जाकर यमुना के तट पर विराजमान हुए।

हरिद्वार से देवप्रयाग पचास मील के लगभग है। यद्यपि हरिद्वार से सीधे बदरीनारायण तक जाने के लिये मज़दूर किए गए थे, परंतु थोड़ी ही दूरी तक यात्रा करने से स्वामी शिवगणाचार्यजी के स्वभाव से जब जानकारी हो गई, तो सबका संकल्प बदल गया, और बदरीनारायण तक उनके साथ चलने का विचार त्यागकर हम लोग गंगोत्तरी की ओर चल दिए। जब सब लोग टिहरी पहुँचे, तो सबका मत उधर ही किसी वन में डेरा जमाने के लिये

आकर्षित होने लगा, और राम स्वयं भी गंगा के किनारे किसी एकांत-स्थान की खोज करने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक अति रमणीक और विशाल वाटिका गंगा-तट पर बिलकुल एकांत में मिल गई। यह स्थान टिहरी से लगभग दो मील की दूरी पर था। इस वाटिका के बनवानेवाले सेठ मुरलीधर थे, जिन्होंने केवल एकांत-अभ्यास के लिये लगभग उन्नीस हज़ार रुपया व्यय करके इसका निर्माण किया था, और वह इसे केवल साधुओं के एकांत-अभ्यास के लिये समर्पण कर चुके थे। राम को यह स्थान बहुत ही उत्तम और एकांत पसंद आया, इसलिये वहीं सबने डेरे जमा दिए। डेरा जम जाने के एक दिन बाद जो कुछ रुपया नारायणदासजी के पास यात्रा-व्यय के लिये शेप था, उस सबको राम ने गंगा में फिकवा दिया, और कहा—"अब प्रारब्ध या भगवत्-इच्छा पर शरीर को चलाना है, इसे अब रुपया आदि के आश्रय पर नहीं रखना है। इसलिये अब कुछ भी नक़द रुपया अपने पास नहीं रहना चाहिए।"

दूसरे दिन राम ने सबको एकांत-स्थान में गंगा-किनारे अलग-अलग बैठकर अहंग्रह-उपासना करने का आदेश किया, और स्पष्ट कह दिया कि "अब ईश्वर पर दृढ़ निश्चय करके निश्चिंत हो सब अभ्यास करो। यदि ईश्वर को सबकी चिंता है, और आप सबको उस पर पक्का

विश्वास है, तो आपके पास बैठे-बिठाए सब कुछ भोजन-पदार्थ उपस्थित हो जायगा। और यदि निश्चय या विश्वास की कमी से भूखों मरना पड़ा, तो ऐसी मृत्यु जीने से हजारगुना अच्छी है।" इस प्रकार राम की आज्ञा के अनुसार सब लोग कुछ घंटों तक गंगा-तट पर अलग-अलग बैठे हुए अभ्यास कर रहे थे कि ऋषीकेश के कलकत्ता-क्षेत्र के मैनेजर बाबा रामनाथजी एक दुकानदार के साथ वहाँ आ निकले। वह अपने क्षेत्रों के निरीक्षणार्थ उत्तर-काशी का दौरा कर रहे थे कि मार्ग में उन्हें राम के वन में आने की खबर मिली। मैनेजर साहब दर्शनों के लिये आए थे, परंतु राम की मस्त अवस्था देखकर वह बिना एक-दो बात पूछे न रह सके। उन्होंने पूछा—"महाराज! आप यहाँ गंगा-तट पर कब पधारे?" "कल।"—इतना कहकर राम फिर मौन हो गए।

थोड़ी देर चुप रहकर मैनेजर ने फिर पूछा—"महाराज! भोजन का क्या प्रबंध है?"

राम ने आकाश की ओर संकेत करके कहा—"यह उससे पूछो।" और फिर मौन हो गए।

थोड़ी देर चिंता करने के बाद मैनेजर ने निवेदन किया—"महाराज! यह आदमी (लाला बनवारीलाल) ऊपर रास्ते में दुकानदार है। इसको मैं आज्ञा दिए जाता हूँ कि दस रुपए मासिक का आटा, दाल, चावल आदि

यहाँ आप सबके भोजनों के लिये पहुँचा दिया करे। कृपा करके इसे स्वीकार कीजिए।"

"इस विषय में जो कुछ पूछना हो, तो उस ब्रह्मचारी (नारायणदासजी) से पूछो, जो वहाँ दूर किनारे पर बैठा हुआ है।" ऐसा राम ने कहा।

मैनेजर ने अपना आदमी भेजकर नारायणदासजी को बुलाया और कहा—"महाराज ! आप सबके भोजनों के लिये मैं १०) मासिक की रसद का प्रबंध इस दुकानदार से करना चाहता हूँ (ताकि आपके भजन में जब तक आप यहाँ रहें, भोजन का विचार विघ्न न डालने पाए), आप कृपया इसे स्वीकार कीजिए।"

नारायणदासजी ने उस समय तक किसी दूसरे का दान नहीं खाया था, और न उनका मन इस प्रकार दान ग्रहण करके खाने को तैयार होता था, अतः उन्होंने अस्वीकार कर दिया, और कहा—"सिवाय ईश्वर के और किसी का दिया हुआ हमें स्वीकार नहीं।"

इस पर राम ने आदेश किया—"देखो नारायणदासजी! यदि रसद का प्रबंध यह स्वयं करते हों, तो वेशक अस्वीकार करो, और यदि यह प्रबंध भगवान् इनके हाथों करवाते हों, तो उसे स्वीकार करने में आगा-पीछा करने का कोई कारण न होना चाहिए।"

मैनेजर ने कहा—"महाराज! मैं वस्तुतः कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। न मैं इस प्रबंध के विचार से यहाँ आया था। मैं केवल-मात्र दर्शन के लिये यहाँ आया था। आपके मस्त दर्शन से ईश्वर ने मेरे भीतर यह पूछने की उमंग पैदा कर दी, और उन्हीं की प्रेरणा से मुझे ऐसा प्रबंध करने की बुद्धि उपजी। यह सब भगवान् ही करा रहे हैं। मैं वस्तुतः कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। इसे आप सानंद स्वीकार कीजिए।"

मैनेजर के ऐसा कहने पर यह प्रबंध स्वीकार कर लिया गया।

इस प्रकार उक्त मैनेजर अपने साथी दुकानदार को दस रुपए मासिक की जिनिस भेजने की आज्ञा दे गए, और ठीक नौ बजे सवेरे, जब कि नित्य-नियम के अनुसार रसोई चढ़ाने का समय हुआ करता था, यथेष्ट सामग्री पहुँच गई। इस विचित्र घटना को देखकर सब लोग विस्मित हो गए, और भविष्य में हृदय में ईश्वर का विश्वास और दृढ़ हो गया। इसके पश्चात् किसी प्रकार की चिंता पेट के लिये किसी के चित्त में न आने पाई। इस प्रकार जब सब लोग खूब जम गए, और नियमानुसार जीवन-निर्वाह करने लगे, तो प्रत्येक का मन अभ्यास में प्रतिदिन खूब लगने लगा, और राम की लेखनी भी पहले की अपेक्षा अधिक वेग

और मस्ती की तरंग में बहने लगी। उस वन में रहकर राम की लेखनी से इस वनवास और स्थान के वर्णन में जो कुछ अंकित हुआ, वह दूसरे खंड में दिया जा चुका है, किंतु कई पत्र जो उन दिनों राम ने अपने कई प्रेमियों को लिखे थे, और जिनको नारायणदासजी ने पहले रिसाला अलिफ़ में और फिर संन्यासी होने के बाद "ख़ुमख़ाना-ए-राम" जिल्द प्रथम के अलिफ़ नंबर ४ से ६ तथा पृष्ठ १९९ से २०८ में प्रकाशित कराया है, उन्हें यहाँ इस प्रसंग में आवश्यक समझकर उद्धृत किया जाता है।

गंगा-तट पर निवास-स्थान का वर्णन

पत्र-संख्या १

रात का वक़्त है, बियाबाँ[1] है। ख़ुशवज़ा[2] पर्वतों में मैदाँ है आसमाँ का बताऊँ क्या हम हाल। मोतियों से भरा हुआ है थाल चाँद है मोतियों में लाल धरा। अब्र[3] है थाल पर रूमाल पड़ा सर पै अपने उठा के ऐसा थाल। रक़्स[4] करती है नेचरे-ख़ुशहाल[5] बाद[6] को क्या मज़े की सूझी है। राम के दिल की बात बूझी है पास जो बह रही है गंगाजी। अबख़रे उसके लद लदाते ही ला रही लपक कर है राम के पास। क्या ठंढक भरी है गंगा-बास फ़ख़्रे-ख़िदमत[7] से बाद है ख़ुरसंद[8]। जा मिली बादलों से होके बलंद अब तो अठखेलियाँ ही करती है। दामने-अब्र[9] को उलटती है

१. जंगल। २. सुंदर आकार। ३. बादल। ४. नृत्य। ५. प्रसन्न प्रकृति। ६. पवन। ७. सेवा के मान से। ८. प्रसन्न। ९. बादल का पल्ला।

लो उठाया यह पर्दा-ओ-रूमाल । आसमाँ है दिखाया मालामाल
शाद[1] नेचर है, जगमगाती है । आँख हर चारसू[2] फिराती है
क्या कहूँ, चाँदनी में गंगा है । दूध हीरों के रंग रंगा है
वाह! जंगल में आज है मंगल । सैर कर इस तरफ़ की चल-चल-चल

ऐ जाँ! बिया-बिया कि ईं दुनियाए-दीगर अस्त ।
आबे-दिगर, हवाए-दिगर, जाए-दीगर अस्त ॥

अर्थ—ऐ प्यारे! इधर आ, इधर आ, यहाँ दुनिया ही और तरह की है। यहाँ का पानी निराला है, हवा निराली है, और स्थान भी निराला है।

पद्य-संख्या २

आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है ॥ टेक ॥
गंगा का है किनार अजब सब्ज़ाज़ार है।
बादल की है बहार हवा खुशगवार है।
और खुशनुमा पहाड़ पर वह चश्मा[3]-सार है।
गंगा-ध्वनि सुरीली है, क्या लुत्फ़दार है।
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है ॥ १ ॥
बाहर निगाह कीजे तो गुलज़ार है खिला।
अंदर सुरूर[4] की तो भला हद कहाँ दिला?
कॉलेज क़दीम का यह सरे-मू[5] नहीं हिला।
पढ़ाता मारफ़त[6] का सबक़ मेरा यार है।
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है ॥ २ ॥

---

१. खुश, प्रसन्न। २. चारों ओर। ३. झरना बहता है। ४. आनंद। ५. बाल बीका नहीं हुआ, अर्थात् पढ़ाना बंद नहीं हुआ। ६. आत्मज्ञान का पाठ।

वक़्ते - सबाहे[1] - ईद तमाशा तयार है।
गुलगूना[2] मुँह मल के खड़ा गुल-अज़ार[3] है।
शाहे-फ़लक[4] से या जो हुई आँख चार है।
मारे शरम के चेहरा बना सुर्ख़ नार[5] है।
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ३॥

क़तरे हैं ओस के कि दुरों[6] की क़तार है।
किरणों की उनमें चलते नज़ाकत यह तार है।
मुरग़ाने-ख़ुशनवा[7] तुम्हें काहे की आर[8] है।
गाओ-बजाओ, शब[9] का मिटा दिलसे बार[10] है।
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ४॥

साक़ी[11] वह मय[12] पिलाता है, तुर्शी को हार है।
हर वक़्त अपना यार भी अपने किनार[13] है।
वाह क्या मज़े से खाने को ग़म का शिकार है।
दर्शन शराबे[14]-नाब सख़ुन दिल[15] के पार है।
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ५॥

मस्ती मुदाम[16] कार यही रोज़गार है।
गुलबीं[17] निगाह पड़ते ही फिर किसका ख़ार[18] है।

---

१. आनंद की प्रातःकाल। २. उबटना। ३. पुष्प-जैसी कपोलों-वाला प्यारा। ४. सूर्य। ५. लाल रंग। ६. मोती। ७. सुरीली आवाज़वाले पक्षी। ८. लज्जा। ९. रात्रि। १०. बोझ। ११. आनंदरूपी मद पिलानेवाला। १२. मद, प्रेममद। १३. अपने साथ, बग़ल में। १४. साक्षात्काररूपी अंगूरी मद। १५. मन-वाणी से परे है। १६. नित्य रहनेवाली मस्ती। १७. पुष्प (गुण) देखनेवाली दृष्टि। १८. काँटा, दोष वा अवगुण।

क्यों ग़म से तू नज़ार[1] है क्यों दिलफ़िगार[2] है।
जब राम क़ल्ब[3] में तेरे खुद यारे-ग़ार[4] है।
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है॥ ६॥

उस समय हृदय की अवस्था

पद्य-संख्या ३

दसवाँ ग्रह अध्यास है, नौ ग्रह का जो मूल।
जब लग देह अभिमान है, तब लग मिटे न सूल॥
तब लग मिटे न सूल, करे केती चतुराई।
देव यजे, जप यजे, न सुर कोई होत सहाई॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान दृढ़ देवे चश्मा।
मूल अविद्या नाश होय ग्रह रहे न दसवाँ॥ १॥

देनी दमड़ी एक न, लेने को न छदाम।
गाँठ बाँध नहिं राखते, फूटा एक बदाम॥
फूटा एक बदाम न राखें दूसरे दिन को।
बिना अपने आप भरोसा और न जिनको॥
कह गिरिधर कविराय रही न बाक़ी लेनी।
कीनो जभी हिसाब न निकसी कौड़ी देनी॥ २॥

In no way can the overflowing joy of Rama be described. Peace reigns supreme here. Bliss fills the mind. There is heavenly cheerfulness, shedding its divine sun-shine all the time. The mental horizon is growing more and more clear everyday. This betokens some thing very good and grand for India, nay, for the world at large.

---

१. दुबला-पतला। २. घायल चित्त। ३. अंतःकरण व हृदय। ४. अंतर्यामी व घर व दिल का स्वामी।

While seeing a theatrical performance, people are apt to be deluded by the drama and they would be inclined to weep with the actors and laugh with them while looking at the stage if they had not the firm ground of reality always beneath their feet, reminding them of what they actualy are. Just so while seeing the great tragedy of the world enacted, let the sublime Truth, on which you stand always, put you in mind of your High Self and not allow you to be deceived.

Rama

अर्थ—राम के भीतर से उमड़ते हुए आनंद का वर्णन किसी भी तरह नहीं किया जा सकता। हृदय में शांति का सर्वोपरि साम्राज्य है। मन आनंद से परिपूर्ण है। राम के भीतर ईश्वरीय आनंद का उद्रेक हो रहा है, जिसकी दिव्य किरणें प्रतिक्षण चमक रही हैं। हृदयाकाश प्रतिदिन अधिकाधिक निर्मल हो रहा है। यह अवस्था भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार के लिये किसी उत्तम और शुभ शकुन का चिह्न है।

नाटक का दृश्य देखते समय यह संभव है कि लोग उस नाटक से धोखा खा जायँ और नाटक करनेवाले के साथ रोने वा हँसने लग पड़ें, विशेषतः उस समय जब कि वह इस बात को बिलकुल भूल जायँ कि यह जो कुछ सामने हो रहा है, केवल अभिनय या खेल है, इससे अधिक और कुछ नहीं। ठीक जैसे कि संसार की विपत्तियों का नाटक देखते समय धोका खाया जाना संभव है। इसलिये उस सर्वोत्तम सत्य को, जिसके आश्रय तुम खड़े हो, अपने हृदय में दृढ़ रूप में स्थिर रक्खो और अपने आत्मा को सदैव दृष्टिगोचर रक्खो। इस प्रकार अपने आपको धोखे में न पड़ने दो।—राम।

जामे ज़ मए-वाक़ी, अज़ दस्ते-ख़ुश साक़ी।
वा कसरते-मुश्ताक़ी, मेजोयमो-मेरक़्सम॥
फ़ाश मी गोयम व अज़ गुफ़्तए-ख़ुद दिल शादम्।
साहबे-इश्क़म व अज़ हर दो जहाँ आज़ादम्॥ १॥
मस्तो-ख़राब मी रवम, फ़िकरे-जहाँ न मी ख़ुरम्।
बीम न दारम अज़ बला, तन तलमला तला-तला॥ २॥

अर्थ—(१) अमृत की मदिरा का प्याला मदिरा पिलानेवाले के हाथ से मैं अत्यंत अनुराग के साथ लेने की खोज में हूँ, और उसके प्रेम में नाचता हूँ। खुल्लमखुल्ला मैं यह कहता हूँ, और अपने इस कहने से मैं प्रसन्न होता हूँ कि "मैं प्रेमी पुरुष हूँ, और लोक-परलोक दोनों से विमुक्त हूँ।"

(२) मैं मस्ती में पागल हुआ फिरता हूँ और संसार की चिंता नहीं करता। मैं दुःखों से बिलकुल भयभीत नहीं हूँ; आनंद से यह स्वर "तन तलमला तला-तला" गाता रहता हूँ।

पत्र-संख्या ४

सरोदो-रक़्सो[1]-शादी दम बदम है।
तफ़क्कर[2] दूर है और ग़म को रम[3] है॥
ग़ज़ब ख़ूबी है बेरूँ अज़ रक़म[4] है।
यक़ीनन् जान, तेरी ही क़सम है॥
मुबारक हो तबीअत का यह खिलना।
यह रसभीनी अवस्था जामे-जम[5] है॥
मुबारक दे रहा है चाँद झुककर।
सलामों से कमर में उसकी ख़म[6] है॥

---

१. राग-रंग। २. चिंता। ३. दूर भागा हुआ। ४. वर्णन से बाहर। ५. जमशेद बादशाह का प्याला। ६. वक्र, टेढ़ापन।

पिए जाओ दमादम जाम भरकर।
तुम्हारा आज लाखों पर क़लम है॥
गुलों से पुर हुआ है दामने-शौक़।
फ़लक ख़ीमा है कैवाँ[1] पर अलम[2] है॥
तेरे दीदों[3] पै भूले से हो शबनम।
कभी देखा-सुना "सूरज पै नम है?"
रक्खें आगे को क्या-क्या हम न उम्मेद।
कि मारा गुर्गे-ग़म[4] पहला क़दम है॥
दिखाया प्रकृति ने नाच पूरा।
सिले[5] में उड़ गई, ऐ है! सितम[6] है॥
ग़लत गुफ़्तम, शिकायत की नहीं जा।
मिली आ पुरुष में अद्लो-करम[7] है॥
न कहता था तुम्हें क्या 'राम' पहले?
सबाहे-ईद[8] आई! रात कम है॥

लोग कहते हैं कि मैदानों में रहना ख़ूब है।
कौन जाए 'राम' अब गंगा की लहरें छोड़कर॥

हर चि दर दुनिया स्त बर आज़ादगाँ आमद हराम।
ख़ातिरे - जमाऽस्त दर ज़ेरे - फ़लक सामाने-मा॥

अर्थ--जो कुछ संसार में है, मुक्त पुरुषों के लिये निषिद्ध है। हमारी सामग्री व सामान इस आकाश के नीचे केवल संतोष है।

गंगोत्तरी का मार्ग

कुछ काल तक टिहरी के निकट सेठ मुरलीधर के

---

१. शनि तारा व सातवाँ लोक। २. झंडा, ध्वजा। ३. नेत्रों। ४. चिंता का भेड़िया। ५. बदले। ६. आश्चर्य। ७. न्याय व कृपा। ८. आनंद की प्रभात।

बगीचे में रहने के पश्चात् राम के भीतर एक विचित्र तरंग उठी। वह आधी रात को, जब कि सब साथी सो रहे थे, चुपके-से अकेले नंगे सिर, नंगे पाँव उत्तरकाशी को चल दिए। उत्तरकाशी टिहरी से लगभग पचास मील की दूरी पर है, और उससे आगे गंगोत्तरी भी उतनी ही दूर है। परंतु अनुग्रह करके आप उत्तरकाशी से लौट आए, और आगे गंगोत्तरी तक नहीं गए। इस मार्ग की यात्रा का वर्णन स्वयं राम की लेखनी से लिखा हुआ द्वितीय खंड में दिया जा चुका है। किंतु राम की इस अचानक जुदाई ने उनकी धर्मपत्नी पर ऐसा बुरा प्रभाव डाला कि वह रोगग्रस्त हो गईं।

राम की धर्मपत्नी का घर लौटना

इस प्रकार सब साथियों को बिलकुल अकेला छोड़कर चले जाने से राम की धर्मपत्नी ऐसी कठिन रोगग्रस्त हो गईं कि राम यद्यपि शीघ्र ही लौट आए, किंतु वह स्वस्थ नहीं हो सकीं। और जब जलवायु प्रतिकूल होने से और कुछ वन की असह्य यातनाओं के सिर पर पड़ने से रोग बढ़ने लगा, एवं अच्छे होने की आशा जाती रही, तो उन्होंने छोटे बच्चे ब्रह्मानंद को साथ लेकर घर लौट जाने की इच्छा प्रकट की। जिस पर राम ने नारायणदासजी को आज्ञा दी, और वह उन्हें सकुशल पहाड़ों से मैदान में ले

आए, और गुरालीवाला गाँव में जाकर उन्हें गोसाईंजी के पिता गोसाईं हीरानंदजी को सौंप आए। तत्पश्चात् नारायणदासजी कई महीने बाद फिर टिहरी पहुँचे, और राम की जी-भरकर सेवा और सत्संग करने लगे।

राम का संन्यास-आश्रम

इस प्रकार राम को एकांत-निवास करते लगभग छः महीने बीते होंगे कि सन् १९०१ ई० के आरंभ में स्वामी विवेकानंद के परमधाम सिधारने से कुछ ही दिन पहले उनके भीतर संन्यास-आश्रम में प्रविष्ट होने की तरंगें उमड़ने लगीं। मन से तो वह संसार-त्यागी पहले ही से थे, जब भीतर की मस्ती ने बहुत गहरा रंग जमाया, तो राम को बाहर के कपड़ों का रँगना भी खूब भाया। राम को द्वारका-मठ की गद्दी के द्वारकाधीश श्री १००८ स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ने यह आज्ञा पहले ही से दे रक्खी थी कि जब अंतःकरण की मस्ती बहुत वेग से फूट आए, तो गंगा-तट पर संन्यास ले लेना। इसलिये राम भी इस आदेश को स्मरण करके नारायणदासजी को बार-बार नाई और कपड़े रँगने निमित्त गेरू आदि लाने की आज्ञा प्रदान करने लगे। अंततः नापित बुलाया गया, और राम की आज्ञानुसार नारायणदासजी तथा लाला तुलाराम ने कपड़े रँगे, और श्रीगंगाजी के प्रवाह में खड़े होकर राम ने

श्रीस्वामी रामतीर्थ

संन्यासाश्रम का पहला फोटो

आगरा (१९०८)

यज्ञोपवीत आदि को गंगाजी की धारा में बहा दिया, और मस्त स्वरूप होकर राम ने बहुत देर तक ॐ का उच्चारण करते हुए गेरुए वस्त्र पहन लिए। इसके बाद राम घंटों गंगा के किनारे मस्त बैठे रहे। उस समय दो-एक महात्मा, जो उत्तरकाशी से आए हुए थे, वहाँ विद्यमान थे। उनको भोजन आदि कराया गया, तथा सर्वत्र 'गोसाईं तीर्थरामजी' के 'स्वामी रामतीर्थ' हो जाने की सूचना दी गई। इस नाम का कारण यह था कि प्रथम तो द्वारका-मठाधीश श्री १००८ स्वामी शंकराचार्यजी महाराज 'तीर्थ' संन्यासी थे, इसलिये 'राम' नाम के अंत में 'तीर्थ' शब्द का योग आवश्यक था, दूसरे उनका प्रथम नाम 'तीर्थराम' था, उसका उल्टा कर देने से 'रामतीर्थ' हो गया। इस प्रकार विद्वत्-संन्यास धारण करके राम अब उस वन में बिलकुल एकांत रहने लगे, यहाँ तक कि नियत समय के अतिरिक्त अपने साथियों को भी दर्शन न देते थे, बार-बार उनके पास जाने की किसी को आज्ञा न थी।

ब्रह्मपुरी-गुफा में निवास

संन्यास-आश्रम ग्रहण करने के कुछ मास पश्चात् राम स्वामी ने नारायणदासजी को आज्ञा दी कि अब तक राम की लेखनी से जो "सुलह कि जंग, गंगा-तरंग" नामक लेख लिखा जा चुका है और जिसे नारायणदास विधिवत्

स्वच्छ प्रतिलिपि कर चुका है, उसे लेकर वह मैदानों में जावे और आनंद-प्रेस, लाहौर में जाकर रिसाला अलिफ़ के शेष अंकों में उसे अपनी देखरेख में प्रकाशित करा दे। नारायणदासजी ने वैसा ही किया। किंतु इस बीच में नारायणदासजी की अनुपस्थिति के कारण राम स्वामी के दर्शनों के लिये बहुत लोग आने लगे जिससे उस स्थान पर एकांत बिलकुल नहीं रहा, अतः एकांत भंग होता देखकर राम १४ जून, १९०१ ई० को यह स्थान त्यागकर एक दूरवर्ती एकांत-स्थान पर टिहरी से लगभग ६ मील की दूरी पर ठीक गंगा-तट के समीप बमरौगी-गुफा में रहने लगे, और अपने साथियों में से किसी को इस स्थान-परिवर्तन की सूचना नहीं दी, यद्यपि डाक द्वारा नारायणदासजी के पास लाहौर में अपने लेख बराबर भेजते रहे। इस प्रकार समस्त लेख दो पुस्तकों ("सुलह कि जंग, गंगा-तरंग" और "जल्वा-ए-कुहसार" वा "कैलाश कूक") में प्रकाशित करके जब जुलाई-मास में नारायणदासजी टिहरी वापस आए, तो राम को सेठ मुरलीधर की वाटिका में अर्थात् पहले स्थान में न पाकर बड़े आश्चर्य-चकित हुए। इधर-उधर पता लगाने और पूछने पर ज्ञात हुआ कि राम कुछ सप्ताहों से बमरौगी-गुफा में रहने लगे हैं। तब नारायणदासजी वहाँ गये। जब वहाँ पहुँचे तो उस समय राम गंगा-तट पर लेटे हुए पाए। उनके

मुखमंडल पर ऐसा अपूर्व आनंद प्रदीप्त हो रहा था जिससे स्पष्ट होता था कि वह आनंद-समाधि में निमग्न हैं। थोड़ी देर बाद .खूब धूप चढ़ आने पर जब राम समाधि से चेतन अवस्था में आए, तो नारायणदासजी को देखकर मुसकिराते हुए बोले—"रात से राम यहाँ लेटा है, प्रातःकाल ४ बजे जब गंगाजी किनारे पर अधिक चढ़ आईं और सोए हुए राम के चरणों को छूने लगीं, तो राम की नींद खुल गई। उसी समय प्रभातवायु ने चित्त की मुग्धावस्था को अत्यंत बढ़ा दिया, और मस्तदिल तरह-तरह की ग़ज़लों में उमड़ पड़ा। उन ग़ज़लों को लिखते-लिखते जब मन और मस्तिष्क अपनी कल्पना की सीमा का उल्लंघन कर गए, तो इधर लेखनी गिर पड़ी और उधर शरीर बालुका पर लिट गया।" उन ग़ज़लों को राम पढ़कर सुनाने लगे। जिनको नारायणदासजी ने तत्पश्चात् साफ़ नक़ल कर लिया। यद्यपि ये ग़ज़लें रिसाला अलिफ़ में और फिर राम-वर्षा में प्रकाशित की जा चुकी हैं, किंतु प्रसंगवश यहाँ भी उद्धृत की जाती हैं—

मुबारकबादी (धन्यवाद)

चलना सबा का ठुम ठुमक लाता प्यामे-यार है।
टुक आँख कब लगने मिली, तीरे-निगह तैयार है॥ १॥

होशो-ख़िरद से इत्तिफ़ाक़न, आँख गर दो-चार है।
बस यार की फिर छेड़ख़ानी का गरम बाज़ार है॥ २॥

मालूम होता है हमें मतलब का हमसे प्यार है।
सख़्ती से क्यों छीने है दिल, क्या यूँ हमें इन्कार है॥ ३॥

लिखने की नै पढ़ने की फ़ुरसत, काम की, नै काज की।
हमको निकम्मा कर दिया, वह आप तो बेकार है॥ ४॥

पहरा मुहब्बत का जो आए, हमबग़ल होता है वह।
ग़ुस्सा तबीअत का निकालें? रूबरू दिलदार है॥ ५॥

सोने पै हाज़िर ख़्वाब में, जागे पै ख़ाको-आब में।
हँसने में हँस मिलता है, मिल रोता है लूखू बार है॥ ६॥

गह बर्क़-वश ख़ंदा बना, गह अख़्तर गिरियाँ बना।
हर सूरतो हर रंग में पैदा बुते-अय्यार है॥ ७॥

दौलत ग़नीमत जान दर्दे-इश्क़ की, मत खो उसे।
मालो-मता, घर-बार, ज़र सदक़े मुबारक नार है॥ ८॥

मंज़ूर नालायक़ को होता है इलाजे-दर्दे-इश्क़।
जब इश्क़ ही माशूक़ हो, क्या सिहत में बीमार है॥ ९॥

क्या इंतज़ारो, क्या मुसीबत, क्या बला, क्या ख़ारे-दश्त।
शोला मुबारिक जब भड़क उट्ठा, तो सब गुलनार है॥ १०॥

दौलत नहीं, ताक़त नहीं, तालीम नै तकरीम नै।
शाहे-ग़नी को तो फ़क़त इर्फ़ाने-हक़ दरकार है॥ ११॥

उमरों की उम्मीदें उड़ा, छोटी-बड़ी सब ख़्वाहिशें।
दीदार का लीजिए मज़ा, जब उड़ गई दीवार है॥ १२॥

मंसूर से पूछी किसी ने, कूचए-जानाँ की राह।
खुब साफ़ दिल में राह बतलाती ज़ुबाने-दार है॥ १३॥

इस जिस्म से जाँ कूदकर, गंगाए-वहदत में पड़ी।
कर लें महोछा जानवर, लो वह पड़ा मुरदार है॥ १४॥

तशरीफ़ लाता है जुनूँ, चश्मो-सिरो-दिल फ़र्शे-राह।
पहलू में मत रखना ख़िरद को राँड यह बदकार है ॥ १५ ॥

पल्ला छुटा इस जिस्म से, सिर से टली आने बला।
वेलकम ! ऐ तेग़े-ख़ूँ चकाँ, क्या मर्ग लज़्ज़तदार है ॥ १६ ॥

यह जिस्मो-जाँ नौकर को दे, ठेका सदा का भर दिया।
तू जान तेरा काम रे, क्या हमको इससे कार है ॥ १७ ॥

ख़ुश होके करता काम है, नौकर मेरा चाकर मेरा।
हो राम बैठा बादशाह, हुशियार ख़िदमतगार है ॥ १८ ॥

सोता नहीं यह रात-दिन, क्या उड़ गई दीदों से नींद।
ग़फ़लत नहीं दम-भर इसे, यह हर घड़ी बेदार है ॥ १९ ॥

नौकर मेरा यह कौन है ? आक़ा हूँ इसका कौन राम ?
ख़ादिम हूँ मैं या बादशाह ? यह क्या अजब इसरार है ॥ २० ॥

वाहिद मुजर्रद लाशरीको-ग़ैरसानी, बे बदल।
आक़ा कहाँ ? ख़ादिम कहाँ ? यह क्या लग़्व गुफ़्तार है ॥ २१ ॥

तनूहास्तम, तनूहास्तम, दर बैहरो बर यकतास्तम।
नुतक़ो-ज़ुबाँ का राम तक याँ पहुँचना दुशवार है ॥ २२ ॥

ऐ बादशाहाने-जहाँ ! ऐ अंजमे-हफ़्त-आसमाँ !।
तुम सब पै हूँ मैं हुक्मराँ, सबसे बड़ी सरकार है ॥ २३ ॥
जादू निगाहे-यार हूँ, नशा लबे-मैगूँ हूँ मैं।
आबे-हयाते-ख़ब हूँ मैं अबरू मेरी तलवार है ॥ २४ ॥
यह काकुले-ज़ुलमाते-माया, पेच-पेचाँ है बले।
सीधे को अस्वा-ए-राम है उलटे को डसता मार है ॥ २५ ॥

नंबरवार अर्थ

(१) प्रातःकाल की वायु का ठुमक-ठुमक चलना

ही अपने प्यारे यार (स्वरूप) का सँदेशा ला रहा है, और जरा-सी आँख भी लगने नहीं देता; क्योंकि आँख जब जरा लग जाती है, तो झट उस प्यारे (स्वरूप) की दृष्टि (प्रकाश) का तीर लगना आरंभ हो जाता है, जिससे मैं सोने न पाऊँ, अर्थात् उसे भूल न जाऊँ।

(२) अगर अकस्मात् अक़्ल और होश में आने लगता हूँ, या मन-बुद्धि का संग करने लगता हूँ, तो उसी समय प्यारा छेड़ख़ानी करने लग जाता है, ताकि फिर बेहोश और आत्मानंद से पागल हो जाऊँ, अर्थात् मैं पुनः संसार का न रहूँ, सिर्फ़ प्यारे (स्वस्वरूप) का ही हो जाऊँ।

(३) (इस छेड़ख़ानी से) ऐसा मालूम होता है कि प्यारे का हमसे एक मतलब (स्वार्थ) के कारण प्यार है और वह मतलब हमारा दिल लेना है। भला सख़्ती से वह क्यों दिल छीनता है, क्या वैसे हमको इन्कार है? अर्थात् जब पहले से ही हम प्यारे के हवाले दिल करने को तैयार बैठे हैं, तो फिर वह सख़्ती से क्यों छीनना चाहता है?

(४) दिल को प्यारे के अर्पण करने से न लिखने की फ़ुरसत रही, और न किसी काम-काज की। आप तो वह बेकार (अकर्ता) था ही, अब हमको भी वैसा ही बेकार कर दिया है।

(५) जब प्रेम का समय आता है, तो वह (प्यारा)

झट हमवगल (संग वा मूर्तिमान्) हो जाता है। ऐसी दशा में हम किस पर ग़ुस्सा निकालें, क्योंकि सामने तो वह स्वयं खड़ा है।

(६) सोते समय वह हाज़िर है, जाग्रत् में पृथिवी-जल के रूप में साथ है, हँसते समय वह साथ मिलकर हँसता है और रोते समय वह (अभेद हुआ) साथ रोता है, अर्थात् सब दशा में वह ही स्वयं मौजूद है।

(७) कभी चमकती हुई बिजली के रूप में हँसता है और कभी बरसते हुए घने बादलों के रूप में रोता है, इस प्रकार प्रत्येक रूप और रंग में वही प्यारा प्रकट हुआ दिखाई देता है।

(८) ऐ प्यारे जिज्ञासु ! इश्क़ (प्रेम) के धन को उत्तम जान, इसको मत खो, बल्कि इस प्रेम की आग पर सारा घर-बार और धन-दौलत को वार दो।

(९) इस प्रेम के दर्द का इलाज करना तो अज्ञानी पुरुष को ही मंज़ूर होता है, क्योंकि जब प्रेम ही माशूक़ (इष्ट देव) हो, तो क्या ऐसी नीरोगता में भी बीमार है ?

(१०) इंतज़ार, मुसीबत, बला और जंगल का काँटा यह सब उसी समय जलकर गुलनार (आग का पुष्प) हो गए, जिस समय ज्ञानाग्नि भीतर प्रज्वलित हुई।

(११) दौलत, बल, विद्या और इज़्ज़त तो नहीं चाहिए,

उस (अनन्य भक्त वा ब्रह्मवित्) वेपरवाह बादशाह को तो केवल आत्मज्ञान (ब्रह्म-विद्या) की ही आवश्यकता है।

(१२) कई वर्षों की आशाएँ जो स्वरूप के अनुभव में परदे वा ओट का काम कर रही हैं, इन सब छोटी-बड़ी आशाओं को (आत्मज्ञान से) जला दो, और जब इस तरह से इच्छाओं की दीवार उड़ जाय, तो फिर प्यारे (स्वस्वरूप) के दर्शन का आनंद लो।

(१३) मंसूर एक मस्त ब्रह्मवेत्ता का नाम है, जब वह सूली पर चढ़ाया गया, तो उस समय एक पुरुप ने उससे प्यारे की गली अर्थात् स्वस्वरूप के अनुभव करने का रास्ता पूछा। मंसूर तो चुप रहा, क्योंकि वह सूली पर उस समय था, परंतु सूली की नोक अर्थात् सिरे ने, जिसको ज़ुबाने-दार कहते हैं, मंसूर के दिल में साफ़ खुबकर बतला दिया कि यह रास्ता है, अर्थात् प्यारे के अनुभव का केवल दिल के भीतर जाना ही रास्ता है।

(१४) इस शरीर से शारीरिक प्राण कूदकर तो अद्वैत की गंगा में पड़ गए हैं, अब इस मृतक शरीर (मुर्दे) को (प्रारब्ध-भोग-रूपी) पक्षी आएँ और महोत्सव कर लें। क्योंकि साधु के मरने के पश्चात् भंडारा अर्थात् भोजन दिया जाता है और मस्त पुरुप अपने शरीर को ही सबके अर्पण करना भंडारा समझता है, इसलिये राम जब मस्त

हुए तो शरीर को मृतक देखकर भंडारे के वास्ते पक्षियों को बुलाते हैं।

(१५) जब इस निजानंद के कारण नेत्र, मस्तिष्क और हृदय में बेसुद्धि उमड़ने लगे, तो उस समय अपने पास द्वैत दर्शानेवाली सांसारिक बुद्धि तू मत रख; क्योंकि यह बुद्धि व्यभिचारिणी राँड है।

(१६) जब राम अति मस्त हुए, तो बोल उठे कि इस शरीर से अब संबंध छूट गया है, इसलिये इसकी ज़िम्मेदारी की सिर से बला टल गई। अब तो राम ख़ून पीने-वाली तलवार (मुसीबत) को भी स्वागत करता है, क्योंकि राम को यह मौत बड़ा स्वाद देती है।

(१७) यह देह-प्राण तो अपने नौकर (ईश्वर) के हवाले करके उससे नित्य का ठेका ले लिया है, अब ऐ प्यारे (स्वस्वरूप) ! तू जान तेरा काम, हमको इस (शरीर) से क्या मतलब है ?

(१८) नौकर बड़ा ख़ुश हो के काम कर रहा है, राम अब बादशाह हो बैठा है, क्योंकि ख़िदमतगार (सेवक) बड़ा चतुर मिला हुआ है।

(१९) नौकर ऐसा अच्छा है कि रात-दिन ज़रा भी सोता नहीं, मानो उसकी आँखों में नींद ही नहीं और दम-भर भी उसको सुस्ती नहीं, वह हर घड़ी जगाता ही रहता है।

(२०) ऐ राम ! मेरा नौकर कौन है और मालिक उसका कौन है ? मैं क्या मालिक हूँ या नौकर हूँ ? यह क्या आश्चर्यजनक रहस्य है (कुछ नहीं कहा जा सकता है) ।

(२१) मैं तो अकेला, अद्वैत, नित्य, असंग और निर्विकार हूँ, मालिक और नौकर का भाव कहाँ ? यह क्या गलत बोलचाल है ।

(२२) मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, जल-थल पर मैं अकेला हूँ, वाणी और वाक्-इंद्रिय का मुझ तक पहुँचना कठिन है, अर्थात् वाणी इत्यादि मुझे वर्णन नहीं कर सकतीं ।

(२३) ऐ दुनिया के बादशाहो ! और ऐ सातों आसमानों के तारो ! मैं तुम सब पर राज्य करता हूँ । मेरा राज्य सबसे बड़ा है ।

(२४) मैं अपने प्यारे (स्वरूप) की जादू-भरी दृष्टि हूँ, निजानंद-भरी मस्ती की शराब का नशा मैं हूँ, अमृत-स्वरूप मैं हूँ, भवें (माया) मेरी तलवार हैं ।

(२५)यह मेरी माया की ज़ुल्फ़ें (अविद्या के पदार्थ) पेचदार (आकर्षक) तो हैं, मगर जो मुझे (मेरे असली स्वरूप की ओर) सीधा आकर देखता है, उसको तो वास्तविक राम के दर्शन हो जाते हैं, और जो उल्टा (पीछे को) होकर (मेरी माया-रूपी काली ज़ुल्फ़ों को)

देखता है, उसको ("राम" शब्द का उल्टा शब्द "मार") अविद्या का साँप काट डालता है।

अमावस की रात को एक बजे गुफा के सामने गंगी ने नरम-नरम बिछौना (रेणुका का) बिछा दिया है। राम बादशाह लेट रहा है, गंगी चरणों को छूती हुई बह रही है।

चेः—चिखाते चढ़न सुखालड़ा है, घुट साह इको छाल मार देनी।
नरद प्रेम दी खेलनी खरी औखी, तरस तरस बाज़ी जान हार देनी॥
सदा चाढ़ पियालड़े मस्त रहना, दीन दुन्या दी मरज़ विसार देनी।

बिछुड़ती दुलहन वतन से है जब, खड़े हैं रोम और गला रुके है।
कि फिर न आने की है कोई ढब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १

यह दीनो-दुनिया तुम्हें मुबारक, हमारा दुलहा हमें सलामत।
पै याद रखना, यह आखिरी छवि, खड़े हैं रोम और गला रुके है २

है मौत दुनिया में बस ग़नीमत, ख़रीदो राहत को मौत के भावों।
न करना चूँ तक यही है मज़हब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ३

जिसे हो समझे कि जाग्रत है, यह ख़्वाबे-ग़फ़लत है सख़्त ऐ जाँ!
कलोरोफ़ारम हैं सब मतालब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ४

ठगों के कपड़े उतार दे दो, लुटा दो असबाबो-मालो-ज़र सब।
ख़ुशी से गर्दन पै तेग़ धर तब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ५

जो आरज़ू को हैं दिल में रखते, हैं बोसा दीवाना सग को देते।
यह फूटी क़िसमत को देख अब कब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ६

कहा जो उसने उड़ा दो टुकड़े, जिगर के टुकड़ों के प्यारे अर्जुन!
यह सुन के नादाँ के ख़ुश्क हैं लब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ७

लहू का दरिया जो चीरते हैं, हैं तख़्त पाते वही हक़ीक़ी।
तअल्लुक़ों को जला भी दो सब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ८

है रात काली घटा भयानक, ग़ज़ब दरिंदे हैं वाए जंगल।
अकेला रोता है तिफ़्ल या रब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ९

गुलों के बिस्तर पै ख़्वाब ऐसा, कि दिल में दीदों में ख़ार भर दे।
है सीना क्यों हाथ से गया दब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १०

न बाक़ी छोड़ेंगे इल्म कोई, थे इस इरादे से जम के बैठे।
है पिछला लिक्खा-पढ़ा भी ग़ायब, खड़े हैं रोम और गला रुके है ११

है बैठा पट्ठों में कच्चा पारा, रही न हिलने की तावां-ताक़त।
न असर करता है नेशे-अक़रब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १२

पिए निगाहों के जाम रज कर, न सिर की सुधबुध रही न तक की।
न दिन ही सूझे है, नै तो अब शब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १३

हवासे-ख़मसा के बंद थे दर, किधर से क़ाबिज़ हुआ है आकर।
बला का नश्शा, सितम तअज्जुब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १४

यह कैसी आँधी है जोशे-मस्ती की, कैसा तूफ़ाँ सरूर का है।
रही ज़मीं मह न मेहरो-कौकब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १५

थीं मन के मंदिर में रक़्स करतीं, तरह-तरह की-सी ख़्वाहिशें मिल।
चिराग़े-ख़ाना से जल गया सब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १६

है चौड़ चौपट यह खेल दुनिया, लपेट गंगा में इसको फेंका।
मरा है फ़ीला, उड़ा है अशहब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १७

पड़ा है छाती पै धर के छाती, कहाँ की दूई कहाँ की वहदत।
है किसको ताक़त बयान की अब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १८

यह जिस्मे-फ़र्ज़ी की मौत का अब, मज़ा समेटे से नहीं सिमटता।
उठाना दूभर है वहमे-क़ालिब, खड़े हैं रोम और गला रुके है १९

कलेजे ठंडक है, जी में फ़रहत, भरा है शादी से सीनाए-राम।
हैं नैन अमृत से पुर लबालब, खड़े हैं रोम और गला रुके है २०

नंबरवार अर्थ

(१) जब लड़की पति के साथ विवाही जाकर अपने माता-पिता के घर से अलग होने लगती है, तो लड़की और माता-पिता के रोमांच हो जाते हैं और आश्चर्य दशा व्याप्त होने से गला रुक जाता है। लड़की को फिर घर वापस आने की अथवा माता-पिता के घर का ही बने रहने की कोई आशा मालूम नहीं देती, इस वास्ते सर्वदा की जुदाई होते देखकर माता-पिता और लड़की के रोंगटे खड़े हो जाते हैं और गला रुक आता है।

(२) (लड़की फिर मन में यह कहने लगती है) कि हे माता-पिता! यह घर-बार तथा संसार तो आपको और मेरा पति मुझे मुबारक हो; पर यह (जुदा होते समय की) आखिरी छवि (अवस्था) आप जरूर याद रक्खें, "कि रोंगटे खड़े हो रहे हैं और गला रुक रहा है।" ऐसे ही जब मनुष्य की वृत्ति-रूपी लड़की (अपने) पति (स्व स्वरूप) के साथ विवाही जाती, अर्थात् आत्मा से तदाकार होती है, तो उसके माता-पिता (अहंकार और बुद्धि) के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और गला मारे बेबसी के रुकता जाता है, और उस वृत्ति को अब वापस आते न देखकर इंद्रियों

में रोमांच हो जाता है। उस समय वृत्ति भी अपने संबंधियों से यह कहती मालूम देती है कि ऐ अहंकार-रूपी पिता ! और बुद्धि-रूपी माता ! यह घर-बार व दुनिया अब तुम्हें मुबारक हो और हमें हमारा दुलहा (स्वस्वरूप) सलामत हो।

(३) (अहंकार की) यह मौत दुनिया में अति उत्तम है, और इस मौत के दाम पर आनंद को ख़रीदो, इसमें चूँ-चरा (क्यों, कैसे) न करना ही धर्म है। यद्यपि इस (मौत) को ख़रीदते समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और गला रुक जाता है।

(४) ऐ प्यारे ! जिसे आप जाग्रत् समझ रहे हो, वह तो घोर स्वप्न अर्थात् सुषुप्ति है, क्योंकि यह सब विषय के पदार्थ तो कलोरोफ़ारम दवाई की तरह हैं जिसको सूँघने अर्थात् भोगने से सब रोम खड़े हो जाते हैं, और गला रुक जाता है।

(५) ठगों को कपड़े उतारकर दे दो और माल-असबाब सब लुटा दो तथा (अहंकार की) गर्दन पर ख़ुशी से तलवार रख दो, चाहे तब रोम खड़े हों और गला रुक जाय (मगर जब तक आनंद से अपने आप अहंकार को नहीं मारोगे, तब तक किसी प्रकार का आपका भला नहीं होगा)।

(६) जो इच्छामात्र को दिल में रखते हैं, वह पागल कुत्ते को चुम्मा (बोसा) देते हैं, ऐसी फूटी प्रारब्ध को देखकर रोमांच हो जाते हैं, और गला रुक जाता है।

(७) जब उस (कृष्ण) ने अर्जुन को कहा कि सर्व संबंधियों को टुकड़े-टुकड़े कर दो, यह सुनकर उस अज्ञानी (अर्जुन) के होंठ सूख जाते हैं, और रोमांच होते तथा गला रुक जाता है।

(८) (फिर कृष्णजी कहते हैं कि ऐ प्यारे अर्जुन!) जो पुरुष लहू का दरिया (संबंधियों को) चीरते (निःसंबंध होते) हैं, वे ही असली तख़्त (स्वराज्य) को पाते हैं, इसलिये ऐ प्यारे! सर्व सांसारिक संबंधों को जला दो, पर यह सुनकर उस अर्जुन के रोमांच होते हैं, और गला रुकता जाता है।

(९, १०) (ऐसा स्वप्न आ रहा है कि) रात काली है, घनघोर घटा छा रही है, क्रूर वा रुधिर के प्यासे पशु (शेर इत्यादि) सामने हैं, और बड़ा भारी जंगल है, उस वन में लड़का अकेला रोता है। ऐसा देखकर रोमांच हो रहे हैं, गला रुक रहा है। किंतु पुष्पों के बिस्तर पर ऐसा भयानक स्वप्न आ रहा है कि जो दिल में और आँखों में काँटे भर दे, परंतु ऐ प्यारे! अपने हाथ से तेरी छाती क्यों दब गई जिसके कारण ऐसा भयानक स्वप्न आ रहा

है, और रोमांच हो रहे हैं, तथा गला रुक जाता है।

(११) हम इस संकल्प के साथ (गंगा-किनारे) जम कर बैठे थे कि अब कोई विद्या बाक़ी नहीं छोड़ेंगे, मगर अब तो पिछला लिखा-पढ़ा भी गुम हो गया है; रोंगटे खड़े हो रहे हैं, और गला रुक रहा है।

(१२) पट्ठों में ऐसा कच्चा पारा बैठ गया है (मस्ती का इतना जोश चढ़ गया है) कि हिलने की भी ताक़त नहीं रही, और न अब विच्छू का डंक ही कुछ असर करता है, बल्कि ऐसी हालत हो रही है कि "रोंगटे खड़े हो रहे हैं, और गला रुके जाता है"।

(१३) प्यारे की दृष्टि (दर्शन)-रूपी अनुभव के प्याले ऐसे रिझ कर पिए हैं कि अपने सिर और तन की भी सुध-बुध नहीं रही। अब न तो दिन सूझता और न रात ही नज़र आती है, बल्कि रोमांच हो रहे हैं, और गला रुके जाता है।

(१४) पाँचों ज्ञान-इंद्रियों के द्वार तो बंद थे, मगर मालूम नहीं कि किस तरफ़ से यह (मस्ती का जोश) अंदर आकर क़ाबिज़ हो गया है, जो बला का नशा है और सितम ढा रहा है, जिससे रोमांच खड़े हो रहे हैं, और गला रुके जा रहा है।

(१५) यह ज्ञान की मस्ती की कैसी आँधी आ

रही है और निजानंद का जोश कैसे बढ़ रहा है कि पृथ्वी, चाँद, सूर्य, तारे की भी सुधि-बुधि नहीं रही, अर्थात् द्वैत बिलकुल भासमान नहीं हो रही, बल्कि रोंगटे खड़े हो रहे हैं, और गला रुक रहा है।

(१६) मन-रूपी मंदिर में जो नाना प्रकार की इच्छाएँ नाच रही थीं, वह घर के दीपक से (आत्मानुभव से) सब जल गईं, अर्थात् अपने अंदर ज्ञान-अग्नि ऐसे प्रज्वलित हुई कि सर्व प्रकार के संकल्प जल गए तथा रोंगटे खड़े हो गए, और गला रुक गया।

(१७) यह दुनिया शतरंज के खेल की तरह है, इस (शतरंज-रूपी खेल) को लपेटकर अब गंगा में फेंक दिया। वह फ़ीला मरा और वह घोड़ा मरा, यह देखकर रोम खड़े हो रहे हैं, और गला रुक रहा है।

(१८) अब अपना प्यारा छाती पर छाती रखकर पड़ा है, अब तो कहाँ की द्वैत और कहाँ की एकता है! किसको बताने की अब ताक़त है, केवल रोंगटे खड़े हैं और गला रुके है।

(१९) (यह जो आनंद आ रहा है, यह क्या है ?) यह संकल्पमयी (भासमान) शरीर की मौत का आनंद है जो समेटे से भी नहीं सिमटता है। अब तो (इस आनंद के भड़कने से) यह पंचभौतिक शरीर उठाना भी

कठिन हो गया है, क्योंकि आनंद के मारे रोम खड़े हैं, और गला रुक रहा है।

(२०) कलेजे (हृदय) में शांति है और दिल में अब चैन है, ख़ुशी से राम का हृदय भरा हुआ है, और नैन (आनंद के) अमृत से लबालब भरे हुए हैं ; अर्थात् आनंद के मारे आँसू टपक रहे हैं, और रोम खड़े हो रहे हैं, तथा गला रुक रहा है।

उन दिनों की मस्त अवस्था में जैसे आनंदपूर्ण पत्र राम की लेखनी से लोगों को जाते थे, उनमें से एक उद्धृत किया जाता है।

राम बादशाह का पत्र

"रवाँ शुद सूए-मा कौसर कि गुंजाँ नेस्त अंदर ज़र्फ़।
बदुराँ मश्के-सक़ारा बज़न संगे व विशकन ख़ुम॥

अर्थ—प्यारे के हृदय में अमृत का स्रोत समा न सका, जिससे उछलकर मेरी ओर वह निकला। अब तू पत्थर से माशकी की मशक को फोड़ दे, और प्याले को तोड़ दे, अर्थात् शास्त्रीय बंधनों की सीमा से बाहर हो, स्वतंत्र हो।

जब उमड़ा दरिया उल्फ़त का, हर चार तरफ़ आबादी है।
हर रात नई इक शादी है, हर रोज़ मुबारकबादी है।
ख़ुश ख़ंदा है रंगी गुल का, ख़ुश शादी शाद मुरादी है।
बन सूरज आप दरख़शाँ है, ख़ुद जंगल है, ख़ुद वादी है।
नित राहत है, नित फ़रहत है, नित रंग नए आज़ादी है १॥ टेक॥

हर रग रेशे में, हर मू में, अमृत भर-भर भरपूर हुआ।
सब कुलफ़त दूरी दूर हुई, मन शादी मर्ग से चूर हुआ।
हर वर्ग बधाइयाँ देता है, हर ज़र्रह-ज़र्रह तूर हुआ।
जो है सो है अपना मज़हर, ख्वाह आबी नारी बादी है।
क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आज़ादी है ॥ २ ॥

रिम-झिम, रिम-झिम आँसू बरसें, यह अब्र बहारें देता है।
क्या ख़ूब मज़े की बारिश में वह लुत्फ़ वसल का लेता है।
किश्ती मौजों में डूबे है, बदमस्त उसे कब खेता है।
यह ग़र्क़ाबी है जी उठना, मत झिजको, उफ़ ! बरबादी है।
क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आज़ादी है ॥ ३ ॥

मातम, रंजूरी, बीमारी, ग़लती, कमज़ोरी, नादारी।
ठोकर ऊँचा-नीचा, मिहनत जाती (है) इन पर जाँ वारी।
इन सबकी मददों के बाइस, चश्मा मस्ती का है जारी।
गुम शीर कि शीरीं तूफ़ाँ में, कोह और तेशा फ़रहादी है।
क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आज़ादी है ॥ ४ ॥

इस मरने में क्या लज़्ज़त है, जिस मुँह को चाट लगे इसकी।
थूके है शाहंशाही पर, सब नेमत दौलत हो फीकी।
मय चाहिए ? दिल सिर दे फूँको, और आग जलाओ भट्टी की।
क्या सस्ता बादा बिकता है, "ले लो" का शोर मुनादी है।
क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आज़ादी है ॥ ५ ॥

इल्लत मालूल में मत डूबो, सब कारण-कार्य तुम ही हो।
तुम ही दफ़्तर से ख़ारिज हो, और लेते चारज तुम ही हो।
तुम ही मसरूफ़ बने बैठे, और होते हारिज तुम ही हो।
तू दावर है, तू वुकला है, तू पापी, तू फ़रयादी है।
नित राहत है, नित फ़रहत है, नित रंग नए आज़ादी है ॥ ६ ॥

दिन शव का झगड़ा न देखा, गो सूरज का चिट्टा सिर है।
जब खुलती दीदए-रौशन है, हंगामाए-ख़्वाब कहाँ फिर है ?
आनंद सरूर समुद्र है जिसका आग़ाज़ न आख़िर है।
सब राम पसारा दुनिया का, जादूगर की उस्तादी है।
नित राहत है, नित फ़रहत है, नित रंग नए आज़ादी है ॥ ७ ॥

नंबरवार अर्थ

(१) जब प्रेम का समुद्र बहने लग पड़ा तो हर तरफ़ प्रेम की बस्ती नज़र आने लग पड़ी। और रात-दिन शादी तथा मुबारकबादी ने मुँह दिखाना शुरू कर दिया। अब दिल सुंदर पुष्प की तरह हँसता और खिलता रहता है, चित्त नित्य आनंद-प्रसन्न है। आप ही सूर्य बनकर चमक रहा है, और आप ही जंगल-घाटी बन रहा है। अहा ! कैसा नित्य आनंद है, नित्य शांति है, नित्य सर्व प्रकार की ख़ुशी और आज़ादी हो रही है।

(२) हर रग और नाड़ी में तथा रोम-रोम में आनंद-रूपी अमृत भरा हुआ है। जुदाई के सब दुःख और कष्ट दूर हो गए और मन इस अहंकार के मरने (मौत) की ख़ुशी से चूर हो गया है, अब प्रत्येक पत्ता बधाइयाँ दे रहा है, क्योंकि परमाणुमात्र भी इस ज्ञानाग्नि से अग्नि के पर्वत की तरह प्रकाशमान हो गया। अब जो है सो अपना ही झाँकी-स्थान या ज़ाहिर करने का स्थान है। चाहे वह पानी का प्राणी है, चाहे अग्नि का और चाहे हवा का (यह समस्त वास्तव में मुझको ही ज़ाहिर करनेवाले हैं)।

(३) आनंद की वर्षा से आँसू रिम-झिम बरस रहे हैं, और यह आनंद का बादल क्या अच्छी बहार दे रहा है। इस ज़ोर की वर्षा में वह (चित्त) क्या ख़ूब अभेदता (एकता) का आनंद ले रहा है। (शरीर-रूपी) नौका तो आनंद की लहरों में डूबने लग रही है, मगर वह सच्चा (आनंद में) उन्मत्त उसे कब

खेता है ? (वह तो शरीर का ख़याल नहीं करता) क्योंकि उसके लिये यह (देहाध्यास का) डूबना वास्तव में जी उठना है। इसलिये ऐ प्यारो ! इस मौत से मत झिझको (क्योंकि झिझकने में अपनी बरबादी है) । इस मृत्यु में तो क्या ही ठंढक है, क्या ही आराम है, और क्या ही आनंद और क्या ही स्वतंत्रता है, इसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता।

(४) रोना-पीटना, शोक-चिंता, बीमारी, ग़लती, कमज़ोरी, निर्धनता, नीच-ऊँच, ठोकर और पुरुषार्थ, इन सब पर प्राण वारे जा रहे हैं। और इन सबकी सहायता से मस्ती का समुद्र वह रहा है। प्रिया शीरीं के इश्क़ में फ़रहाद का तेशा पर्वत और शीरीं लोप हो रहे हैं। इस लोप होने में क्या शांति है, क्या आराम है, क्या आनंद और क्या ही आज़ादी हो रही है।

(५) इस मरने में क्या ही आनंद (लज़्ज़त) है, जिस मुँह को इस लज़्ज़त की चटक (स्वाद) लग गई वह शाहंशाही पर थूकता है, और धन-दौलत (वैभव) उसे फीका हो जाता है। अगर आपको (आनंद की) शराब चाहिए, तो दिल और सिर को फूँककर (इस शराब के वास्ते) उसकी भट्टी जला दो। वाह ! (निजानंद की) शराब (अपने सिर के बदले) क्या सस्ती बिक रही है, और (कबीर की तरह) "ले लो, ले लो" का शोर हो रहा है। इस शराब का फल क्या ही शांति, आराम, आनंद और आज़ादी है।

(६) हेतु (कारण) और फल (कार्य) में मत डूबो, क्योंकि सब कारण-कार्य तुम ही हो, और जो दफ़्तर से ख़ारिज होता है अथवा जो नौकर होता है, वह सब तुम आप हो। तुम ही सब काम में प्रवृत्त होते हो। तुम ही उसमें विक्षेप डालनेवाले होते हो। तुम ही न्यायकारी, तुम ही वकील और

तुम ही पापी और फ़रयादी होते हो। आहा! क्या नित्य चैन है, नित्य शांति है और नित्य राग-रंग और आज़ादी है।

(७) सूर्य यद्यपि आप सफ़ेद है, मगर दिन-रात का झगड़ा अर्थात् श्वेत, काले का भेद उसमें नहीं देखा जाता; क्योंकि दिन-रात तो पृथिवी के घूमने पर निर्भर है। ऐसे ही जब आँख खुलती है तो स्वप्न फिर शेष नहीं रहता, वरन् चारों ओर अनंत और नित्य आनंद का समुद्र उमड़ता दिखाई देता है। यह संसार ठीक राम का पसारा है, और जादूगर (राम) की उस्तादी है। इसलिये यहाँ वास्तव में नित्य चैन है, शांति है, और नित्य राग-रंग और नई आज़ादी है।

सुमेरु की यात्रा

इस प्रकार इस बमरौगी-गुफा में कुछ मास रहने के पश्चात् भादों गते १ संवत् १९५८ तदनुसार १६ अगस्त, १९०१ ई० को राम बादशाह नारायणदास और तुलारामजी को साथ लेकर यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, त्रियुगी-नारायण, केदारनाथ व बदरीनारायण की यात्रा के विचार से रवाना हुए। पहलेपहल राम बादशाह भादों गते २१ तदनुसार ५ सितंबर, १९०१ ई० जन्माष्टमी को यमुनोत्तरी मंदिर पहुँचे। वहाँ का मनोहर दृश्य सबको ऐसा प्यारा लगा कि कोई भी वहाँ से शीघ्र चलने को तैयार न हुआ, इसलिये राम बादशाह ने वहीं ठहरने की आज्ञा प्रदान की, और सब वहीं ठहर गए। राम बादशाह ने उष्ण गुफा में रहना पसंद किया, और नारायणदास व लाला तुलारामजी

को एक लकड़ी के मकान में, जिसे कोठार कहते हैं, रहने की आज्ञा मिली। लगभग दो सप्ताह सब लोग वहाँ रहे। इसके पश्चात् राम बादशाह को यमुनोत्तरी के ऊपर सुमेरु पर्वत की, जो बंदरपूछ के नाम से प्रसिद्ध है, सैर करने की उमंग उठी, और वहाँ की खूब सैर की। यमुनोत्तरी पहुँचने पर वहाँ के मनोहर दृश्य का जो प्रभाव राम के चित्त पर पड़ा, उसे उन्होंने नीचे लिखे पत्र में प्रकट किया है—

यमुनोत्तरी

"इस ऊँचाई पर उर्द की दाल नहीं गलती, न दुनिया की ही दाल गलती है। अत्यंत गरमागरम सोतों की धार, प्राकृतिक उद्यान की पुष्पावली का दृश्य अथवा सुषमा-प्रसार, झरनों की बहार तथा चमकदार चाँदनी को लजानेवाले श्वेत दुपट्टे (झाग-फेन) और उनके नीचे आकाश की रंगत को लजानेवाला यमुना रानी का गात (तन) बात-बात में कशमीर को मात करते हैं। आबशार (झरने) तो तरंगे-बेख़ुदी (निरभिमानता की लटक) में नृत्य कर रहे हैं। यमुना रानी साज़ बजा रही है। राम शहंशाह गा रहा है—

हिप हिप हुर्रे। हिप हिप हुर्रे॥ टेक॥

अब देवन के घर शादी[1] है, लो! राम का दर्शन पाया है।
पा-कोवाँ[2] नाचते आते हैं, हिप हिप[3] हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ १॥

---

१. ख़ुशी। २. पाँवों के बल नाचते आते हैं। ३. अँगरेज़ी-भाषा में अति प्रसन्नता का बोधक यह शब्द है।

ख़ुश ख़ुर्रम[1] मिल-मिल गाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ।
है मंगल साज़ बजाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ २ ॥

सब ख़्वाहिश मतलब हासिल हैं, सब ख़ूबों[2] से मैं वासिल[3] हूँ ।
क्यों हमसे भेद छुपाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ३ ॥

हर इक का अंतर आत्म हूँ, मैं सबका आक़ा[4] साहिब हूँ ।
मुझ पाए दुखड़े जाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ४ ॥

सब आँखों में मैं देखूँ हूँ, सब कानों में मैं सुनता हूँ ।
दिल बरकत मुझसे पाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ५ ॥

गह[5] इश्वा[6] सीमींबर[7] का हूँ, गह नारह[8] शेर बबर[9] का हूँ ।
हम क्या-क्या स्वाँग बनाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ६ ॥

मैं कृष्ण बना, मैं कंस बना, मैं राम बना, मैं रावण था ।
हाँ वेद अब क़समें खाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ७ ॥

मैं अंतर्यामी साकिन[10] हूँ, हर पुतली नाच नचाता हूँ ।
हम सूत्रतार[11] हिलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ८ ॥

सब ऋषियों के आईनए[12]-दिल में, मेरा नूर[13] दरख़्शाँ[14] था ।
मुझ ही से शाइर[15] लाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ९ ॥

---

१. आनंद, मस्त होकर । २. सुंदर लोग । ३. अभेद, मिला हुआ । ४. मालिक । ५. कभी । ६. नाज़-नख़रा । ७. चाँदी-जैसी सूरतवाली प्यारी । ८. गर्जन । ९. बबर शेर (सिंह) । १०. स्थिर । ११. सूत्रधारी की तरह पुतली तार हिलाते हैं । १२. अंतःकरण-रूपी शीशा । १३. प्रकाश । १४. चमकता था । १५. कवि अर्थात् मेरे आत्मस्वरूप से यह सब कविता आदि निकलती हैं ।

मैं ख़ालिक़[1], मालिक, दाता हूँ, चशमक[2] से दहर[3] बनाता हूँ।
क्या नक़शे रंग जमाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १० ॥
इक कुन[4] से दुनिया पैदा कर, इस मंदिर में ख़ुद रहता हूँ।
हम तनहा शहर बसाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ११ ॥
वह मिसरी हूँ जिसके बाइस[5] दुनिया की इशरत[6] शीरीं[7] है।
गुल[8] मुझसे रंग सजाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १२ ॥
मसजूद[9] हूँ क़िबला[10], काबा हूँ, माबूद[11] अज़ाँ[12] नाक़ूस[13] का हूँ।
सब मुझको कूक बुलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १३ ॥
कुल आलम[14] मेरा साया है, हर आन बदलता आया है।
ज़िल्ल[15] क़ामत[16] गिर्द घुमाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १४ ॥
यह जगत हमारी किरणें हैं, फैलीं हर सू[17] मुझ मर्कज़[18] से।
शाँ बूक़लमूँ[19] दिखलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १५ ॥
मैं हस्ती[20] सब अशिया[21] की हूँ, मैं जान मलायक[22] कुल की हूँ।
मुझ बिन बेबूद[23] कहाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १६ ॥
बेजानों में हम सोते हैं, हैवान[24] में चलते-फिरते हैं।

---

१. सृष्टिकर्त्ता। २. आँख की झपक में। ३. युग, समय। ४. आज्ञा, हुक्म वा संकेत। ५. सबब, कारण। ६. विषय-आनंद, विषय-भोग के पदार्थ। ७. मीठी। ८. पुष्प। ९. उपास्य, पूजा किया गया। १०. जिसकी तरफ़ मुँह करके ईश्वरोपासना व आराधना की जाती है। ११. पूज्यदेव। १२. बाँग। १३. शंख-ध्वनि। १४. सब संसार। १५. छाया, प्रतिबिंब। १६. बिंब। १७. तरफ़। १८. केंद्र। १९. नाना प्रकार के। २०. अस्तित्व, जान सबकी। २१. वस्तु, पदार्थ। २२. सारे फ़रिश्तों (देवताओं) की। २३. न होना, अविद्यमान। २४. पशुओं।

इंसान में नींद जगाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १७ ॥
संसार तजल्ली[1] है मेरी, सब अंदर बाहर मैं ही हूँ ।
हम क्या शोले[2] भड़काते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १८ ॥
जादूगर हूँ, जादू हूँ खुद, और आप तमाशा-बीं[3] मैं हूँ ।
हम जादू खेल रचाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १९ ॥
है मस्त पड़ा महिमा में अपनी कुछ भी ग़ैर अज़ 'राम' नहीं ।
सब कल्पित धूम मचाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ २० ॥

नोट—यमुनोत्री मंदिर में उक्त कविता लिखी गई थी, इसलिये पहले उस स्थान का वर्णन किया गया, फिर अपनी भीतरी अवस्था को कविता द्वारा दर्शाया गया है, अब राम वहाँ अपने रहने-सहने की दशा का वर्णन करने लगे हैं ।

दीवानगी (निजानंद से पगलापन) को दिनदूनी रातचौगुनी उन्नति है ।

"दीवाना रा हुए बस सत", वाला हाल है । पंचभौतिक हृदय का कुछ पता नहीं ।

भोजन—फलाहार जो यमुना रानी अपने हाथ से पका देती है, अर्थात् तप्तकुंड में अपने आप तैयार कर देती है ।

स्नान—कभी सौ-सौ फ़ीट की ऊँचाई से गिरनेवाले झरनों के नीचे स्नान की मौज लूटी जाती है, कभी शताब्दियों की जमी हुई बर्फ़ से ताज़ी-ताज़ी निकलकर जो यमुनाजी आती है, उसमें नहाने का आनंद उठाया जाता है, और कभी कुंडों के तत्ते पानी में शहंशाह सलामत स्नान करते हैं ।

चलना-फिरना—सर्वत्र नंगे तन से होता है ।

राम शहंशाह"

---

१. तेज, चमक । २. अग्नि की लाटें, अंगारे । ३. तमाशा देखनेवाला ।

राम का गंगोत्तरी आगमन

सुमेरु (बंदरपूछ हिमालय) की सैर के बाद राम यमुनोत्तरी मंदिर आए। यमुनोत्तरी से नीचे लगभग १०-१२ मील की दूरी पर घरसाली ग्राम है। वहाँ हम सब पहुँचे। इस गाँव से गंगोत्तरी को दो रास्ते फटते हैं, एक ऊपर हिमालय के साथ-साथ जिसका नाम 'छायाँ' या वाम-सख्-मार्ग है और केवल पगडंडी है, बिना जानकार के कोई उस मार्ग से चल नहीं सकता; दूसरा मार्ग उत्तरकाशी की जानिब से है। यह अच्छी चौड़ी सड़क है और यमुना नदी के किनारे-किनारे चलता है, इस रास्ते से यात्री लगभग १०-१२ दिन में गंगोत्तरी पहुँच सकता है, पर हिमालय के मार्ग से केवल दो-तीन दिन के भीतर-भीतर। सब लोग उत्तरकाशीवाले सहज रास्ते से जाने के स्थान पर ऊपर हिमालय के निकटवाले मार्ग से १६ सितंबर, १९०१ ई० को गंगोत्तरी को चले, और दो दिन बाद अर्थात् १८ सितंबर, १९०१ ई० को धराली गाँव में पहुँचे। इस गाँव से लगभग १२ मील की दूरी पर गंगोत्तरी है, जहाँ से सब लोग १९ सितंबर को पहुँच गए। इस दुर्गम मार्ग और बंदरपूछ की तुषारमंडित सैर का सविस्तर वर्णन 'राम' ने अँगरेज़ी में अपनी लेखनी से पुस्तकाकार किया है, जो अँगरेज़ी आठवीं जिल्द में प्रकाशित है, और जिसका

हिंदी-अनुवाद, यद्यपि रामग्रंथावली में दिया जा चुका है परंतु नवीन प्रकाशित रामोपदेश व लेख के अन्य भाग में भी प्रकाशित किया जायगा।

केदारनाथ और बदरीनाथ की यात्रा

गंगोत्तरी के निकट धराली गाँव में पूरे एक मास रहने के बाद सब लोग १९ अक्टोबर, १९०१ ई० को बूढ़े केदार और त्रियुगीनारायण के मार्ग से केदारनाथ गए, और वहाँ से बदरीनारायण में सब लोग दीपमालिका के ठीक एक सप्ताह पहले अर्थात् ३ नवंबर, १९०१ ई० को पहुँचे। उस मास में सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण दोनों साथ-साथ पड़े थे। सूर्यग्रहण के दिन स्नान के पश्चात् 'राम' की लेखनी से एक ग़ज़ल निकली जो नीचे सानुवाद उद्धृत की जाती है—

इश्क़ का तूफ़ाँ बपा है, हाजते-मयख़ाना नेस्त।
ख़ूँ शराबो, दिल कबाबो, .फ़ुरसते-पैमाना नेस्त ॥ १ ॥

सख़्त मख़मूरी है तारी ख़्वाह कोई क्या कुछ कहे।
पस्त है आलम नज़र में, वहशते-दीवाना नेस्त ॥ २ ॥

अल्विदा ऐ मर्ज़े-दुनिया! अल्विदा ऐ जिस्मो-जाँ!।
ऐ अतश! ऐ जू चलो, ईं जा कबूतरख़ाना नेस्त ॥ ३ ॥

क्या तजल्ली है यह नारे-हुस्न शोलाख़ेज़ है।
मार ले पर ही यहाँ पर ताक़ते-परवाना नेस्त ॥ ४ ॥

मेहर हो, मह हो, दबिस्ताँ हो गुलिस्ताँ कोहसार।
मौजज़न अपनी है ख़ूबी, सूरते-बेगाना नेस्त ॥ ५ ॥

लोग बोले गहन ने पकड़ा है सूरज को ग़लत।
ख़ुद हैं तारीकी में बरमन साया महजूबाना नेस्त ॥ ६ ॥

उठ मेरी जाँ! जिस्म से हो ग़र्क़ ज़ाते-राम में।
जिस्म बदरीश्वर की मूरत, हरकते-फ़रज़ाना नेस्त ॥ ७ ॥

नंबरवार अर्थ

(१) प्रेम-आँधी छाई हुई है, दूसरे शराबख़ाने की अब ज़रूरत नहीं है। इस समय अपना रुधिर तो शराब हो रहा है और चित्त कबाब हो रहा है, अतएव किसी अन्य प्याले का अब अवकाश नहीं।

(२) प्रेम-मद का नशा अत्यंत चढ़ा हुआ है, इसलिये अब चाहे कोई कुछ कहे, सारा संसार तो तुच्छ हो रहा है। पर यह नशा पागल मनुष्य की पशुवृत्ति के समान नहीं है।

(३) हे जगत् के रोग! तू अब रुख़सत हो। हे देह, प्राण! तुम दोनों भी अब रुख़सत हो। हे भूख-प्यास! तुम दोनों मेरे पास से परे हटो, यह जगह कोई कबूतरख़ाना, अर्थात् तुम्हारे रहने-सहने का घर नहीं है।

(४) आहा! सौंदर्य की तेज़ ज्वाला कैसी भड़की हुई है। अब किस परवाने की शक्ति है कि जो इसके आगे पर भी मार सके?

(५) सूर्य हो चाहे चंद्र, पाठशाला हो चाहे बाग़ और पर्वत इन सबमें अपनी ही सुंदरता तरंगें मार रही हैं, अन्य किसी रूप की नहीं।

(६) लोग कहते हैं कि सूर्य को ग्रहण ने पकड़ रक्खा है, पर यह नितांत झूठ है। क्योंकि वे स्वयं तो अंधकार में होते हैं और प्रकाशस्वरूप सूर्य को अंधकार में समझने लग जाते हैं। जैसे सूर्य का ग्रहण से पकड़े जाना झूठ है और सूर्य वास्तव में ग्रहण से ऊपर होता है, ऐसे ही मुझे अज्ञान के परदे में आसक्त मानना झूठ

है और मुझ पर वास्तव में किसी प्रकार का परदा ढकनेवाला नहीं है।

(७) हे मेरे प्राणो! इस देह से उठकर राम के स्वरूप में लीन हो जाओ। और देह ऐसी हो जाय, जैसे बदरीनारायणजी की मूर्ति कि जिसमें बालकवत् चेष्टा भी नहीं है।

राम मथुरा में

जिस समय 'राम' बदरीनारायण से लौटने लगे, तो मथुरा से एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि स्वामी शिवगणाचार्यजी ने वहाँ यमुना-तट पर एक 'शांति-आश्रम' स्थापित किया है, और वे शीघ्र ही बड़े दिनों की छुट्टियों में वहाँ एक धर्म-महोत्सव करना चाहते हैं, जिसमें स्वामी रामतीर्थजी को वे उस धर्म-सम्मेलन का मुख्य सभापति मनोनीत किया चाहते हैं। राम स्वामी बदरीनारायण की यात्रा समाप्त करके मैदानों को लौट ही रहे थे, कि उन्होंने यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया, और अलमोड़ा के मार्ग से वे २५ दिसंबर को मथुरा पहुँच गए। श्रीनारायणदासजी और रामानंदजी (तुलाराम) दोनों उनके साथ थे। मथुरा पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद धर्म-सम्मेलन का उत्सव आरंभ हुआ और स्वामीजी ने मुख्य सभापति के आसन को सुशोभित किया। इस अवसर पर मथुरा-निवासी और सभा-स्थान में उपस्थित अन्य सज्जन स्वामी रामतीर्थजी महाराज का तेजोमय मुखमंडल देखकर चकित हो गए। उस समय स्वामीजी

श्रीस्वामी रामतीर्थ और श्रीनारायण स्वामी

गुरु-शिष्य की एकट्ठी फोटो

लखनऊ (१६०२)

की पवित्र मूर्ति का रंग उनके भगवेवसन के तद्रूप था, मानो ज्ञान की लाली, सच्चा त्याग और संन्यास उनके अंगों से फूट-फूटकर बाहर निकल रहे थे। इस धर्म-महोत्सव में स्वामी राम के विषय में एक ऋषि श्रवणनाथ ने इस प्रकार लिखा था—

"मथुरा धर्म-महोत्सव के पहले जल्से में स्वामी राम पधारे थे। अहाहा! क्या शोभा थी। मुखमंडल से तेज बरसता था। इस महोत्संव में और भी महात्मा साधु विद्यमान थे। किंतु उनकी कांति के आगे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे चंद्रमा के आगे तारागण। कृष्ण भगवान् के विषय में मेरे हृदय में यह शंका थी कि उन पर गोपियों का मोहित होना, वंसी के वश होकर सुधबुध न रखना, कभी-कभी आधी रात को 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारती हुई कृष्ण के पास पहुँचना, इत्यादि, मैं समझता था, यह सब कवि-कल्पना है, इसे मानवी बुद्धि स्वीकार नहीं करती थी, और ये सब बातें गप्प प्रतीत होती थीं। किंतु स्वामी रामतीर्थजी के दर्शन ने यह बड़ी भारी शंका चित्त से दूर कर दी। आप ही इस महोत्सव के मुख्य प्रधान थे। जब सभा का कार्य समाप्त हो गया, और प्रेमियों की क्षुधा राम के मनोहर वचन सुनने के लिये और भी बढ़ गई, तो राम ने कहा—'अब उत्सव का कार्य समाप्त हो गया है, अब राम का व्याख्यान इस

छोटे-से तंबू के नीचे न होगा, वरन् वहाँ होगा जहाँ प्रकृति ने आकाश का विशाल चंदवा (मंडप वा ख़ेमा) तान रक्खा है। और जहाँ श्रीयमुनाजी ने नरम वालुका का कोमल बिछौना बिछा रक्खा है।' यह कहकर राम स्वामी ने वह पंडाल छोड़ दिया, और एक ओर को चल दिए, सारे उपस्थित सभासद् उनके पीछे-पीछे हो लिये जैसा कि होना चाहिए था। राम यमुना की ओर न जाकर उसके विरुद्ध पथ पर चले, और सारी जनता भी बिना सोचे-समझे उनके पीछे-पीछे वन की ओर चली। जब राम ने देखा कि लोग मारे प्रेम के पागल हुए उनके पीछे-पीछे आ रहे हैं, तो उन्होंने ठहरकर कहा—'प्यारो! राम लघु-शंका करने जा रहा है, वहाँ से लौटकर यमुना-तट पर व्याख्यान देगा।' यह सुनकर सब लोग जैसे थे, वैसे ही खड़े रहे। जब राम लौटे, तो फिर उनके पीछे सबके सब हो लिए। जिस प्रकार कहा जाता है कि कृष्ण के साथ रहने को प्रत्येक गोपी इच्छा करती थी, यही हाल यहाँ देखा कि राम के साथ चलने को लोग व्याकुल हैं। मैं स्वयं दो बार झाड़ियों में उलझ कर गिरा, किंतु कुछ भी इसका भान न हुआ। मेरे एक संबंधी मुझसे पीछे रह गए, लेकिन कुछ परवाह नहीं। ध्यान था तो यह कि राम आँखों से ओझल न हों।

जब राम यमुना-तट पर पहुँचे, उस समय संध्या हो गई थी, और जाड़े की ऋतु थी। महोत्सव केवल दिन ही दिन में होता था, इस कारण लोग जाड़े के कपड़े बहुत पहनकर नहीं आए थे। फिर भी ऐसे बेसुध थे कि जब राम ने कहा कि बैठ जाइए, तो लोग अपने मूल्यवान् दोशाले उसी रेत पर बिछा-बिछाकर बैठ गए, और प्रेम के साथ रात के आठ बजे तक राम के मनोहर उपदेश सुनते रहे, जाड़े की परवाह तक न की। इस समूह में थे कौन-कौन? गँवार, अनपढ़ और निरे मूर्ख ही नहीं थे, वरन् ग्रेजुएट, वकील, डाक्टर, इंजीनियर, डिपटी कलेक्टर, मुंसिफ़ और बड़े-बड़े ओहदेदार तथा नगर के रईस लोग भी थे। अहाहा! जब राम के मनोहर वचनों में यह शक्ति है कि उन्हें, जो ज्ञान-विज्ञान के भंडार कहे जाते हैं, बेसुध कर देती है, तो ज्ञानशून्य पगली गोपियाँ और पशुवत् ग्वाल यदि श्रीकृष्णचंद्र के मनोहर वचन, मनोहर बाँसुरी और सुंदर स्वरूप पर विमोहित होकर सुध-बुध खो बैठे, और उसके सच्चे प्रेम में लुट गए, तो क्या आश्चर्य है? बस, यही दृश्य था जिसने मेरे हृदय की उस भारी शंका को दूर कर दिया।"

स्वामी रामतीर्थजी के विषय में इसी तरह बा० सुरजनलाल पांडेय उपनाम शांतिप्रकाशजी, मंत्री साधारण धर्म-सभा, फ़ैज़ाबाद ने भी लिखा है कि "स्वामीजी के विश्वप्रेम का

एक प्रमाण यह है कि जो उनको देखता, उन पर अनुरक्त और मोहित हो जाता। जब स्वामीजी फ़रवरी, १९०२ ई० में साधारण धर्म-सभा के दूसरे अधिवेशन के अवसर पर पधारे थे, तो उस समय एक सम्मिलित प्लेटफ़ार्म पर हिंदू, मुसलमान, ईसाई और अन्य धर्मों के प्रचारकों ने अपने-अपने विचारों का प्रकाश किया था। इस अवसर पर मुसलमान-धर्म की ओर से मौलवी मोहम्मद गुर्तज़ाख़ाँ साहिब स्वामीजी से एक प्रश्न पर विवाद करने, नहीं-नहीं लड़ने के लिये आए थे। किंतु जिस समय दृष्टि दो-चार हुई, मालूम नहीं उनका वह लड़ाई का भाव कहाँ चला गया। मौलवी साहिब की आँखों से उसी समय प्रेम के आँसू बहने लगे और स्वामीजी से हाथ जोड़कर बोले—'ऐ राम! मैं तुझको ऐसा नहीं जानता था। अब मेरे क़ुसूर माफ़ हों।' उसके बाद से मौलवी साहिब आत्मानंद में मग्न और मस्त दिखाई देने लगे।" *

---

* इस घटना को श्रीमन्नारायणदासजी ने अपनी आँखों देखा था, क्योंकि उस समय वह राम के साथ थे। उन दिनों स्वामी रामजी जहाँ कहीं व्याख्यान देते थे, उनके संक्षिप्त नोट लेकर नारायणदासजी समाचारपत्रों में प्रकाशनार्थ भेज दिया करते थे, और कभी-कभी आज्ञा होने पर वह स्वयं भी भाषण दिया करते थे। उक्त सभा के उत्सव के समय स्वामी रामतीर्थजी महाराज का स्वास्थ्य कुछ ठीक न था, और उन्होंने अपने नियत समय पर

आगे चलकर शांतिप्रकाशजी लिखते हैं कि "मैंने विश्वस्त सूत्रों से सुना है कि जिस समय श्रीस्वामी रामतीर्थजी महाराज हरिद्वार के पर्वतों पर तप करते थे, उस समय स्वतः उन्हें ऐसी शक्ति प्राप्त थी कि वायु और जल उनकी आज्ञा पर गति करते थे, जैसा कि गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी के वर्णन में स्वामीजी ने जो स्वयं अपनी लेखनी से लिखा है, वह इस बात को स्पष्टतया दर्शाता है।..................

गत वर्ष की एक मेरी प्रत्यक्ष घटना है कि जब स्वामीजी महाराज फ़ैज़ाबाद पधारे, तो उन दिनों लगभग प्रतिदिन वृष्टि होती थी। जब मैंने महाराज की सेवा में निवेदन किया कि 'Atmosphere is gloomy अर्थात् आकाश मेघाच्छन्न है।' तो रामबादशाह हँसे और बोले— 'Rama has now come, nothing can remain

---

ब्रह्मचारी नारायणदासजी को व्याख्यान देने की आज्ञा दी। नारायणदासजी ने आत्मा के विषय पर व्याख्यान दिया। उनका व्याख्यान समाप्त होने पर उक्त मौलवी साहिब ने उस विषय पर बहुत-सी आपत्तियाँ उपस्थित करने के लिए समय माँगा। स्वामी रामतीर्थजी महाराज ने उत्तर दिया, 'दूसरे दिन पधारिए, सब संदेह निवृत्त कर दिए जायँगे।' मौलवी साहिब को रात-भर सोचने का मौक़ा मिल गया, दूसरे दिन वह बड़े जोश के साथ लड़ने के लिए पधारे। किंतु स्वामीजी के दर्शन करते ही उनकी जो दशा हुई, वह ऊपर लिखी जा चुकी है।

gloomy. Let the atmosphere also be cheerful. —अर्थात् अब राम आ गया है, मेघों का घटाटोप रह नहीं सकता, अब मेघों को भी आनंद और प्रफुल्लित अर्थात् निर्मल रहना चाहिए।' राम बादशाह का यह कहना था कि उसी समय बादल, जो घिरा था, फट गया और सूर्य का प्रकाश हो गया। फिर जब तक स्वामीजी अपने उपदेशों से फ़ैज़ाबाद को कृत-कृत्य करते रहे, बादलों का चिह्न तक दिखाई नहीं दिया।"

संभव है, कुछ लोगों को स्वामी राम के इन आश्चर्य-जनक चमत्कारों पर संदेह हो, किंतु हम लिख आए हैं कि ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं की शक्ति अनंत हो जाती है, उनका प्रत्येक कार्य संसार से अद्भुत होता है। प्रकृति उनकी सेवा के लिये उत्सुक रहती है, और ऐसे ब्रह्मनिष्ठ का आदेश होते ही तत्काल उसकी पूर्ति हो जाती है। जब तक साधारण मनुष्य अपने जीवन की उन समस्त कठिन समस्याओं को, जिन्हें एक महापुरुष सुलझा चुका है, सुलझा नहीं लेता, महापुरुषों के अलौकिक चमत्कारों का वह अनुमान नहीं कर सकता। जब कोई मनुष्य ईश्वरीय नियमों पर चलता हो, तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि प्रकृति उसकी वाणी के अनुसार न चले। गुरु नानक देवजी लिखते हैं—

"जै तूँ उसका हो रहें, सब जग तेरा हो।"

यहाँ बात ही स्पष्ट है। जिनका मन पवित्र है, सारा संसार और प्रकृति उनके साथ है।

स्वामी रामजी ने एक बार अपने भक्तों से लालभवन, फ़ैज़ाबाद में वार्तालाप करते हुए कहा था कि "राम सवेरे एक दिन वन में जा रहा था कि एक अद्वैत-मूर्ति महात्मा के दर्शन हुए। उनके पास केवल एक लँगोटी थी, और वह भी कुछ फटी हुई। एक सेठ बदरीनाथ को जा रहा था। उस संत महात्मा ने उस सेठ से अपनी लँगोटी की ओर, जो कुछ खुली थी, संकेत करके कहा—'अरे बदरीनाथ! तू यह देख ले।' इन महात्मा का नाम हरिहरदेव था। इनसे जब राम का आमना-सामना हुआ, दोनों हँस पड़े। वार्तालाप हुआ। अवस्था बदल गई। वहाँ से राम ब्रह्मपुरी वन गया। इस वन के सामने एक मंदिर * भी था।

* इसी मंदिर के निकट गंगा-किनारे राम ने कई दिनों तक अपना आसन जमाया था। इसी स्थान पर जब कुछ दिन तक उपनिषदों के लगातार अध्ययन व अभ्यास से आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ, तो राम ने (जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था) अपना शरीर गंगा को समर्पित कर दिया था। उस समय वर्षा के कारण गंगाजी बाढ़ पर थीं, और कल्लोल ध्वनि से बह रही थीं। राम का उस तेज़ व भयानक तरंगों के साथ बहती हुई गंगा में गिरना था, और उनके शरीर का अंत होना

राम ने यहाँ गंगा-तट पर उपनिषदों का अध्ययन किया। फिर ऐसी समाधि लगी कि कुछ न पूछो। यदि राम चट्टान पर लेटा है, तो मानो पत्थर का टुकड़ा पड़ा है। यदि धूप में बैठा है, तो धूप हो रहा है। इस समय राम की ऐसी अवस्था हो गई कि यदि वायु को आज्ञा दे कि चल, तो वायु तत्काल चलने लगती। पंचभूत उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। यदि राम को किसी ग्रंथ की आवश्यकता होती, तो कोई व्यक्ति वही पुस्तक लिए उसके पास चला आता।"

श्रीमन्नारायण स्वामी का संन्यास-आश्रम

फ़रवरी, १९०२ ई० में साधारण धर्म-सभा, फ़ैज़ाबाद के वार्षिक उत्सव पर, स्वामी रामजी की आज्ञा से ब्रह्मचारी

ही चाहता था कि मात गंगा ने अपने प्यारे राम को चूम-चाटकर झट एक शिला पर ढकेल कर बिठा दिया। इस मृत्यु के पंजे से बचना था कि राम का हृदय एक अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होकर शांत और स्थिर हो गया, और उस शिला पर गंगा के मध्य में विराजमान होते हुए कुछ ही घंटों के बाद उन्हें आत्म-साक्षात्कार हुआ। इस आत्मसाक्षात्कार का सविस्तर वर्णन राम ने स्वयं अपनी लेखनी से किया है, जो इसी पुस्तक के द्वितीय खंड में दिया जा चुका है। थोड़े समय पश्चात् गंगा की बाढ़ कम हो गई, और जल पहले की अपेक्षा भी और कम हो गया। जिससे राम गंगा-तट पर पहुँच गए। और फिर कई रातें उन्होंने मस्ती में उसी स्थान पर व्यतीत कीं।

श्रीस्वामी रामतीर्थजी के पट्ट शिष्य

श्रीस्वामी नारायण तीर्थ

संन्यासाश्रम की पहली फोटो (१६०६)

नारायणदासजी ने आत्मा के विषय पर जो व्याख्यान दिया, वह बड़ा ही विचारपूर्ण, तर्कपूर्ण और प्रभावशाली था। और उसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इस व्याख्यान को स्वामी रामतीर्थजी महाराज ने भी सुना। तभी से उनके चित्त में यह तरंग उठने लगी कि अब नारायणदासजी को अपने साथ रखना मानो उनकी अपनी निजी उन्नति और लोगों के हित को रोक रखना है। यदि नारायणदासजी संन्यास-आश्रम ग्रहण करके अकेला विचरने लगें और स्थान-स्थान पर उपदेश देते रहें, तो अगणित लोगों का उपकार करने के अतिरिक्त अपने पर विश्वास करने अर्थात् आत्मनिर्भर रहने से उनकी अपनी भी दिनदुगुनी और रातचौगुनी उन्नति होगी, अतः इन्हें संन्यास देकर फ़ौरन् पृथक् करना और दूर-दूर स्थानों पर उपदेश के लिये भेजना अत्यावश्यक है। इस तरंग के उठते ही उत्सव समाप्त होने पर स्वामी रामतीर्थजी महाराज ने नारायणदासजी को आज्ञा दी कि "वह संन्यास ग्रहण करके तत्काल सिंध-देश में जाकर लोगों को वेदांत-ज्ञान का उपदेश करें।"

स्वामी राम की यह आज्ञा सुनते ही स्वयं नारायणदासजी के हृदय पर भारी चोट लगी। चोट इस बात की लगी कि उनका अपने गुरुदेव के साथ प्रेम इतना बल पकड़ गया था कि एक घड़ी के वास्ते भी पृथक् होना

उनके चित्त के लिए असह्य था और विशेषतया इस ख़याल से उन्हें दुःख हो रहा था कि अब उन्हें अपने ब्रह्मरूप गुरुदेव के चरणों से पृथक् होना पड़ेगा, उनकी सेवा का महान् सुख अब उन्हें प्राप्त न होगा, उनके आनंदघन-स्वरूप का अब उन्हें नित्य दर्शन न होगा। यद्यपि राम के प्रेम में ब्रह्मचारी नारायणदासजी ने अपना घर-बार कुटुंब-परिवार सब कुछ पहले ही त्याग रक्खा था, और वह उनके पादपद्मों में लुब्ध मधुकर की भाँति सदैव लोभायमान रहते थे, और इसी से उन्हें अब संसार से कोई संबंध न रह गया था, अतः संन्यासी तो वह एक प्रकार पहले ही से थे, अब संन्यास ग्रहण करने में केवल एक विधि और नियम का कृत्य करना ही शेष था। परंतु संन्यास लेकर राम की आनंदमयी सेवा से उन्हें पृथक् होकर दूर देश में जाना होगा, इस वियोग की व्यथा ने उन्हें स्तंभित कर दिया, उनके नेत्रों से स्वतः अश्रुधारा प्रवाहित हो गई। ब्रह्मचारी नारायणदासजी की यह दशा देखकर कई राम-भक्त सज्जनों ने राम स्वामी से निवेदन किया कि "अभी नारायणदासजी इस योग्य नहीं हुए हैं कि उन्हें आप अपने चरणों से पृथक् करें। अभी उन्हें आप अपनी सेवा में रक्खें, और ब्रह्मविद्या में निपुण होने दें। जब वह सर्व प्रकार से दृढ़ हो जायँगे, तो अपने आप आपसे पृथक्

होकर विचरने की प्रार्थना करेंगे, और तब वह अच्छी उन्नति पा सकेंगे। इस समय आपके वियोग से उन्हें मानसिक कष्ट हो रहा है, और इस प्रकार छिन्न-मन से उन्हें दूर भेजना उनके पक्ष में हितकर न होगा। इत्यादि।"

परंतु राम बादशाह ने इस प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इतना अवश्य हुआ कि उन्होंने ब्रह्मचारी नारायणदासजी को फ़ैज़ाबाद से ही पृथक् नहीं किया, और वहाँ से लखनऊ तक उन्हें अपने साथ रक्खा। और मार्ग में गाड़ी में साथ बिठलाकर नारायणदासजी को संन्यासाश्रम की आवश्यकता अनेक रूपों से समझाई, तत्पश्चात् लखनऊ पहुँचते ही स्वामी राम ने अत्यंत प्रेमपूर्ण शब्दों में ब्रह्मचारी नारायणदासजी को संन्यास देकर सिंध जाने का फिर आदेश किया। इस आज्ञा को पाषाण-हृदय करके नारायण स्वामी ने स्वीकार किया। इस प्रकार संन्यास लेकर गुरु-शिष्य दोनों लखनऊ से एक गाड़ी पर विराजमान हुए। उस समय राम स्वामी ने नारायण स्वामी को गाड़ी में अपने पास बिठलाकर अनेक प्रकार से प्रोत्साहित किया। यद्यपि राम के प्रोत्साहन से नारायण स्वामी के चित्त को बहुत कुछ ढारस हुआ, किंतु राम के वियोग का स्मरण करते ही उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। नारायण स्वामी के विगलित हृदय और अपार प्रेम की अश्रुधारा ने निष्काम राम के

हृदय को भी हिला दिया, और उनकी मस्त आँखों से भी अश्रुवर्षा होने लगी। इस प्रकार गुरु-शिष्य दोनों के लोचन अश्रुधारा बहा रहे थे कि वह जंकशन आ गया जहाँ से नारायण स्वामी को गाड़ी बदलनी थी, और राम को उसी गाड़ी से आगे जाना था। उस समय नारायण स्वामी प्रेम में विभोर हो गए, उनकी अवस्था बदल गई, वह अपने को सम्हाल न सके, उनकी आँखें अविरल अश्रुधारा बहा रही थीं। राम ने प्रेम-विह्वल नारायण स्वामी को हृदय से लगा लिया, और अत्यंत प्रेमपूर्ण शब्दों में समझा-बुझाकर अपने कर कमलों से उनकी पीठ पर थपक कर अमोघ आशीर्वाद दिया। नारायण स्वामी की गठरी को राम ने तो पहले ही क़ुली के सिपुर्द कर दिया था, अब उन्हें दूसरी गाड़ी पर सवार करने के लिये राम स्वयं भी ट्रेन से उतरकर नारायण स्वामी के साथ हुए और उन्हें दूसरी गाड़ी पर बिठा दिया। चलते समय 'राम' ने ॐ का स्वर्गीय ध्वनि में उच्चारण किया। वह अनुत्तर ॐ की अत्यंत मधुर ध्वनि नारायण स्वामी के हृदय में समा गई। उस ॐ ध्वनि से नारायण स्वामी के चित्त की जो दशा हुई, जड़ लेखनी उसका वर्णन करने में असमर्थ है।

इस प्रकार फ़रवरी, १९०२ ई० में नारायण स्वामी को

संन्यास मिला और वह राम से पृथक् होकर संन्यासी वेश में देश-देश में विचरण करने लगे।

राम से पृथक् होकर नारायण स्वामी पहले राम की आज्ञानुसार सिंध-देश में गए। वहाँ कुछ काल सत्संग का सिलसिला जमाकर मुलतान-शहर गए। वहाँ से लैह्या, डेरा इसमाईल खाँ और पिंडदादनखाँ होते हुए कटासराज-तीर्थ में पहुँचे। कटासराज में उन्हें राम स्वामी का पत्र मिला जिसमें उन्होंने लिखा था कि "प्रथम बार नारायण स्वामी को चार मास से अधिक अलग विचरण करना न चाहिए। चार मास समाप्त होने पर उन्हें राम के पास पहाड़ों पर आ जाना चाहिए।" मई, १९०२ ई० में राम स्वामी टिहरी-राज्य के पहाड़ों में दुबारा वापस चले गए और वहाँ एक स्थान पर अपना आसन जमाकर नारायण स्वामी को इसकी सूचना दे दी। ऐसी आज्ञा पाते ही नारायण स्वामी जून, १९०२ ई० के अंत में राम स्वामी की सेवा में पुनः उपस्थित हो गए। राम स्वामीजी की सेवा में पहुँचते ही नारायण के चित्त को जो प्रसन्नता और बल प्राप्त हुए वह उन्हीं का हृदय जानता है। नारायण स्वामी के पहुँच जाने पर राम ने उन्हें अपनी एक नवरचित ग़ज़ल सुनाई। इस ग़ज़ल को नारायण स्वामी आज तक नहीं भूले। यद्यपि वह ग़ज़ल राम-वर्षा में दी जा चुकी है, पर पाठकों

के विनोदार्थ उसे यहाँ भी उद्धृत किया जाता है—

ज्ञान की होरी

उड़ा रहा हूँ मैं रंग भर-भर, तरह-तरह की यह सारी दुनिया।
चेह[1] ख़ूब होली मचा रखी थी, पै अब तो हो ली[2] यह सारी दुनिया १
मैं साँस लेता हूँ रंग खुलते हैं, चाहूँ दम में अभी उड़ा दूँ।
अजब तमाशा है रंगरलियाँ, है खेल जादू यह सारी दुनिया २
पड़ा हूँ मस्ती में ग़र्क़ो-बेख़ुद, न ग़ैर[3] आया चला न ठहरा।
नशे में ख़र्राटा-सा लिया था, जो शोर वर्पा है सारी दुनिया ३
भरी है ख़ूबी हर इक ख़राबी में, ज़र्रह-ज़र्रह है मिहर[4] आसा।
लड़ाई शिकवे में भी मज़े हैं, यह ख़्वाब चोखा[5] है सारी दुनिया ४
लिफ़ाफ़ा देखा जो लंबा-चौड़ा, हुआ तहय्युर[6], कि क्या ही होगा।
जो फाड़ देखा, ओहो! कहूँ क्या? हुई ही कब थी यह सारी दुनिया ५
यह राम सुनिएगा क्या कहानी, शुरू न इसका, ख़तम न हो यह।
जो सत्य पूछो, है राम[7] ही राम!, यह महज़[8] धोखा है सारी दुनिया ६

महाराजा टिहरी को राम के दर्शन

मई, १९०२ ई० में जब राम दूसरी बार टिहरी-पर्वत पर गए, तो रायबहादुर ला० बैजनाथ साहिब बी० ए० रिटायर्ड जज, आगरा भी उनके साथ थे। टिहरी के रास्ते में विविध स्थानों पर (जो मनोहर और विचित्र दृश्यों से

---

१. क्या ख़ूब। २. हो गई, ख़तम हो गई। ३. दूसरा, अन्य। ४. सूर्य-जैसा। ५. अजीब, आश्चर्य। ६. हैरान, विस्मित। ७. राम कवि के नाम से भी मुराद है। ८. केवल।

सुशोभित थे) कुछ-कुछ दिन ठहरते गए। टिहरी से लगभग ग्यारह मील की दूरी पर देहरादून की ओर एक पड़ाव 'कौड़िया चट्टी' कहलाता है। उस पड़ाव पर क़िले की तरह का एक पुराना महल है। जो कई वर्षों से टूटा पड़ा है। इस स्थान का दृश्य अत्यंत मनोहर और आनंद-दायक देखकर राम ने अपना आसन वहीं जमा दिया, और रायबहादुर साहिब भी राम के साथ उस स्थान के नीचे पड़ाव के बँगले में रहने लगे, ताकि राम के पास कुछ एकांत-अभ्यास करें। किंतु कदाचित् वन के कष्ट न सह सकने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से रायबहादुर साहिब कुछ ही दिनों बाद मैदानों में लौट गए, और राम बादशाह अकेले उस घोर वन में एकांत-सेवन करते रहे। इन्हीं दिनों में महाराजा साहिब टिहरी किसी आवश्यक कार्य के लिये वायसराय साहिब से मिलने देहरादून आ रहे थे। मार्ग में उन्होंने इस कौड़िया पड़ाव पर मुक़ाम किया। जब महाराजा साहिब टिहरी इस पड़ाव पर पहुँचे और वहाँ राम बादशाह के निवास का समाचार पाया, तो राम के दर्शनों की इच्छा उनके हृदय में उत्पन्न हुई। इस स्थान पर यह स्पष्ट करना अनुचित न होगा कि महाराजा साहिब टिहरी यद्यपि बहुत विद्वान् और गुणी पुरुष थे, किंतु कई नास्तिकों की रचनाओं के अध्ययन से

उनके हृदय में ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास और सनातन-धर्म के सिद्धांतों पर श्रद्धा दोनों बहुत कम थे। अधिकतर वह हरबर्ट स्पेंसर के अज्ञेयवाद (agnosticism) के अनुयायी थे, और हिंदू-धर्म की विधियों को हृदय से नहीं वरन् ब्राह्मणों और महाराणी साहिबा की विवशता से पालन करते थे। पर इतने नास्तिक न थे कि खुल्लमखुल्ला अपने विश्वास को सर्वसाधारण पर प्रकट करते। इस विश्वास में कभी-कभी अनेक संदेह भी उनके हृदय में उठा करते थे, जिनके दूर करने के लिये वे खुद बहुत अध्ययन और सत्संग भी किया करते थे। जब किसी विषय में उन्हें यथेष्ट संतोष नहीं हुआ, तो धर्म के सिद्धांत और परिणाम की खोज के लिये आपने आर्यसमाज और सनातन-धर्म के बड़े-बड़े नेताओं को राज्य के ख़र्च से बुलवाया, और परस्पर कई दिनों तक शास्त्रार्थ करवाया। लगभग आठ दिनों तक यह शास्त्रार्थ होता रहा, परंतु किसी के उपदेश या तर्कों से इनको शांति नहीं मिली। अंत में शास्त्रार्थ बंद किया गया और इनका चित्त पहले से भी अधिक विक्षिप्त और व्याकुल हो गया। उस समय भी महाराजा साहिब ने स्वामीजी को इस शास्त्रार्थ में बुलवाने का बहुत प्रयत्न किया था, किंतु 'राम' उस समय एकांत-अभ्यास में थे, और एक स्थान से डावाँडोल

न होने के संकल्प से अपने अध्ययन और अभ्यास में जमकर बैठे हुए थे, अतः वह प्रयत्न व्यर्थ हुआ। अब संयोग-वश जिस पड़ाव पर महाराजा साहिब ने डेरा डाला, उसी के निकट 'राम' भी अवस्थान करते थे। महाराजा साहिब का मन पहले ही से धर्म के सिद्धांतों और परिणामों में संदिग्ध और संशयग्रस्त था, एवं धार्मिक सिद्धांतों के ठीक न समझने से प्रत्येक समय चिंतित रहता था, अतः इस अवसर को एक सुयोग समझकर महाराजा साहिब ने अपने वज़ीर साहिब को स्वामीजी की सेवा में इस सविनय निवेदन के साथ भेजा कि "हे सारी सृष्टि के मालिक और विमुक्त स्वामीजी! अपनी कृपादृष्टि हमारे ऊपर भी कीजिए, और दर्शन देकर हमें भी कृतार्थ कीजिए। आपकी बड़ी ही कृपा होगी, जो यहाँ दर्शन देकर हम भूले-भटकों को भी सत्य-मार्ग पर लावेंगे।" वज़ीर साहिब के मुख से यह संदेशा सुनते ही शहंशाह राम उठकर खड़े हुए और वज़ीर साहिब के साथ-साथ महाराजा साहिब की ओर पधारे। राम के आगमन का समाचार पाते ही महाराजा साहिब मार्ग में स्वागत के लिये आए हुए थे। दर्शन पाते ही अपने आपको धन्य भाग कहते हुए प्रणाम किया, और बड़े विगलित चित्त से स्वामीजी का स्वागत करके अपने स्थान पर लाए। स्वामीजी का स्थान पर पहुँचना था कि वहाँ एक बड़ा

भारी दरबार लग गया, और जो संदेह ईश्वर के अस्तित्व के विषय में महाराजा साहिब के हृदय में चिरकाल से उठा हुआ व्याकुल कर रहा था, और आज तक दूर नहीं हुआ था, वह संयोग से महाराजा साहिब पूछ बैठे। लगभग दो बजे महाराजा साहिब ने यह प्रश्न किया था और लगभग पाँच बजे संध्या तक 'राम' इसी विषय को विविध तर्कों और उदाहरणों से खूब सरल और स्पष्ट करके समझाते रहे। जब यह विषय प्रत्येक दृष्टिकोण से भली भाँति सिद्ध किया गया, तो महाराजा साहिब ने संकेत से इतना निवेदन किया कि "रुपए में बारह आना बिलकुल समझ में आ गया है; अब थोड़ी-सी कसर बाकी है। सो यदि आप कुछ काल तक हमारे निकट टिहरी में निवास करेंगे, तो आपकी अत्यंत कृपा होगी। और मुझे दृढ़ आशा है कि आपकी इस कृपा से और प्रतिदिन के सत्संग से मेरे चित्त के अन्य संशय भी निवृत्त हो जायँगे, तथा मेरा विक्षिप्त चित्त शांति लाभ करेगा।" महाराजा साहिब की इस प्रार्थना को राम ने आनंद से स्वीकार कर लिया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् वह टिहरी पधारे और उनके टिहरी पहुँचने के कुछ दिन बाद ही नारायण स्वामी मैदानों से वहीं पहुँच गए, और कई मास तक उनके साथ रहे।

विदेशों में यात्रा

टिहरी में कुछ काल रहने के बाद स्वामी राम प्रतापनगर गए। यह स्थान पर्वत की चोटी पर है। ग्रीष्म-ऋतु बिताने के लिये स्वर्गीय महाराजा साहिब के पूज्यपिता श्रीप्रतापशाह जी ने इसे अपने लिये बनवाया था, इसलिये उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। वर्तमान टिहरी-नरेश भी उन दिनों वहीं विराजमान थे। लगभग प्रत्येक रविवार यह स्वामीजी महाराज के पास आते थे, और खूब जी भरकर सत्संग करते थे। उन दिनों अर्थात् जुलाई, १९०२ ई० के अखबारों में यह समाचार छपा कि "चिकागो की तरह जापान में भी संसार-भर के धर्मों की रिलीजस-कानफ़्रेंस शीघ्र होगी, उसमें भारत के सब धर्मों एवं संप्रदायों के लीडरों को निमंत्रित किया गया है, इत्यादि।" महाराजा साहिब समाचारपत्र में यह संवाद पढ़ते ही स्वयं अखबार हाथ में लिए तत्काल स्वामीजी के पास आए और इस खबर को पढ़कर सुनाया। सुनाने के थोड़ी देर बाद महाराजा साहिब ने स्वामीजी से इस प्रकार निवेदन किया—"यदि आप-जैसे श्रीमान् महात्मा इस धर्ममहोत्सव में विराजमान हों, तो भारत का भी नाम रह जायगा, वेदांत का तत्त्व भी इधर-उधर खूब फैलेगा, और इस सम्मेलन (कानफ़्रेंस) की ख्याति भी आप-जैसे महात्माओं के विराजमान होने से

भली भाँति हो जायगी।" महाराजा साहिब की इस प्रार्थना पर स्वामीजी जापान जाने के लिये तत्काल उद्यत हो गए। स्वामी राम का स्वभाव था कि वह कभी एक कौड़ी तक अपने पास नहीं रखते थे, पास रखने की कौन कहे, सिवाय लोहे के और किसी धातु को वह छूते तक नहीं थे, इसलिये महाराजा साहिब ने तार के द्वारा 'थामस कुक एंड कंपनी' (Thomas cook & Co.) के द्वारा जहाज़ के भाड़े इत्यादि का सारा प्रबंध अपने आप कर लिया, और स्वामी राम तथा नारायण स्वामी, दोनों के लिये एक कमरा रिज़र्व्ड करवा दिया। लगभग एक हज़ार रुपए के किराया लगा था। ऐसा प्रबंध हो जाने पर स्वामीजी टिहरी से कलकत्ते की ओर चल दिए। यद्यपि महाराजा साहिब टिहरी ने स्वामी राम और स्वामी नारायण, दोनों के लिये कमरा रिज़र्व्ड करवा दिया था, किंतु राम बादशाह यह संकेत करके कि नारायण स्वामी के साथ चलने से पहले तो इसकी अपनी उन्नति में अंतर आ जायगा, दूसरे भारतवर्ष में उनके पीछे उनकी लाइन (पथ) पर काम करनेवाला नहीं रहेगा, इसलिये आप अकेले चल दिए, और नारायण स्वामी से कहा कि "कुछ समय तक तुम एकांत-अभ्यास करने के लिये टिहरी में ही रहना, उसके बाद अपने देश में भ्रमण करते वेदांत-प्रचार करना।" यह

आज्ञा देकर भी वह नारायण स्वामी को देहरादून तक अपने साथ ले गए, जिसमें वह उनको रेल में सवार करके और अंतिम उपदेश सुनकर लौट आवे। इस प्रकार नारायण स्वामी केवल देहरादून तक गए और स्वामीजी को रेल पर बिठाकर तथा उनका विदेश जाते समय का अंतिम आदेश सुनकर टिहरी लौट आए।

टिहरी से प्रस्थान करने के एक दिन पूर्व महाराजा साहिब टिहरी ने राम बादशाह से बार-बार यह निवेदन कर दिया था कि "आप अकेले जापान न जाइएगा, नारायण स्वामी को अवश्य साथ ले लीजिएगा, इससे मार्ग के कष्टों और आवश्यकताओं के दूर करने में बड़ी सुविधा होगी, मैं स्वयं विलायत हो आया हूँ, मुझे समुद्र-यात्रा का पूरा अनुभव हो चुका है, अकेले यात्री के प्राणों पर जो बन आती है वह वही जानता है, दूसरा उसका ठीक अनुमान नहीं कर सकता। और समुद्र की प्रथम यात्रा तो अकेले करनी ही न चाहिए, क्योंकि रास्ते में बहुत कष्ट होते हैं, इत्यादि।" किन्तु स्वामीजी के चित्त पर इस निवेदन का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ, अतः वह देहरादून से ही अकेले कलकत्ते की ओर प्रस्थानित हुए। मार्ग में स्वामीजी जहाँ-जहाँ उतरे, सभी ने उनकी एकाकी यात्रा पर आपत्ति की। यहाँ तक कि लखनऊ में जब स्वामीजी उतरे, तो

लगभग सभी विलायत-यात्रियों ने अत्यंत सहृदयतापूर्वक उनसे निवेदन किया कि 'एक साथी अपने संग अवश्य ले जाइए, अकेले कदापि न जाइए।' जब बीच में आप आगरे पहुँचे, तो आगरे के रायबहादुर लाला बैजनाथ साहिब ने भी स्वामीजी के अकेले यात्रा करने के आग्रह पर बहुत तर्क किया था, और समुद्र-यात्रा के लिये एक साथी को अपने संग लेने को विवश किया था।

जब उनके साथ का चुनाव होने लगा, तो सबने नारायण स्वामी को उपयुक्त साथी निर्देश किया। परस्पर यह निश्चय हो जाने पर राम बादशाह ने नारायण स्वामी के पास अर्जेंट तार भेज दिया "कि २० अगस्त तक कलकत्ता में अवश्य उपस्थित हो जाओ। राम को तुम्हें अपने साथ ले जाना है।" २० अगस्त में बहुत थोड़े दिन रह गए थे, इस तार के पाते ही नारायण स्वामी तत्काल एक बलिष्ट कुली को साथ लेकर देहरादून की ओर चल दिए। वह मध्याह्नोत्तर दो बजे टिहरी से चले थे, और २२ मील पहाड़ी मार्ग उत्तीर्ण करके रात के आठ बजे अपने साथी सहित मार्ग के ठीक मध्य में कद्दूखाल चट्टी पर पहुँच गए। टिहरी से कद्दूखाल चट्टी तक जो रास्ता है, वह बराबर चढ़ाई का रास्ता है। रात को इस चट्टी पर विश्राम करके प्रभात-काल ही वहाँ से

उठकर वह ११ बजे के लगभग देहरादून पहुँच गए, और १ बजे की रेलगाड़ी को पकड़ लिया। इस प्रकार शीघ्रता करके २० तारीख़ को कलकत्ता पहुँचने के स्थान पर श्रीमन्नारायण स्वामी १९ को ही कलकत्ता पहुँच गए, जिससे आज्ञा पालन में नारायण की ओर से कोई त्रुटि न होने पाई। इस गुरुभक्ति की प्रशंसा कहाँ तक की जाय। धन्य गुरु और धन्य शिष्य। कहा है—"को वा गुरोः? यो हि हितोपदेष्टा। शिष्यस्तु को? यो गुरुभक्त एव।" अर्थात् गुरु कौन है? उत्तर—जो सदैव हितकारी उपदेश करे। और शिष्य कौन है? उत्तर—जो गुरुदेव का अनन्य भक्त हो। अहा! गुरु-शिष्य, दोनों इस उक्ति के मूर्तिमान् उदाहरण। तभी तो राम बादशाह के नारायण-जैसे शिष्य हुए। अस्तु। संयोग से वहाँ जहाज़ के छूटने की तारीख़ बदल गई, और २० या २२ अगस्त की जगह २८ अगस्त हो गई। इस प्रकार श्रीमन्नारायण स्वामी को कलकत्ते में कई दिन विश्राम करने का अवसर मिल गया।

इस प्रकार श्रीनारायण स्वामी को साथ लेकर राम बादशाह २८ अगस्त, १९०२ ई० को जहाज़ पर सवार होकर जापान की ओर प्रस्थानित हुए। हांगकांग तक दोनों संन्यासियों ने जार्डन-कंपनी के एक कुमसैन नामक जहाज़

पर यात्रा की। वहाँ पहुँचकर एक सप्ताह रहने के बाद एक अमेरिकन कंपनी के विशाल जहाज़ पर सवार हुए, और उससे दस दिन बाद योकोहामा पहुँच गए। कुछ तो जहाज़ों के स्थान-स्थान पर ठहरने के कारण कई बंदरगाहों पर थोड़ी-थोड़ी देर उतरना पड़ा और कुछ जहाज़ों के बदलने से कई दिन मार्ग में रुकना पड़ा। इसलिये दोनों संन्यासी शीघ्र जापान न पहुँच सके, और वे अक्टोबर के प्रथम सप्ताह में जापान के विशाल बंदरगाह योकोहामा में पहुँचे। कलकत्ते से प्रस्थान करने के थोड़े दिन पूर्व जो कविता कलकत्ते के बंदरगाह के दृश्य से प्रभावित होकर राम के हृदय से बही थी, उसकी नक़ल यद्यपि राम-वर्षा में प्रकाशित की गई है, तथापि यहाँ भी उचित स्थान समझकर उद्धृत की जाती है जिससे पाठकों को विदित हो जाय कि राम बादशाह के प्रस्थान समय उनके हृदय की कैसी स्थिति थी।

ज्ञानी की सैर

यह सैर क्या है अजब अनोखा, कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
बग़ैर सूरत अजब है जलवा[1] कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥१॥
मुरक़्क़ए-हुस्नो-इश्क़[2] हूँ मैं, मुझी में राज़ो-न्याज़[3] सब हैं।
हूँ अपनी सूरत पै आप शैदा[4] कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥२॥

---

१. दर्शन, ज़ाहिर, प्रकट। २. सुंदरता और प्रेम की पुस्तक (ज़ख़ीरा)। ३. गुप्त रहस्य और प्रेम वा मिलाप की इच्छा। ४. आशक़, आसक़।

ज़माना आईना[1] राम का है, हर एक सूरत से है वह पैदा।
जो चश्मे-हक़बीं[2] खुली तो देखा, कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥३॥

वह मुझसे हर रंग में मिला है, कि गुल से बू भी कभी जुदा है।
हबाबो-दरिया[3] का है तमाशा, कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥४॥

सबब बताऊँ मैं वजद[4] का क्या? है क्या जो दरपरदा[5] देखता हूँ।
सदा[6] यह हर साज़ से है पैदा, कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥५॥

बसा है दिल में मेरे वह दिलबर, है आईना में खुद आईना-गर[7]।
अजब तहय्युर[8] हुआ यह कैसा? कि यार मुझमें, मैं यार में हूँ ॥६॥

मुक़ाम पूछो तो लामकाँ[9] था, न राम ही था न मैं वहाँ था।
लिया जो करवट तो होश आया, कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥७॥

अललत्वातर[10] है पाक[11] जल्वा कि दिल बना तूरे-बर्क़े-सीना[12]।
तड़प के दिल यूँ पुकार उट्ठा, कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ ॥८॥

जहाज़ दरिया में और दरिया जहाज़ में भी तो देखिए आज।
यह जिस्म[13] कश्ती[14] है राम दरिया, है राम * मुझमें, मैं राम में हूँ ९

कलकत्ते से हांगकांग तक सभी बंदरगाहों पर सिंध के सेठ लोगों के फ़र्म हैं। उन दिनों दो सेठों के फ़र्म अत्यंत

---

१. शीशा। २. तत्त्वदृष्टि का नेत्र। ३. बुलबुला और दरिया। ४. अत्यंतानंद, विस्मय। ५. परदे के पीछे। ६. ध्वनि, आवाज़। ७. शीशा बनानेवाला अर्थात् सिकंदर। ८. आश्चर्य। ९. देश-रहित। १०. लगातार, निरंतर। ११. शुद्ध दर्शन। १२. भीतर हृदय की बिजली का अग्नि पर्वत। १३. शरीर। १४. नौका।

* इस कविता का अंतिम चरण "राम मुझमें, मैं राम में हूँ" को कहीं-कहीं स्वामीजी ने "यार मुझमें, मैं यार में हूँ" भी लिखा था। पाठक इसे दोनों तरह से गाकर आनंद ले सकते हैं।

प्रसिद्ध थे, एक 'सेठ वस्यामल-आसूमल', दूसरे सेठ 'पूहूमल आदर्स'। संयोग से प्रत्येक बंदरगाह पर दोनों संन्यासियों को थोड़ी-थोड़ी देर तक रहने का अवसर मिला, और सभी बंदरगाहों पर गुरु नानकदेव के सिक्ख-सरदार बड़े उमंग के साथ मिले। सभी स्थानों पर गुरुद्वारे भी बने पाए। विशेषतः पीनांग और हांगकांग के गुरुद्वारे बड़े विशाल और बहुमूल्यवान् हैं। ये गुरुद्वारे सिक्ख लोगों की गुरुभक्ति के द्योतक हैं। इन गुरुद्वारों को देखकर राम बादशाह बहुत प्रसन्न हुए। और आपने हांगकांग के एक गुरुद्वारे में 'गुरु-भक्ति' पर एक ओजस्वी व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान को सुनने के लिये वहाँ सभी संप्रदायों के सज्जन एकत्रित हुए थे। सिंधी सज्जन जो वहाँ उपस्थित थे, स्वामी राम के व्याख्यान से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने एक सप्ताह तक उन्हें रोक रक्खा, और दस दिन बाद वहाँ से जापान जाने दिया।

हांगकांग से चलकर दोनों संन्यासी शिंघे पहुँचे। राम बादशाह वहाँ नहीं उतरे, केवल नारायण स्वामी थोड़े समय के लिये उतरे। वहाँ भी गुरुद्वारे की महिमा चारों ओर दिखाई देती थी, जो भी सिक्ख नारायण स्वामी को देखता, बड़ी आवभगत से उनका स्वागत करता, और हर प्रकार से सेवा करने को उद्यत होता। शिंघे के बाद उनका

जहाज़ जापान के पहले बंदरगाह नागासाकी पर पहुँचा। वहाँ उतरकर जापान की भूमि और जापान-निवासियों के रहन-सहन और रीति-भाँति को उभय संन्यासियों ने देखा, कई मंदिरों में उपासना का ढंग देखा, कई प्रकार के पहनावे और रहन गति को देखकर संन्यासीद्वय बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ से चलकर उक्त जहाज़ जापान के दूसरे बंदरगाह कोबी में पहुँचा। विदेशों में यह प्रथा है कि जब कोई बड़ा जहाज़ किसी बंदरगाह में पहुँचनेवाला होता है, तो उसके पहुँचने से एक दिन पहले प्रथम और द्वितीय दरजे के यात्रियों के नाम वहाँ के समाचारपत्रों में प्रकाशित हो जाते हैं। इस प्रकार कोबी पहुँचने से प्रथम वहाँ के समाचारपत्रों में उभय संन्यासियों के नाम प्रकाशित हो गये थे। उस बंदरगाह में कुछ गुजराती सज्जनों के भी फ़र्म थे। वह लोग भारतीय संन्यासियों के नाम पढ़कर स्वयं दर्शनों के लिये जहाज़ पर आ गए, और दोनों संन्यासियों को अपने घरों में ले गए। उन सज्जनों ने हर प्रकार उभय संन्यासियों का आतिथ्य-सत्कार किया, और उस नगर की सैर कराई, वहाँ की विविध रीतियों और फ़ैक्टरियों को दिखलाया। वहाँ से सवार होकर गुरु-शिष्य दोनों जापान के प्रसिद्ध और अंतिम बंदरगाह योकोहामा में पहुँचे। वहाँ उतरते ही सेठ वस्यामल-आसूमल सिंधी मर्चेंट के एक-दो

सेवक बंदरगाह पर स्वागत के लिये आए हुए थे। उनके साथ दोनों संन्यासी उनके फ़र्म पर पहुँचे, और लगभग एक सप्ताह वहाँ पर रहे। उन लोगों को जब यह ज्ञात हुआ कि दोनों संन्यासी सर्वधर्मसम्मेलन देखने के लिये आए हैं, तो वह लोग यह समाचार सुनकर बड़े आश्चर्य में हुए, क्योंकि ऐसी कोई सूचना उन्होंने जापान में नहीं सुनी थी, और न उस समय तक वहाँ के किसी समाचारपत्र में ऐसी खबर छपी थी। अतः वह लोग मुसकराए भी, क्योंकि उनकी समझ में यह बात बिलकुल झूठ थी।

इस प्रकार योकोहामा में जब उक्त रिलीजस-कानफ़्रेंस का कोई चिह्न और पता तक न मालूम हुआ, तो यह उचित प्रतीत हुआ कि इस बात की सत्यता का पता जापान की राजधानी टोकियो में लगाया जाय। टोकियो में भारत के कई विद्यार्थी शिक्षा के लिये गए थे, उनके पते योकोहामा के सेठ से मालूम हो गए, और उस फ़र्म का एक नौकर भी स्वामीजी के साथ हो लिया। स्वामीजी टोकियो पहुँचकर सबसे पहले मि० पूर्णसिंह से मिले। विद्यार्थी पूर्णसिंह इन संन्यासियों को देखकर अत्यंत गद्गद हुए, उन्हें तत्काल अपनी जन्मभूमि याद आ गई, और वह अपने मन में समझने लगे कि ईश्वर ने बिना बुलाए दो संन्यासियों को मेरे पास भेज दिया है, अब इनसे मेरे चित्त

के समस्त संशय निवृत्त हो जायँगे। और मेरी मनोकामना कुछ न कुछ अवश्य पूरी होगी। वहाँ पहुँचकर कुछ देर सुसताने के बाद जब रिलीजस-कानफ़्रेंस के विषय में पूछताछ की, तो ज्ञात हुआ कि यह संवाद बिलकुल मिथ्या है, किसी मसख़रे ने झूठमूठ भारतीय पत्रों में इसे छपा दिया होगा, जिससे लोगों को मुफ़्त में धोखा हुआ। ऐसा मालूम होने पर तत्काल भारत में एक तार इस मिथ्या संवाद के विषय में भेज दिया गया ताकि कोई इस कानफ़्रेंस के मिथ्या प्रलोभन में आकर वृथा जापान आकर कष्ट न उठाए।

स्वामीजी के जापान पहुँचने से कुछ समय पूर्व प्रोफ़ेसर छत्रे का घोड़ों का सरकस वहाँ आया हुआ था, और टोकियो में वह हर रात अपना तमाशा करता था। स्वामीजी के शुभागमन का समाचार पाकर वह सब आकर स्वामीजी से मिले और उनके दर्शन किए। महाराजा साहिब नेपाल ने कुछ विद्यार्थियों को एक स्वामीजी के निरीक्षण में शिल्प-कला सीखने के लिये जापान भेजा था, वह सब विद्यार्थी भी स्वामीजी के दर्शनार्थ आए। पंजाब और संयुक्त-प्रदेश के बहुत-से विद्यार्थी मिले। इतने भारतीय भाइयों को जापान में देखकर श्रीमन्नारायण स्वामी को बड़ा आश्चर्य हुआ, और अपने जन्मभूमि के लोगों को एक दूसरे से मिलकर जो आनंद हुआ, वह लेखनी की वर्णन-सीमा के बाहर है।

स्वामीजी के पहुँचने से पहले ये नवयुवक भारतीय विद्यार्थी प्रोफ़ेसर छत्रे इत्यादि की सम्मति पर एक क्लब बना रहे थे, जिसमें भारत के हितैषी कुछ जापानी भी सम्मिलित थे। जब राम स्वामी ने मि० पूर्ण के मकान में प्रवेश किया, तो इस क्लब की नींव डाली जा रही थी, और इसका नाम "इंडो जापान क्लब" निश्चय हुआ था। इसके दो मंत्री थे। एक भारतीय प्यारे मि० पूर्ण, दूसरे जापानी प्यारे मि० सेकोराय थे। क्लब का उद्देश्य भारतीय नवयुवकों को जापान में बुलवाकर शिक्षा दिलवाना और परस्पर एक दूसरे स्वदेश-भाई की सहायता करना था।

थोड़े समय के भीतर-भीतर इसमें पूँजी भी यथेष्ट आ गई थी। जब जापान की "रिलीजस-कान्फ्रेंस" का समाचार वहाँ मिथ्या पाया गया, तो स्वामीजी पहले इसी क्लब में उपदेश देते रहे, उसके बाद उनके टोकियो-कॉलेज में दो-एक युक्तिपूर्ण व्याख्यान हुए। टोकियो-कॉलेज में व्याख्यान का विषय सफलता का रहस्य (Secret of success) था। इस व्याख्यान से अनेक जापानी विद्यार्थियों तथा प्रोफ़ेसरों पर गंभीर प्रभाव पड़ा। इस व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी प्रोफ़ेसर छत्रे के प्रार्थना करने पर अमेरिका चल दिए।

मिस्टर पूर्णसिंह का संन्यास

मिस्टर पूर्णसिंह के यहाँ जब स्वामी राम पहुँचे, तो

संन्यासाश्रम में मिस्टर पूर्ण

जापान (१९०२)

परस्पर वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि वह एक सच्चे आनंद के खोजी और हरबर्ट स्पेंसर के अनुयायी हैं। संयोग से नारायण स्वामीजी उनकी जन्मभूमि और नगर आदि का नाम पूछ बैठे, तो उन्होंने उत्तर दिया कि "The wide world is my home=अर्थात् यह सारा संसार मेरा घर है।" इस उत्तर को सुनते ही स्वामी रामजी ने दूसरा वाक्य यह सुना दिया—"And to do good is my religion—और भलाई करना मेरा धर्म है।" इस प्रश्नोत्तर से उनकी होनहारी प्रकट हो रही थी। वह लेखनी के धनी भी ऐसे पाए गए कि जब स्वामी राम ने "उन्नति के रहस्य" पर व्याख्यान दिया, और नारायण स्वामी उस व्याख्यान के नोट अपने साथ लिखकर लाए, तो उन्होंने दो घंटे के भीतर उन नोटों को सविस्तर बिलकुल राम की भाषा ही में लिख दिया। उनके इस स्पष्ट प्रसादमय और मनोरंजक लेख को देखकर स्वामी राम बड़े आश्चर्यित और प्रसन्न हुए और उन्हें पीठ ठोंककर शाबाशी दी। मिस्टर पूर्णसिंह की लेखनी से निकला हुआ ही स्वामी राम का प्रथम व्याख्यान इधर-उधर से संशोधित होकर प्रकाशित हुआ था, अब तो पूर्णजी राम में और राम पूर्ण में उत्सुकता से निवास करने लगे। जब पूर्ण के सब प्रकार के मनोगत संशय और संदेह निवृत्त हो गए और स्वामी राम के सत्संग से उनका

अंतःकरण संतोष व शांति पा गया, तो वह सब विद्यार्थियों के समक्ष राम से पूछने लगे कि "अब मुझे क्या करना चाहिए ?" राम ने उत्तर दिया—"अपने अंतःकरण से यह प्रश्न पूछो, और उसका अनुगमन करो।" उन्होंने फिर दूसरी बार यही प्रश्न किया, और राम ने फिर वही उत्तर दिया। थोड़ी देर बाद पूर्ण ने तीसरी बार फिर वही प्रश्न स्वामी राम से किया, तो स्वामी राम ने सब विद्यार्थियों को संबोधन करके कहा—"कहीं आप लोग यह न समझ बैठें कि राम मिस्टर पूर्ण के लिये जो विचार करेगा, वही आपके लिये भी उपयुक्त और लाभदायक होगा। ऐसा कदापि नहीं, आपके जीवन का मार्ग एक दूसरे के साथ और विशेषतः मि० पूर्ण के जीवन के साथ संबंध नहीं पा सकता।" फिर मि० पूर्ण को संबोधित करके कहा—"Take up Sannyas and serve the humanity = संन्यास ग्रहण करके मानव-जाति की सेवा करो। यही मार्ग आपके जीवन के लिये अत्यंत हितकर और उत्तम होगा।" इतना सुनना था कि मि० पूर्ण का हृदय व प्राण वेग से पेच ताब खाने लगे, और अंतःकरण के तल तक राम के उत्तर का प्रभाव पड़ा।

इस उत्तर के कुछ काल पश्चात् स्वामी राम प्रोफ़ेसर छत्रे के साथ अमेरिका की ओर चल दिए, और मि० पूर्ण

ने, जिनका हृदय राम के प्रेम में घायल हो गया था, राम के वियोग के कुछ मास पश्चात् जापान में ही संन्यास ले लिया, और वहाँ जापानी साधुओं (पुंगियों) की भाँति उन्होंने एक वर्ष तक जीवन-यापन किया। इस संन्यासी-वेश में वह जापान के नगर-नगर में फिरे और वेदांत का प्रचार करते रहे। उन्होंने विद्यार्थियों और शिक्षितों में वेदांत का मंत्र फूकने के लिये अँगरेज़ी में एक पत्र भी निकाला, जिसका नाम "Thundering Dawn" अर्थात् 'गर्जनशील प्रभात' रक्खा। एक वर्ष पश्चात् जब वह मस्त और प्रफुल्लित हृदय से भारत में पहुँचे, तो उनके माता-पिता उनके आगमन का समाचार पाकर उनको लेने के लिये कलकत्ता आए हुए थे और प्रिय पुत्र को संन्यास-वेश में देखकर सब रोने लगे। वह उन्हें अपने साथ अपने घर पंजाब में ले आए, और कुछ काल निरंतर समझाने-बुझाने के बाद उन्होंने उनका संन्यासी-वेश उतरवा दिया, और माता-पिता की आज्ञानुसार वह गृहस्थ-आश्रम में प्रविष्ट हो गए। कुछ काल पश्चात् यही पूर्णसिंहजी देहरादून में इंपीरियल फ़ारेस्ट-कॉलेज के केमिकल ऐडवाइज़र के पद पर अभिषिक्त हुए। आजकल पेंशन लेकर वह गृही की भाँति रहते हैं। इस समय वह तीन पुत्र और एक पुत्री के पिता हैं। और इधर कई बरसों से वह अपने ख़ानदानी सिक्ख-धर्म

के फिर अनुयायी होकर 'सरदार पूर्णसिंह' कहलाते हैं।"

नारायण स्वामी का अन्य देशों में एकाकी भ्रमण

अमेरिका जाने से एक दिन पूर्व राम स्वामी ने नारायण स्वामी को आदेश किया कि "देखो नारायण! धर्म के उत्सवों पर तो एक साथ आना हम दोनों के लिये हितकर और अच्छा था, किंतु इधर-उधर देश-देशांतर एक साथ परिभ्रमण करना अथवा धर्मप्रचार के लिये एक संग विचरणा हम दोनों के लिये हानिकारक होगा; क्योंकि इस तरह मन एक दूसरे के आश्रयीभूत रहने लग जायगा, और ईश्वर पर पूर्ण निर्भर रहने के स्थान पर परस्पर एक दूसरे की सहायता के लिये दीन हो जायगा। इससे ईश्वर पर विश्वास की अवनति होने का भय है। इसलिये उचित है कि हम लोग यात्रा के लिये भिन्न-भिन्न प्रदेश नियत करें। हम तो प्रोफ़ेसर छत्रे के साथ अमेरिका की ओर विचरण करते हैं, तुम योरप, अफ़रीका, लंका, ब्रह्मा इत्यादि देशों में विचरण करो; किंतु देखना, कहीं बाहर

---

* जिस समय यह लेख श्रीस्वामी नारायण की लेखनी से लिखा गया था, उस समय मिस्टर पूर्ण की व्यवस्था वैसी ही थी जैसी यहाँ वर्णित है। पर उसके कुछ वर्ष बाद उनका शरीर क्षयी रोग से ग्रस्त हो गया था, जिससे वह १६२१ ई० में कालवश हो गया।

के कष्टों से व्याकुल होकर हमसे पहले भारतवर्ष में न चले जाना। और जब तक हम न लिखें तब तक भारतवर्ष में प्रविष्ट न होना, इत्यादि।" यह अंतिम आज्ञा प्रदान करके राम तो दूसरे दिन अमेरिका चल दिए और नारायण स्वामी को अकेला जापान ही में छोड़ गए। कुछ काल तक तो नारायण स्वामी वहाँ "इंडो जापान क्लब" के लिये काम करते रहे, और जापान के प्रसिद्ध नगरों की यात्रा की। लगभग सभी प्रसिद्ध नगरों में भ्रमण करके और दर्शनीय स्थानों को देखकर नारायण स्वामी जापान से हांगकांग वापस आए। वहाँ लगभग एक मास सत्संग जारी रखने के पश्चात् वह सिंगापुर गए और वहाँ से पीनांग होते हुए ब्रह्मा पहुँचे। ब्रह्मा में कुछ मास घूमने के पश्चात् लंका (Ceylon) की ओर उपस्थित हुए। सीलोन में स्वामी विवेकानंद की सोसाइटी में उनके कई व्याख्यान हुए, और लगभग तीन मास तक लंका के प्रसिद्ध स्थान देखने के पश्चात् नारायण स्वामी अफ़रीका में आए। वहाँ से पोर्टसय्यद, कैरो (मिस्र), अलेक्ज़ेंडरिया घूमते हुए गोज़ू माल्टा द्वीपसमूह में पहुँचे, और वहाँ से अफ़रीका की उत्तरी सीमा की यात्रा करते हुए अर्थात् टियोनिस, औरान, अलजेरिया, तैंजीयर, मराकू के नगरों की सैर करते हुए जिबराल्टर आए। जिबराल्टर में एक

मास सत्संग जारी रखने के पश्चात् वह लंदन में सितंबर, १९०३ ई० के आरंभ में पहुँच गए।

राम बादशाह अमेरिका में

स्वामी राम के उन पत्रों से, जो उन्होंने अमेरिका पहुँच कर वहाँ से भेजे, स्पष्ट विदित होता है कि वहाँ के लोगों को स्वामीजी की उपस्थिति से बहुत ही लाभ पहुँचा। अमेरिका-जैसे प्रदेश में जहाँ विना टैक्स दिए किसी प्रकार का उत्तम उपदेश सुनने को नहीं मिलता, वहाँ राम स्वामी ने विना किसी प्रकार का टिकट लगाए अति उत्तम और उपयोगी विषयों पर लगातार व्याख्यान दिए, और लगभग कई मास तक प्रतिदिन व्याख्यान होते रहे। सुनने वाले इतने प्रेम से सुनते थे कि वह प्रत्येक व्याख्यान का एक-एक शब्द शार्टहैंड राइटिंग से लिख लेते थे, और फिर उसे अँगरेज़ी में टाइप करके कई-कई प्रतियाँ तैयार कर लेते थे। उन नक़लों की एक-एक या दो-दो प्रतियाँ स्वामीजी की सेवा में भी उपस्थित कर देते थे, और शेप अपने पढ़ने के लिये रख लेते थे। संभव है, कितने ही व्याख्यानों के नोट भी न लिए गए हों। परंतु जितने व्याख्यानों की टाइप कॉपियाँ स्वामीजी को भेट की गईं, उन्हें स्वामी रामजी महाराज भारत आते समय अपने साथ लेते आए। सत्य पूछो तो ये राम के व्याख्यानों की

कैसिल स्प्रिंग कैलीफ़ोर्निया में स्वामी राम का निवासस्थान

असंशोधित नक़लें ही थीं, जो पूरे चार वर्ष तक चार जिल्दों में प्रकाशित हो सकीं, और जो अब श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग ने "In Woods of God-Realsation" के नाम से आठ खंडों में निकाली हैं। यह सब स्वामी राम के अमेरिकन प्रेमियों के परिश्रम का फल है कि जिससे आज हम भारतवासियों को भी स्वामी राम के उपदेशों व लेखों से लाभ उठाने का सौभाग्य मिला है। यदि अमेरिका के लोगों में राम का प्रेम, उनकी शिक्षा से भक्ति, उनके सिद्धांतों पर चलने की लगन, अथवा उनके व्याख्यानों के सुनने का शौक़ न होता, तो वे उनके व्याख्यानों के नोट लेने और फिर उन्हें टाइप करने का कष्ट कदापि स्वीकार न करते, और आज दिन हमें जो आठ खंडों में स्वामी राम के उपदेश पढ़ने को मिलते हैं, कदापि न मिलते *। और न भारतीय भाइयों को यह ज्ञात होता कि स्वामी राम का प्रभाव अमेरिका में क्या और कैसा हुआ? अमेरिकावालों का स्वामी राम के लिये इतना कष्ट उठाना, अपने पास से सैकड़ों रुपए ख़र्च करके राम के व्याख्यानों के लिये हॉल किराए पर लेना, और फिर किसी व्याख्यान पर किसी से

---

* यह आनंद का विषय है कि स्वामी राम के ये समस्त व्याख्यान हिंदी में अनुवादित होकर रामतीर्थ-ग्रंथावली के नाम से प्रकाशित हो गए हैं, और इसी प्रकार उर्दू में भी हो रहे हैं।

टैक्स आदि न लेना, स्पष्ट विदित कर रहा है कि राम के उपदेशों का उन पर कैसा और क्या प्रभाव हुआ। यदि इस स्थान पर उस प्रभाव और राम के कामों का सविस्तर वर्णन किया जाय, तो सैकड़ों पृष्ठ केवल इस वर्णन के लिये चाहिएँ। इसलिये संक्षेप में केवल इतना ही लिखा जाता है कि अमेरिका के जिस-जिस नगर में स्वामी राम घूमे, वहाँ के लोग अब तक उनको नहीं भूले। स्याटलवाश तक तो वह प्रोफ़ेसर छत्रे के साथ थे, उसके बाद अमेरिका के लोगों ने उनको प्रोफ़ेसर साहब से छीन लिया, और बहुत काल तक वह एक सज्जन डॉक्टर एलबर्ट हिल्लर के पास सानफ्रांसिस्को में रहे। यह नगर केलिफ़ोर्निया का प्रसिद्ध क़स्बा और बंदरगाह है। डॉक्टर महोदय ने स्वामीजी की सेवा तन-मन-धन से की। पूरे डेढ़ साल तक उन्होंने राम को अपने पास रक्खा, और अपना बँगला केवल उनके लिये सुरक्षित कर दिया। वहाँ के लोगों ने स्वामीजी की प्रेरणा पर कई सोसाइटियाँ बनाईं, जिनका उद्देश्य ग़रीब भारतीयों को शिक्षा के लिये अमेरिका में हर प्रकार सहायता करना था। स्वामीजी के प्रतिदिन सत्संग से लाभ उठाने के लिये एक "Hermetic Brotherhood" अर्थात् साधुओं की बिरादरी स्थापित हुई थी। इसी सोसाइटी में अधिकतर स्वामीजी के उपदेश होते थे, जिन्हें सुननेवालों

ने शब्दशः लिखकर स्वामीजी की भेंट किए थे। स्वामीजी की मस्ती ने यहाँ तक ख्यातिलाभ की कि समाचारपत्रों के संवाददाताओं ने स्वामीजी की ईसा मसीह की तरह फोटो लेकर "Living Christ has come to America" "अमेरिका में जीवित ईसा मसीह आया हुआ है"-शीर्षक से छापकर स्वामीजी की प्रशंसा में क्रमशः कई लेख लिखे, और उनकी मस्ती से आनंदलाभ करने के लिये अमेरिका के प्रेसिडेंट ने भी उनके दर्शन किए। अमेरिका में जिस किसी ने भी राम के दर्शन किए, वह उनके दर्शनमात्र से घायल हुए बिना न रहा। कई सज्जन तो राम की न रुकनेवाली हँसी और मनोहर मुसकिराहट पर आसक्त और विमोहित हुए रहते थे।

न्यूयार्क का एक समाचारपत्र लिखता है (जैसा कि लाहौर के ट्रिब्यून ने प्रकाशित किया था) कि "अमेरिका में एक विचित्र भारतीय साधु आया हुआ है, जो किसी धातु के सिवाय अपनी ऐनक के नहीं छूता, अपने साथ भोजन की कोई सामग्री नहीं रखता। जब सैर करने निकलता है, तो एक सामान्य कपड़े में कई-कई दिन अत्यंत शीत स्थानों में घूमता रहता है। जब व्याख्यान देता है, तो दिन में कई बार, और एक बार में तीन-तीन घंटा लगातार बोलता रहता है। उसका रूप और छवि बड़ी ही मनोहर है।"

ग्रेट पैसिफ़िक ऑयल रोड कंपनी, अमेरिका का मैनेजर लिखता है कि "स्वामी राम एक भारतीय फ़िलॉसफ़र की न रुकनेवाली हँसी और मनोहर मुसकिराहट मन को मोह लेती है।"

सेंट लुइस की प्रदर्शिनी में धार्मिक कानफ़्रेंस के संबंध में वहाँ के एक स्थानीय समाचारपत्र ने लिखा है कि "इस कानफ़्रेंस में अकेला खिला हुआ मुखमंडल स्वामी राम का था। भारतीय फ़िलॉसफ़र हमको सिखाने आया है।" इस प्रकार नाना शीर्षकों से अगणित लेख अमेरिकन लेखकों की लेखनी से लिखे जाकर उन दिनों वहाँ के समाचारपत्रों में प्रकाशित हुए। किस-किसका उल्लेख किया जाय। स्वामीजी का चित्र हर प्रकार से मनमोहन था, और उनका ॐ का दिव्य उच्चारण, जो प्रति समय उनके मुख से होता रहता था, प्रत्येक पर गंभीर प्रभाव डालता था।

आजकल के लोग जिन्होंने धर्म को केवल शास्त्रार्थों और बहसों तक परिमित समझा है और उस पर आचरण नाम को भी नहीं, उनसे निःसंदेह संसार खिन्न है। ऐसे लोग न तो स्वयं चित्त-शांतिलाभ करते हैं और न इनसे दूसरों को शांति मिलती है, न स्वयं व्यावहारिक आस्तिक होते हैं, और न इसी कारण अन्य नास्तिकों को आस्तिक

SWAMI RAMA TIRTHA M. A.

AMER CA 1903

बना सकते हैं; किंतु राम-जैसे नैष्ठिक व्यक्ति के पास आकर संसार के विद्वानों और ज्ञानवानों की वाणी गुंग हो जाती है; मस्तिष्क पथरा जाता है। अमेरिका की एक घटना है, जो राम के व्यावहारिक जीवन पर प्रकाश डालती है।

अमेरिका में अथीस्ट सोसाइटी (नास्तिक-समाज) की एक विदुषी लेडी राम के पास बहस करने की इच्छा से आई। अमेरिका का एक समाचारपत्र लिखता है कि राम बादशाह उस समय समाधि में थे। उस समाधि-अवस्था का फ़ोटो भी संवाददाता ने उस पत्र में छपवा दिया था। नास्तिक लेडी जब तक राम समाधि की अवस्था में थे, चुपचाप बैठी रही। समाधि खुलने के बाद तर्क के लिये उत्सुक लेडी ने मौन भंग किया, और बोली, तो यों बोली—"माई लॉर्ड ! मैं नास्तिक नहीं हूँ, आपके दर्शन से मेरा संदेह दूर हो गया।" सच है, जो ज्ञानी ईश्वर के अस्तित्व को अंतःकरण से स्वीकार करते हैं, और प्रेम की जलती हुई ज्योति को अपने भीतर अनुभव करते हैं, क्यों न उनके दर्शनमात्र से नास्तिकता दूर हो, और घमंड खंड-खंड हो। श्रीरामचंद्रजी के चरण छू जाने से शिला अहल्या बन जाती है। स्वामी विवेकानंद पहले नास्तिक थे। स्वामी रामकृष्ण परमहंस से वह पूछते

हैं—"महाराज ! ईश्वर के अस्तित्व का क्या प्रमाण है ? क्या आपने कभी ईश्वर को देखा है ?" परमहंसजी उत्तर देते हैं—"हाँ ! मैं जैसे तुमको यहाँ पास देखता हूँ, वैसे ही ईश्वर को भी देखता हूँ ।" इतना उत्तर मिलना था कि विवेकानंदजी का नास्तिक-भाव दूर हो गया । वह कोट-पतलून उतारकर परमहंसजी के शिष्य हो गए, और यह बताने की आवश्यकता नहीं कि स्वामीजी ने संसार में फिर क्या-क्या काम किए ।

मिसेज़ वैल्मैन अमेरिका की एक अत्यंत प्रेममयी लेडी थीं । राम के ॐ की ध्वनियाँ सुनकर ऐसी आसक्त हुईं कि अपना पश्चिमीय वेश त्यागकर संन्यासिन बन गईं और भारतवर्ष के संन्यासियों की तरह वह भी बिना नक़दी साथ लिए केवल ईश्वर पर सब प्रकार का भरोसा रखती हुई देश-देश विचरण करने लगीं और राम के प्रेम में मतवाली होकर अमेरिका से भारतवर्ष में आईं । राम की जन्मभूमि के दर्शन करने के लिये मुरालीवाला गाँव (ज़िला गुजराँवाला) में गईं, और उस छोटे-से गाँव को देखकर प्रफुल्लित हुईं ।

उस प्रेम की पुतली मिसेज़ वैल्मैन के अतिरिक्त दो-तीन और भी लेडियाँ राम के प्रेम में अमेरिका से भारतवर्ष में आईं, और कई अभी तक राम की जन्मभूमि देखने के प्रेम

में वहाँ से आने को लिख रही हैं, और राम के नाम पर वारे-न्यारे जा रही हैं।

राम मिस्र में

अमेरिका के लाखों पवित्र हृदयों में वेदांत का भाव उत्पन्न करके जिब्राल्टर के मार्ग से राम मिस्र में पहुँचे। वहाँ मुसलमान भाइयों के मध्य में फ़ारसी-भाषा में उन्होंने जादू-भरा व्याख्यान दिया, जिससे बहुत सुननेवाले मुग्ध हो गए। सुना जाता है कि इस व्याख्यान के नोट लेकर वहाँ के प्रसिद्ध अरबी अख़बार "अलवहाब" ने "हिंदी फ़िलॉसफ़र" के शीर्षक से प्रकाशित किए थे। तात्पर्य यह कि जापान ने राम को जापानी, मिस्रवालों ने राम को मिस्री और अमेरिकनों ने राम को ज़िंदा ईसामसीह और अपना समझा।

राम का लौटना

लगभग ढाई वर्ष विदेशों में वेदांत का प्रचार करके स्वामी राम भारतवर्ष लौट आए, और ८ दिसंबर, १९०४ ई० को बंबई में पदार्पण किये। यद्यपि अमेरिका जाने से पहले भी राम की मस्ती और नाम दोनों यथेष्ट ख्याति लाभ कर चुके थे, किंतु अमेरिका में आपके काम और नाम की इतनी ख्याति हुई कि अनेक भारतनिवासी अब आँखें फाड़-फाड़कर उनके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे

थे। उनके शुभागमन पर सभी संप्रदायों के समाचारपत्रों ने उनका स्वागत किया। अलीगढ़-गज़ट के सहकारी संपादक भी उस समय बंबई के बंदरगाह पर थे। आपने स्वामीजी की गज़ट में बड़ी प्रशंसा की। लखनऊ के एडवोकेट ने स्वामीजी का निम्नलिखित शब्दों में स्वागत किया—

स्वामी रामतीर्थजी महाराज का प्रत्यागमन

"हम अत्यंत प्रसन्नता से लिखते हैं कि स्वामीजी महाराज ८ दिसंबर के जहाज़ में अमेरिका से भारत लौट आए। हम आपका स्वदेश लौटने पर अंतःकरण से स्वागत करते हैं और आपकी महान् सेवाओं के लिये, जो आपने कई साल से विदेशों में निवास करके की हैं, हृदय से धन्यवाद अर्पण करके कृतज्ञता प्रकाश करते हैं। स्वामीजी महाराज की वक्तृताएँ, लेखों और उनके सभी काम उत्तरी भारत में बड़े प्रेम और अनुराग के साथ देखे गए हैं, जहाँ आपके शुभागमन की बहुत समय तक प्रतीक्षा की गई है। बंबई में एक सप्ताह तक आप ठहरे रहे, जहाँ उस प्रांत के सौदागरों और सिंधी कोठीवालों ने आपका बड़े ही चाव से स्वागत किया। नासिक और होशंगाबाद में ठहरने के बाद आप मथुरा में पधारनेवाले हैं। यहाँ एक सप्ताह आप निवास करेंगे। स्वामी शिवगणचंद्र महाराज आपके स्वागत के लिए बंबई में पहुँचे थे, जहाँ से

वे उन्हें मथुरा ला रहे हैं। हम आशा करते हैं कि स्वामीजी महाराज कुछ दिन इस ओर भी अवस्थान करेंगे, उसके बाद हिमालय जाकर एकांत-सेवन करेंगे। ढाई वर्ष बाहर निवास करने के पश्चात् स्वदेश लौटने पर, जहाँ हजारों मनुष्य आपकी प्रशंसा करते हैं, उनको भी अपने दर्शनों से कृतार्थ करेंगे, और जहाँ कहीं वह जायँगे, वहाँ वह अपने स्वदेश-भाइयों का समूह प्रतीक्षा करता हुआ पावेंगे, जिनका ध्यान हमें आशा है, किसी व्यावहारिक और हितकर आंदोलन की ओर आकर्षित किया जायगा।"

स्वामीजी का पहला व्याख्यान बंबई में हुआ। बंबई से आप आगरा, मथुरा और लखनऊ में अपने अनुभव बतलाते हुए अपनी जादूमयी वक्तृता से सर्वसाधारण की प्यास बुझाते हुए पुष्करराज पहुँचे। इन स्थानों पर स्वामीजी का स्वागत बड़े धूमधाम से होता रहा। आर्यसमाजी, सनातनधर्मी, ब्राह्मी, सिक्ख वरन् ईसाई और मुसलमान तक आपके स्वागत में सम्मिलित रहे। आपकी विशाल हृदयता, विचारों की उदारता और अन्य जातीय सुधारों का अनुमान नीचे लिखी सुनहरी पंक्तियों से होता है—

अमेरिका से लौटने के बाद मथुरा में आपके कुछ भक्तों ने आपको यह सम्मति देनी चाही कि स्वामीजी, आप अब एक नए नाम से संस्था स्थापित करें। उस समय जीवन-मुक्त और

सच्चे अर्थों में सबसे अभेद रूप राम ने प्रेम की तरंगों में झूमकर उत्तर दिया कि भारत में जितनी सभाएँ, समाजें और संप्रदाएँ हैं, वह सब राम की हैं, राम उनमें काम करेगा।........फिर आँखें बंद करके हाथ फैलाकर प्रेम-भरे आँसू बहाते हुए कहा, "ईसाई, आर्य, सिक्ख, हिंदू, पारसी, मुसलमान और वह सब लोग, जिनकी हड्डियाँ, रक्त और मस्तिष्क मेरे इष्टदेव भारत-भूमि के अन्न और नमक से बने हैं, मेरे भाई हैं। हाँ, मेरे अपना आप हैं। जाओ। उनको कह दो कि राम उनका है। मैं उन सबके साथ आलिंगन करता हूँ, और किसी को भी अपने प्रेमालिंगन से बाहर नहीं समझता। मैं संसार पर प्रेम की वर्षा बरसाऊँगा और संसार को आनंद में नहलाऊँगा। यदि कोई मुझसे विरोध प्रकट करेगा, तो मैं उसे स्वागत करूँगा। क्योंकि मैं प्रेम की वर्षा करता हूँ, सारी संस्थाएँ मेरी हैं, क्योंकि मैं प्रेम की बहिया लाऊँगा। प्रत्येक शक्ति मेरी शक्ति है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी। ओहो! मैं प्रेम की वर्षा करूँगा।"

ये शब्द हैं या मोती। इनसे राम का हृदय, जो वस्तुतः सम्राटों का-सा था, भली भाँति प्रकट होता है। राम अपने आपको "राम बादशाह" कहा करते थे। वह एक स्थान पर लिखते हैं—

"मैं शहंशाह राम हूँ। मेरा सिंहासन तुम्हारा हृदय है।

जब मैंने वेदों में उपदेश दिया, जब कुरुक्षेत्र में गीता सुनाई, जब मक्का और योरुशलम में संदेशा पढ़ा, मुझे लोगों ने गलत समझा था। अब मैं अपनी आवाज़ फिर ऊँची करता हूँ। मेरी आवाज़ में तुम्हारी आवाज़ है। तत् त्वमसि! तत् त्वमसि!! तू ही है वह, तू ही है वह। कोई शक्ति उसको रोक नहीं सकती। पर्वत्, शाह, शैतान या देव उसके समक्ष नहीं आ सकता। कलामे-हक़ (ईश्वरवाक्य) रोका नहीं जा सकता है। निराश मत हूजिए। राम का सिर तुम्हारा सिर है। यदि तुम्हारी इच्छा है, तो उसको काट डालो। किंतु उसकी जगह ऐसे हज़ारों सिर और पैदा हो जायँगे।"

देशभक्ति

बहुत लोगों का ख़याल है कि स्वामी राम देशभक्ति से संबंध नहीं रखते थे। हमें आश्चर्य है कि वह लोग देशभक्ति से क्या तात्पर्य रखते हैं, देशभक्ति किसे कहते हैं? इसमें संदेह नहीं कि यों तो राम को विश्वप्रेमी समझना चाहिए, किंतु स्वतः राम के कथानुसार जिसने पहले जातिभक्ति और देशभक्ति की श्रेणियाँ उत्तीर्ण नहीं कीं, वह सारे संसार का भक्त नहीं कहला सकता। राम के हृदय में क्योंकि सर्वसाधारण की सहानुभूति कूट-कूटकर भरी हुई थी, इसलिये देशभक्ति भी अपने आप उबल पड़ती थी। आपका विचार है कि भारत के लोग, जो रोटियों के भी मोहताज रहते हैं, सच्चे नारायण

हैं, साधु हैं। उनको रोटी देना देवता का आराधन या ईश्वरभक्ति है। राम का वह संदेशा जो उन्होंने "जातीय धर्म" के शीर्षक से बाहर भेजा था, उसे पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि देश और जाति की न मिटनेवाली असीम प्रीति ने इस देवोपम मनुष्य के हृदय को भी तार तार कर दिया था। आप लिखते हैं—"सूर्य डूबने का समय है। ठंडी साँस भर-भरकर मैं गुनगुना रहा हूँ। आँखों से आँसुओं की लड़ी जारी है। ऐ अस्ताचलगामी सूर्य! तू भारत-भूमि में उदय होने को जा रहा है। क्या तू राम का यह संदेशा उस तेजोमयी माता की सेवा में पहुँचा देगा? क्या ही अच्छा हो, यदि ये मेरे प्रेम-भरे आँसू भारत के हरेभरे खेतों में ओस की बूँदें बन जायँ।" इन शब्दों से राम की देशभक्ति का अनुमान हो सकता है कि हृदय के किस अथाह समुद्र से ये शब्द निकलते हैं। एक और प्रबंध में लिखते हैं—"ऐ हिंदवालो! क्या तुम भी देशभक्त बनना चाहते हो, तो फिर अपने आपको देश और उसके निवासियों के प्रेम में निछावर कर दो। एकता का भाव उत्पन्न करो। सच्चे आत्मिक सिपाही और समरवीर बनकर अपने तन-मन-धन को देश के हित पर बलिदान कर दो। देश के कष्टों का अनुभव करो, देश तुम्हारे कष्टों का अनुभव करेगा।" फिर आँखें मीचकर प्रेम की तरंगों में,

देश के अस्तित्व में अपने को मिटाकर लिखते हैं—"मैं सशरीर भारत हूँ। सारा भारत मेरा शरीर है। रासकुमारी मेरा पैर और हिमालय मेरा सिर है। मेरे बालों की जटाओं से गंगा बह रही है। मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और अटक (सिंधु-नदी) निकले हैं। विंध्याचल मेरा लँगोट है। कुरुमंडल मेरा दायाँ और मलाबार मेरा बायाँ पाँव है। मैं पूर्ण भारत हूँ। पूर्व और पश्चिम मेरे दोनों बाहु हैं, जिनको फैलाकर मैं अपने स्वदेशबंधुओं को गले लगाना चाहता हूँ। हाँ, मैं मूर्तिमान् भारत हूँ। यह मेरे शरीर का ढाँचा है, और मेरा आत्मा सारे भारत का आत्मा है। जिस समय मैं चलता हूँ, तो अनुभव करता हूँ कि सारा भारत चल रहा है। जब मैं बोलता हूँ, तो सारा भारत बोलता है।" इन समस्त लेखों से स्पष्ट विदित होता है कि राम अनारकिस्ट लोगों की तरह देशभक्त नहीं थे, वरन् दूसरों में अपना अहंभाव लय करने के कारण प्रेम के पुतला थे, और मूर्तिमान् वेदांत होने के कारण अपने प्रेम के बाहु इतने फैलाए हुए थे कि प्रेमालिंगन में भारत को भी घेरे हुए थे।

मथुरा में कुछ प्रेमियों के प्रश्न पर आपने कहा—"बस, अब दस वर्ष के भीतर-भीतर भारत में व्यावहारिक वेदांत आ जायगा। जहाँ पारस्परिक घृणा डंक मार रही है, वहाँ प्रेम ही प्रेम बरसेगा। राम का अमिट आदेश अवश्य पूरा

होगा, और राम के हार्दिक प्रेम का लगातार बहाव सारी घृणा को बहा ले जायगा।" राम की सच्ची देशभक्ति की दशा उनकी निम्नलिखित अपनी ही रचना से स्पष्ट प्रकट हो रही है।—

हम नंगे उमर बिताएँगे भारत पर वारे जाएँगे
हम सूखे चने चबाएँगे भाइयों को पार कराएँगे
हम रूखी रोटी खाएँगे मस्त पड़े रह जाएँगे
हम गाली ताना खाएँगे आनंदकी झलक दिखाएँगे
सूलों पर नंगे जाएँगे पर एको ब्रह्म लखाएँगे

यदि स्वामी राम के आंतरिक जीवन की घटनाओं पर गंभीर दृष्टि डाली जाय, तो इसमें संदेह को स्थान नहीं रहता कि राम ने अस्तित्व के पृष्ठ पर सुनहले शब्दों से कैसे क्रियात्मक रूप से एको ब्रह्म दिखला दिया। केवल भारत को ही नहीं, वरन् जापानियों, अमेरिकावालों, अँगरेज़ों और मिस्रियों बल्कि प्रत्येक देश के निवासी को अपना आप करके जाना। निःसंदेह राम को इस विरते पर अभिमान होना चाहिए, और इसी मूर्तिमान् वेदांत की अवस्था से आप सारे संसार में घूमे। इसलिये यद्यपि राम के पास एक फूटी कौड़ी न रहती थी, तथापि प्रत्येक स्थान पर लक्ष्मी दासी होकर उनके आगे सेवा में उपस्थित हो जाया करती थी। 'जल्वा-ए-कुहसार' में स्वामीजी ने कैसे मस्त होकर लिखा है कि—"ऐ गुलामी! अरे दासपन!

अरे कमज़ोरी ! अब समय है। बाँधो बिस्तर। उठाओ लता-पता। चलो। छोड़ो मुक्त पुरुषों के देश को। सोने-वालो ! बादल भी तुम्हारे शोक में रो रहे हैं। बह जाओ गंगा में। डूब मरो समुद्र में। गल जाओ हिमालय में। मृत्यु में क्या शक्ति है राम की आज्ञा विना दम मारने की ? राम का यह शरीर नहीं गिरेगा, जब तक भारत पूर्ववत् न हो लेगा। यह शरीर क़तल भी हो जायगा, तो भी इसकी हड्डियाँ दधीचि की हड्डियों की तरह किसी न किसी तरह इंद्र का वज्र बनकर द्वैत-रूपी राक्षस को चकनाचूर कर ही देंगी। यह शरीर मर जायगा तो भी इसका ब्रह्मबाण चूक नहीं करेगा।" इन ओजपूर्ण शब्दों से मनुष्य के रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि वेदांत का कैसा शक्तिशाली सिंह (Rama truth) वनों में, नहीं नहीं, मनुष्यों के हृदयों में गरज रहा है। जब तक दुई नहीं मिटेगी, मनुष्यमात्र परस्पर प्यार, हाँ मूर्तिमान् प्यार दृष्टिगोचर नहीं होंगे। उस समय तक राम (Rama truth) खड़ा गरजता रहेगा।

नारायण स्वामी को राम के दुबारा दर्शन

लगभग ५ मास लंदन में निवास करने के बाद जाड़े की ऋतु अर्थात् जनवरी, १९०४ ई० में अत्यंत शीत के कारण नारायण स्वामी का शरीर वहाँ कठिन रोग-ग्रस्त हो गया, और मित्र डॉक्टरों ने लंदन को शीघ्र छोड़ देने की सम्मति

दी, अतः उन्हें वहाँ से शीघ्र लौटना पड़ा। स्वामी राम को जब अपने अत्यंत प्रिय शिष्य नारायण स्वामी की बीमारी का समाचार मिला, तो अमेरिका से उन्होंने तत्काल भारत को लौट जाने की आज्ञा दी, और आज्ञानुसार नारायण स्वामी श्रीस्वामी राम के भारत लौटने के छः मास पूर्व अर्थात् जुलाई, १९०४ ई० में बंबई पहुँच गए। और जलवायु परिवर्तन के लिये बंबई से मद्रास और नीलगिरि-पर्वत पर गए। वहाँ कई मास स्वास्थ्य और शक्तिलाभ करने के बाद उन्होंने मद्रास का दौरा किया। नारायण स्वामी जिस समय कन्या कुमारी पहुँचे, उन्हें बंबई में स्वामी राम के आगमन का शुभ समाचार मिला। जब स्वामी राम बंबई और मथुरा इत्यादि का दौरा करने के पश्चात् एकांत-सेवन के लिये पुष्करराज-तीर्थ अजमेर ज़िला पहुँचे, तो नारायण स्वामी आज्ञानुसार उनकी सेवा में जनवरी, १९०५ ई० में उपस्थित हुए और उन्होंने प्रसन्नचित्त राम के दर्शन एवं सत्संग से ख़ूब सुख का लाभ किया। कई मास सत्संग करके दोनों संन्यासी मार्च तक अजमेर और जयपुर में आए, और इन दोनों स्थानों पर ख़ूब व्याख्यान और उपदेश हुए। जयपुर से स्वामी राम दारजिलिंग-पर्वत की ओर प्रस्थानित हुए, तथा नारायण स्वामी को सिंध और अफ़ग़ानिस्तान में दौरा करने को भेज दिया।

स्वामी राम के शरीर की रुग्णता

बंगाल और संयुक्त-प्रदेश का दौरा करने के पश्चात् अक्टोबर, १९०५ ई० में जब स्वामी राम हरिद्वार पधारे, तो वहाँ कुछ ही दिन ठहरने के बाद उनका शरीर ऐसा रोगाक्रांत हो गया कि वह लगातार आठ दिन तक बिछौने से न उठ सका। नारायण स्वामी उन दिनों हैदराबाद-सिंध में ठहरे हुए थे। उन्हें तार मिला कि "स्वामी राम का शरीर सख़्त बीमार है, फ़ौरन् आओ।" तार पहुँचते ही नारायण स्वामी हरिद्वार आए, और स्वामी राम के शरीर को अत्यंत कृश और दुर्बल पाकर बड़े ही विस्मित हुए। उन्हें ज्ञात हुआ कि आठ दिन से निरंतर ज्वर रहने के कारण स्वामी राम ने कुछ खाया तक नहीं, और इसी से इतने दुर्बल हो गए हैं कि खड़ा होना कठिन है। नारायण स्वामी नई-नई चिकित्सा-पद्धतियों को जानते थे, अतः वह विपाक्त ओषधियों के प्रयोग के बिलकुल विरुद्ध थे। स्वामी राम स्वयं भी नूतन चिकित्सा-पद्धति (Modern Medicinal System) की कई पुस्तकें देख चुके थे, इसलिये नारायण स्वामी के पहुँचने पर राम ने सब ओषधियों और बूटियों की चिकित्सा बंद कर दी, और नवीन चिकित्सा-शैली से नारायण स्वामी के द्वारा चिकित्सा करना स्वीकार किया। इस नवीन चिकित्सा-पद्धति से थोड़े दिनों के भीतर

ही राम स्वस्थ हो गए, और शरीर में शक्ति आते ही जलवायु परिवर्तन के लिये आप मुज़फ़्फ़रनगर चल दिए, तथा नारायण स्वामी को प्रचार के लिये लखनऊ भेज दिया।

स्वामी राम का व्यास-आश्रम में निवास

स्वास्थ्य और शक्तिलाभ करने के बाद स्वामी राम के भीतर एकांत-सेवन और अपने अमेरिका के व्याख्यानों को Dynamics of mind (चित्त की कला) के शीर्षक से एक पुस्तक के रूप में तैयार करने की तरंग ज़ोर से जोश मारने लगी। कुछ दिनों बाद नारायण स्वामी को उन्होंने लखनऊ से बुला लिया, और जंगलों में साथ चलने की आज्ञा प्रदान की। इस प्रकार दोनों संन्यासी मुज़फ़्फ़रनगर से उत्तराखंड के वनों में जाने के लिये हरिद्वार पहुँचे। वहाँ एक छोटे डील के स्वामी, जो अपना नाम योगानंद बतलाते थे (और आजकल अपने आपको आनंद स्वामी कहते हैं), स्वामी राम से मिले और उनके साथ एकांत वन में रहने की इच्छा बड़े ज़ोरों से प्रकट की।

यह स्वामी यद्यपि डील में छोटे और देखने में भी भोले-भाले तथा आयु में भी छोटे थे, परंतु बाद में कई बातों में बड़े चतुर और प्रवीण पाए गए, मदारीपन और हस्तकला में बड़े प्रवीण सिद्ध हुए, नाटक के कई खेलों के पार्टों से भली भाँति ज्ञात निकले। बुलबुल की सुरीली ध्वनि से

समय-समय पर नाटक की अनेक गायनशैलियों से दिन-भर ग़ज़लें गाते रहते थे। तात्पर्य यह कि संसार के कई पापड़ वेले हुए वह पाए गए। स्वामी राम के वन-गमन का समाचार सुनकर अपनी भी एकांत-सेवन कामना प्रकट करके भक्ति-भरे मन से झट राम के साथ हो लिए, किंतु पीछे क़लई खुलने पर थोड़े ही समय में अलग कर दिए गए।

इस प्रकार स्वामी राम उपर्युक्त स्वामी योगानंद और नारायण स्वामी के साथ नवंबर, १९०५ ई० अर्थात् कार्त्तिक सं० १९६२ वि० को दिवाली के निकट हरिद्वार से ऋषीकेश को प्रस्थानित हुए, और वहाँ से आगे किसी एकांत-स्थान की खोज में स्वामी राम अपने नए साथी योगानंद सहित बदरीनारायण की ओर चल दिए, और श्रीमन्नारायण स्वामी को पीछे छोड़ गए कि वह कुलियों का प्रबंध करके आवश्यक सामान के साथ धीरे-धीरे आवें। ऋषीकेश से लगभग ३० मील की दूरी पर एक व्यासचट्टी आती है, उस पड़ाव पर व्यास-गंगा आकर बड़ी गंगा से मिलती है। इस पड़ाव के ठीक सामने टिहरी-राज्य की सीमा पर एक बड़ा भयानक और सघन वन है, जो 'बी' वन के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि इस वन में लोक-विख्यात महर्षि कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यासजी ने तप किया था, इसीलिये इसमें एक टूटा स्थान भी व्यास-आश्रम के नाम से

प्रसिद्ध है। इस स्थान में बड़े-बड़े भारी और पुराने वृक्ष मिले, जिनके संबंध में कहा जाता है कि इन्हीं के नीचे वेदव्यासजी ने तप किया था। इस वन में पहुँचना बड़ा कठिन था, क्योंकि साधारण रस्सों के कच्चे पुल से एक सँकरे भँगोरे के द्वारा दूसरे आदमी की सहायता से गंगापार करके वहाँ जाना पड़ता था। वन भी इतना भारी और भयानक था कि दिन के समय भी भय के कारण मनुष्य की गति कठिन थी। इसलिये स्वामी राम ने इस वन को एकांत-सेवन के लिये पसंद किया, और वहाँ ही डेरे लगा दिए। वन का क्षेत्रफल कई मीलों में था, इसलिये एक दूसरे से लगभग आध मील की दूरी पर कुटियाँ (फूस की झोपड़ियाँ) बनवाई गईं, जिसमें एक दूसरे के एकांत में कोई बाधक न हो सके। और भोजनालय सबका एक स्थान पर था, जिसमें भोजन के समय सब एक स्थान पर एकत्रित हो जायँ, और इस प्रकार दिन-भर की आवश्यक वार्तालाप के लिये एक दूसरे को कुछ अवसर मिल जाय।

इस प्रकार व्यास-आश्रम में डेरे जमा दिए, और प्रत्येक अपने एकांत-अभ्यास और अध्ययन में युक्त हो गया। स्वामी राम भी अपनी तरंगों के पूरा करने के लिये कटिबद्ध हुए। किंतु वनों में आने से पहले एक प्राचीन विचारों के महात्माजी ने स्वामी राम के कानों में ऐसा डाल ही नहीं

दिया था, वरन् उनके मन में जमा दिया था कि बिना वेद और वेदांग के प्रमाण उद्धृत किए किसी अँगरेज़ी पुस्तक को प्रस्तुत करना भारतवर्ष के नवयुवकों के लिये लाभदायक सिद्ध न होगा, अतः किसी बृहत् ग्रंथ के लिखने या संपादन करने से प्रथम स्वामी राम वेदों के लगातार अध्ययन की ओर झुके। कुछ मास के भीतर ही आपने प्रचलित भाष्य और निरुक्त बड़े ध्यान से दुबारा पढ़ डाले, फिर सामवेद का आदि से अंत तक अध्ययन किया। इतने में फ़रवरी, १९०६ ई० आधा समाप्त हो गया, और शीत ऋतु ने मुँह छिपाना आरंभ कर दिया, एवं राम के भीतर यहाँ से भी अधिक एकांत और शीतल स्थान पर जाने की तरंग उठी। इसलिये आप अपने साथियों सहित फ़रवरी-मास में यहाँ से चल दिए।

वशिष्ठ-आश्रम में निवास

यहाँ से चलकर सब लोग देवप्रयाग पहुँचे। वहाँ कुछ सज्जनों से ज्ञात हुआ कि गरमी की ऋतु व्यतीत करने के लिये बिलकुल एकांत और शीतल स्थान वशिष्ठ-आश्रम है, जहाँ व्यास-आश्रम की तरह बहुत ही घना जंगल है और उससे भी अधिक एकांत है, क्योंकि वहाँ किसी मनुष्य की सहज में गति भी नहीं। यह स्थान टिहरी-नगर से लगभग ५० मील की दूरी पर बारह या तेरह

हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर था, इसलिये पहले सब लोग देवप्रयाग से टिहरी पहुँचे। यहाँ महाराजा साहिब टिहरी ने स्वामीजी का बड़े प्रेम और आदर से स्वागत किया, और अपने सिमलासु नामक सुंदर उद्यान में उतारा।

नवंबर, १९०५ ई० से लेकर अर्थात् जब से व्यास-आश्रम में डेरे लगे, तब से अब तक सबके भोजन इत्यादि का प्रबंध काली कमलीवाले बाबा रामनाथजी मैनेजर कलकत्ता क्षेत्र, ऋषीकेश करते रहे, और उन्होंने अपना नौकर (रसोइया) भी साथ भेजकर ऐसा उत्तम प्रबंध कर रक्खा था कि स्वामीजी और उनके साथियों में से किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने पाया था, वरन् भोजन-भिक्षा के सुप्रबंध के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की सुविधाएँ उन्होंने इस वन में प्राप्य कर रक्खी थीं। किंतु जब स्वामीजी महाराजा साहिब टिहरी के अतिथि हुए, तो वह पहला प्रबंध सब छूट गया, क्योंकि महाराजा साहिब बहादुर ने यह सारा प्रबंध-भार अपने ऊपर ले लिया था, केवल वह पहला रसोइया अर्थात् बाबा रामनाथजी का नौकर सेवा के लिये स्वामीजी के साथ ही रहा।

टिहरी से वशिष्ठ-आश्रम को चलने से कुछ दिन पूर्व स्वामीजी को धर्मसभाओं के वार्षिक उत्सवों पर दर्शन देने के लिये दो-एक तार मिले, किंतु एकांत-अभ्यास की

उमंग और लटक ने स्वामीजी को ऐसा मोहित-सा कर रक्खा था कि अब उन्हें वन छोड़कर बस्ती में रहना और शहरों में आना बिलकुल ही नहीं भाता था। इसलिये एकांतप्रिय राम ने अपने स्थान पर नारायण स्वामी को उन उत्सवों में भेज दिया, और आप अकेले वही रसोइया अपने साथ लेकर मार्च, १९०६ ई० में वशिष्ट-आश्रम को चल दिए। वहाँ पहुँचकर आपने वशिष्ट मुनि की गुफा में आसन जमा दिए।

भिक्षा में कुप्रबंध

भारतवर्ष के दुर्भाग्य से स्वामीजी की भिक्षा का प्रबंध वहाँ वशिष्ट-आश्रम में किसी न किसी कारण से कुछ ऐसा बुरा हुआ कि वहाँ पहुँचने के थोड़े ही दिन बाद उनका शरीर कठिन रोगग्रस्त हो गया और ग़रीब रसोइया भी उसी कुप्रबंध की भेंट होकर बिछौने पर लेट गया। नारायण स्वामी को मैदानों में आए अभी केवल एक मास व्यतीत हुआ था कि उन्हें पत्र मिला कि "स्वामी राम सख़्त बीमार हैं और उनके भोजन वा भिक्षा का प्रबंध दुर्भाग्य से बहुत ही ख़राब है। इत्यादि।" इस पत्र को पाने के बाद स्वामीजी के विषय में और भी बहुत-सी अफ़वाहें विविध रियासतों की ख़ुफ़िया पुलीस की रिपोर्टों के संबंध में श्रीमन्नारायण स्वामी को सुनने को मिलीं, इसलिये वह शीघ्र मैदानों से

वन की ओर प्रस्थानित हुए, और सारे जल्सों से शीघ्र छुट्टी पाकर मई, १९०६ ई० के आरंभ में नारायण स्वामी वहाँ वशिष्ठ-आश्रम में पहुँच गए। वहाँ पहुँचते ही श्रीमन्नारायण स्वामी ने राम स्वामी को एक पत्थर की शिला पर स्वस्थ बैठे हुए पाया, परंतु उनका शरीर इतना दुर्बल और कृश था कि दूर से पहचाना नहीं जाता था। इस पर्वत पर गेहूँ के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं, जो पहाड़ी लोगों की प्रकृति के तो अनुकूल होते हैं; परंतु मैदानों के लोगों के प्रतिकूल। भिक्षा में जो आटा आता था, वह मिला-जुला होता था, इससे स्वामी राम के साथियों में से जो भी उसे खाता, वह बिस्तर पर लेट जाता। उस भोजन के करने से श्रीनारायण स्वामी भी वहाँ पहुँचने के दो दिन बाद ही लेट गए, और ज्वर से उनके शरीर का संग्राम होने लगा। जब नारायण स्वामी को चेतना हुई, तो विचार हुआ कि "कदाचित् यहाँ का जलवायु ही प्रतिकूल हो और भोजन में कोई दोप न हो" वह स्थान छोड़ दिया, और वहाँ से बहुत दूर जाकर परस्पर छः या सात मील की दूरी पर उन्होंने डेरे जमा दिए। स्वामी राम ने उस ऊँचाई से भी कुछ मील और ऊपर जाकर एक गुफा में अपना दरबार लगाया, किंतु नारायण स्वामी ने इस ऊँचाई से उतरकर नीचे श्रीभृगुगंगा के

किनारे अर्थात् वहाँ से पाँच मील की दूरी पर आसन जमाया। स्वामी राम ने अपने कई पत्रों में उक्त स्थान को garden of fairies अर्थात् अप्सराओं का उद्यान लिखा है। स्थान-परिवर्तन के पश्चात् श्रीनारायण स्वामी को भोजन के लिये अपना अलग प्रबंध करना पड़ा, जिससे शुद्ध और उत्तम खाद्य मिलने लगा। किंतु स्वामी राम महाराज ने प्रबंध को बदलना स्वीकार नहीं किया, अतः उसी प्रकार का मिला-जुला प्रतिकूल अन्न उनको मिलता रहा। इसका परिणाम यह निकला कि श्रीनारायण स्वामी तो बिलकुल स्वस्थ और बलसंपन्न हो गए। परंतु स्वामी राम स्थान एवं जलवायु-परिवर्तन करने पर भी स्वस्थ और शक्तिमान् न होने पाए। जब उस अन्न के भोजन से उनका शरीर प्रतिदिन कृश और शक्तिहीन होने लगा, तो स्वामी राम ने अन्न-भोजन बिलकुल त्यागकर केवल दुग्ध-पान करके ही दिन काटने आरंभ कर दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके शरीर का बीमार रहना तो मिट गया, परंतु वह दुर्बल वैसे का वैसा ही रहा, अपनी पूर्व शक्ति पर आने नहीं पाया।

मिस्टर पूर्ण का वशिष्ठ-आश्रम में पहुँचना

जिस गुफा में स्वामीजी महाराज रहते थे, वह लगभग बारह सौ फ़ीट की ऊँचाई पर थी। इस गुफा के ऊपर

एक और गुफा थी जिसमें एक बड़ा अजगर साँप रहता था। स्वामीजी की गुफा के आगे एक घाटी पड़ती थी, और घाटी पार करके ठीक सामने ऊँचाई पर एक दूसरी गुफा थी जिसमें सिंह रहता था, और कभी-कभी अपने घर में राम के दर्शन कर लेता था, कभी राम की गुफा के आगे से भी अपनी तेज़ी में घूम जाता था। गुफा का मुख बहुत चौड़ा था, अतः वह न किसी पशु से सुरक्षित हो सकती थी और न वर्षा से। अस्तु। वन के पशु तो राम के बहुत प्यारे वरन् राम-रूप ही थे, उनसे सुरक्षित होने की राम को कोई आवश्यकता न थी, और न राम की इच्छा के विरुद्ध वह कुछ कर सकते थे, हाँ वर्षा जब वेग से होती और उसकी बौछार से सारे कपड़े और पुस्तकों के संदूक़ गुफा के भीतर भीग जाते, तब पुस्तकों के ख़राब होने और उनके ठीक करने में समय के नष्ट होने का ख़याल निःसंदेह कभी-कभी राम को आ जाया करता था। एक बार जब लगातार कई दिनों तक वर्षा होती रही, और गुफा के भीतर बहुत-सा जल आ जाने से सारे संदूक़ और कपड़े तरबतर हो गए जिसके कारण उनको एक क्षण-भर भी सोने का अवसर न मिला, तो स्वामी राम को विवश होकर वह गुफा छोड़नी पड़ी, और उस ऊँचाई से कुछ मील नीचे उतरकर बड़े

चौड़े मैदान में आकर डेरे जमा दिए। अब तो उधर के ग्वाला लोग, जो कभी-कभी राम के दर्शन के लिये उस ऊँचाई पर आ जाया करते थे, और राम के बड़े भक्त और प्रेमी हो गए थे, राम को मैदान में उतरा देखकर उनके आराम की चिंता करने लगे। उन लोगों ने राम की वहाँ ही रहने की इच्छा सुनकर उनके आराम के लिये एक सुरक्षित कुटिया सबने मिलकर कुछ घंटों के भीतर तैयार कर दी। इस कुटिया में राम को प्रविष्ट हुए कुछ ही दिन बीते थे कि श्रीयुत पूर्णसिंहजी अपने दो साथियों (पं० जगतरामजी और हरिशर्माजी) के साथ राम के दर्शन के लिये आ पहुँचे। पं० जगतरामजी तो पूर्णसिंहजी के साथ ही आ गए थे, पं० हरिशर्माजी नदी के भय से मार्ग में ही पीछे रह गए थे, इसलिये एक दिन बाद आए। इन दिनों राम स्वामी ने अन्न-भोजन त्याग रक्खा था, और जैसा ऊपर लिख आए हैं, वह केवल दूध पर निर्बाह करते थे, परंतु इन नवागत सज्जनों को इसका ज्ञान न था। जब भोजन करने का समय आया, तो संयोग से मारे प्रेम के उन लोगों ने आग्रह किया कि पहले राम स्वामी भिक्षा कर लें, तो बाद में हम भोजन करेंगे, नहीं तो न करेंगे। इस प्रेमपूर्ण आग्रह पर थोड़ा-सा अन्न स्वामी राम ने भी खा लिया, और इसी तरह पंद्रह दिन तक वह उन नवागत सज्जनों

के प्रेम से थोड़ा-थोड़ा अन्न खाते रहे जिससे थोड़े दिन बाद राम को अपच और ज्वर ने फिर आ घेरा। जब इन सज्जनों को इस अपच और ज्वर का कारण मालूम हुआ, तो फिर उन्होंने स्वामी राम को अन्न-भोजन के लिये विवश नहीं किया, और वह पूर्ववत् केवल दुग्धाहार करने लगे।

उन दिनों श्रीनारायण स्वामी जिस स्थान पर रहते थे, वह राम की कुटिया से लगभग ५ मील की दूरी पर था, और राम की आज्ञानुसार वह कभी-कभी रविवार को उनके पास आया करते थे। किंतु जब श्रीपूर्णसिंहजी उनके पास आ गए, तो राम स्वामी ने तुरंत आदमी भेजकर नारायण स्वामी को बुलवा लिया, और जब तक वे लोग वापस नहीं गए, उन्हें अपने ही पास रहने का आदेश दिया।

श्रीपूर्णसिंह का ठहरना और हरिशर्मा का लौटना

पं० हरिशर्मा अपने दुर्भाग्य से पहले तो रास्ते में ही साहसहीन होकर दो बार वापस लौट गए थे, केवल पूर्णसिंह के प्रोत्साहन, सहायता और प्रेमपाश में बद्ध होने से कठिनता से इतनी दूर तक पहुँचे थे। परंतु यहाँ आए अभी कठिनता से एक दिन बीता होगा कि घर की चिंताओं ने उनके मन को ऐसा बुरी तरह घेर लिया कि

सबके सामने अपनी गृह की चिंताओं का ही वर्णन करने लगे, और जब अपने दुर्बल चित्त से विवश होकर उन चिंताओं की कहानी राम को भी उन्होंने सुनाई, तो राम ने उन्हें शीघ्र लौट जाने की सम्मति दी जिससे वह तत्काल अर्थात् वहाँ आने के दो दिन बाद ही घर को चल दिए, और श्रीयुत पूर्णसिंहजी अपने साथी पंडित जगतरामजी के साथ लगभग एक मास तक वहाँ राम के पास रहे।

राम का वशिष्ट-आश्रम से लौटना

उस पर्वत पर अन्न जो मिलता था वह कुछ इस प्रकार का होता था कि प्रत्येक नवागंतुक पर अपना प्रभाव डाले बिना न रहता था। श्रीयुत पूर्णसिंहजी और उनके साथी भी इस प्रभाव से प्रभावित होकर बिस्तर पर लेट गए, और कई दिन तक ज्वर से युद्ध करते रहे। इस प्रकार जब सब लोग अन्नदोष के कारण एक दूसरे के बाद रोगग्रस्त होने लगे, और स्वामी राम का शरीर भी ठीक शक्तिमान् और स्वस्थ न होने पाया, तो सबने स्वामी राम महाराज से प्रार्थना की "किया तो इस प्रतिकूल खाद्य का आना बंद कर दिया जाय और नारायण स्वामी को आज्ञा दी जाय कि वह दूर गाँव से शुद्ध अन्न की भिक्षा सबके लिये माँग लाया करें, अथवा आप नीचे टिहरी और किसी नगर में चलें

जिससे प्रतिकूल आहार का आना अपने आप बंद हो जाय, अथवा यह आज्ञा प्रदान करें कि किसी दूसरे योग्य और रामभक्त सज्जन के द्वारा यहाँ अनुकूल आहार पहुँचाने का प्रबंध किया जाय।" इस निवेदन पर स्वामी राम महाराज ने नीचे टिहरी-नगर तक उतरना स्वीकार किया, पर उससे आगे किसी शहर में जाना पसंद नहीं किया। स्वामीजी की इस स्वीकृति पर श्रीमन्नारायण स्वामीजी उनका असबाब नीचे ले जाने के लिये स्वयं टिहरी जाने को तैयार हुए। श्रीयुत पूर्णसिंहजी की छुट्टी भी समाप्त होनेवाली थी, और उन्हें वैसे भी शीघ्र लौटना था, पर इस अवसर को पाकर उन्होंने श्रीनारायण स्वामीजी के साथ लौटना उचित समझा, और स्वामी राम ने भी उन्हें ऐसी ही सम्मति दी, अतः वह भी साथ चलने को तैयार हो गए। इस प्रकार श्रीनारायण स्वामीजी श्रीपूर्णसिंहजी आदि को साथ लेकर सितंबर, १९०६ ई० को वहाँ से चल दिए।

श्रीयुत पूर्णसिंहजी का लौटना

जब इस प्रकार आज्ञा पाकर सब लोग वशिष्ठ-आश्रम से चलने लगे, तो स्वामी राम भी पूर्णसिंहजी को अंतिम बिदाई कहने के विचार से हमारे साथ-साथ हो लिए, और लगभग एक मील तक धीरे-धीरे साथ-साथ चलते रहे। मार्ग में राम बहुत प्रेम-भरे, मीठे और हृदय हिलानेवाले

शब्दों में पूर्णजी को इस प्रकार कहने लगे कि "प्यारे! राम की अवस्था तो तुम देख ही रहे हो। इसकी तो अब लेखनी बंद और वाणी गुंग शायद शीघ्र ही हो जायगी। क्या जाने राम का शायद दुबारा मिलना और मैदानों में भी आना न हो सके। अब आप लोग स्वयं ही राम बनें और राम में मग्न होकर लिखें-पढ़ें तथा सब काम करें। राम से भविष्य में अब कुछ आशा न रक्खें।" इतना सुनना था कि श्रीपूर्णसिंहजी के नेत्र आँसुओं से पूर्ण हो गए और मोती बनकर नीचे टपकने ही वाले थे कि राम तत्काल पिछले पैरों वापस लौट गए, और आन की आन में हमारी दृष्टि से ओझल हो गए।

इस घटना से श्रीयुत पूर्णसिंहजी का मुखमंडल आँसुओं से धुल गया, और आँसुओं का तार ऐसे वेग से बँधा कि कई घड़ियों तक टूटने न पाया और यात्रा का बहुत-सा रास्ता उन्हीं आँसुओं की वर्षा में तय हुआ। और बहुत देर के बाद उनके हृदय को ढारस हुआ * ।

---

* जान पड़ता है कि प्रकृति ने यह हृदयवेधी दृश्य शायद इसी लिये उत्पन्न किया होगा कि पूर्णजी की यह शायद अंतिम भेंट थी, क्योंकि इसके बाद जीवित राम के दर्शन उनको होने नहीं पाए। या शायद इसलिये उत्पन्न किया होगा कि श्रीयुत पूर्णजी के हार्दिक प्रेम का यहीं तक ही सीमा होनी थी, क्योंकि इसके

टिहरी में पूर्णसिंहजी का व्याख्यान

अस्तु। जब सब लोग इस हृदयवेधी दृश्य से विदा होकर आगे बढ़े, और दो दिन की लगातार यात्रा के बाद टिहरी पहुँचे, तो वहाँ के हाईस्कूल में श्रीयुत पूर्णसिंहजी का बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के दूसरे दिन पूर्णजी मंसूरी के लिये रवाना

पश्चात् राम के साथ पूर्णजी के प्रेम का पारा चढ़ने के स्थान पर उतरता-सा ही दिखाई देने लगा, वरन् यहाँ तक उतरा दिखाई दिया कि जो आँखें आज राम से जुदा होते समय आँसुओं की धारा ले आईं, ऐसी आँखें फिर आर्द्र राम की याद में देखने में नहीं आईं, और जो जिह्वा स्मृति में एवं राम की प्रशंसा और गुणगान में निरंतर प्रवृत्त रहती थी, वह बाद में वैसे प्रेमभाव से निरत होते देखी नहीं गई। तो भी पाठक यह पढ़कर आश्चर्य-चकित और प्रसन्न अवश्य होंगे कि राम का प्रेम उनके हृदय में ऐसा घर कर गया था कि उनके चित्त की अवस्था बदल जाने पर भी राम को वह भूलने न पाए और न राम का प्रेम ही टूटने पाया, यद्यपि वह किसी न किसी कारण से अपने जन्म के पंथ (सिक्खमत) में फिर वापस हो गए थे। अभी थोड़े ही वर्ष हुए जब श्रीयुत पूर्णसिंहजी से उनकी बीमारी के अवसर पर श्रीमन्नारायण स्वामी को मिलने का अवसर मिला, तो सरदार साहिब ने कहा था कि उनके (श्रीमन्नारायण स्वामीजी के) पहुँचने से कुछ ही देर पूर्व उन्हें राम के दर्शन इतने ज़ोर से हुए और उनका चित्त उस दर्शन से इतना विगलित हुआ कि उसका वर्णन वाणी और लेखनी की सीमा से बाहर है और उस दर्शन का दूर होना असंभव है।

हो गए, और श्रीनारायण स्वामी वशिष्ठ-आश्रम से स्वामी राम का असबाब उठाने के प्रबंध में युक्त हो गए। सब प्रकार प्रबंध करने के पश्चात् नारायण स्वामी वशिष्ठ-आश्रम में वापस आ गए और स्वामी राम को यहाँ से रवाना करके उनके पीछे उनका असबाब अर्थात् पुस्तकों के बहुत-से संदूक़ भेजते रहे। इस प्रकार अक्टोबर, १९०६ ई० के आरंभ में स्वामीजी महाराज एक सप्ताह के भीतर-भीतर टिहरी आ गए, और नारायण स्वामी सारा सामान कुलियों पर रवाना करने के बाद वहाँ से चले, इसलिये स्वामीजी के आने के पाँच दिन बाद पहुँचे। स्वामीजी महाराज, महाराजा साहिब टिहरी के सिमलासु बाग़ीचे में, जहाँ वशिष्ठ-आश्रम को जाने से पहले उतारे गए थे, उसी में फिर उतारे गए, और वहीं नारायण स्वामी भी उनकी सेवा में लगभग दो सप्ताह तक रहे।

टिहरी-नगर के निकट राम का एकांत-स्थान चुनना

वशिष्ठ-आश्रम से वापस आए लगभग दो सप्ताह ही बीते होंगे कि राम स्वामी के हृदय में फिर ज़ोर से एकांत-निवास की तरंग उठी। इस तरंग पर उन्हें ऐसा स्थान चुनने की सूझी जो हर ऋतु में रहने योग्य हो, और टिहरी-नगर के निकट होते हुए भी बिलकुल एकांत हो,

जिसमें बार-बार स्थान बदलना न पड़े। स्वामीजी के अंत:करण की अवस्था अब बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, इसलिये वह ऐसा स्थान चुनना चाहते थे कि जहाँ से फिर उनको जीवन पर्यंत हिलना न पड़े। इसके साथ ही उनको गंगा-तट बहुत ही प्यारा था, और गंगा रानी से इतना अधिक प्रेम था कि कुछ ही महीनों से अधिक उनका हृदय, उनका वियोग सहन न करता था। इसलिये गंगा के किनारे बहुत-से स्थान एकांत उन्होंने देखे, अंत में मालीदेवल गाँव के निकट एक स्थान पसंद किया, जो बिलकुल एकांत था और गंगा से तीनों ओर घिरा हुआ था। यह स्थान लगभग एक सौ बरस से बड़े-बड़े महात्माओं का एकांत-स्थान बना हुआ था। इस स्थान पर एक प्रसिद्ध संन्यासी महात्मा केशव आश्रमजी ने लगभग पचास वर्ष तक लगातार एकांत-निवास किया था और इसी स्थान पर एक सौ बरस से अधिक आयु भोगने के पश्चात् उन्होंने शरीर त्यागा था। उसके बाद उनके योग्य शिष्य व गुरुभाई बीस-बीस बरस के लगभग यहाँ एकांत-अभ्यास करके शरीर छोड़ गए। इस प्रकार लगभग एक सौ वर्ष से यह एकांत-स्थान पहले ही से बड़े-बड़े प्रसिद्ध, उदारचित्त और एकांतनिवासी महात्माओं का निवास-स्थान होता चला आया था, और उनकी कुटियाओं के चिह्न भी अभी तक विद्यमान थे, वरन्

एक कुटिया रहने योग्य अभी तक थी। यह सब देखकर स्वामी राम का मन भी यहाँ रहने को भर आया। ऊपर लिखी उत्तमताओं के अतिरिक्त और भी जिन दृष्टियों से यह स्थान स्वामी राम को पसंद आया, वह ये हैं—

यहाँ गंगा रानी दक्खिन की जगह उत्तर को बहती हैं जिससे वह उत्तरवाहिनी कहलाती हैं। दूसरे गंगा-तट पर मैदान यहाँ इतना विशाल और समतल है कि जो पहाड़ों में मिलना अत्यंत दुर्लभ ही नहीं, वरन् असंभव-सा है। तीसरे यह सार्वजनिक सड़क और गाँव से लगभग एक मील की दूरी पर है। चौथे यह एक किनारे पर तीनों ओर से गंगा से घिर जाने के कारण प्रायद्वीप दीखता है। इन समस्त गुणों के कारण राम का मन प्रभावित होने से उन्होंने अपने साथियों को एक छोटी-सी कुटिया अपने लिये बनवाने की आज्ञा प्रदान की और उस कुटिया का नक़शा (मानचित्र) भी अपने कर-कमलों से बनाकर उनको दे दिया।

उक्त एकांत-स्थान पर महाराजा साहिब टिहरी का राम के लिये कुटिया बनवाना

ज्यों ही इस एकांत-स्थान के निर्वाचन और पसंद कर लेने का समाचार और उस पर एक कुटिया बनवाने के लिये राम की आज्ञा की सूचना महाराजा साहिब टिहरी के कानों तक पहुँची, तो उन्होंने तत्काल स्वामीजी के साथियों को अपनी

ओर से कुटिया बनवाने के लिये रोक दिया, और अपने मुलाज़िम (पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के सुपरिंटेंडेंट महोदय) को भेजकर स्वामीजी के मानचित्र के अनुसार शीघ्र कुटिया बनवा देने का पक्का प्रबंध कर दिया, और दूसरे ही दिन रियासत की देखरेख में कुटिया बनने लगी। महाराजा साहिब की इस प्रशंसनीय भक्ति को देखकर स्वामी राम का चित्त ऐसा भर आया कि प्रेमावेग से इस प्रकार लहराने लगा—"बस, अब राम ऐसे प्रेम और भक्तिमूर्ति महाराजा साहिब की रियासत छोड़कर कहीं नहीं जायगा, वरन् यावज्जीवन इसी स्थान पर एकांत-निवास करेगा।"

श्रीमन्नारायण स्वामी के लिये राम महाराज का एकांत-स्थान-निर्वाचन करना

जब स्वामी राम ने अपने लिये स्थान पसंद कर लिया और वहाँ कुटिया भी बननी आरंभ हो गई, तो नारायण स्वामी के लिये अलग एकांत-स्थान चुनने का उन्हें फिर विचार आया। पूर्वोक्त निर्वाचित स्थान से लगभग तीन मील की दूरी पर गंगा-तट पर एक बड़ी गुफा बमरौगी नाम से है, जहाँ स्वामी रामजी की सेवा में नारायण स्वामीजी पहले १९०१ ई० में कुछ मास रहे थे। जिस समय श्रीनारायण स्वामी के लिये एकांत-स्थान के चुनाव पर विचार हो रहा था, तो थोड़ी देर के विचार के बाद

स्वामी राम को उस गुफा का ध्यान फिर आया, और श्रीनारायण स्वामी को उन्होंने शीघ्र ही आज्ञा प्रदान की कि "वमरौगी-गुफा नारायण के एकांत-वास के लिये उपयुक्त स्थान है। इसलिये जब तक राम इधर (मालीदेवल गाँव के निकट) रहे, तब तक नारायण वहाँ वमरौगी-गुफा में एकांत-अभ्यास करता रहे। यदि राम को नारायण की सेवा की अचानक आवश्यकता पड़ेगी, तो वह उसे स्वयं बुला लिया करेगा। अन्यथा नारायण प्रति रविवार स्वयं उपस्थित होकर भी पूछताछ और साप्ताहिक सत्संग का लाभ उठा सकता है।"

एकांत-स्थान के लिये नारायण स्वामी का जाना

इस आदेश के होते ही श्रीनारायण स्वामी को उस गुफा को अपने रहने योग्य ठीक कर लेने की आज्ञा दी गई। और नारायण स्वामीजी दूसरे ही दिन अपना बिस्तर बाँध गुफा की ओर जाने को तैयार हो गए, और जब नारायण स्वामी वमरौगी-गुफा जाने की आज्ञा लेने के लिये स्वामी राम के निकट गए, तो आज्ञा देने के स्थान पर राम स्वयं नंगे सिर और नंगे पाँ घूमने का ही संकल्प प्रकट करके नारायण स्वामीजी के साथ-साथ हो लिए, और लगभग एक मील तक चलते गए। सिमलासु बाग से दूर निकल जाने के बाद रास्ते में सड़क पर ही स्वामी रामजी

नारायण स्वामीजी से इस प्रकार बोले—"देखो बेटा ! शायद जल्दी ही राम की वाणी गुंग और लेखनी तंग हो जाय, अर्थात् राम का लिखना-पढ़ना और बोलना शायद जल्दी ही बंद हो जाय, शरीर तो तुम देखते ही हो, दुर्बल और क्षीण हो गया है, और प्रतिदिन दुर्बल होता जा रहा है, तथा चित्तवृत्ति भी संसार से अब इतनी उपराम हो गई है कि किसी सांसारिक कार्य को हाथ लगाने तक को जी नहीं चाहता। ऐसा अनुभव हो रहा है कि अब राम शायद कभी भी मैदानों में न उतरे। लेखनी और वाणी तो बंद होने लग ही पड़े हैं, परंतु मालूम ऐसा भी हो रहा है कि राम का शरीर भी अब शीघ्र ही गति और चेष्टा-शून्य (जड़-मूक, निश्चेष्ट) शायद हो जायगा, और गंगा रानी का तट अब कभी नहीं छूटेगा। जहाँ कहीं से राम को बुलावा आएगा, वहाँ सब जगह पहले की तरह अब तुम ही भेजे जाओगे। इसलिये, ऐ प्यारे ! जाओ, और गुफा में ख़ूब एकांत-अभ्यास करो। प्रतिदिन यथार्थ राम में निमग्न होकर वेदांत की मूर्ति बनकर निकलो। किसी प्रकार का शोक, चिंता मत करो। सदैव अपने में और सर्वत्र राम को अपने साथ समझो। अपना तन-मन-धन सबका सब राम को जानो, और राम को ठीक अपना तन-मन बना लो। इस प्रकार मूर्तिमान् राम होकर बाहर आओ।"

ऐसा हृदयवेधी और अंतःप्रवेशी उपदेश सुनते ही अनन्य गुरुभक्त नारायण स्वामी के नेत्रों में आँसू भर आए, और साश्रुलोचन विदा होने के लिये चरणों पर वह गिर ही रहे थे कि राम की भी आँखों से आँसू टपक पड़े। उन्होंने नारायण स्वामी को ऊपर उठाकर हृदय से लगा लिया, और बोले—"बेटा ! घबराना नहीं। गुफा में एकांत रहकर अभ्यास और अध्ययन खूब करना। आत्मचिंतन में खूब निरत रहना, और सदैव वृत्ति को अपने आत्मस्वरूप के चिंतन में निरत रखना। 'खुदमस्ती व नमसुके-उरूज'-शीर्षक लेख, जो अभी लिखा जा रहा है, जब पूरा हो जायगा तो उसकी शुद्ध प्रतिलिपि के लिये तत्काल आपको बुला लिया जायगा। जब कुटिया के तैयार होने पर राम मालीदेवल गाँव के निकट आ जायगा, तो तुम निःसंदेह प्रति रविवार को राम के पास आते रहना। राम के शारीरिक वियोग का अधिक खयाल व चिंता न भड़कने देना। राम का शरीर तो अब शीघ्र ही गतिशून्य होनेवाला है, तुम इस शरीर की सेवा का भाव अपने मन में प्रबल न होने देना। केवल अपनी आत्मोन्नति का ख़याल हर समय लक्ष्य में रखना। अब किसी का भी सहारा मत लो। अपने पाँवों पर अपने आप खड़ा होना सीखो। हर तरह से स्वयं मूर्तिमान् वेदांत बनो,

और अपने आत्म पर दृढ़ विश्वास से स्थिर स्थित रहो।"

बमरौगी-गुफा में श्रीनारायण स्वामी का एकांत-सेवन

बमरौगी-गुफा में नारायण स्वामी को आए अभी पाँच ही दिन हुए होंगे कि स्वामीजी से उनका रसोइया शुक्रवार को यह संदेशा लेकर आया कि "जो मज़मून रिसाला ज़माना के लिये 'खुदमस्ती व तमस्सुके-उरूज'-शीर्षक से लिखा जा रहा था, वह बहुत शीघ्र समाप्त होनेवाला है। इसलिये आप रविवार के दिन अवश्य आ जाना। और उसकी शुद्ध प्रतिलिपि करके रिसाला ज़माना को या जिस दूसरे रिसाला को तुम भेजना अच्छा समझो, उसके पास भेज देना।"

गंगा में राम के शरीर के बह जाने की सूचना

उपर्युक्त संदेशा पाने पर श्रीनारायण स्वामीजी राम महाराज की आज्ञानुसार रविवार को स्वयं ही उनकी सेवा में उपस्थित होनेवाले थे, कि उससे एक दिन प्रथम ही अर्थात् शनिवार की संध्या को महाराजा साहिब टिहरी के चपरासी ने आकर यह सूचना दी कि "स्वामीजी का शरीर अचानक आज गंगा में बह गया है, और सब लोगों ने इस दुर्घटना की सूचना देने के लिये मुझे आपकी सेवा में भेजा है।" इतना सुनना था कि नारायण स्वामीजी अपने

सब काम बंद करके चट उसी क्षण टिहरी की ओर दौड़े और रात के आठ बजे से पहले-पहले टिहरी-नगर में जा पहुँचे। वह सभी राम-प्रेमी इस अचानक दुर्घटना पर अंतःकरण से दुःख और शोक कर रहे थे। नारायण स्वामीजी के चित्त की दशा का क्या कहना है, सबका दुःख, शोक और विलाप देखकर उनके चित्त पर भारी ठेस लगी, वह कुछ अचेत-से हो गए। चेतना होने पर स्वामी रामजी के रसोइया (भोलादत्त) को बुलाया जो एक नवयुवक लड़का था, और पहले श्रीनारायण स्वामीजी के पास भोजन बनाने का काम किया करता था। उसके मिलने पर नीचे लिखा वृत्तांत मालूम हुआ—

रसोइया का बयान

रसोइया ने बताया—"स्वामीजी और मैं, दोनों इकट्ठे गंगा-स्नान करने गए थे। मैं तो उनसे पहले झट स्नान करके गंगा के किनारे बैठ गया, और स्वामीजी व्यायाम करते रहे। लगभग १०-१५ मिनट तक पत्थरों से खूब व्यायाम करने के बाद स्वामीजी गंगा में स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए। बड़ी तेज़ धारा की जगह पर जाकर स्नान करने लगे। जल स्वामीजी की गर्दन के कुछ नीचे तक था। मैंने प्रार्थना की 'महाराज! आगे तेज़ बहाव है, वहाँ मत जाइए।' मुझे उत्तर दिया—'प्यारे! कुछ डर नहीं। हम

तैरना जानते हैं।' स्वामीजी उसी तेज़ वहाव की जगह पर जल में खूब जमे खड़े रहे। हाथ-पाँव खूब मलने के बाद वहाँ एक डुबकी लगाई। इसी तरह वहाँ लगभग पाँच मिनट तक खड़े रहे होंगे कि दूसरी डुबकी लगाई। इतने में पाँव के नीचे से एक बड़ा पत्थर तेज़ वहाव के कारण फिसल गया। पत्थर फिसलते ही पाँव फिसल गया। पाँव फिसलने से वे जब उस तेज़ वहाव में फिर स्थिर खड़े न हो सके, तो वहाव उनको वहा ले गया। वहाव के ज़ोर से वहे जाने पर आगे जाकर उनका शरीर भँवर में फँस गया। मैं इस दुर्घटना को देखकर घबराया और चिल्लाया। स्वामीजी महाराज ने भँवर में से आवाज़ दी—'प्यारे! घबराओ नहीं। हम अभी तैर कर आते हैं।' मैं उनको भँवर से बाहर निकलने की कोशिश करते कुछ मिनट तक देखता रहा। जब वह कोशिश में सफल होते दिखाई न दिए, बल्कि बार-बार (जब-जब भँवर से बाहर निकलने के लिये खींचखाँच करते, तो वहाव की धारा उनको बार-बार भँवर में ले जाती) ज्यों-ज्यों वह असफल होते गए, मेरे होश गुम होते गए, मैं घबराया-घबराया किनारे के इधर-उधर ऊपर-नीचे भागा। और सहायता के लिये लोगों को बड़े ज़ोर से पुकारा। मगर दुर्भाग्य से बाग में उस समय कोई आदमी न था, क्योंकि सब लोग महाराजा साहिब टिहरी के

स्नान के लिये गए हुए थे (संयोग से महाराजा साहिब उसी दिन ठीक दोपहर के समय अपनी गंगोत्तरी की यात्रा से टिहरी राजधानी में वापस आ रहे थे)। इस तरह बहुत चिल्लाने पर भी कोई सहायता के लिये दिखाई न दिया। स्वामीजी ने इतने में बड़े ज़ोर से भँवर में गोता लगाया। उस गोता लगाने से भँवर से तो वह निकल गए, परंतु ठीक बीच मँझधार में आ पड़े। इतनी देर पानी से लड़ाई करने के कारण उनका शरीर शायद थक गया होगा, क्योंकि दुर्बल और क्षीण तो वह पहले ही से बहुत था। इसलिये भँवर से बाहर निकलते ही ठीक मँझधार में उनका दम टूटने लगा, और मुँह में थोड़ा-थोड़ा पानी भरने लग गया। जब स्वामीजी ने देखा कि शरीर अब पानी के वश में होकर चलने लगा है, तो वह लापरवाह होकर यों ज़ोर से बोले—'चल! फिर माँ को याद कर। अगर तेरी क़िस्मत इसी तरह चलने की है, तो चला चल।' इस तरह कहकर दो बार ज़ोर से ॐ! ॐ!! उच्चारण किया। ॐ उच्चारण करना था कि मुँह में पानी ज़ोर से भर गया। फिर धीरे-धीरे क्षण-क्षण के बाद ॐ की आवाज़ कुछ मिनट तक सुनाई दी और शरीर मँझधार में ज़ोर से बहने लगा। ज्यों-ज्यों शरीर बहता गया, स्वामीजी त्यों-त्यों अपने हाथ-पैर को समेटते गए, और वृत्ति को ध्यान में लीन करते गए। अंत में

कोई दो सौ फ़ीट की दूरी पर पर्वत की एक गुफा में, जहाँ मँझधार के तेज़ बहाव से भारी भँवर बना हुआ था, पानी ने वहाँ शरीर को डुबा दिया। ज्यों ही स्वामीजी का शरीर गुफा में प्रविष्ट होकर जल के तल में बैठा, तत्काल तोपें दगती सुनाई दीं।" ये तोपें वैसे तो महाराजा साहिब टिहरी के लिये अपनी राजधानी में पदार्पण करने की सलामी में दगी थीं, किंतु ठीक उसी समय संयोग से स्वामीजी के शरीर ने इस नश्वर संसार से महाप्रस्थान किया था, इस लिये ठीक स्वामी राम महाराज के महाप्रस्थान के समय तोपों का दगना दोहरा मतलब दे गया। इस प्रकार स्वामी राम का शरीर भारतवर्ष वरन् सारे संसार से सदैव के लिये आन की आन में विलीन हो गया, और लाखों वरन् करोड़ों को अपने वियोग के दुःख में रुला गया।

स्वामी राम के शरीर के लीन होने पर नारायण स्वामी के हृदय की दशा

रसोइया के इस दुःखपूर्ण वर्णन को सुनने से श्रीमन्नारायण स्वामी के चित्त पर केवल चोट ही नहीं लगी, वरन् कितने ही विचारों के एकदम आक्रमण करने से वह उतावले-बावले-से हो गए। एक तो यह समस्त दुर्घटना उनकी अनुपस्थिति में हुई जिससे उनको अत्यंत पश्चात्ताप हो रहा था, दूसरे यह कि स्वामी राम की

इच्छा के विरुद्ध उनका शरीर जल-तरंगों के वशीभूत होकर बह गया, यह बात उन्हें अत्यंत पीड़ित और मर्माहत कर रही थी। क्योंकि स्वामी राम का यह दावा था कि उनका शरीर बिना उनकी आज्ञा के मृत्यु को प्राप्त न होगा। इस प्रकार विविध भाँति के विचार उमड़-उमड़कर उनके हृदय को व्यथित करते थे और वह पागल की भाँति घूमते हुए कभी अपने चित्त से यों पूछते कि "राम की अपनी इच्छा के विरुद्ध तो शरीर मृत्यु के वश में आ नहीं सकता था, फिर मुर्दा जल की तरंगों के वश में कैसे आ गया? क्या राम की आज्ञा बलवती है, या मुर्दा जल का बहाव?" राम तो हमेशा यह कहा करते थे कि "मौत को मौत न आ जायगी, यदि राम को लेने का संकल्प करके आएगी।" "राम का शरीर कभी नहीं छूटेगा, जब तक भारत का उद्धार न होगा।" "मौत की है शक्ति राम की आज्ञा के बिना मारने की?" पर हाय! यह सब विपरीत ही दिखाई दिया। क्या राम का सब कहना वृथा ही निकला? इस प्रकार के विचारों के आक्रमण करने पर कभी-कभी उनका चित्त वेदांत पर कटाक्ष करने लग पड़ता, कभी राम पर, और कभी अपने पागलपन पर। दिन-रात उनका चित्त इन्हीं चिंताओं और विचारों की उधेड़बुन में ऐसे विक्षिप्त और शोकाकुल रहता कि स्वामी राम के निवास-स्थान पर भी न जाने को

चाहता। यदि पागलों की भाँति घूमते हुए नारायण स्वामी कभी उधर आ भी निकलते तो स्वामीजी के रहने के कमरे को कभी न खोलते, और यदि किसी विशेष आवश्यकता के आने से कमरा खोला भी जाता, तो स्वामीजी के संदूक़ों आदि का खोलना तो एक ओर रहा, जो राम के हस्त-लिखित काग़ज़ इत्यादि मेज़ पर पड़े थे, उनको भी देखने को उनका चित्त तैयार न होता। केवल संदूक़ों और काग़ज़ों की सूरत देखकर ही उनका हृदय भर आता, और आँखें आँसुओं से पूर्ण हो जातीं। उनके मुँह से स्वतः यह निकल पड़ता कि "हाय! अमेरिका के सब नोट और हस्तलेख वैसे के वैसे अधूरे रह गए। अब कौन राम की जगह इनको आकर मस्त और आनंदचित्त से देखकर उत्तम रूप में तैयार करेगा?" श्रीमन्नारायण स्वामी का चित्त न तो उन्हें स्वामी राम के कमरे की ओर जाने देता, न उनकी किसी पुस्तक, नोट या हस्तलिखित काग़ज़ को देखने या पढ़ने के लिये तैयार होने देता। यदि वह बस्ती में जाते, तो रामभक्त उनसे शोक और दुःख की चर्चा करने लगते जिससे उनका चित्त और भी अधिक चोट खाकर दुःखित और पीड़ित होता। यदि वह वन में घूमते, तो हज़ारों तरह के विचार उमड़-उमड़कर उनके चित्त को व्याकुल करते। तात्पर्य यह कि किसी प्रकार उनके चित्त को चैन

न मिलता। इसी प्रकार कई दिन तक वह स्वामीजी के निवास-स्थान से बाहर गंगा के किनारे पागलों की तरह घूमते रहे। नारायण स्वामीजी को स्वामी राम के शरीर त्यागने से उतना दुःख और शोक नहीं होता था, जितना कि उनकी अचानक मृत्यु से और उनके वचनों की अस्थिरता और असत्यता के समक्ष आ जाने से होता था। क्योंकि जब से नारायण स्वामी को स्वामी राम की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, स्वामीजी सदैव यही कहते चले आ रहे थे कि "जब तक राम खुद नहीं चाहेगा, राम का शरीर कदापि कदापि नहीं छूटेगा। इत्यादि, इत्यादि।"

राम का अंतिम लेख और मृत्यु का आवाहन

जब ऐसे पागल, शोकार्त्त और विक्षिप्तचित्त नारायण स्वामी घूमते-घूमते एक दिन टिहरी-नगर में आए, तो संयोग से श्रीयुत पूर्णसिंहजी भी वहाँ आ पहुँचे, और वह उनसे भी अधिक शोकाकुलचित्त से उनसे मिले। मिलने के कुछ क्षण बाद ही वह कहने लगे—"राम के शरीर का इस प्रकार एक छोटी-सी नदी के अधीन होकर मृत्यु को प्राप्त होना राम के अपने कई वाक्यों और लेखों को झूठा या मिथ्या सिद्ध करता है। इसलिये चित्त अब ऐसा खिन्न और संदिग्ध हो गया है कि राम के लेखों और बातों पर भी विश्वास करने को प्रस्तुत नहीं होता, वरन् रहासहा

निश्चय भी मटियामेट हुआ जा रहा है।" इस पर श्रीनारायण स्वामी ने भी अपने हृदय की अवस्था का उनसे वर्णन किया। इस प्रकार परस्पर वार्तालाप होते हुए जब प्यारे पूर्णसिंहजी को यह मालूम हुआ कि नारायण स्वामी ने शोक और क्षोभ के कारण अभी तक स्वामी राम की पुस्तकों और कागज़ों को छुआ तक नहीं और न वह उस अंतिम लेख को, कि जिसकी शुद्ध प्रतिलिपि करने के लिये राम महाराज ने उन्हें दो दिन पहले बुला रक्खा था, अभी तक दृष्टि भरकर देख सके, तो उन्होंने श्रीनारायण स्वामीजी को स्वामी राम के निवास-स्थान पर जाने के लिये उकसाया, और राम महाराज की पुस्तकों और कागज़ों को देखने और सँभालने के लिये चेतावनी दी। वह उसी रात को श्रीनारायण स्वामी को वहाँ ले गए, और रात-भर दोनों वहीं राम के निवास-स्थान पर सोए। सवेरे उठते ही दोनों महानुभाव राम स्वामी के कमरे में जाकर संदूकों को ध्यान से देखने लगे। मेज़ पर पड़ी हुई दो-एक पुस्तकें और खुले कागज़ देखने के बाद वह अंतिम लेख "खुदमस्ती व तमस्सुके-उरूज", जिसकी शुद्ध प्रतिलिपि के लिये राम महाराज ने नारायण स्वामीजी को बुला भेजा था, उनके हाथ में पड़ गया। यह हस्तलेख अभी तक बिलकुल पांडुलिपि और विशृंखल था। इसलिये किसी पन्ने पर

पृष्ठांक नहीं दिए गए थे। तो भी जो भी पन्ने हाथ लगे, उन्हें पढ़ना आरंभ किया गया। इस प्रकार दो-तीन पन्नों को पढ़ने के बाद एक पन्ना कुछ मोटे अक्षरों से साफ़ लिखा हुआ दिखाई दिया। उस पन्ने पर नीचे लिखी पंक्तियाँ कुछ कटी-पिटी, किंतु स्पष्ट पाई गईं—

"इंद्र, रुद्र, मरुत्, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गंगा etc. भारत!

ओ मौत! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म को। मेरे और अजसाम ही मुझे कम नहीं। सिर्फ़ चाँद की किरणें चाँदी की तारें पहनकर चैन से काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी-नालों के भेस में गीत गाता फिरूँगा। बहरे-मव्वाज के लिबास में लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे-खुश-खरॉम नसीमे-मस्तानागाम हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी हर वक़्त रवानी में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा। मुरझाते पौदों को ताज़ा किया। गुलों को हँसाया। बुलबुल को रुलाया। दरवाज़ों को खड़खड़ाया। सोतों को जगाया। किसी का आँसू पोंछा, किसी का घूँघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़। तुझको छेड़, वह गया! वह गया! न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया।" (अंतिम पंक्ति पेंसिल से लिखी हुई थी)

उपर्युक्त संदेश मृत्यु के नाम पढ़ते ही प्रत्येक के हृदय में राम के इस नोट की मूल पांडुलिपि पढ़ने की उमंग

अपने आप उठ आती है। इसलिये पाठकों के लिये राम स्वामी के उपर्युक्त हस्तलेख की मूल पांडुलिपि की फ़ोटो यहाँ दी जाती है, और जिस अंतिम लेख "ख़ुद्मस्ती व तमस्सुके-उरूज" में यह नोट दिया गया था, उसका हिंदी-अनुवाद यहाँ आवश्यक समझकर उद्धृत किया जाता है—

ख़ुदमस्ती व तमस्सुके-उरूज

अर्थात्

निजानंद सकल विभूतियों का तमस्सुक है

आज सत्-उपदेश के एक परचे को मानो हवा उड़ा लाई। उठाया, तो उसमें एक लेख इस शीर्षक के साथ था—

"राम बादशाह के नाम ख़त।"

वाह !—

> ऐ कबूतरी परी व कूए-बाम आन परी।
> नामए बर गर्दनत बनदम गर आँजा बुगज़री॥

बेहद हँसी आई। अब आते हैं उन आक्षेपों के उत्तर—

(१) क्या भगवे कपड़ों से साधु होता है ?

कहीं-कहीं रँगे कपड़ों में रँगा दिल भी पाया जाता है, मतवाला योगी भी दिखाई देता है, राम का दीवाना मस्ताना भी झलक (दर्शन) दिखा जाता है। किंतु सब पर यह प्रकट है कि ज्ञान का प्रकाश फ़क़ीरी लिबास में

असीर (क़ैद) नहीं। वह सच्ची स्वतंत्रता किसी तरह के पंथ, संप्रदाय, ढंग और फ़ैशन की अभ्यस्त वा अधीन नहीं है। जहाँ जाते हुए पाँव थर्रा जायँ और सिर चकरा जायँ, वहाँ भी बिजली चमक जाती है, यह वत्ती झलक जाती है। यह सूर्य ऊँचे हिमालय के पवित्र हिमानी (बर्फ़स्तान) की स्वच्छ-निर्मल नीली झीलों में झाँकता हुआ पाया, और गहरी खाई के गँदले पानी में भी गौरव से प्रकाशमान दृष्टिगोचर हुआ। क़ैदख़ाने में वह आ जाता है, और लोहे की कड़ी जंजीरें पड़ी रह जाती हैं, वरन् उनसे भी अधिक जकड़े हुए हाथ-पैर, नाम और रूप की बेड़ियाँ भी धरी रह जाती हैं। अँधेरी कोठरी में बंद क़ैदी "पंजा दर पंजा-ए-ख़ुदा डाले" (ईश्वर के हाथ में हाथ डालकर) सातों लोकों में स्वच्छंद विचरता है, या आठवें अर्श (आकाश वा लोक) पर इस अकेले की नीली घोड़ी के सुम की टाप सुनाई देती है। नीचे बाज़ार में लोग चल रहे हों, ऊपर छत पर घरवाले काम-काज में लग रहे हों, एक कोने में बैठा कोई पढ़ रहा हो, ए लो ! पढ़ते-पढ़ते वह अक्षर पढ़ा गया जो लिखने ही में नहीं आ सकता।

वह किताबे-अक़्ल की ताक़[1] पर जो धरी थी यों ही धरी रही।
ख़िलवत दर अंजुमन हो गई, मंगल ही में जंगल का मज़ा आ गया।

---

१. ताखा, आला।

सैर को निकले। सौभाग्य से कोई साथी साथ न हुआ। चाँदनी खिल रही थी, या उषा (twilight) की लाली फैल रही थी। वायु सरसराने लगी। सड़क पर चलते एकाएक यह कौन आ सम्मिलित हुआ? वही जो एकमेवाद्वितीयम् है। उधर उषा की लालिमा आई, इधर निराली मदिरा रग और रेशा में समाई।

आँ मै कि ज़ दिल ख़ेज़द बा रूह दर आमेज़द।
मख़मूर कुनद जोशश मर चश्मे-ख़ुदा बीं रा॥

अर्थ—वह मद्य जो दिल से उठती है, आत्मामय हुई होती है, और ईश्वर-द्रष्टा (आत्मानुभवी) के चित्त में वह (मद्य) उसके जोश को बढ़ाकर उसे अधिक मस्त करती है।

रेलगाड़ी में बैठे थे। पहियों के खटखट का लगातार खटराग जारी था। कमरे में बात करनेवाला कोई था नहीं। खिड़की का परदा जो गिराया, तो एकाएक दिलोजान में दुलहा (प्यारा) उतर आया। रेल में बैठे-बैठे के शरीर और प्राण अथवा देह और संसार, नहीं मालूम, कहाँ का टिकट ले गए। आत्मिक त्याग (लोक और परलोक का विराग) छा गया। सच्ची फ़क़ीरी ने बहार दिखाई।

कहे गिरिधर कविराय चढ़ी जिन ख़ुद की मस्ती।
तिन ज्ञान-गंग में दीनी बहाए फ़क़ीरी गृहस्ती॥

(२) क्या अग्नि के रँगवाले (भगवे) कपड़ों से साधु हो जाता है ?

साधु वह है जिसके भीतर ज्ञान की अग्नि ऐसे भड़क रही हो कि देह का अभिमान या साधु होने का अभिमान, अथवा रेल, तार इत्यादि नए ढंगों से द्वेष या पुराने ढंग से प्रीति बिलकुल जल जाय। सारे संसार को उसके ज्ञान-प्रकाश की रश्मियों से उजाला पड़ा हो, और आगे चलने का मार्ग दिखाई पड़ा आए। यदि यह नहीं, तो गीला ईंधन है, जो धुआँ ही धुआँ कर रहा है, जिससे सब लोगों का नाक में दम हो रहा है। जब तक सूखेगा नहीं, न आप प्रकाशित होगा, न किसी को प्रकाशित करेगा। दिल नहीं रँगा, तो कपड़े रँगने से अपना या पराया दुःख कहाँ दूर हो सकता है ?

लोग कहते हैं ज्ञानाग्नि (आत्म-प्रकाश) की अग्नि भड़काने के लिये ईंधन को पहले धूप में सुखा लो, अर्थात् कर्म-उपासना के द्वारा अधिकारी बना लो। राम कहता है, जो लकड़ी कट चुकी (जो मनुष्य साधु हो चुका), उसके लिये इस आग के पास पड़े रहना ही बहुत जल्दी सुखा कर अधिकारी बना देगा। हाँ, जो अभी छोटे पौधे हैं, उनको उगने तो दो। उगेंगे नहीं, तो लकड़ी ईंधन के लिये कहाँ से आएगी ? बकरे की ऊन उतारने से ही ऊनी कपड़े

बनते हैं, पर ऊन बढ़ने तो दो। आएगी ही नहीं, तो पशम कहाँ से लाओगे?

इस प्रकार जिन लोगों के ख़यालात (अंतःकरण) अभी कच्चे पौधों के तद्वत् हैं, वह आशा के बच्चे न तो काटने के योग्य हैं, न जलने के। जिन पर ऊन आई ही नहीं, उतारेंगे क्या? वह मूँड़ मुँडवाएँगे क्या? ऐसे लोगों के लिये कर्म-मार्ग प्राचीन काल से नियत चला आता है कि वह आशाओं के खट्टे-मिट्ठे फल कुछ दिन ज़रा चक्खें और कर्म की भूलभुलैयाँ में ठोकरें और टक्करें खा-खाकर ज्ञान और त्याग के सीधे मार्ग को अपने आप अपनाएँ।

ज़रा अब ग़ौर कीजिए, पौधा उसी आकार में बढ़ेगा जिस प्रकार का बीज होगा। कृष्ण ने देखा कि अर्जुन के भीतर बीज तो है बदला लेने का, और ऊपर से उस समय बातें बना रहा है दयालु ब्रह्मचारी की-सी। बीज तो बोया काँटेदार कीकर का, और पकाया चाहता है आम। विवश उसे दयालु की ओर से हटाकर युद्ध-विग्रह पर प्रस्तुत किया। प्यारे! खा तो लिया जमालगोटा (जब्बोलोटा) और अब जंगल (शौचालय) जाने में लज्जा मानते वा कष्ट अनुभव करते हो।

कर्मकांड के विषय में भी यही दशा वर्तमान काल के भारतवर्ष की है, अर्थात् इच्छाएँ हृदय-क्षेत्र पर बोए बैठे हैं बीसवीं शताब्दीवाली, और बातें लगाते हैं बीसवीं

शताब्दी ईसा से पूर्ववाली। कर्मकांड के विषय में जैसी चाह (इच्छा) होगी, वैसा ही 'चाहिए' (कर्तव्य) सिर पर चढ़ा रहेगा।

यदि राजसूय, अश्वमेध, दर्शपौर्णमास, अग्निष्टोम आदि यज्ञोंवाली चाह अब हृदय में नहीं, तो इन यज्ञों का "करना चाहिए" भी आज हम पर लागू नहीं होगा। आज चाह है योरप, अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया आदि के मुक़ाबले में ज्यों-त्यों करके जान बचाने की, अतः आज "चाहिए" भारतवर्ष को इस प्रकार की शिक्षा पाना और कला-कौशल को व्यवहार में लाना कि जिससे नित्य वर्द्धमान् कंगाली (बे-सरो-सामानी) के पाप से तो बच सकें।

कर्मकांड तो समय और देश के साथ सदैव पहले बदलता चला आया और भविष्य में बदलता रहेगा। पर आत्मा (तत्त्व वस्तु) परिवर्तन-रहित है, और उसका ज्ञान सदैव एकरस रहेगा। जो लोग अपने स्वधर्म को, अर्थात् अपने से संबंध रखनेवाले कर्मकांड को, अपनी वर्तमान ड्यूटी (कर्तव्य) को निष्काम होकर (फल की आशा त्यागकर) पूर्ण साहस से, परिश्रम और ध्यान से निबाहते हैं, वे ही एक आत्मज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः॥

(भगवद्गीता अ० ३, श्लोक १९)

अर्थ—इसलिये लगातार संग-रहित होकर तू करने योग्य कर्म को कर, क्योंकि निरासक्त होकर कर्म करता हुआ पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

आत्मज्ञान विष्णु है, जो साहस और पुरुषार्थ के गरुड़ पर बैठता और सवारी करता है। आत्मज्ञान अपने गरुड़ (साहस) पर सवार हो जब भारतवर्ष की वायु पर लहराता था, तो इस सच्चे पति की प्रेमभरी दृष्टि का शिकार होने के लिये लक्ष्मी चारों ओर नाचती थी, वरन् वन-पर्वत में लोटती फिरती थी। पृथिवी ने छिपे-छिपाए कोप और रत्नादि चरणों में ला उपस्थित किए, कोहेनूर आदि अनमोल हीरे उगल दिए, चरणों पर न्योछावर किए। प्रस्फुटित वसंत (शगिफ़तः बहार) ने पैर के तलवों का चुंबन लिया।—

दौलत ग़ुलामे-मन शुदो इक़बाल चाकरम।

अर्थ—विभूति मेरी दासी और वैभव मेरा चाकर हो गया।

जहाँ शमशाद के वृक्ष होंगे, कुमरी आ बैठेगी; गुल व लाला होंगे, बुलबुल आ चहचहाएगी। तुम भारत में विद्या और शिल्प की ख़ूराक खिलाकर साहस के गरुड़ को तो पालो, वही व्यावहारिक ज्ञान-रूपी विष्णु फिर यहाँ विद्यमान पाओगे।

ओ ज्ञानस्वरूप! आनंद-रूप! यदि भारतवर्ष के ५२

(बावन) लाख साधु-संतों में एक हज़ार भी ऐसे हों कि जिनके हृदयों में आपकी ज्ञान-गंगा की एक तनिक-सी नहर लहरें मार रही हो, तो भारतवर्ष तो क्या, सारा संसार कृतार्थ हो जायगा।

एह जग रुढदा जाँदाँ, संताँ नूँ ख़बर करो।
संत न होंदे जगत में, जल मरदा संसार॥

जिन लोगों को अर्थ-शास्त्र (Political Economy) के नाम से ब्रह्मनिष्ट महात्माओं की विद्यमानता अखरती है, वह अपना ही बुरा चाहते हैं।—

संगे ज़नी बर आइना बर ख़ुद हमे ज़नी।

अर्थ—दर्पण पर पत्थर मारना मानो अपने आप पर पत्थर मारना है।

जो साधु अपने रंग में रँगा हुआ ब्रह्मानंद के मद में मतवाला मस्ताना हो रहा है, वह तो शाहों का भी शाह है, ईश्वर का भी ईश्वर है, किसकी मजाल है कि उस रँगीले-सजीले आत्मतत्त्व के सम्राट् के आगे चूँ भी कर जाय। नवचंद्रमा (वा द्वितीय का चाँद) उसी के चरणों में प्रणाम करता हुआ संसार में मंगल (ईद) लाता है। सूर्य उसी की प्रकाश देनेवाली दृष्टि से दीप्तिमान् होकर चमकता फिरता है। समुद्र का तूफ़ान उसी का एक क्षुद्र उफान (उबाल वा जोश) है। किसकी शक्ति है उस

तेज की आँधी की ओर आँख भर के ताक जाय? महाराजा रणजीतसिंह की एक आँख नहीं थी, पर कहते हैं साधु ने वर दिया कि किसी में यह साहस न पड़ेगा कि तेरे मुखड़े की ओर आँख उठा सके, क्या शक्ति है कि वह दोषान्वेषण करे। जब राजा रणजीतसिंह के मस्तक के दोष-गुण कोई नहीं देख सकता, तो महात्मा साधु, सच्चे बादशाह की ओर दोषदर्शक (छिद्रान्वेषी) दृष्टि देखते समय क्या अंधी न हो जायगी?—

सहर ख़ुरशेद लर्ज़ां बर दरे-कूए तो मी आयद।
दिले-आईना रा नाज़म कि बर रूए-तो मी आयद॥

अर्थ—तू ऐसा सुंदर है कि प्रातःकाल सूर्य तेरी गली में काँपता हुआ आता है। पर शीशे के दिल पर मुझे गर्व है कि वह तेरे सामने होता है।

सच्चे साधु, फ़क़ीर (ज्ञानी, महात्मा) के विरुद्ध यदि किसी की जिह्वा बोलने लगेगी तो गुंग हो जायगी, हाथ चलने लगेगा तो सूख जायगा, मस्तिष्क सोचने लगेगा तो जनून आ जायगा। कोई शंका-संदेहवाली बात तो राम कहता ही नहीं, आँखोंदेखी सचाई वर्णन करता है। सच्चे साधु की अवज्ञा हो और राम से? हर, हर! हर, हर!! स्वप्न में भी संभव नहीं। क्या कर्मकांड के बंदी और क्या सचमुच स्वतंत्र साधु, सबको प्रणाम, राम-राम, सलाम।

साधु फ़क़ीर को यह सम्मति देना कि वह अद्वैत का अमृत पिलाने के स्थान में रेल, तार, जहाज़, बंदूक़ आदि बनाने की चिंता में डूब मरें, यह सम्मति और परामर्श राम के हृदय और जिह्वा से तो न निकला, न निकलता है, और न निकलेगा।

हाँ! जब साधु लोग अपने स्वरूप को भूल अपनी सच्ची राजगद्दी से नीचे उतर आते हैं, तो उनको कुत्ते भी फाड़ खाने को दौड़ेंगे। उस दशा में अपनी अवज्ञा वह स्वयं कराते हैं, अपमान और दुःख को एक तरह लालच देकर बुलाते हैं।

इंद्र जब स्वप्न में शूकर बन गया, तो शेष देवता अपने राजा की यह दशा देखकर लज्जित हुए और उसको जगाने की चिंता में पड़े, अतः इंद्र को दुःस्वप्न में खुजली, भूख, *मार-पीट आदि तरह-तरह की पीड़ा* और शोक का शिकार होना पड़ा।

सूर्य-ग्रहण के अवसर पर सूर्य के स्पेक्ट्रम (spectrum) में काली धारियाँ देखी जायँ, तो सफ़ेद दिखाई देती हैं। जानते हो, ये धारियाँ क्या बताती हैं? उनसे यह पता लगता है कि सूर्य में कौन-कौन-सी धातु आदि तत्त्व हैं। सूर्य की संपत्ति का खोज मिलता है। ग्रहण के भीतर जो संपत्ति प्रकाशित जान पड़ती थी, उस पर जब छाया उतरी,

तो वह ग्रहण के अँधेरे में काली कलंक दृष्टिगोचर होने लगी। यही दशा प्रत्येक "मैं", "मेरी" अर्थात् अधिकार, क़ब्ज़ा की है। अज्ञान-रूपी ग्रहण का अँधेरा, जो स्वतः बुरे से बुरा कलंक है, लगा रहे, तो यह छोटे-छोटे कलंक अर्थात् हमारे दावे और क़ब्ज़े (चाहे धन-दौलत के संबंध के हों, चाहे विद्या-बुद्धि के, और चाहे संन्यास आदि आश्रम के) प्रकाशमान और प्यारे से लगते हैं, किंतु वह बड़ा दोष (अज्ञान) जब उड़ा, दावे, अधिकार मीठे नहीं लग सकते।

काली धारियों का दृष्टांत तो चाहे मिथ्या भी हो जाय, किंतु यह बात तो सदैव स्थिर बनी ही रहेगी कि हार्दिक संबंध और अधिकार, भीतरी दावे और क़ब्ज़े गहरी अँधेरी रात के जुगनू हैं। शास्त्र और ज्ञानियों की बात तो दूर रही, साधारण अनुभव के प्रकाश में भी इनका कलंक होना बल्कि हताश होना सिद्ध होता है।

ध्यान—नीचे के लेख को पढ़ते समय यह ध्यान रहे कि दावे, क़ब्ज़े, अधिकार और आसक्ति आदि का वास्तविक संबंध हृदय से है, शरीर से नहीं। बाह्य दरिद्रता अन्य वस्तु है, और हृदय की फ़क़ीरी और वस्तु। कपड़े रँगना और बात है, और सच्चा संन्यास और बात है।

दावे और स्याही—जहाँ दावे (पकड़-जकड़) है,

वहीं कल्मष-हृदयता है, सत्यानाश है, निराशा व हताश है, अकर्मण्यता है, खराबी है, बरबादी है, हृदय की दशा परिवर्तनशील है, और बाहर के सामान भी परिवर्तित हो रहे हैं, इतना तो सब कोई जानता है। अब रही यह बात कि क्या बाहर के परिवर्तन और भीतरी परिवर्तन परस्पर कुछ संबंध भी रखते हैं कि नहीं। यदि रखते हैं, तो क्या?

इतना भी हर कोई मान लेगा कि बाह्य ऋतु, मकान, संग, आहार के बदलने से मन (भीतर) में परिवर्तन हो जाता है, और बुरी या भली ख़बर से हृदय प्रसन्न या शोकातुर हो जाता है। पर एक बात और भी है, जिसका पूरे तौर पर निश्चयात्मक होना ही अंतर्दृष्टि का खुलना है। जिसकी बेखबरी से "नानक दुखिया सब संसार" हो रहा है। वह बात क्या है?

अटल आध्यात्मिक नियम

"जब तक हृदय से पकड़-जकड़ है, बाहर रगड़-झगड़ है। दिल से छोड़ी आस, मुरादें आईं पास।"

गुज़श्तम अज़ सरे-मतलब तमाम शुद मतलब।

अर्थ——मतलब से परे हटना ही मतलब का पा लेना है।

माँगा करेंगे हम भी दुआ-ए-हिज्रे-यार की।
आख़िर तो दुश्मनी है दुआ को असर के साथ।

मतलब=मत-लब, अर्थात् इच्छापूर्ति की इच्छा मत कर।

यह प्रत्यक्ष नियम, विज्ञानवाले अनुमान, निश्चय, अनुभव, निरीक्षण और अध्यारोप-अपवाद-न्याय से निःसंदेह सिद्ध होता है। कलंक औरों के सिर मढ़ने की, उत्तरादायित्व औरों के सिर ठोंकने के स्वभाव को छोड़कर यदि हम बिना रू-रिआयत के अपने जीवन के दुःख-सुख-भरे अनुभवों के जड़-मूल पर ध्यान करें, तो विदित होगा कि हृदय का संसार की किसी वस्तु में उलझना, अर्थात् उसे व्यवहार में सत् या सच्ची मानना, उसकी आवश्यकता में पड़ना, मलिनता में अड़ना, या किसी प्रकार की भी नामरूप में चित्तासक्ति रखना, इसका परिणाम निरंतर सिर पीटना, (पीड़ा, कष्ट, भ्रांति) और हृदय-भंगता होती है। और हाँ, जब भली-बुरी दशा और परिस्थिति, चहुँओर की अवस्थाएँ और कारण, निर्मल दर्पण की भाँति, तत्त्वज्ञानी की दृष्टि को नहीं रोकते।

दुनिया के सब बखेड़े। झगड़े फ़साद झेड़े॥
दिल में नहीं रड़कते। न निगाह को बदल सकते॥
गोया गुलाल हैं ये। सुर्मा मिसाल हैं ये॥

जब भीतरी तेज अभिलाषाओं के आवरण को उड़ाता है, जब सूर्य-चाँद में अपना ही तेज दिखाई देता है। जब इस बात पर निश्चयात्मा होता है कि भूत-भविष्य और वर्तमान के तत्त्ववेत्ताओं और ब्रह्मनिष्ठों में मेरा ही आत्मिक

तेज जगमगाता है, जब हृदय इस बात को सत्य पाता है कि—

मुफ़ बहरे-ख़ुशी की लहरों पर दुनिया की करती रहती है।
अज़ सैले-सरूर धड़कती है, छाती और कशती बहती है॥

जब नाम-रूप की परिच्छिन्न अवस्था से स्वतंत्र हुआ वर्णनातीत आत्मानंद में चित लीन हो जाता है, जब वह असली (परमानंद की) मदिरा रँग लाती है।

कि आँ मे शवद बे दस्ती लब अज़ कामे-जानहा रेख़्ता।

अर्थ—जिन कामों व कामनाओं की पूर्ति में अनेक जानें (प्राण) न्योछावर होती हैं, उनकी ओर से भी जब वह जड़ मूक हो जाता है।

जब निश्चिंतता और लापरवाही की तरंग बाह्य और लौकिक पदार्थों को तृप्ति के सागर में बहा ले जाती और क़हक़हा मारती है।

ईं दफ़्तरे-बेमानी ग़र्क़े-मएनाब औला।

अर्थ—उत्तम प्रेम-मद्य में यह व्यर्थ दफ़्तर नाम-रूप का ग़र्क़ (लीन) है।

अर्थात् जब शिव-समाधि आती है, तब संसार के धन-ऐश्वर्य, विजय और प्रताप, भूत-प्रेत गहनों की तरह नाम-रूप की श्मशान-भूमि में शिव-रूप महात्मा के इधर-उधर जमघट मचाते नाचना आरंभ कर देते हैं, जमघट करते हैं, धमाचौकड़ी मचाते हैं।

क्या संशय-विपर्यय की गुंजायश है ?

ओ हथकड़ी के कंगन पहने हुए अपराधी ! यदि इस समय भी तू एक क्षण-भर के लिये तत्त्व-चिंतन में शरीर और संसार को सचमुच भूल जाय, अपरिच्छिन्न स्वरूप में जाग पड़े, तो दंड की आज्ञा देनेवाले जज का दिमाग़ रुक जाय, बयान लिखनेवाले मिसलख़्वाँ का क़लम रुक जाय, पकड़नेवाले कोतवाल का हाथ रुक जाय, जिरह करनेवाले वकील की जिह्वा रुक जाय। कौन मस्तिष्क है, जो तेरे बिना सोच सकता है ? कौन जिह्वा है, जो तेरी सहायता बिना बोल सकती है ? कौन हाथ है, जो तेरी शक्ति बिना चल सकता है ? मेरी जान ! सब अपराधों का अपराध (सब पापों की जड़) अपने शुद्ध स्वरूप को व्यावहारिक रूप से या ज्ञान-रूप से भूलना ही था। वस्तुतः अपराध यदि है, तो केवल इतना ही है, शेष सब अपराध और जुर्म उसी के विविध वेश हैं।

क्यों हो मुजरिम अहल्कारों की ख़ुशामद में पड़े ?
यह कचहरी वह नहीं तुझको रिहाई दे सके ॥

लिखा है कि भृगुजी ने विष्णु के वाम अंग में अर्थात् लक्ष्मी को बड़े ज़ोर से लात मार दी। विष्णु ने उठकर भृगु के चरणों को प्रेम के आँसुओं से धोया, सिर के केशों से पोंछा और आँख, सिर तथा हृदय में स्थान दिया,

और उस चोट के चिह्न को प्रमाणपत्र (सर्टिफ़िकेट) जानकर सदैव के लिये वक्षःस्थल में स्वीकार किया। वाह ! जो ब्रह्मनिष्ठ लात मारता है सांसारिक संपत्ति को, उसके चरण (प्रेम-पाद) ईश्वर के भी सिर पर क्यों न होंगे। और जो भी कोई सांसारिक संपत्ति से लिपटकर गहरी निद्रा में लौटता है, वह भिखारी से भी लातें खायगा, चाहे सारे संसार का सम्राट् और विधाता ही क्यों न हो। बस, यही नियम है, यही वेदांत की व्यावहारिक शिक्षा का निष्कर्ष है। इसमें संन्यासी साधुओं का ठेका नहीं। इस प्रकाश की तो सबको आवश्यकता है। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, क्या मूसाई, सिक्ख, पारसी, स्त्री-पुरुष, छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, सब कोई इस परम ज्योति से लाभान्वित होने का अधिकारी है। इस सूर्य के प्रताप बिना किसी का जाड़ा नहीं उतरेगा, इस धूप बिना किसी का पाला नहीं दूर होगा। इसमें ख़ाली मानने की तो बात ही नहीं, ठीक-ठीक जानने की बात है। इसमें तर्क-वितर्क की गुंजायश ही नहीं। 'हाथ कंगन को आरसी क्या है ?' इतनी विद्या की व्यावहारिक जानकारी न होने से सबका नाक में दम होता है। Ignorance of Law is no excuse—"नियम की अज्ञानता क्षमा के योग्य नहीं हो सकती है"। अतः त्याग और वैराग्य (आत्मज्ञान) को

ले लो, शेष सब कुछ स्वयं आ जायगा। इसी लिये वेद कहता है—

आत्मानं वा विजानीयात् अन्यां वाचा विमुंचथ ॥

Know this Atman, give up all other vain words and hear no other.

आत्मा को पूरा-पूरा जान लो, अन्य किसी वस्तु की पर्वाह मत करो।

इल्म रा ओ अक़्ल रा ओ कालो-क़ील।
जुम्ला रा अंदाख़्तम दर आबे-नील॥
इस्म रा ओ जिस्म रा दर बाख़्तम।
ता कमाले-माफ़ त दरयाफ़्तम॥

अर्थ—जब विद्या और बुद्धि, चूँ और चरा (क्यों-कैसे) इन सबको मैंने नील नदी में फेंक दिया। और जब मैंने नाम और रूप को हार दिया, तब मुझको ज्ञान की पराकाष्ठा (पूर्ण अवस्था) प्राप्त हुई।

तात्पर्य यह कि कॉलेज में एम० ए० पास करके कुछ नवयुवक तो कॉलेज में प्रोफ़ेसर बन जाते हैं, जो कुछ पढ़ा उसी को पढ़ाते रहना उनका व्यापार हो जाता है। और कॉलेज से एम० ए० पास करके कुछ नवयुवक वकील या मैजिस्ट्रेट आदि बन जाते हैं। अब वह कॉलेज के विषय (गणित आदि) दुबारा देखने का कदाचित् अवसर कभी भी न पाएँ।

एम० ए० पास करना सब नवयुवकों के लिये आवश्यक था, किंतु प्रोफ़ेसर बनना आवश्यक नहीं। इसी प्रकार आत्मा को पूरा-पूरा जान लेना और किसी वस्तु की मन से पर्वाह न करना तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है, किंतु रात-दिन अध्यात्म-विचार और समाधि में लीन रहना, निजानंद में तरंगें मारना, हिलोरें लेना, यह सौभाग्य प्रत्येक के भाग में नहीं। यह प्रोफ़ेसरी काम है सच्चे संन्यासी साधु लोगों का।

वह लोग जो अपने पूर्व स्वभाव वा अध्यासानुसार अध्यात्मविद्या-रूपी एम० ए० पास करके इसी विद्या की शिक्षा देना, शिक्षा पाना और शिक्षा को व्यवसाय नहीं बना सकते, उनके लिये वेदों की आज्ञा है—

> कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
> एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे। १।
>
> (ईशावास्योपनिषद्)

> कर्म करते हुए ही जीए सौ साल गर।
> मर्दे-आरिफ़ का हो न आलूदा पर॥

अर्थ—यदि काम-काज में लगे हुए भी तुम जीवन के सौ वर्ष व्यतीत कर दो, तो इस प्रतिज्ञा के साथ (तत्त्व-ज्ञान और साधु-हृदय होने पर) तुम दोष से विनिर्मुक्त हो, किंतु किसी और उपाय से नहीं।

किसी बड़े जागीरदार का पुत्र यद्यपि विवश नहीं किया

जाता, परंतु फिर भी वह प्रायः टेनिस, क्रिकेट, फ़ुटबाल या शतरंज, गंजीफ़ा आदि खेलों में प्रवृत्त पाया जाता है, और इस खेल-कूद के काम-काज में लगने से वह अपने जन्मजात स्वत्व (अमीरी-पद, धनिकता) से गिरकर मज़दूरों के झुंड में नहीं गिना जाता; इसी तरह जिन्होंने अपने सच्चे जन्मजात स्वत्व (ईश्वरीय स्वराज्य) को ले लिया है, वह यदि कार्यतः रेल, तार, मैशीन आदि काम-काज के खेल में हिट (चोट पर चोट) मारते हैं, और आकाश तक गेंद को उछालते हैं, तो उनकी राजकुमारता से कौन अस्वीकृति कर सकता है ? और खेल में बाज़ी जीतना भी ईश्वर को जाननेवाले का ही भाग है, क्योंकि वह निश्चिंत है। और जिसका चिंताओं के भार से प्राण निकल रहा हो, वह लद्दू संसार के खेल को क्या ख़ाक खेलेगा ? कर्म का निष्काम होना ज्ञानी से अपने आप स्वतः होता है। और जहाँ स्वाभाविक कर्म निष्काम है, सफलता वहाँ दासी है। यही ज्ञानी जो निष्काम कर्म में अति उत्सुक हैं, यही हैं जिनको संन्यास का वह गाढ़ा रंग चढ़ता है कि भीतर से फूटकर बाहर निकल आता है; बाहर रँगे कपड़ों से भीतर नहीं जाता। जो लड़के ख़ूब खेलते हैं, नींद भी उन्हीं की गाढ़ी होती है। इस छोटे-से संसार में निश्चिंतता से खेलनेवाले निश्चिंतता से सोएँगे, नैष्कर्म्य होएँगे।

महात्मा देवसेन (Deussen) की राय तो यों है कि "अध्यात्म-विद्या पहले इसके कि ब्राह्मण लोगों में उतरे, जो कर्मकांड में अतिशय प्रवृत्त रहते थे, राजा लोगों के भीतर प्रकट हुई, और बाद में ब्राह्मणों ने इसे सँभाला।" इस बात को मुख्यत: वेद के कई अवतरण देकर और विविध युक्तियों से वह अपनी ओर से प्रमाण के स्तंभ तक ले जाते, अर्थात् पूर्ण सिद्ध कर देते हैं। अब यद्यपि राम उनसे सहमत नहीं है और उनके अवतरणों को पर्याप्त नहीं मानता और उनकी युक्तियों को सदोष ठानता है, तो भी इस बात से किसी को अस्वीकृति नहीं हो सकती कि राजा अजातशत्रु, प्रवाहन जैवली, अश्वपति, कैकेय, प्रत्रवन, जनक, कृष्ण, राम, शिखध्वज, अलर्क आदि सैकड़ों राजे-महाराजे इस कोटि के विरक्त और साधुस्वभाव हुए हैं कि कोई संन्यासी उनकी क्या बराबरी करेगा? अशोक, रणजीतसिंह, बाबर, अकबर, क्रामवील, एलिजबेथ, वाशिंगटन, वरन् महान् चार्ल्स, जिसे नासमझ लोग नास्तिक कहते हैं, इत्यादि के भीतरी जीवन पर जब ध्यान से दृष्टि डाली जाती है, तो उनकी आंतरिक विरक्ति, साधुता, भीतर के त्याग-भाव को देखकर बुद्ध और ईसा स्मरण आते हैं।

इतिहास-विद्या की जो पुस्तक इस नियम को प्रकट नहीं करती कि जो जातियों के उत्थान और पतन, वंशों के

उदय और नाश, राजाओं की अधोगति और समृद्धि में सच्चा कारण है, वह पुस्तक केवल काँटों की बाड़ है जिसके भीतर खेती नहीं, या सज-धज कर आई हुई बरात है जिसमें दुलहा नहीं है।

बात थी जो अस्ल में वह नक़्ल में पाई नहीं।
इसलिये तसवीरे-जानाँ हमने खिंचवाई नहीं॥
एक से जब दो हुए तो लुत्फ़े-यकताई नहीं।
इसलिये तसवीरे-जानाँ हमने खिंचवाई नहीं॥
हम हैं मुश्ताक़े सख़ुन और उसमें गोयाई नहीं।
इसलिये तसवीरे-जानाँ हमने खिंचवाई नहीं॥

लोग कहते हैं, यद्यपि शेष विद्याओं और कलाओं में भारतवर्ष कभी सब देशों से आगे रह चुका है, किंतु भारतवर्ष में पाश्चात्य लोगों की भाँति सत्य-सत्य इतिहास-लेखन की शक्ति नहीं थी। होगा, परंतु यह जो जन्म-मरण की तिथि, युद्ध का बाह्य चित्र, राज्यों का परिवर्तन, वंश-वृक्ष, राजवंशों के उत्थान और पतन का समय, देश की मुख्य-मुख्य घटनाएँ, विद्रोह और विप्लव आदि का सविस्तर विवरण, इनसे जो दफ़्तर के दफ़्तर काले कर दिए गए हैं, क्या ये इतिहास की ठीक-ठीक विद्या में सम्मिलित हो सकते हैं? इतिहास की विद्या में तो नहीं, किंतु इतिहास की हड्डियों में निःसंदेह प्रविष्ट हैं। पाश्चात्य लोगों के लिपिबद्ध की हुई इस प्रकार की घटनाएँ और वृत्तांत इतिहास की सूखी

हड्डियाँ कहला सकते हैं, और वह भी प्रायः विशृंखल और असंबद्ध।

सर आर्थर हेल्प्स (Sir Arthur Helps) एक जगह लिखता है—"इतिहास मेरे सामने मत पढ़ो, मैं जानता हूँ कि सिवाय मिथ्या और झूठ होने के यह और कुछ नहीं होगा।"

हेनरी थोरो (Henry Thoreau) का कथन है—"मैथालोजी (झूठी कहानियों की विद्या अथवा पुराण आदि) में इतिहास की अपेक्षा अधिक सचाई पाई जाती है।"

शोपेनहार (Schopenhauer) का कथन है—"समय-समय के इतिहास के लिये ये दैनिक वा साप्ताहिक पत्र मिनट वरन् प्रायः सेकंड की सुई का काम देते हैं, जिस घड़ी के मिनट ही ठीक नहीं, घंटे कहाँ से ठीक होंगे।"

इमर्सन (Emerson) का कहना है कि "वीर का हाल वह लिखे, जो उसी कोटि का वीर हो।" घायल की गति घायल जाने। और स्थान पर लिखा है—"मिल्टन को वह समझे, जो स्वयं मिल्टन हो।"

वली रा वली मे शिनासद।

अर्थात् वली (तत्त्ववेत्ता) को तत्त्ववेत्ता ही ठीक पहचान सकता है, अन्य नहीं।

जो वृत्तांत उपस्थित किए जाते हैं, यदि ठीक हों, तो वे प्राय: ऐसे ऊपरी तल पर के होते हैं जैसे कोई घड़ी की डायल, केस और सुइयों का तो हाल लिख दे ; किंतु उसकी भीतर की बनावट (कला) का कुछ पता न दे। इतने वर्णन से किसी की बिगड़ी घड़ी नहीं सँवरती। केवल इतनी विद्या व्यावहारिक रीति पर कुछ लाभ न देगी, वरन् मस्तिष्क पर बोझ की भाँति पड़कर "नीम हकीम ख़तरए-जाँ, नीम मुल्ला ख़तरए-ईमाँ" वाली दशा लायगी। इतिहास-लेखक महाशय ! यदि बतलाते हो, तो वह बात बतलाओ जो मेरे काम भी आए। अजनबी नाम और सन् याद करने से मेरा कुछ नहीं सुधरता, निष्प्राण हड्डियाँ कोई पाठ नहीं पढ़ातीं, ईश्वर-ज्ञान से रहित इतिहास की विद्या अंधकार को नहीं हटाती। मनुष्य का लिखा हुआ उपन्यास पढ़ने को बैठे, तो छोड़ने को जी नहीं चाहता। क्या ईश्वर का नाटक (संसार) एक साधारण उपन्यास के समान भी आनंद नहीं रखता ? नि:संदेह रखता है, और उस आनंद और मनोरंजकता को दिखाना सच्चा इतिहास लिखनेवाले का काम है।

ऐसे इतिहास का लेखक वह हो सकता है जो संसार के रचयिता को सचमुच पहचानता हो, प्रकृति के नियम (दैवी विधान) को पूर्ण रूप से जानता हो। प्रकृति के

आध्यात्मिक नियम को कौन जान सकता है ? जो अपने ही नित्यमति के जीवन के ज्वारभाटे और उतार-चढ़ाव पर ध्यान करता-करता उस नियम को जान जाय जिससे दुःख और सुख, सुकर्म और अकर्म अथवा सफलता और असफलता आदि संबंधित हैं। संसार के रचयिता को कौन पहचान सकता है ? जो अपने ही सच्चे स्वरूप को सचमुच पहचान जाय।

मन अर्फ़ा नफ़सहू-फ़क़द अर्फ़ा रब्बहू।

अर्थ—जिसने अपने स्वरूप को पहचाना, उसी ने ईश्वर को पहचाना।

जिसे अपनी भी खबर नहीं, वह अन्य संसारवालों, अन्य पदवालों और अन्य देश और जातिवालों की खबर क्या खाक देगा ? किसी किताब में आनंद और मनोरंजकता कब होती है, जब उसमें हम अपने मन की सुनें और अपने ही किसी गुप्त अनुभव का पता पाएँ। और विश्व का इतिहास यदि सच्चा-सच्चा लिखा जाय, तो क्या है ? तुम्हारे ही किसी न किसी समय के अनुभवों की लड़ी है।

अपने कारनामे किसको प्यारे नहीं लगते ? विश्व के इतिहास में घटित भूलें भी आनंद से रहित नहीं। आज उत्तरदायित्व से पीछा छुड़ाकर तुम उनसे पाठ पढ़ सकते हो। यह न कहना कि वाशिंगटन, महान् चार्ल्स

(Charles the Great), कैसर, रूमा, मिकाडू आदि के अनुभव भला मेरे साथ क्या संबंध रख सकते हैं ? छिपकर रोनेवाली भारतवर्ष की स्त्री की आँख से टपकता हुआ आँसू का मोती, जो किसी ने भी गिरते नहीं देखा, उसी नियम का द्योतक है जिसका कि उल्का तारा (meteor) है, कि जो आकाश में टूटकर नीचे गिरता हुआ सबको दृष्टिगोचर होता है। राजाओं के दुर्गों में और अंधी बुढ़िया की झोंपड़ी में मन की इच्छाएँ तो एक-जैसी हैं, और भीतर दुःख-सुख भी एक-जैसे, और सफलता का नियम भी एक ही है। इस एक नियम को जान लिया, तो तुम मानो संसार के इतिहास को जान गए। इस नियम (Law) को व्यावहारिक रीति से सब धर्मों ने जाना, किंतु ज्ञान की नींव केवल वेदांत ने स्थिर की।

ज्ञान के भंडार में कोई नवीन समाचार इसके लिये नहीं। छांदोग्य उपनिषद् में पूर्व महापुरुषों ने इस ज्ञान को पाकर यों कहा—"आज से कोई हमको ऐसी बात नहीं बता सकता, जो हम पहले से न जानते हों। ऐसी खबर कोई नहीं ला सकता, जो हमको पहले से मालूम न हो, ऐसी वस्तु कोई नहीं दिखला सकता जो हमने न देखी हो।" क्योंकि इस ज्ञान के पाने से सब अनदेखा देखा गया, सब बेसुना सुना गया, सब न जाना जाना गया।

ऐसे ज्ञानी के समान दूसरा है ही नहीं, तो उसके आगे ठहर कौन सके ? स्यापा तो उनके लिये है जो इस ज्ञान से अपरिचित हैं, और इसी कारण पारे की तरह चंचल हैं। ऐसे लोग केवल व्याकरण के सहारे या बुद्धि के सहारे वेदांत पढ़कर इस पाप-सागर और शोक-समुद्र को पार नहीं कर सकते। "शोक को आत्मविद् तैर जाता है", यह वेद की बतलाई हुई कसौटी उनको शुद्ध स्वर्ण नहीं सिद्ध करती। अतः पूर्ण शुद्धता के लिये और पूर्ण रीति से मैल तथा मिलावट उतारने के लिये धंधों की अग्नि में पड़ना और कर्म के तेजाब में से गुजरना अनुचित नहीं है—

क़द्रे-आफ़ियत कसे दानद कि ब मुसीबते-गिरफ़्तार आयद।

अर्थ—आराम (सुख) की क़द्र वही जान सकता है, जो मुसीबत (दुःख) में पड़ चुका हो।

जिससे वेद निकले हैं, उसी से संसार का प्रकाश है। अतः श्रुति की शिक्षा तो कुछ और हो, और जीवन के कठोर अनुभव कुछ और पाठ पढ़ावें, यह कभी संभव नहीं। दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। जो कुछ विद्या और बुद्धि के रूप में श्रुति (वेदांत) का उपदेश है, वही व्यावहारिक रूप से जीवन की पाठशाला में पाठ मिलता है।

क्या तुम्हारा विश्वास वेदांत-तत्त्व पर इतना ही कच्चा है कि जीवन की घटनाओं से उसको हानि पहुँचाने की

आशंका हो गई ? ज़रा सँभलकर देखो, कोई शक्ति वेदांत की विरोधिनी नहीं है, कोई धर्म वेदांत का शत्रु नहीं है, कोई तत्त्वज्ञान या विज्ञान इसका शत्रु नहीं है, सब सेवक हैं, सेवक। हाँ, कुछ तो समझदार सेवक हैं, और कुछ नासमझ।

यदि सर्व-साधारण को पहले की भाँति वह वैकुंठ और स्वर्ग के प्रलोभन आज खींचते ही नहीं, और न स्वर्गलोक की प्राप्ति के उपयुक्त कर्म, वरन् जीते-जी भूख से बचने की कामना अधिक अधिकार किए हुए है, अथवा संसार के सुख अधिक चित्त को खींच रहे हैं, अथवा और सब प्रकार से भी उनके संकल्प और आवश्यकताएँ बदल रही हैं, तो कहिए क्या यह नाम-रूप के क्षेत्र की व्यक्त वस्तुएँ एकरस भी रह सकती थीं ? इनको स्थिर और सदैव स्थिर रखने में प्रयत्न करना तो अस्तित्वहीन को व्यक्त करने में मन लगाना है, मिथ्या नाम-रूप को आत्मा की उपमा देने का परिश्रम है।

कोशिशे-बेफ़ायदा अस्त व सुरमा बर अब्रूए-कोर।

अर्थ—व्यर्थ परिश्रम है और अंधे के नेत्र पर सुर्मा लगाना है।

हिंदू-शास्त्र की सच्ची शिक्षा कर्मकांड के रूप को अविनाशी बनाने में नहीं है, वरन् अविनाशी आत्मा को प्रत्येक रूप में और प्रत्येक कर्म में, प्रत्येक ऋतु और

युग में अनुभव में लाना है । इसलिये आज रेलों, तारों, जहाजों, कलों से द्वेष छोड़ो। यदि रात है, तो रात के साथ मत लड़ो, वरन् उसी रात में दीपक जला दो, अमावस्या को दीपावली की रात्रि कर दो, संसार दीप्तिमान् कर दो। जब दिन आया, तो रात भी आएगी । और यह तो कहो, रात किस बात में दिन से बुरी है? दिन में यदि एक प्रकार की उत्तमता है, तो रात में दूसरे प्रकार का सुख है। पर इससे लाभ उठानेवाला चाहिए। कलियुग यदि बुरा है, तो केवल उसके लिये कि जो उसको ब्रह्म देखने का द्वार नहीं बनाता।

यह आत्मा को परिच्छिन्न बनाना या नाम-रूप के बंधन में लाना नहीं है, वरन् नाम-रूपी परिच्छिन्नता को उड़ाना है। स्वप्न में भयानक सिंह आदि का सामना हो, तो जागृति आ जाती है। स्वप्न ही का सिंह स्वप्न की समस्त वस्तुओं को खा जाता है, लोहे को लोहा काटता है । पेटपालू जब एक बेर भी अपना शरीर समस्त भारतवर्ष देखेगा, तो छोटे-से शरीर की समाधि में उसका जी न लगेगा, वृत्त विस्तृत हो जायगा और धीरे-धीरे समधरातल रेखा विस्तीर्ण चक्र बन जायगी ; भूमिका चढ़ जायगी।

अच्छा जी! कुछ भी कहो, राम तो हर रंग में रमता राम है। हर देह में प्राण है। हर प्राण की जान है। सबमें

सब कुछ है ; पर इस समय लेखनी बनकर लिख रहा है, सूरज बनकर चमक रहा है, गोली गंगी (जिसको लोग श्रीगंगाजी कहते हैं) बनकर गा रहा है, पर्वत बनकर हरे दोशाले ओढ़े कुंभकर्ण की तरह पैर पसारे सुषुप्ति में लेट रहा है। परंतु अपना एक रूप उसे अधिक भा रहा है। मैं पवन हूँ, मुझ बिन प्रत्येक वस्तु निश्चेष्ट, गतिहीन वा निर्जीव है।

"Every thing is helpless beside me, I the only motive power, not a leaf can fall without my power."

मेरी सत्ता पाए बिना पत्ता नहीं हिल सकता। मुझ बिन सब कुछ दीमक की तरह सो जाता है, जली हुई रस्सी की तरह ढह जाता है। काम बिगड़ने लगा ? मैं किसको लांछन दूँ, मेरे सिवाय और कुछ हो भी ?

ब्रह्मा, विष्णु........................

"ऐ मौत ! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म (शरीर) को। मेरे और अजसाम (अन्य शरीर) ही मुझे कुछ कम नहीं। केवल चाँद की किरणें चाँदी की तारें पहनकर चैन से काट सकता हूँ, पहाड़ी नदी-नालों के भेस में गीत गाता फिरूँगा, बहरे-मव्वाज (सागर-तरंगों) के लिबास (पहरावे) में लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे-खुशख़राम (मंद-मंद संचरण करनेवाली पवन) हूँ और नसीमे-मस्तानागाम

(प्रभातकाल की मतवाली समीर) हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी हर वक्त रवानी में रहती है (सैलानी सूरत सदैव विचरती रहती है)। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते पौधों (वृक्षों) को ताज़ा किया, गुलों (पुष्पों) को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ों को खटखटाया, सोतों को जगाया। किसी का आँसू पोंछा, किसी का घूँघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़। वह गया, वह गया, नै कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!"

स्वामी राम के अन्य हस्तलेख

इस प्रकार मृत्यु (यमराज) के नाम लिखा हुआ उपर्युक्त आदेश पढ़कर दोनों महानुभावों के संदेह और भ्रम निवृत्त हो गए, और चित्त के सब क्लेश मिट गए, मन ठिकाने आ गया, और स्वामीजी के देहावसान की घटना भी भूल गई। अब बुद्धि की विक्षिप्तता कहाँ?

जितने ही वेग से मन मलिन होकर वेदांत से कुछ उदास-सा हो रहा था, उससे भी दुगुने वेग से अब प्रभावित होकर वेदांत की सत्यता का प्रशंसक और श्रद्धालु होने लगा। इस प्रकार जब हृदय को वास्तविक शांति मिली, तो फिर स्वामीजी के सभी संदूक़ एक-एक करके भली भाँति

देखने के लिये खोले गए। बीसों अध्ययन की हुई और नई पुस्तकों के अतिरिक्त उन सारे अँगरेज़ी व्याख्यानों की टाइप की हुई कॉपियाँ भी मिलीं, जो स्वामीजी महाराज ने अमेरिका में विविध स्थानों में दिए थे। और सब पुस्तकें इत्यादि तो श्रीनारायण स्वामीजी के पास सुरक्षित रहीं, परंतु अँगरेज़ी व्याख्यानों की टाइप की हुई कॉपियों को श्रीयुत पूर्णसिंहजी संपादन और प्रकाशन करने के लिये अपने साथ लाहौर ले गए। केवल उर्दू का अंतिम हस्तलेख 'ख़ुदमस्ती व तमस्सुके-उरूज'*, जिसका हिंदी-अनुवाद ऊपर दिया जा चुका है, शुद्ध प्रतिलिपि करने के लिये श्रीमन्नारायण स्वामीजी के पास रहा, जिसे उन्होंने बाद में उर्दू के 'ज़माना' आदि पत्रों में प्रकाशनार्थ भेज दिया था।

अँगरेज़ी व्याख्यानों के छपाने की चिंता

अँगरेज़ी व्याख्यानों को लेकर श्रीयुत पूर्णसिंहजी जब लाहौर पहुँचे, तो उसके थोड़े ही समय पश्चात् उनको देहरादून में एक साबुन का कारख़ाना चलाने का साझा मिल गया, और उसके बाद वह वहाँ के फ़ारेस्ट-कॉलेज में स्थायी मुलाज़िम हो गए, जिससे वह देहरादून ही में रहने

---

* इस सारे लेख की असल कॉपी, जो श्रीस्वामी राम की हस्तलिखित है, श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग के दफ़्तर में सुरक्षित है। पाठकगण जो चाहें, उसे आनंद से आकर देख सकते हैं।

लगे। स्वामी राम के अँगरेजी व्याख्यानों के संपादन और प्रकाशन करने के लिये जनता में चंदे की अपील करना श्रीपूर्णसिंहजी ने उचित नहीं समझा था, और न वह स्वयं किसी सज्जन को धन की सहायता के लिये तैयार कर सके, अतः श्रीनारायण स्वामीजी के द्वारा देहरादून में रुपए का प्रबंध किया गया। लाला बलदेवसिंहजी रईस, बाबू ज्योतिस्वरूपजी लीडर तथा प्रधान आर्यसमाज देहरादून, एवं अन्य एक-दो भक्तों ने मिलकर इस प्रकाशन के लिये सब खर्च देने का अपने ऊपर भार ले लिया, तथा श्रीयुत पूर्णसिंहजी ने इन व्याख्यानों को संपादन करके इनके प्रकाशन करने का भार अपने ऊपर लिया। किंतु इस प्रबंध के कुछ मास बाद ही श्रीयुत पूर्णसिंहजी की उपर्युक्त सज्जनों में से दो-एक के साथ कुछ अनबन-सी हो गई, जिससे सारा प्रबंध ढीला पड़ गया, और पूर्णसिंहजी ने एक साल यों ही बिता दिया। एक साल एकांत-सेवन करने के बाद जब श्रीमन्नारायण स्वामीजी मैदानों में नीचे उतरे, तो पूर्णसिंहजी ने अपनी असफलता का वृत्तांत सुनाकर सारा कार्यभार नारायण स्वामीजी के सिर पर डाल दिया, और आप समय तथा धन की कमी के कारण इस परमावश्यक कार्य से पृथक् हो गए। इस प्रकार १९०८ ई० के आरंभ में उन्होंने सारे लेख श्रीमन्नारायण स्वामीजी

के हवाले कर दिए । श्रीमन्नारायण स्वामीजी ने समस्त व्याख्यानों को पूर्णसिंहजी से लेकर उनके प्रकाशन इत्यादि का सारा बोझ ईश्वर पर डाल दिया, और विना किसी प्रकार की चिंता और विचार के ते उन व्याख्यानों को अपने दौरे में अध्ययन के लिये अपने साथ-साथ लिए फिरते रहे । मई, १९०८ ई० में शिमला पहाड़ को जाने के विचार से श्रीमन्नारायण स्वामीजी को कालका के निकट महाराजा साहिब पटियाला के पंजोर बाग में एकांत रहने का संयोग हुआ । यह बाग अत्यंत सुंदर और रमणीय था । इसमें एक मकान 'शीशमहल' नाम से प्रसिद्ध है, इसी के ऊपर नारायण स्वामीजी का निवास हुआ । उन दिनों दिल्ली के मास्टर अमीरचंदजी उनसे मिलने और सत्संग करने के विचार से कुछ समय तक वहाँ आकर श्रीनारायण स्वामीजी के पास ठहरे । सत्संग के मध्य में उन्हें स्वामी राम के कुछ लिखित व्याख्यानों के सुनने का संयोग हुआ । आप उन व्याख्यानों की पांडुलिपि से ऐसे पुलकित (गद्‌गद) हुए कि आपने उनका कुछ भाग अर्थात् केवल ५०० पृष्ठों की एक जिल्द को छपाने के लिये न केवल प्रार्थना और अनुरोध ही किया वरन् उसके प्रकाशन इत्यादि का समस्त व्यय-भारा विन किसी प्रार्थना के अपने आप अपने ऊपर लेने की इच्छा प्रकट की और लगभग लागत मूल्य पर जिल्द को लोगों में

वितरण करने का जिम्मा लिया। इस प्रकार जब उनकी सहायता और प्रोत्साहन से पहली जिल्द पूरी छप गई, तो उसे देखकर मास्टर साहिब ने यह इच्छा प्रकट की कि "मुझे राम के व्याख्यान छप जाने से अत्यंत प्रसन्नता हुई है। यदि आप यह जिल्द बहुत जल्द लोगों में केवल लागत मूल्य में बिकवा देंगे, तो मैं प्राप्त धन को कदापि अपने व्यय में नहीं लाऊँगा, वरन् तत्काल उसे दूसरी जिल्द के प्रकाशन में लगा दूँगा। और यदि इसी तरह आपकी सहायता से जिल्दों की बिक्री से प्राप्त धन द्वारा समस्त व्याख्यान क्रमशः प्रकाशित होकर जनता तक पहुँच जायँगे, तो मैं अपने आपको अत्यंत भाग्यवान् समझूँगा।" मास्टर साहिब की यह आंतरिक इच्छा सुनते ही नारायण स्वामीजी ने लोगों को प्राइवेट पत्रों द्वारा सूचना दी कि वह प्रथम जिल्द की सारी कॉपियों को लागत दाम पर तत्काल खरीद लें, ताकि लागत दाम प्राप्त होने पर दूसरी जिल्द भी इसी धन की सहायता से प्रकाशित की जाय। इस सूचना पर राम-भक्तों ने केवल दो सप्ताहों के भीतर ही लगभग ७०० प्रतियाँ खरीदकर मास्टर साहिब का बहुत उत्साह बढ़ाया, अतः व्याख्यानों का दूसरा खंड भी प्रकाशनार्थ कुछ ही सप्ताहों में प्रेस में दे दिया गया। इसी तरह दूसरी के बाद तीसरी और तीसरी के बाद चौथी जिल्द भी छपने को

दी गई, और इस प्रकार मास्टर साहिब की हिम्मत बढ़ गई। इस प्रकार राम-प्यारों के प्रेम तथा राम की कृपा से व्याख्यानों के प्रकाशन का यह भारी काम पूर्ण हो गया, और आज तक सारे व्याख्यान चार भागों * में प्रकाशित होकर 'इंपीरियल-बुकडिपो चाँदनी-चौक, दिल्ली' तथा फ़ैज़ाबाद आदि स्थानों पर जनता को मिलते थे। पर १४ वर्ष से कुछ राम-भक्तों के उद्योग से लखनऊ में नियमानुसार 'श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग' एक रजिस्टर्ड संस्था के रूप में स्थापित हो गई। जिसने स्वामी राम के सभी लेख और व्याख्यान अँगरेज़ी, हिंदी और उर्दू में प्रकाशित किए तथा कर रही है। इस लीग की एजंसियाँ अब लाहौर, दिल्ली, आगरा, बंबई, कलकत्ता, मद्रास आदि अनेक स्थानों में खुल गईं और खुलती जा रही हैं, जहाँ से स्वामी राम का सभी साहित्य जनता को प्राप्त होता है।

स्वामी राम का अंतिम लेख समाप्त करने का समय

ऊपर बताया जा चुका है कि राम महाराज का अंतिम लेख, जिसमें उनकी लेखनी से यमराज के नाम आदेश भी

---

* अँगरेज़ी व्याख्यान अब चार भागों के स्थान पर आठ भागों में विभक्त किए गए हैं। जिनका पूर्ण सेट 'श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग' से ७) रुपए पर और प्रत्येक भाग १) रुपया पर मिलता है।

था, उनकी मेज़ पर खुले पन्नों में विशृंखल पाया गया था। उसके विषय में उनके रसोइया से दुबारा पूछने पर ज्ञात हुआ कि गंगा-तट पर जाने से कुछ घंटे पहले स्वामीजी इन कागज़ों पर कुछ लिख रहे थे। जिस समय ये कागज़ स्वामीजी के हाथ में थे, उनका मुखमंडल प्रकाशमान और मस्त था, नेत्रों से मोती की लड़ी की तरह आँसू टपक रहे थे, लेखनी और हाथ इस लेख के लिखने में ऐसे तन्मय थे कि एकतार बने हुए थे। उनका चित्त ध्यान में ऐसा लीन था कि संसार से परे हटा हुआ दिखाई देता था। मैं कितनी देर तक पास खड़ा रहा, पर मेरी ओर दृष्टि तक न की। ग्यारह बजनेवाले थे, मैं ख़बर देने आया था कि भिक्षा तैयार है। कुछ मिनट बाद आप ध्यान में ऐसे लीन और अचेत हो गए कि लेखनी भी हाथ से गिर गई। फिर कागज़ भी छूट गया। जब बहुत देर तक मैं खड़ा रहा, और उन्होंने मेरी ओर मुख तक नहीं किया, तो दबी ज़ुबान से मैंने अर्ज़ किया कि "महाराज! भिक्षा तैयार है।" परंतु कुछ उत्तर न मिला। क्योंकि दोपहर का समय हो रहा था, और मुझे भी भूख ने सताया हुआ था। कुछ देर तक तो मैं धीरज से चुप खड़ा रहा, पर बहुत देर तक मुझसे चुप न रहा गया। इसलिये कुछ मिनट बाद मैंने फिर अर्ज़ की—"भिक्षा तैयार है।" (इस बार मैं पहले

की अपेक्षा कुछ ज़ोर से बोला था।) स्वामीजी ने मेरी आवाज़ सुनकर आँखें खोलीं, और पूछा—"प्यारे ! क्या कहते हो?" उसके उत्तर में मैंने निवेदन किया—"महाराज! ग्यारह बज चुके हैं, और भिक्षा आपकी बाट ताक रही है। आज्ञा दीजिए कि आपके स्नान के लिये जल मैं ऊपर ले आऊँ, या आप खुद गंगातीर पर जाकर स्नान कीजिएगा?" मुसकिराकर बोले—"तुमने अभी तक कुछ खाया है या नहीं।" उत्तर में मैंने अर्ज़ की—"महाराज ! आज मैं भी स्नान करके भोजन करूँगा। आप को स्नान कराकर मैंने नहाने का विचार किया था, इसलिये मैंने अभी तक कुछ नहीं खाया।" मेरे इस उत्तर पर स्वामीजी बहुत हँसे, और आश्चर्य से पूछने लगे—"प्यारे ! आज तुम्हारे स्नान करने का क्या कारण है? *" मैंने

---

* टिहरी पहाड़ में लोग प्रायः प्रतिदिन स्नान नहीं करते। विशेषतः जाड़े की ऋतु में तो कई-कई सप्ताह लोगों को स्नान किए हो जाते हैं। औरों का तो भला क्या कहना, ब्राह्मण लोग भी गाँव में नियत दिनों या त्योहार पर ही जाड़ों में गंगास्नान करते हैं। टिहरी-नगर से दो मील की दूरी पर एक पटियार गाँव है, जो माफ़ीदारों का है। यह रसोइया उसी गाँव का ब्राह्मण था। इसकी आदत अपने गाँव के लोगों की तरह कई दिनों बाद नहाने की थी। इसलिये इसके नहाने की ख़बर स्वामीजी को हँसाने और आश्चर्य करने का कारण हुई।

अर्ज की—"महाराज ! पहले तो आज दीपमाला (दिवाली) है, दूसरे संक्रांति, और तीसरे अमावस्या। इसलिये ऐसे पर्व के दिन मैं स्नान करके ही भोजन करूँगा।" कुछ दिन से स्वामीजी के पाँव पर व्यायाम करते समय एक पत्थर से चोट लग गई थी, इसलिये वह ऊपर गंगाजल मँगवाकर स्नान कर लिया करते थे। परंतु इस उत्तर को सुनकर उन्होंने भी ऊपर कमरे में जल मँगवाकर स्नान करना न चाहा, वरन् मुसकिराते हुए कहा—"ओहो! आज ऐसा भारी पर्व का दिन है, तो चलो, आज राम भी गंगाकिनारे जाकर स्नान करेगा। आओ, हम दोनों साथ चलें।" इस तरह इन कागजों को मेज पर छोड़कर स्वामीजी गंगाकिनारे स्नान करने को चल दिए, और मैं भी आज्ञानुसार साथ हो लिया। उसके कुछ ही मिनट बाद स्वामीजी के जल में बह जाने की दुर्घटना हुई।

गंगाजल में डूबने का कारण

रसोइया के बयान से स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि लेख लिखते समय स्वामीजी के अंतःकरण की विचित्र दशा थी, किंतु इस विचित्र अवस्था के केवल यही कारण हो सकते हैं कि या तो अत्यंत दुर्बल और क्षीण शरीर को किसी की सेवा के लिये उपयुक्त न देखकर चित्त उससे ऐसा विरक्त हो गया था कि उसके साथ किसी प्रकार का संबंध

रखने को तैयार न होता था, जिससे मृत्यु को स्वामी राम ने स्वयं बुलाया और शरीर को उड़ा देने की आज्ञा दी; अथवा स्वामी राम के भीतर निजानंद का समुद्र इतना उमड़ा हुआ था कि सांसारिक आनंद उनके सामने तुच्छ प्रतीत होता था, जिसके कारण चित्त-वृत्ति संसार से नितांत उपराम हो गई थी, और दुःखों का कारणरूप शरीर के साथ अब संबंध रखना उनके लिये दूभर-सा हो गया, जिसके कारण राम ने मृत्यु को बुलवाकर शरीर को उड़वाना चाहा; अथवा जैसे स्वामी शंकराचार्यजी ने उचित समझ-कर अपने शरीर को जान-बूझकर स्वसंकल्प से हिमालय में गला दिया था, इसी तरह स्वामी राम ने भी अपने शरीर को क्षीण और जीर्ण देखते हुए उचित अवसर पाकर उसको गंगाजी के भेंट कर दिया, यद्यपि लहरों के अधिकार से निकलने की चेष्टा करना इस अंतिम परिणाम को ठीक-ठीक सिद्ध नहीं करता।

अस्तु। परिणाम चाहे अब कुछ भी निकाला जाय। राम महाराज का यह अत्यंत हितकर शरीर ठीक दीपमालिका के दिन अर्थात् १७ अक्टोबर, १९०६ ई० तदनुसार कार्त्तिक कृष्णा १५ सं० १९६३ वि० को ठीक मध्याह्न समय टिहरी-नरेश के सिमलासु बागीचे के नीचे भृगुगंगा में बह गया, और नित्य के लिये वियोग दे गया।

स्वामी रामजी का शव

शीत ऋतु और शीतल जल के कारण स्वामीजी का शरीर पानी में जल्द फूलकर बाहर न निकल सका, यद्यपि भृगुगंगा का जल विशाल भागीरथी गंगा के जल से कुछ उष्ण था, फिर भी स्वामीजी का शव एक सप्ताह पश्चात् जल के ऊपर तैर आया और बड़ी कठिनता से नदी के बीच से तट पर लाया गया। शरीर उस समय बिलकुल समाधिस्थ अवस्था में था। दोनों बाहु एक दूसरे पर आलती-पालती लगाए हुए थे, नेत्र बंद, ग्रीवा खड़ी और सीधी, मुँह ॐ बोलते-बोलते खुला हुआ, ठीक वैसे ही खुला हुआ जैसे वार्तालाप करते समय या लोगों के सामने व्याख्यान में ॐ बोलते हुए खुला करता था, मानो उसी समय भी वह मुँह से ॐ बोलते हुए दृष्टिगोचर हो रहे थे, और टाँगें एक दूसरी पर टेढ़ी की हुई थीं। आठ दिन तक पानी में डूबा रहने पर भी शरीर जलजंतुओं से बचा रहा। इस भोलीभाली शिव-समाधि की दशा में शव को पाकर सब लोगों ने ॐ का उच्चारण किया, और एक बड़े संदूक़ में बंद करके उसे बड़ी गंगा भागीरथी के अर्पण कर दिया गया।

रियासत के सब दफ़्तर बंद

महाराजा साहिब टिहरी जिनको स्वामीजी महाराज से अत्यंत प्रेम और भक्ति थी, और जिन्होंने स्वामीजी के

वह जाने का संवाद सुनकर इतना शोक किया था कि उस दीपावली रात्रि को अपने महल में घंटों तक दीपमाल बंद कर दी थी, जब उनका शव पानी से बाहर निकल आया, और एक अर्थी (लंबे संदूक़) में बंद करके भागीरथी गंगा के किनारे ले जाया जाने लगा, तो उन्होंने अपने सब दफ़्तर उस दिन बंद करा दिए, ताकि सब लोग, जो राम से सच्चा प्रेम रखते थे, इस अंतिम अवसर पर राम के दर्शन करने से वंचित न रहने पावें। इस प्रकार इस छोटे-से नगर (टिहरी) में बीसों मनुष्य मारे प्रेम के शव को कंधे पर उठाते हुए और प्रेमानंद से ॐ ध्वनि उच्चारण करते हुए बड़े समारोह के साथ उसे बड़ी गंगा भागीरथी के तट पर ले आए, और संन्यास-पद्धति के अनुसार शव के संदूक़ में पत्थर भरकर उसे फिर भागीरथी गंगा के अर्पण कर दिया।

शव का संदूक़ से निकल जाना

स्वामी राम के शव को एक संदूक़ में बंद करके दुबारा गंगा के अर्पण करते समय भूल यह हुई कि पत्थर संदूक़ से बाहर लटकाए जाने की जगह संदूक़ के भीतर रख दिए गए, जिससे संदूक़ गंगाजी में डूबने न पाया, वरन् तेज़ बहाव के साथ बहने लगा, और गंगाघाट से कोई सौ फ़ीट की दूरी पर जाकर एक बड़ी चट्टान से, जो जल की तेज़

धारा के बीच में थी, अटक गया। उस समय अनन्य गुरुभक्त श्रीनारायण स्वामीजी अपने प्राणों का मोह त्यागकर अत्यंत कठिनता से उस भयानक स्थान पर जल में तैरकर पहुँच गए, और जब संदूक़ को उस चट्टान की रोक से हटाकर पानी की धारा में वह डालने लगे, तो संदूक़ उलटकर फट गया, जिससे राम का शव पत्थरों सहित बाहर निकलकर वहीं जल में पत्थरों के नीचे दब गया। यह देखकर सबने कहा—"राम की ऐसी ही इच्छा बहुत काल से थी। हम लोगों ने तो वृथा ही उसे संदूक़ में बंद करने का कष्ट उठाया। राम तो इसी स्वाभाविक दशा में गंगा की लहरों पर सवारी करना चाहते थे। इसी दशा में गंगा से मिलाप करना और उसकी मछलियों की भेंट होना उन्हें भाता था। इसीलिये स्वामी राम ने कई बार अपनी कविता और गद्य में लिखा था—

तेरियाँ लहरों राम असवार, गंगारानी।

Come fish, come dogs, come all who please
Come powers of Nature, bird and beast,
Drink deep my blood, my flesh do eat.
O come, do partake this marriage-feast.

गंगा तैथों सद बलहारे जाऊँ। (टेक)
हाड चाम सब वार के फेकूँ यही फूल-बताशे लाऊँ॥
मन तेरे चँदरन को दे दूँ बुधि धारा में बहाऊँ।

पाप-पुण्य सभी सुलगाकर यही तेरी जोत जगाऊँ ॥
तुझमें पड़ूँ तो तू बन जाऊँ ऐसी डुबकी लगाऊँ।
रमण करूँ सत धारा माहीं नहिं तो नाम न राम धराऊँ ॥

राम बादशाह अपने इस मिलाप से पहले कई बार यह भी लिख चुके थे कि "यदि राम के चरणों में गंगा न बही, तो राम का शरीर गंगा में अवश्य बहेगा।" अहाहा! वेदांत-केसरी राम ने दोनों बातें क्रियात्मक रूप से सत्य कर दिखाई, संशय और संदेह को स्थान नहीं रहा। अपने पाँव से संसार के तख़्ते पर फिरकर उपदेश-रूपी गंगा को मनुष्यों के मनों में बहा दिया, और लाखों मनुष्यों को अपनी वाक्‌शक्ति के अतिरिक्त अपना उदाहरण भी दिखा दिया, और शरीर को, हड्डियों को, मांस-मज्जा को गंगा में मछलियों के भेंट कर दिया।

राम के शरीर के सार्वकालिक वियोग पर शोकसूचक सभाएँ

राम के शरीर के अचानक छूट जाने का संवाद बात की बात में भारत और देशांतर में फैल गया। कितने ही विद्यालय और स्कूल उस समय बंद हो गए। भिन्न-भिन्न नगरों में शोक-सभाएँ की गई। सभी संवादपत्रों में बिना सांप्रदायिक विचार के स्वामीजी के सार्वकालिक वियोग पर शोक, महान् शोक प्रकट किया गया। लाहौर में एक

विराट् सभा मिशन-कॉलेज के विस्तृत हॉल (प्रांगण) में हुई। भीड़ इतनी अधिक थी कि हॉल से बाहर दरवाज़ों में भी खड़े होने को स्थान नहीं था। कितने ही लोग खड़े होने की भी जगह न पाकर निराश होकर वापस लौट गए। सभा में हिंदू, मुसलमान और ईसाई महानुभावों ने एक-साँ शोकजनक वक्तृताएँ कीं। श्रीयुत पूर्णसिंहजी की भी कुछ मिनटों तक बड़ी ही हृदय को व्यथित करनेवाली वक्तृता बड़े-बड़े आँसुओं से रोते हुए हुई थी। कॉलेज के प्रिंसिपल डॉक्टर यूइंग भी भाषण करते समय रो पड़े। आपने कहा—"प्रोफ़ेसर तीर्थराम ने साधारण जीवन से लेकर जीवन की अंतिमश्रेणी (संन्यास) तक केवल अपनी शक्ति और प्रयत्न से अपने आपको पहुँचाया। मेरा यही एक वास्तविक शिष्य है जिसने संसार में अपनी शिक्षा का व्यावहारिक रूप दर्शाया।"

भारत के सैकड़ों शहरों के अतिरिक्त जापान और अमेरिका में भी राम के ब्रह्मलीन होने पर शोक-सभाएँ हुईं। वस्तुतः महापुरुष वही है, जिसकी प्रशंसा में सारे संप्रदाय एकमुख हों। अमेरिका से सेंट निहालसिंह लिखते हैं कि "स्वामी रामतीर्थ ने अपनी विशुद्ध व समयोचित वाणी तथा लोकप्रिय व्याख्यानों से अमेरिका में स्वामी विवेकानंद के बाद वेदांत-प्रेमियों का एक विशेष जनसमूह

उत्पन्न कर दिया : यद्यपि स्वामी राम देह-त्याग कर गए हैं, तथापि जापान और अमेरिका में अपने अनुयायियों के हृदय में अंतिम श्वास तक वह जीवित रहेंगे।"

मिसिज़ वेल्मैन स्वामीजी के देहांत का समाचार पाकर अमेरिका से लिखती हैं कि "प्यारे पूरण का लेख पंजाब के महात्मा स्वामी रामतीर्थ के विषय में बड़े मनोयोग से पढ़ा, और प्रेम की आग मेरे मन और प्राण में भड़क उठी। ऐसा मालूम होता है कि प्यारा और पवित्र शब्द ॐ राम के मुखारविंद से उच्चारण हो रहा है और यह ध्वनि निकल रही है—'मैं मर नहीं सकता, मैं मरा नहीं हूँ।' आध्यात्मिक जीवन का जानना ही आनंद का जीवन है। आत्मा तो केवल आत्मा को ही जानती है, देश और काल मृत्यु तक भाग खड़े होते हैं। आत्मा बड़े उमंग के साथ उस एक महान् सत्य की ओर टकटकी बाँधे देख रही है। महात्मा राम का यह उपदेश है। जब मैं उन प्यारे पत्रों को, जो मेरे पास राम ने समय-समय पर भेजे थे, देखती हूँ तो मेरे मन और मस्तिष्क में नवीनता आ जाती है। इन अनमोल पत्रों में बहुत कुछ है। लिखे हुए शब्दों से बहुत अधिक है। इनमें से वह आत्मा चमकती है जो मेरे समस्त अस्तित्व को पूर्ण सत्य से प्रकाशित कर रही है। स्वामी राम के अनमोल पत्र मेरे सांसारिक पथ में प्रदीप का काम

देते हैं, तथा मुझमें और मेरे चारों ओर एक प्रेम की थरथराहट-सी उत्पन्न कर देते हैं। कैसे धन्य वह कर और मस्तिष्क थे, जिन्होंने उनको लिखा देखा। आत्मा का काम इसी बात से है कि अनुभव तो हो, किंतु वर्णन में न आ सके। राम के पत्र उस सत्य के मौन संदेश हैं, जो आत्मा में आनंद की सनसनाहट से हलचल मचा देते हैं। वह परदे के पीछे से बोल रहे हैं। उस आत्मा के भीतर से, जिसने सांसारिक जीवन से संबंध-विच्छेद कर दिया है, बातें कर रहे हैं। उसने ऐसा सादा जीवन व्यतीत किया कि वह सदैव के लिये विश्वजीवन का द्योतक हो गया है।

यदि मुझे कामना है, तो यह कि उस मंगलप्रद सत्य को जिसे राम ने सिखाया, और अपने व्यावहारिक जीवन में ढालकर दिखलाया, उसे अर्थात् राम की कथनी और करनी को अधिक से अधिक जानूँ। ऐ मेरे इधर-उधर घूमते हुए संकल्पो! लौटो, जब तक कि ॐ में लय न हो जाओ। ज्यों-ज्यों हम इस ईश्वरीय नियम को समझते जाते हैं, त्यों-त्यों रहस्य खुलते चले जाते हैं। जब कभी मैं ऐसी-ऐसी बातें पूछती थी, तो महात्मा राम इस प्रकार कहा करते थे—

'माता! इन बातों को जाने दो। हम तो ईश्वर

अर्थात् सत् को जानना चाहते हैं। जब हम ईश्वर को जानेंगे, तब अपने को पहचानेंगे; और जब अपने को जानेंगे, तभी ईश्वर को पहचानेंगे।'

ऐ प्यारे भारतवासियो! दो बरस या कुछ ऊपर का समय हुआ जो मैंने आप लोगों के साथ व्यतीत किया है; उसकी प्यारी स्मृति मेरे लिये पुण्य-रूप है। कोई सांसारिक संबंध मेरे जीवन में ऐसे नहीं हैं, जिनकी उस समय के अनुभव से तुलना की जाय। पश्चिम जो बचा है उसकी एक आत्मा ने मातृभूमि भारत के उष्णावेश हृदय पर आराम किया। ऐ मेरे भारत के प्यारो! प्रेम करो। चाहे हमारे शरीर इस भूमंडल की विविध दिशाओं में चले ही क्यों न जायँ, पर हमारी आत्माएँ असीम प्रेम और ज्ञान के प्रसाद में मिलती रहें। यह शोक की बात है कि सहस्रों में कदाचित् केवल एक सत्य के लिये प्रयत्न करता है; कहीं-कहीं एक-आध ऐसे दिखलाई पड़ते हैं जो हमारे महान् साहसी राम के समतुल्य हों। मैं भारत में कुछ ऐसे मनुष्यों से मिली, जो समझदार थे। वह शब्दों की प्रशंसा न करते थे, वरन् अर्थों की। और अपने अहंकार को दूर करके कर्म को प्रधान समझते थे। उनकी दृढ़ आत्माएँ भूतकाल की उलझी हुई मृत विधि-विधानों को तोड़ चुकी हैं। हम आध्यात्मिक उन्नति और आत्मज्ञान के लिये प्रायः

ध्यान में बैठते हैं, और कभी-कभी पवित्र निर्वाण के विषय में बातचीत करते हैं, और मीठे आनंददायक ॐ को उच्चारण करते-करते इस निर्वाण-रूपी प्रसाद तक पहुँच जाते हैं। क्या यह आश्चर्य की बात है कि यदि मैं उस देश को प्यार करूँ, जहाँ जाकर महा पवित्र और बहुत ही गहरा प्रेम मेरे हृदय में प्रकट हो गया ? प्यारे भारत-निवासियो ! हम हृदय में तुमसे मिलते हैं। हम आनंद में हैं, वरन् प्रेम-रूप ही हैं। मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ।"

(सूर्यानंद उपनाम ईव, ए० वेल्मैन, अमेरिका यू० ऐस० ए०)

अमेरिका में डैनोवर के कॉलोरोडो संवादपत्र ने निम्न-लिखित पंक्तियाँ स्वामी राम के देहांत के पश्चात् प्रकाशित की थीं—

"वह मान और प्रतिष्ठा, जो स्वामी राम की अमेरिका में हुई थी, थोड़ी-सी इससे विदित होती है कि 'महात्मा स्वामी राम की देह का अंत हो गया। प्रभाव उत्पन्न करने-वाली और गंभीर विधि से इस महान् हिंदू का शरीर, जिसने अद्वैतवाद और आध्यात्मिकता के प्रचार के लिये प्रयत्न किया था, पवित्र गंगा के अर्पण कर दिया गया।' इस पूर्वीय विद्वान् के वह अनुयायी, जो कि डैनोवर और पश्चिम में रहते हैं, उनको इस १७ अक्टोवर की घटना का संवाद भयानक-प्रभाव मालूम हुआ। स्वामी राम नए

विचारों के आचार्य थे। जिस समय आपका स्वागत हैनोवर के गिरजाघर में जनवरी, १९०४ ई० में हुआ था आपने कई व्याख्यान देकर बहुत-से मनुष्यों को अपने धर्म और संप्रदाय की ओर आकर्षित कर लिया था।

अपने अनुयायियों की दृष्टि में वह मरे नहीं हैं, केवल उनका शरीर नहीं रहा है। मिसिज एफ़० जी० क्रॉसर हैनोवर के रहनेवालों में से एक हैं, जिन्होंने राम की शिक्षाओं से बड़ा लाभ प्राप्त किया है। स्वामी राम के न रहने से भारत का एक बड़ा भारी शुभचिंतक जाता रहा। क्योंकि वह अपनी समस्त शक्ति बुराइयों को दूर करने में लगाए हुए थे। जब वह हैनोवर में थे, तब उन्होंने यह कहा था कि '२० नवयुवक भारतीयों को अमरीका की बड़ी-बड़ी युनिवर्सिटियों में शिक्षा दो, तो वह बुराइयों और झगड़ों को भारत में से दूर कर सकते हैं।' आप साहित्य और संवादपत्रों के लिये प्रबंध लिखा करते थे, और बहुत-सी पुस्तकें भी लिखी हैं, क्योंकि स्वामी राम अँगरेज़ी-भाषा में बड़े निपुण थे। शिक्षित लोग उनकी मृत्यु के संवाद को बड़े शोक के साथ सुनेंगे। पश्चिम में उनके अनुयायी बहुत अधिक हैं, और जिनका उद्देश्य यह है कि वर्तमान जीवन के चालचलन को सुधारा जाय। जैसे कि इनर्जी (अंतःशक्ति) को कम नष्ट करना, शारीरिक और मानसिक

दुर्बलता को दूर करना, आवारापन जो ईर्ष्या, घमंड और कुटेव एवं अन्य दोषों के कारण उत्पन्न हो गया हो, उससे छुटकारा पाना, इत्यादि। उनका धर्म प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक धर्म है। क्या तुमने नदियों के विषय में कभी यह सुना है कि यह नदी हिंदू है और ईसाई नहीं है? अतः मैं जात-पाँत, रंग-रूप, या धर्म-मत या संप्रदाय का कोई भेद नहीं रखता, और सूर्य की किरणों, तारों की किरणों, पेड़ों के पत्तों, घास के तिनकों, बालू के कणों, चीते, हाथी, भैंसे, च्यूँटी, पुरुषों-स्त्रियों और बच्चों के मनों को अपना सहधर्मी कहकर पुकारता हूँ। राम ने डैनोवर में अपने विचारों को समझाते हुए कहा था कि 'मेरा धर्म ऐसा नहीं है, जो नाम रखावे। यह ईश्वर का धर्म है।' जब राम डैनोवर में थे, तो उन्होंने धर्म की शिक्षा के लिये दर्जे खोले और उनके बहुत-से अनुयायी हुए, जिनको यह संवाद सुनकर कि उनका शरीर नहीं रहा, बड़ा दुःख हुआ है।"

महात्मा मुंशीरामजी गवर्नर गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार ने अपने पत्र सद्धर्मप्रचारक में लिखा—"मुझे स्वामी रामतीर्थ के देहांत से बड़ा भारी दुःख इसलिये हुआ कि इस समय सच्चे त्यागी साधुओं का अकाल हो रहा है। स्वामी राम का सम्मान करनेवाले राजे-महाराजे, रईस बहुत लोग हैं, और यह संभव है कि उनकी कोई स्मृति

बनावें। किंतु आर्यसमाज के सभ्यों को भी मतभेद रखते हुए भी स्वामी रामतीर्थजी की स्मृति स्थापित करनी चाहिए। वैदिक सिद्धांतों को पूर्ण रीति से (लेखक की सम्मति में) न समझते हुए भी स्वामी राम ने काम, क्रोध, लोभ और मोह को जीता। सो स्वामी रामतीर्थ हमारे भाई थे। इसलिये आर्यसमाज के सभासद् उनकी स्मृति भी स्थापित कर सकते हैं कि धर्म के लक्षणों को अपने जीवन में सिद्ध करने का प्रयत्न करें।"

स्वामी राम के सच्चे भक्त बाबू ज्योतिस्वरूप प्रेसिडेंट आर्यसमाज, देहरादून स्वामी राम के देहांत पर तार भेजते हैं—"Rama's death is national death, अर्थात् स्वामी राम की मृत्यु राष्ट्र की मृत्यु है।"

आगरा-निवासी रायबहादुर लाला बैजनाथ बी० ए० भूतपूर्व जज लिखते हैं—"सच तो यह है कि हमारे बुढ़ापे की लाठी टूट गई, देश में ब्रह्मविद्या का सूर्य छुप गया। हमारा दुर्भाग्य।"

तात्पर्य यह कि संसार-भर की सोसाइटियाँ और धर्मों के अनुयायी, नेताओं और संवादपत्रों ने इस प्रेम की साक्षात् मूर्ति स्वामी राम के देहांत पर आठ-आठ आँसू बहाए। हमारा जिगर पारा-पारा हो रहा है। ताब (बल) नहीं कि अधिक लिख सकें। कहाँ तक लिखे जायँ।—

एक ख़ाली दिमाग़ था न रहा। दुनिया में इक चिराग़ था न रहा।

सच तो यह है कि अमेरिका के प्रेसिडेंट का राम स्वामी की दरगाह में घास पर बैठे रहना, अमेरिका-निवासियों का राम को जीवित ईसा पुकारना, अमेरिका से लेडियों का राम की जन्मभूमि में केवल दर्शन के लिये आना, जापानी भद्रपुरुषों का सप्ताहों वरन् महीनों राम के हँसते हुए दर्शनों को अपने कमरे में करना; हिंस्रजीवों, पशुओं, पक्षियों, पहाड़ों और पानी की लहरों तक का राम को भाव-सहित प्यार करना, इस बात को प्रकट और प्रमाणित करता है कि—

इश्क़ हूरस्त करामात न हो क्या माने।
हस्बे-इरशाद ही सच बात न हो क्या माने॥

राम के शरीर के संबंधिगण

स्वामीजी महाराज के जल-समाधि लेने के बाद श्रीयुत पूर्णसिंहजी, पंडित चिरंजीलाल और राम के बड़े पुत्र गोसाईं मदनमोहनजी मुरालीवाला गाँव (जिला गुजराँवाला) में स्वामीजी के पिता को यह शोकजनक संवाद पहुँचाने गए। राम की पतिव्रता-स्त्री अपने पूज्य पतिदेव के देहांत का समाचार सुनते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। थोड़ी देर बाद जलोपचार करने पर होश आया। अन्य संबंधी अर्थात् राम के पिता-माता, भाइयों और अन्य ग्रामवासियों

को इस शोकजनक खबर से अत्यंत दुःख हुआ। स्वामीजी के पिताजी ने कहा कि उनको एक ज्योतिषी बता गया था, इसी महीने (अक्टोबर, १६०६ ई०) में स्वामीजी लोप हो जायँगे। जब से राम के जल-समाधि का संवाद उनके पिता इत्यादि को मिला, उसी दिन से उनकी साध्वी धर्मपत्नी अपने राम के ध्यान में मग्न रहती थीं, और कभी-कभी ध्यान में इतनी लीन हो जातीं कि अचेत हो जाती थीं। अंततः जून, १६०७ ई० में इस पवित्र हृदया देवी ने भी अपने प्रियतम के वियोग में इस नश्वर संसार से सदैव के लिये प्रस्थान कर दिया। राम के पिता गोसाईं हीरानंदजी महाराज सन् १६०६ ई० में इस संसार को त्याग गए। राम की सौतेली माता का अब पता नहीं जीवित हैं या नहीं। राम के ज्येष्ठ पुत्र गोसाईं मदनमोहनजी जो स्वर्गीय महाराजा साहिब टिहरी की प्रेमपूर्ण सहायता से विलायत गए थे और लगभग तीन साल की पढ़ाई के बाद माइनिंग इंजीनियरी की परीक्षा उत्तीर्ण करके सन् १६०६ ई० में भारत लौट आए थे, और कुछ साल रियासत टिहरी में व बहुत काल रियासत पटियाला में माइनिंग इंजीनियर के पद पर काम करते रहे। आजकल वे अपने निजी कारबार करते हैं। और छोटे पुत्र गोसाईं ब्रह्मानंदजी बी० ए०, एल-एल० बी० पास करने के बाद पहले पन्ना रियासत में नियुक्त थे, और

आजकल उज्जैन में किसी मिल के मालिक के मंत्री हैं। राम की एक कन्या भी थी जो जीर्णज्वर के कठिन रोग में ग्रस्त होकर, बहुत साल हुए, मृत्यु को प्राप्त हुई। इस भोलीभाली सूरतवाले दूसरे पुत्र गोसाईं ब्रह्मानंद को देखकर तत्काल स्वामीजी याद आ जाते हैं। राम के बड़े सगे भाई गोसाईं गुरुदासजी और छोटे सौतेले भाई गोसाईं मोहनलाल इलाक़ा सवात मालाकुंड में अपने यजमानों में घूमते रहते हैं।

स्वामी राम की योग्यता

सामान्य मनुष्य के लिये स्वामी राम की विद्वत्ता और योग्यता का अनुमान करना बहुत कठिन है, विशेषतः ऐसे व्यक्ति की योग्यता जो प्रत्येक विद्या और कला में अद्वितीय हो, और प्रत्येक धर्म व संप्रदाय का अनुयायी जिनको आदर्श पुरुष, महापुरुष विचार करता हो, उनकी प्रशंसा में केवल अकेली लेखनी भला क्या लिख सकती है। बात यह है कि राम बादशाह कई भाषाओं के बादशाह थे। फ़ारसी और अँगरेज़ी के अतिरिक्त फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ भी आपने कुछ ही दिनों में अपने सहगामी यात्रियों से जहाज़ ही में सीख ली थीं। और केवल कई मास में व्यास-आश्रम और वशिष्ठ-आश्रम के निवासकाल में कुछ वेदों का अध्ययन भी समाप्त कर लिया था। वह लोग जो पहले

यह जानते थे कि स्वामी राम संस्कृत से यत्किंचित् अपरिचित हैं। जब उन्होंने वशिष्ठ-आश्रम के निवास के बाद राम के दर्शन किए, तो सब दाँतों-तले उँगली दबाते थे कि इतने अल्पकाल में राम संस्कृत के कैसे दक्ष पंडित बन गए थे। निःसंदेह जिनके भीतर आत्मप्रकाश हो जाता है, बाहर की वस्तुएँ उनके पास अपने आप खिंची हुई चली आती हैं। यह प्रकृति का नियम है।

राम की वाणी

राम की वाणी का प्रभाव विद्युत्-शक्ति की तरह पाठक के चित्त पर पड़ जाता है। राम की वाणी हृदय में ऐसी जगह पकड़ती है, जहाँ पढ़नेवाला उसे अपना लेता है। राम की वाणी हृदय में चुटकियाँ लेती है और ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती है कि पढ़नेवाला तिलमिला उठता है। सत्य बात तो यों है कि राम के विचार और अनुभव हृदय की वेदना और फुरना में ढल-ढलकर लेखनी या वाणी द्वारा बाहर आए हैं, इसलिये बिजली की शक्ति उत्पन्न करते हैं, या यों समझिए कि राम की वाणी छोटे-बड़ों के लिये एक दर्पण है जिसमें पढ़नेवाले को अपनी बुरी या भली तसवीर ठीक दिखाई देती है। तात्पर्य यह कि आनंदनिमग्न प्रज्ञानस्वरूप अशेष गुणालंकृत महापुरुष और सच्चे प्रेम के रंग में रँगे हुए तपस्वी की वाणी हृदय में एक नई उमंग

और उत्साह-सा उत्पन्न कर देती है, और उसका प्रत्येक पाठक उससे सहस्रों उपदेश लेकर अपने जीवन को उत्तम बना सकता है।

राम का स्वभाव

राम के स्वभाव और राम की प्रकृति से सदैव शांति बरसती रहती थी। स्वभाव के बिलकुल सादे, परंतु व्याख्यान के समय उनमें ऐसा आवेश भर जाता था जैसे कोई सिंह गरज रहा हो। दो-ढाई घंटे तक ज़बरदस्त जोशीला व्याख्यान देते थे, जिनमें श्रोतागण प्रायः चुप विमोहित से बैठे रहते थे। और कभी-कभी उपस्थित सज्जन राम के व्याख्यान समाप्त करते समय बोल उठते थे कि "रामजी महाराज, और बोलिए।" फिर राम भी नदी की तरह उमड़ पड़ते थे।

स्वामी राम समय के बड़े पाबंद थे, एक क्षण भी व्यर्थ नहीं नष्ट करते थे। दिन-रात बहुत कम सोते थे, अधिक समय उपदेश में व्यतीत करते थे, शेप व्यायाम और अभ्यास में। अपने आपको राम या राम बादशाह कहा करते थे। अमेरिका के करोड़पतियों के अनुरोध करने पर भी स्वामी राम वहाँ बस्ती से दूर बनों के कोनों या किसी पहाड़ पर अलग कुटिया में रहते थे।

गृहस्थ में स्वामी राम बहुत बड़े अतिथि-सेवी थे। जो

भी मिलने आता, उसको दूध खूब पिलाते थे, और स्वयं भी पानी के स्थान पर प्रायः दूध ही पिया करते थे। इसलिये उनका वास्तविक खाद्य दुग्ध ही समझना चाहिए। बात यह है कि श्रीकृष्णभगवान् ने दूध-मक्खन खा-खाकर संसार-भर को गीता-जैसी परमोत्तम पुस्तक प्रदान की, और राम भगवान् ने दूध पीकर श्रीकृष्णगीता की शिक्षा का स्वयं प्रत्यक्ष रूप बनकर उसका सारे संसार में संप्रसार किया।

हमारे राम बादशाह ओषधि आदि को बहुत कम व्यवहार में लाते थे। विद्यार्थी-जीवन और मुलाज़िमत के दिनों में प्रायः उन्हें ज़ुकाम (श्लेष्मा) रहा करता था, और इसलिये लाहौर में किसी हिंदू-फ़ैक्टरी के सोडावाटर की बोतल पिया करते थे; किंतु संन्यास में तो ऐसी वस्तु भी आप कभी व्यवहार में नहीं लाते थे। एक बार एक जज साहिब के यहाँ राम की दावत थी। जब भोजन लाया गया, तो विविध भाँति के व्यंजनों को राम बादशाह ने अपनी चिप्पी में डालकर मीठा-नमकीन इत्यादि को सब एक में मिलाकर भोजन किया। स्वामीजी ने संन्यास में पहुँच कर भी सामान्य नवीन वेदांतियों की तरह भोजन-पान के नियमों को तोड़ा नहीं। मादक वस्तुएँ और मांस से उन्हें स्वाभाविक घृणा थी, वरन् अमेरिका और जापान में भी जितने समय तक निवास रहा, अपनी इस

जितेंद्रियता की प्रकृति को स्थिर रक्खा। अमेरिका में शाकों, मेवों और दूध पर निर्वाह किया। वर्तमान काल के नवीन वेदांती स्वामीजी की इस स्वर्णमयी प्रकृति से विशेष रूप से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

राम का पहनावा

राम अत्यंत सादा पहनावा पहना करते थे। गृहस्थ की अवस्था में पट्टी का गरम कोट और धोती या साधारण पाजामा जाड़ों में, मलमल का पतला कुर्ता, सफ़ेद कोट और धोती गरमी में। घर में प्रायः नंगे सिर रहते थे। बाहर जाते समय साधारण सफ़ेद या जोगिए रंग का साफ़ा बाँध लिया करते थे। कभी-कभी सफ़ेद रेशमी साफ़ा भी व्यवहार में लाया करते थे। कड़े जाड़े में रात को केवल दो-एक कंबल में बसर करते थे। मस्ती के दिनों में जब संन्यास की लटक बड़े ज़ोर से अपना रंग जमानेवाली थी, तब उनका पहनावा बढ़िया रेशम का होता था। बहुमूल्यवान् वस्त्र सिलाए जाते थे, ताकि साधु होने के बाद कुछ बढ़िया वस्त्रों का विचार कदापि न आने पाए। उनकी उच्चकोटि की पोशाक को देखकर जब मित्रगण पूछते या कुछ कटाक्ष करते, तो आप कह देते कि यह उत्तम पहनावा सती का है, अभी-अभी इसे ज्ञान और प्रेम की अग्नि में सदैव के लिये सती होना अर्थात् गृहस्थी से

त्यागी होना है। सर्व प्रकार से आप आरंभ से ही अँगरेज़ी फ़ैशन के विरोधी थे। एक दिन की बात है, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, कि आप कॉलेज में बड़े चिंतित पाए गए। पूछने पर ज्ञात हुआ कि युनिवर्सिटी का जल्सा होनेवाला है और आपको उसमें सर्टिफ़िकेट प्राप्त करने के लिये सम्मिलित होना है; उसके लिये विलायती चोग़ा और बूट पहनने पड़ेंगे। अंत में यही निर्णय किया गया कि केवल इस अवसर के लिये अपने किसी सहपाठी से सूट उधार माँग लिया जाय। वैराग्य की अवस्था में प्राय: एक सफ़ेद या लाल रेशमी धोती में देखे जाते थे, और त्याग की दशा में एक लँगोट अर्थात् साफ़े और चादर में निर्वाह करते थे, साथ में शरीर पोंछने के लिये मोटे खद्दर के कपड़े का तौलिया, पाँव में खड़ाऊँ या बिलकुल नंगे, और दूध या पानी पीने के लिये लकड़ी का प्याला या नारियल का कमंडल अपने पास रखते थे। जाड़े में भी अत्यंत थोड़ा पहनावा रखते थे। रुपए-पैसे को छूते तक न थे, और यही उपदेश वह अपने अन्य साथ रहनेवाले साधुओं वा शिष्यों को दिया करते थे।

शारीरिक शक्ति और हुलिया (आकृति आदि)

राम के कथनानुसार असली हुलिया तो सबका एक है, परंतु शारीरिक रंग-रूप और शक्ति के संबंध में इतना

लिखना आवश्यक है कि राम का शरीर उनके विद्यार्थी और प्रोफ़ेसरी के दिनों में दुबला-पतला था, परंतु बाद में व्यायाम से उनके शरीर में वह शक्ति उत्पन्न हो गई थी कि अच्छे ख़ासे पहलवान को धकेल देते थे, और यह शक्ति शारीरिक व्यायाम से अधिक वर्धित होती रहती थी। गृहस्थ-आश्रम में तो नियमानुसार सवेरे-शाम चारपाई, मुग्दरों या डंबल से व्यायाम किया करते थे, परंतु संन्यास-आश्रम में जब जी चाहा गंगा के किनारे से पत्थर उठा-उठाकर उनसे दंड पेलते और दूर फेंक-फेंककर व्यायाम किया करते थे, और उसी तरह पसीने से खूब तरबतर होकर छोड़ते थे। इसके अतिरिक्त पैदल चलने का व्यायाम बहुत ही अधिक करते थे, और पहाड़ की ऊँचाई पर इतनी तेज़ी से चढ़ते थे जो कभी किसी को देखनी नसीब न हुई हो। आत्मिक व्यायाम से उनका तेजोमय मुखमंडल ऐसा प्रकाशमान हो गया था कि प्रत्येक व्यक्ति उनके दर्शन करते ही उनके सम्मान के लिये झुक जाता था और मलिन हृदय भी अवश्य प्रसन्न हो जाता था। पटियाला के एक माननीय वयोवृद्ध का कथन है कि स्वामीजी जब मार्ग में चलते थे, तो अपरिचित व्यक्ति भी उनकी ओर तकते और उनकी आनंद-भरी दृष्टि से प्रसन्न हो जाते थे। मानो प्रसन्नता उनके मुखमंडल से फूट-फूटकर बरसती थी। रंग लालिमामय गौर,

मस्तक विशाल और थोड़ा उभरा हुआ। सिर मँझोला, न बहुत छोटा न बहुत बड़ा, वरन् बिलकुल गोल, नेत्र ज्योतिर्मय मझोले। दृष्टिशक्ति दिन-रात पढ़ने से कमज़ोर हो गई थी, इसलिये ऐनक लगाते थे। शरीर पतला। डील मँझाला। मुखमंडल सदैव प्रफुल्लित, मुसकिराहट से भरा हुआ, और दाँत हँसते समय चमकीले मोतियों की लड़ी दिखाई देते थे।

एक महाशय चंपारामजी लिखते हैं कि "यद्यपि स्वामी रामतीर्थ की पुस्तकों में जादू-भरा प्रभाव है, परंतु उनकी मूर्ति सबसे बढ़कर मनमोहिनी है। मुखमंडल गुलाब के फूल की तरह खिला हुआ है, दाँत मानो आबदार मोती जड़े हैं; कपोल क्या हैं, चुन्नियाँ दमक रही हैं। आश्चर्य यह है कि स्वामी राम कोई पौष्टिक भोजन नहीं करते, कभी-कभी दुग्ध, मूँग की दाल और ज़रा-सा टुकड़ा रोटी का जब और जहाँ मिल गया खा लिया। परंतु सदैव प्रफुल्ल रहते थे। जब अनहद का बाजा ज़ोर से बजाया, सूर्यदेव की सारी उष्णता उनमें उदय हुई, सारी हिमानी कठोरता काफ़ूर हो गई। लोगों से जब हाथ मिलाते थे, तो स्वामीजी की उँगलियों से आग की-सी गरमी निकला करती थी। जिनको लोग सुपरनेचुरल (मानवी शक्ति से परे की शक्ति) कहा करते थे, वह उनके प्रत्येक काम से टपकती थी।

विद्यार्थी-जीवन में वह सदैव नीची निगाह करके चला करते थे, किंतु जब ब्रह्म-अभ्यास से आनंद बढ़ा, और गोलचंद का प्रेम हृदय में बसा, उस समय जब भी देखो, क़हक़हा मारते आनंद ही आनंद में दृष्टिगोचर होते थे।"

राम बादशाह के बहुसंख्यक भक्त व साधुशिष्य

यों तो जहाँ राम गए, पत्थर भी अहल्या की तरह उनके चरणों के छूने से जानदार हो गए। बच्चे, नौजवान और बूढ़े बिना धर्म, संप्रदाय, जाति व वर्ण के भेद के आपके दर्शनों के लिये व्याकुल रहते थे। परंतु कुछ प्रसिद्ध व्यक्ति, जिन्होंने स्वामी रामतीर्थजी को आदर्श पुरुष निश्चय किया और अपने आपको उनका अनुयायी मानने में अभिमान समझा, वह ये हैं—

अमेरिका में—मिसिज़ वेल्मैन पश्चात् सूर्यानंद, डॉक्टर विलियम गिब्सन पश्चात् स्वामी नारद, सान-फ्रांसिस्को के डॉक्टर एलबर्ट हिलर और मिसेज़ बुविियर, इत्यादि, इत्यादि।

जापान में—प्रोफ़ेसर टाटाक्यू, इत्यादि और श्रीयुत पूर्णसिंहजी जो उस समय विद्यार्थी थे, और भारत में आकर पहले देहरादून के रिसर्च इंस्टिट्यूट के केमिकल एडवाइज़र पश्चात् रियासत ग्वालियर में केमिकल ऐडवाइज़र रहे, फिर कुछ समय तक आप किसी शुगर फ़ैक्टरी, ज़िला

गोरखपुर में काम करते रहे, और फिर कृषिकार्य में कुछ काल रहने के पश्चात् परलोक सिधार गए हैं।

भारतवर्ष में—भारतवर्ष में राम के अगणित अनुयायी और भक्त हैं, जिनमें से प्रथम तो स्वर्गीय महाराजा साहिब बहादुर रियासत टिहरी कि जिनको मन भरकर स्वामीजी का सत्संग करने का गौरव प्राप्त हुआ, जिन्होंने कई मास स्वामीजी को लगातार अपने निकट रक्खा, राम के जापान जाने का ख़र्च भी जिन्होंने अपने ज़िम्मे लिया, राम के बाद उनके पुत्र को भी विलायत में दस हज़ार रुपए खर्च करके जिन्होंने शिक्षा दिलाई, और गत राम-मठ भी जिनकी निजी सहानुभूति और सहायता से तैयार हुआ था। इसके बाद स्वर्गीय रायबहादुर ला० शालिगराम साहिब रईस लुधियाना (ठेकेदार अवध रुहेलखंड रेलवे) जिनकी भक्ति से स्वामीजी स्वयं मोहित थे, और जिन्होंने सैकड़ों प्रकार की सेवाओं के अतिरिक्त राम महाराज के बाद उनका संगमरमर का स्टेच्यू (मूर्ति) बनवा रक्खा है। फ़ैज़ाबाद के लाला रामरघुवीरलाल साहिब रईस और आनरेरी मैजिस्ट्रेट, स्वर्गीय बाबू बलदेवसहाय साहिब वकील और बा० सुरजनलाल साहिब पांडेय सेक्रेटरी साधारण धर्म-सभा जिनको स्वामीजी का खूब जी भर के सत्संग प्राप्त हुआ, राम के विशेष और प्रधान भक्तों में से

हैं। प्रयाग के प्रसिद्ध आनरेबुल पंडित मदनमोहन मालवीयजी राम की मस्ती के बड़े ही प्रेमी हैं, लखनऊ के स्वर्गीय आनरेबुल बा० गंगाप्रसाद वर्मा महोदय, मुज़फ्फ़रनगर के स्वर्गीय आनरेबुल लाला निहालचंद साहिब, मेरठ के स्वर्गीय आनरेबुल ला० रामानुजदयाल साहिब, राम के प्रधान अनुयायियों में से थे। आगरे के स्वर्गीय रायबहादुर बैजनाथ साहिब बी० ए० पेंशनर भी राम-भक्त थे, देहरादून के स्वर्गीय बा० ज्योतिस्वरूप साहिब प्लीडर प्रेसिडेंट आर्य-समाज और स्वर्गीय बा० बलदेवसिंह साहिब रईस भगतराज राम के प्यारे भक्तों में से थे। स्वर्गीय स्वामी शिवानंदजी संपादक 'सत्-उपदेश', स्वर्गीय ला० हरलाल साहिब नाज़िर ज़िला लाहौर, डाक्टर मोहम्मद एक़बाल एम्० ए० इत्यादि और लैहिया के मियाँ मोहम्मद हुसेन आज़ाद भी आपके भक्तों और प्रशंसकों में से हैं। इनके अतिरिक्त अगणित व्यक्ति और भी हैं जिनके नाम लिखने से कई पृष्ठ भर सकते हैं।

स्वामी रामतीर्थजी महाराज के संन्यासी शिष्यों में प्रधान और उनके परमप्रिय पट्ट शिष्य श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज हैं जिन्हें उनका सबसे अधिक सत्संग और सबसे अधिक सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, और जिन्होंने गृहस्थाश्रम में ही अपने जीवन को राम के अर्पण कर दिया था। स्वामी रामतीर्थजी महाराज की जल-समाधि के पश्चात्

आज जनता को स्वामीजी के समस्त व्याख्यान और लेख हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी में सुंदर रूप में छपे हुए जो रामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ से प्राप्त हो रहे हैं, यह सब श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज की ही अनुपम और श्लाघनीय गुरुभक्ति, असाधारण अध्यवसाय और अविराम परिश्रम का फल है। एवं स्वामी राम की यह विस्तृत जीवनी भी उन्हीं की लेखनी का प्रसाद है, जो पाठकों को प्राप्त हो रहा है। सच तो यह है कि यदि श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज ने अपने आपको इस प्रकार अपने परम-पूज्य गुरुदेव भगवान् राम के समर्पण न कर दिया होता, तो आज दिन हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी राम की जीवनी के अनुपम रहस्य, राम के समस्त उपदेश और राम की विविध छवियों के दर्शन का इस प्रकार प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ था। श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज के अतिरिक्त स्वामी राम के चार और भी संन्यासी शिष्य हैं जिनमें से एक स्वामी रामानंदजी जो कुछ समय हुआ, परमधाम को सिधार गए। दूसरे स्वामी गोविंदानंदजी जो आजकल चूड़काना मंडी पंजाब के नगरों में घूमते उपदेश करते हैं। तीसरे स्वामी पूर्णानंदजी जो केवल एकान्त-सेवी हैं और हरिद्वार से कुछ दूरी पर एकान्त स्थानों में अपना जीवन अभ्यास में व्यतीत करते हैं। चौथे शिष्य स्वामी हरिओम्‌जी

जो अभी तक अधिक पटियाला व अमृतसर नगरों में विचरते रहते हैं। इनके अतिरिक्त और कोई संन्यासी शिष्य स्वामी राम का नहीं है। यद्यपि इस समय अनेक स्वामी अपने को स्वामी राम के बाद (नहीं मालूम किस विचार से) राम का शिष्य बताकर प्रसिद्ध कर रहे हैं।

राम का मिशन और वेदांत कौलोनी

वेदांत-शास्त्र के अद्वैत तत्त्वज्ञान का प्रचार राम का मिशन था। अपने स्वदेश-भाइयों में वरन् समस्त मानव-जाति में सहानुभूति का प्रकाश और आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिये राम ने अपना प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित किया। सोतों को जगाने और जाग्रत् जातियों को आपस में प्रेम का सार्वभौमिक सिद्धांत बर्तने का काम राम बादशाह ने अपने ऊपर लिया था। या यों कहिए कि प्रकृति ने ऐसे उत्तम कार्य के लिये राम बादशाह को चुना था। राम का निश्चय था कि जो मनुष्य या जाति केवल अपने शरीर और शरीर-भाव तक परिमित नहीं होती, वरन् अपने यथार्थ आनंद-स्वरूप में मग्न होती है, उसी मनुष्य और उसी जाति को संसार में कोई कष्ट नहीं होता। मनुष्य स्वतः आनंद का भंडार है, शाश्वत और अविनाशी आनंद उसका अनादि तत्त्व है। प्रत्येक मनुष्य में असीम शक्ति विद्यमान है, केवल प्रयत्न करने और खोजने की आवश्यकता है। हृदय की

विशालता अर्थात् सहानुभूति और प्रेम की परिसीमा बढ़ जाने से समस्त सृष्टि उसकी सेवा करती है, और प्राणिमात्र के प्रेम का विकास और उसका सुविस्तीर्ण प्रकार ही मनुष्य को एक शरीर के बंधन से सदैव मुक्ति देता है। इन्हीं विचारों का प्रकाश करना स्वामी राम का मिशन था। जब तक शरीर और शरीरपन की गंध शेष रही, उस क्षण तक वह अपने वाणी और व्यवहार से यही शिक्षा क्रियात्मक रूप से सिखाते रहे। अमेरिका से वापस आने के बाद राम बादशाह का आरंभ में यह विचार था कि हिमालय के किसी विस्तृत क्षेत्र में एक वेदांत कौलोनी (उपनिवेश) स्थापित की जाय जिसमें विद्यार्थियों को ब्रह्मविद्या की संपत्ति से सुसंपन्न कर दिया जाय, और वेदांत की शिक्षा पाने के बाद वेदांत का प्रचार वे अपने आचरणों से कर सकें। विशेषतः साधु ब्रह्मचारी इसमें प्रविष्ट किए जायँ, जो धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त स्वयं खेत बोने और काटने का काम करना भी सिर आँखों से स्वीकार करें, जिसमें यह आश्रम धनियों से पैसा माँगने का मुहताज न रहे। किंतु शोक, कि राम बादशाह की आयु ने साथ न दिया। हरिइच्छा ! यही राम को स्वीकार होगा।

ये थे हमारे वेदांत के सिंह, मधुरवाणी की वाटिका के माली और पूर्ण प्रकृति के श्रेष्ठ महारथी, जिन्होंने समस्त

अवस्थाओं और समस्त श्रेणियों को उत्तीर्ण करने के पश्चात् ब्रह्म में विहार किया। ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु और विशेषतः स्वामी राम के प्यारे श्रद्धालु अनुयायी स्वामी राम की श्लाघनीय जीवनी से अत्यंत लाभदायक शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। राम के प्रेमियों की दृष्टि में यद्यपि राम के शरीर का परित्याग लोप है, किंतु स्वयं राम बादशाह सर्वत्र विद्यमान और दृश्यमान हैं। देखो-देखो—

नग़मे सुरीले ॐ के हैं उसमें गा रहे।
नदियां परिंदे साथ में हैं सुर मिला रहे॥

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

राम का आशीर्वाद

बदले है कोई आन में अब रंगे-ज़माना। (टेक)
आता है अमन जाता है अब जंगे-ज़माना ॥ १ ॥

ऐ जेहल ! चलो, दर्द उड़ो, दूर हटो हसद।
कमज़ोरी मरो डूब, बस ऐ नंगे-ज़माना ॥ २ ॥

ग़म दूर, मिटा रश्क, न ग़ुस्सा, न तमन्ना।
पलटेगा घड़ी पल में नया ढंगे-ज़माना ॥ ३ ॥

आज़ाद है, आज़ाद है, आज़ाद है हर एक।
दिलशाद है, क्या ख़ूब उड़ा तंगे-ज़माना ॥ ४ ॥

लो काठ की हँडिया से निभे भी तो कहाँ तक।
अग्नि तो जला ज्ञान की दे संगे-ज़माना ॥ ५ ॥

आती है जहाँ में शहे-मशरक़ का सवारी।
मिटता है सियाही का अभी जंगे-ज़माना ॥ ६ ॥

वही जो इधर ख़ार उधर है गुले-ख़ंदाँ।
हो दंग जो यूँ जान ले नैरंगे-ज़माना ॥ ७ ॥

देता है तुम्हें 'राम' भरा जाम यह पी लो।
सुनवाएगा आहंग नए चंगे-ज़माना ॥ ८ ॥

चतुर्थ खंड

पूर्वार्द्ध

राम के विषय में लोकमत

१—स्वामी राम के मिशन पर एक साधारण दृष्टि

[लेखक, स्वर्गीय मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा एडीटर हिंदुस्तानी पत्र, लखनऊ]

स्वामी रामतीर्थ, स्वामी राम या राम बादशाह कि जिन नामों से वह संन्यासी प्रसिद्ध थे, जिन्होंने कि दिसंबर, १९०४ ई० में अमेरिका से लौटने और तीन साल वहाँ जाने से पहले उत्तरीय भारत, विशेषतः हमारे प्रांतों

और उसके पर्वतीय भाग में हलचल-सी उत्पन्न कर दी थी, कौन वयोवृद्ध थे, और उनका क्या मिशन था, प्रत्येक संन्यासी के गृहस्थ-आश्रम के संबंध में जानकारी की इच्छा रखनेवाले लोग कुछ न कुछ पूछा करते हैं। अतः कोई आश्चर्य नहीं है कि स्वामी रामतीर्थजी महाराज के विषय में यह प्रश्न विविध स्थानों से पूछा जाय। इस प्रश्न का उत्तर देना कुछ कठिन नहीं है, क्योंकि स्वामीजी महाराज ने कभी अपने गृहस्थ-आश्रम के जीवन पर परदा नहीं डाला, और न उसकी चरचा करने से बचते थे। जिस प्रकार प्रत्येक नवयुवक का जीवन व्यतीत होता है, आपका भी बीता; किसी का कम आपका अधिक सफल। विद्या-रूपी धन से यहाँ तक धनशाली थे कि देश के कुछ उच्च कोटि के प्रतिभाशाली गणितज्ञों में आपकी गणना थी। सरकारी नौकरी में जो शाखा आपने पसंद की थी, उसमें प्रोफ़ेसर की हैसियत से इतनी उन्नति प्राप्त की जिस सीमा तक आपकी आयु का कोई नवयुवक प्राप्त कर सकता था। सौभाग्य यह कि गृहस्थ-आश्रम के छोड़ने के समय तक माता-पिता की छाया सिर पर रही, और भाग्यवान् पिता के समान सुयोग्य संतान के आप भी धनी थे। गुजराँवाला के निवासी, गोसाईं-वंश के अभिमान स्थान, और फिर किस वंश के? जिसके शिष्य सारे पंजाब में सहस्रों की संख्या में

फैले हुए हैं। यह समय स्वामीजी के जीवनचरित लिखने का नहीं है, इस ज्ञानी का जीवनचरित लिखनेवाले विविध भाषाओं में दर्जनों पैदा होंगे। वह उनके वर्तमान शरीर के २६ वर्ष का गृहस्थ-आश्रम, बचपन, विद्यार्थी-जीवन, युवावस्था, नौकरी इत्यादि के समय की घटनाओं पर आलोचना करेंगे और दिखा देंगे कि किस प्रकार आरंभिक जीवन से ही इस आनेवाले आश्चर्यजनक घटना की खबर मालूम होती थी। क्योंकि जीवन की प्रत्येक सामान्य घटना उस आत्मिक जीवन का पता देती है, जिसे स्वामीजी ने ग्रहण किया था। यत्किंचित् गृहस्थ-आश्रम की चरचा करके हमको यहाँ यह दिखाना अभिप्रेत है कि संसार में असफलता या किसी महान् शोक ने स्वामी रामतीर्थजी महाराज को उस जीवन की ओर नहीं लगाया जो उन्होंने ठीक नई जवानी में २६ या २७ वर्ष की आयु में ग्रहण किया था। आध्यात्मिक आनंद में मस्त, अपने भाइयों को जो आप ही के दूसरे स्वरूप हैं अज्ञान और मूर्खता में ग्रस्त देखकर, उस आनंद में जो केवल ईश्वररत पुरुषों को ही प्राप्त होता है, जाग्रत् और सत्य से परिचित कराने का काम आपने अपने ज़िम्मे लिया जिसके लिये इस संसार में आपने पार्थिव शरीर स्वीकार किया। आपका मिशन क्या था? मनुष्य को जाग्रत् करना कि वह केवल शरीर और शरीरभाव

तक अपने को परिमित न समझे, वरन् इस सत्य के ज्ञान से कि 'वह स्वयं आनंदस्वरूप है, आनंद का भंडार है', स्वयं नित्य आनंद प्राप्त करे, और दूसरों को संसारी चिंताओं तथा फ़िकरों से मुक्त होने का वह मार्ग बताए जो किसी जातिविशेष या धर्मविशेष के लिये विशिष्ट नहीं है, और न केवल पढ़े-लिखे विद्वानों या उपदेष्टाओं का जन्मजात स्वत्व है। यह समझ कर कि मनुष्य में असीम शक्ति विद्यमान है, वह इन शक्तियों को रखकर अपने आपको शारीरिक या आत्मिक रीति पर किसी का दास न समझे; और यह अनुभव करके कि संसार उसके विचारों का आभास है, उसके चारों ओर कारण उसी के उत्पन्न किए हुए हैं, यदि बुरे सामान हैं, तो उसी के बुरे संकल्पों का परिणाम हैं, उन बुराइयों के दूर करने का प्रयत्न करे जिनसे वह संसार के बाह्य दु:ख और शोक कम कर सकता है। स्वामी रामतीर्थजी कोई नई शिक्षा सिखाने नहीं आए थे। यह शिक्षा वैसी ही पुरानी है, जैसे भारत में हिमालय पर्वत और गंगा-यमुना पुरानी हैं; परंतु उनकी शिक्षा-पद्धति निराली और बुद्धि को अपनी ही दासता से विमुक्त करनेवाली थी। अविनाशी आनंद के लिये अहंकार का मिटाना आवश्यक था, जैसे स्वामीजी ने अपने शरीर से बिलकुल ही मिटा दिया था कि उसका पता ही नहीं चलता था। तुच्छ इच्छाओं की

दासता का नाम-चिह्न शेष न था। क्रोध, विषय-भोग की इच्छा, और लोभ भस्म करके नष्ट कर दिए गए थे जिसके कारण उनकी वाणी में वह प्रभाव, मुख पर वह तेज और शरीर में वह शक्ति उत्पन्न थी कि प्रत्येक हृदय, जिस पर प्रेम के रंग ने तनिक भी प्रभाव किया है, तत्काल प्रभाव-कारी होता था; और हज़ारों हरिजनों से, जो परस्पर धार्मिक मतभेद रखते हैं, यह कहला लिया था कि यदि परमेश्वर के दर्शन बिना मूर्तिपूजन के नहीं मिल सकते हैं तो हम क्यों न इस जीती-जागती बोलती-चालती मूर्ति की साकार पूजा करें ? या अमेरिका में पक्के निश्चयवाले ईसाइयों की जिह्वा पर यह वाक्य आ ही तो गया कि हम बाइबिल में हज़रत ईसा का ज़िक्र सुनते हैं, क्यों न हम इस ईसावत् मनुष्य से प्रेम करें ? समस्त सांसारिक इच्छाओं से विनिर्मुक्त, अपने शरीर से जो उन समस्त सुखों और सुविधाओं से निर्मित हुआ (कि जो एक भद्र मध्यश्रेणी के घराने में मिल सकते हैं) परंतु उन समस्त विपत्तियों को सहन किए हुए जिन्हें शरीर सहन कर सकता है, गरमी में गरमी न माननेवाला, और जाड़ों में जाड़ा सहन करनेवाला प्रति समय आत्मानंद में वह मग्न और मस्त था। स्वामी रामतीर्थजी वही काम कर रहे थे जो बड़े-बड़े धर्म-नेताओं ने किए थे। यद्यपि इसको यत्किंचित् अत्युक्ति कहा जाय, किंतु इसके इतना कहने में दोष नहीं है कि

इतिहास में अन्य महान् धर्म-नेताओं की भाँति देश की भलाई के लिये समय की चादर पर आप अपना चिह्न बना गए हैं।

धर्म-नेताओं से यह प्रयोजन नहीं कि वह कोई नया मत स्थापित कर गए हैं, अथवा कोई संप्रदाय बना गए हैं। नहीं, अहंकार से वह दूर थे। उनका मिशन केवल यह था कि भारतवासी केवल अपनी पिछली भूलों से जानकार होकर जाग्रत् हों और अपनी आत्मिक भलाई करते हुए तथा देश को वर्तमान विपत्तियों से बचाते हुए अपनी अनंत शक्तियों को काम में लाकर स्वयं आनंदित हों। उनका मिशन चूँकि भक्ति और प्रेम की नींव स्थापित करना है, अतएव वह किसी विशेष जाति या संप्रदाय में परिमित नहीं है, प्रत्येक संप्रदाय में प्रेम उत्पन्न कराने का दावेदार है, और सांसारिक सुखों को वास्तविक सुख, संसार की कीर्ति और ख्याति को यथार्थ कीर्ति और ख्याति नहीं समझनेवाला है, अतः इन जातीय पक्षपातों को मिटानेवाला है जिनसे सज्जित होकर लोग छाया के पीछे-पीछे दौड़ते हैं। कर्तव्यपालन को श्रेष्ठ धर्म निश्चय करके स्वामीजी महाराज लोगों को कर्मकांड के बखेड़ों से स्वतंत्रता दिलाकर चाहते थे कि यदि कर्मकांड या यज्ञ करना है, तो ऐसा यज्ञ किया जाय कि अपने से कम समझ, अपने ही स्वरूपों को (जो अद्वैत स्वरूप से भिन्न न होकर भी अपने को अज्ञान

के कारण भिन्न समझे हुए हैं) निज स्वरूप से परिचित करने के लिये जाग्रत् किया जाय । अपने भाग्य के स्वयं निर्माता होकर मनुष्य से स्वामीजी महाराज यों कहते हैं कि सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दासता केवल अनुचित इच्छाओं का परिणाम है, अतः कामनाओं की कमी की जाय, और निष्काम भाव से कर्तव्यपालन को सर्वश्रेष्ठ धार्मिक सेवा समझकर वही सच्ची इष्टोपासना समझी जाय । अपना अहंभाव मिटाकर अपना अस्तित्व भिन्न न समझकर मनुष्यत्व की भलाई और उन्नति के लिये शरीरत्व निछावर कर देना जीवन-मुक्ति है । यह शिक्षा स्वामी रामतीर्थजी महाराज की थी जो नगर-नगर फैलाते हुए वह घूमते थे । वेदांत के विरुद्ध बड़ा लांछन यह लगाया जाता है कि वह मनुष्य को मृत बना देता है, किंतु स्वामीजी की शिक्षा नवजीवन उत्पन्न करनेवाली और नई फुरना डालनेवाली थी । घर में औषधिपूर्ण बोतलें रखने से जिस प्रकार कोई रोगी पूर्ण स्वास्थ्यलाभ नहीं कर सकता, इसी तरह नाना कामनाओं में ग्रसित मनुष्य वाणी से अपने आपको ब्रह्म कहकर ठीक मुक्त नहीं हो सकता है । उसी प्रकार कर्मकांड का पालन, धर्मग्रंथों के प्रमाण और उनमें विश्वास लाने से अंतःकरण की शुद्धि और बिना इस विचार पर व्यवहार किए हुए कि 'वह नाम-रूप से भिन्न है, वह शरीर नहीं है',

कदापि वास्तविक आनंद को प्राप्त नहीं कर सकता है। शरीर को किसी उत्तम उद्देश की प्राप्ति के लिये बलिदान कर देना और इस विश्वास से कि "हम न कभी मरते हैं और न मरेंगे, शरीर के साथ नष्ट न होंगे", इस शरीर की चिंता न करना और निष्काम-भाव से युक्त कर देना, यह ज्ञानप्राप्ति और आनंदलाभ करने का एकमात्र साधन है।

आवश्यकता है कि मनुष्य अनुभव करे कि वह स्वयं वही तेज है जिसने समस्त संसार को प्रकाशित कर रक्खा है। आवश्यकता है कि वह समझे कि पड़ोसी हिंदू या मुसलमान गैर नहीं है, वरन् अपना प्रकाश है। यह समझकर कि परमेश्वर का उत्तम मंदिर या उपास्य स्थान मानुषी नाम-रूप है कि वह किसी मानव-शरीर का अपमान देखकर, अपने से तुच्छ देखकर, प्रसन्न होने के स्थान पर अपने आनंद में विघ्न समझे। वास्तविक जीवन, न कि मौखिक दावों की आवश्यकता है। 'धर्म-धर्म' पुकारने से नहीं, वरन् आचरण करने से मनुष्य आनंद से लाभ उठा सकता है। धर्म से अपरिचित रहकर भी मनुष्य अपना अहंभाव मिटाकर अपने आपको भिन्न न समझकर आत्मिक आनंदलाभ कर सकता है। स्वामीजी ने स्वतः इस थोड़े-से काल में एक हलचल-सी उत्पन्न कर दी थी। भारत और अमेरिका में आपके सच्चे भक्तों की संख्या सहस्रों तक पहुँच गई जिनकी

जीवनी पर आपने गंभीर प्रभाव उत्पन्न किया था। उस समूह में उन लोगों का सम्मिलित होना कि जो संसार के उद्यम में पूरा भाग ले रहे हैं, इस लांछन को मिथ्या सिद्ध कर रहा है कि वेदांत लोगों को मुर्दा बनाता है। परमहंस रामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद-मिशन कलकत्ता की तीन शाखाएँ (बनारस में साधुओं का आश्रम, कनखल में अस्पताल, मायावती में आश्रम) बतलाती हैं कि यह लांछन मिथ्या है कि वेदांत लोगों को निष्क्रिय और निश्चेष्ट कर देता है। केवल धार्मिक आवेश, सेवा का विचार और 'सेवा में ही आनंद है', इस पूर्ण निश्चय के सिवा कौन वस्तु संसारत्यागी शिक्षित संन्यासियों को प्रसन्न करती है कि वह प्लेगग्रसित रोगियों की सेवा करें, रास्ते साफ़ करें, ग़रीबों की रोग-सेवा और साधुओं एवं यात्रियों की सहायता करें।

यह अवसर नहीं है कि सारे आक्षेपों का यहाँ उल्लेख किया जाय जो वेदांत की शिक्षा पर किए जाते हैं, केवल इतना कहना यथेष्ट है कि स्वामीजी का वेदांत उस वेदांत से नितांत भिन्न था जो निष्क्रिय जड़ता की शिक्षा देता है। स्वामीजी तो जानते ही थे कि उन्नति का नाम ही जीवन है। जो मनुष्य उन्नति की कामना नहीं करता है, वह संसार से मिट जाता है। जिन जातियों ने अपनी

दशा पर संतोप कर लिया है, जिन्होंने उन्नति का प्रयत्न नहीं किया है, जिन्होंने आगे बढ़ने की इच्छा नहीं की है, वह मिट गईं और मिटती जाती हैं। जब एकता से भिन्न होकर मनुष्य के आगे उन्नति के लिये क्षेत्र विस्तृत है, तो जो जातियाँ या लोग अपने आपको किसी विशेष सीमा तक पहुँचकर आगे बढ़ना नहीं जानते हैं, गिरते हैं और बहते हुए काल की नदी में विलीन हो जाते हैं। उन्नति के लिये हर घड़ी, हर पल गतिशील होना आवश्यक है, और जब कभी इससे प्रमाद किया गया, जातियाँ और देश तबाह हो गए। कैसी ही दशा में कोई जाति हो, अधीनता में या स्वतंत्र, उसके लिये उन्नति का विस्तृत क्षेत्र है। यदि शरीर पराधीनता में है, चिंताओं में ग्रस्त है, तो आत्मा स्वतंत्र है, और उसकी उन्नति को, जिस पर समस्त उन्नतियों का अवलंबन है, कोई रोक नहीं सकता है। निष्काम कर्म उन्नति के लिये सर्वश्रेष्ठ सीढ़ी है, जो स्वामी रामतीर्थजी महाराज सबके समक्ष उपस्थित करते हैं, और चाहते थे कि किसी की साक्षी पर नहीं, स्वतः अनुभव करके, किसी पुस्तक या वाक्य के अनुसरण में नहीं, वरन् अपनी बुद्धि पर भरोसा करके उससे लोग काम लें, और भारत को उन समस्त देशों के साथ उन्नति-पथ पर लाएँ, जिन देशों में देखने को चाहे हमारे यहाँ

की तरह 'धर्म-धर्म' की पुकार न हो, किंतु व्यावहारिक जीवन में सत्य अपने आचरण में हो। जो जातियाँ जितनी ही वाह्य रूढ़ियों के पालन से मुक्त हैं, कि जो आवश्यकता के समय स्थापित की गई थीं, जो जातियाँ अपनी बनाई हुई स्वार्थ-परता की दीवारों से जितनी ही कम एक मनुष्य को दूसरे से पृथक् समझती हैं, जो कम स्वार्थपरता का जीवन बिताती हैं, वे ही आत्मिक उन्नति करती हैं, और इच्छानुसार भौतिक उन्नति में भी पग आगे बढ़ाती हैं। स्वार्थपरता, अहंकार और पक्षपात जातियों को उसी तरह नष्ट कर देता है, जिस तरह कि किसी वंश या व्यक्ति को त्याग और जितेंद्रियता उन्नति दिला देती है। जिन लोगों में जितनी त्यागशक्ति है, उतनी ही सफलता प्राप्त होती है। अतः उन्नति का श्रेष्ठ द्वार सांसारिक पदार्थों का त्याग है।

स्वामीजी महाराज किसी नए संप्रदाय या मत की नींव डालना नहीं चाहते थे। देश में मत-मतांतर की कमी नहीं है। वह नहीं चाहते थे कि कोई नया मत स्थापित हो। वह इसके विरुद्ध थे कि नई चारदीवारी खड़ी करके अपनी शिक्षा से ऐसे लोगों को वंचित करें कि जो चारदीवारी के भीतर नहीं रह सकते हैं, किंतु साथ ही इसकी आवश्यकता थी कि संगठन के गुणों से (जिसके द्वारा विजय ने पश्चिम में बहुत प्रभाव डाला है)स्वामीजी लाभ

उठाने और एक स्थान में केंद्र बनाकर उन तीन समूहों में जागृति उत्पन्न करने का काम अपने ऊपर लेते जिनमें जागृति पर देश की उन्नति निर्भर है। बच्चे, स्त्रियाँ और साधु राम महाराज के विशेष ध्यान के अधिकारी थे, उन्हीं के सुधार से देश का सुधार होता है। जिस दिन से आपने गृहस्थ-आश्रम छोड़ा, धन की ओर आपने दृष्टि नहीं उठाई। सारा संसार घूम आए, किंतु पैसे को हाथ नहीं लगाया, पैसा हर जगह सेवकाई करने को स्वतः उपस्थित था। विष्णु प्रसन्न, लक्ष्मी सर्वत्र आपकी सेवा करने को उपस्थित थीं। लक्ष्मी अमेरिकन पुरुषों और स्त्रियों, भारत के महाजनों, जमींदारों और राजाओं के रूप में महाराज की जिह्वा के संकेत की ओर देख रही थीं कि मैं कोई सेवा कर सकूँ। देश के नवयुवक शिक्षा के भूखे सैकड़ों की संख्या में दंडवत् करने को प्रतीक्षक थे, साधु आपके सत्संग में समय बिताना अपना सौभाग्य समझते थे। हरिद्वार, ऋषीकेश, उत्तरकाशी में कौन लिखा-पढ़ा साधु है जिसके चित्त पर महाराज ने कुछ न कुछ प्रभाव नहीं डाला। कितने साधु हैं जो मानवी सेवा में जीवन बिताने को तैयार नहीं थे। छः-सात साल के प्रयत्न में क्षेत्र तैयार हो गया, बीज बोने की आवश्यकता थी, भारत का सौभाग्य है कि स्वामी रामतीर्थजी महाराज ने अपना

शरीर उस पर बलिदान कर दिया था, इससे बढ़कर कौन-सा यज्ञ हो सकता था। इस यज्ञ से बड़े-बड़े फल प्राप्त होंगे। चारों ओर इस यज्ञ की धूम है। इस यज्ञ में अपने अहंकार की आहुति डालकर सम्मिलित होने के लिये देश के नवयुवक तैयार हों। स्वामीजी का आदर्श सामने रखकर अपने आपको मातृभूमि पर बलिदान करनेवाले बनें। वह दिन आएगा कि इस प्रकार का यज्ञ प्रत्येक नगर में होगा और इंद्रियदमन करनेवाले लोग हर गाँव और हर नगर में पाए जायँगे। किंतु यज्ञ करानेवालों की आवश्यकता है। जब तक स्वामी रामतीर्थजी महाराज इस संसार में रहे, उन्होंने इस आवश्यकता को पूरा किया। हजारों वरन् हम कह सकते हैं कि लाखों आँखें आपकी ओर लगी हुई थीं। प्रेम से प्रेम और आनंद से आनंद उत्पन्न होता है। आपके मुखमंडल के दर्शन करके आनंद और आपके सच्चे प्रेम को देखकर जी भर आता था। उस दिन की प्रतीक्षा है कि प्रेम और आनंद की धारें एक स्थान से सारे देश में बहें और देश की वृत्ति सत्य की ओर जागृति में लगे। भारत का प्रत्येक व्यक्ति समझे कि उसमें सीमातीत उन्नति करने की शक्ति विद्यमान है, कोई शक्ति उसे उन्नति से रोक नहीं सकती। कोई रुकावट उन बहादुरों को आगे बढ़ने से नहीं रोक सकती है

जिन्होंने संकल्प कर लिया है कि हम आगे पग बढ़ाएँगे, और जो समझते हैं कि आगे पग बढ़ाने में यदि यह शरीर भी न रहे तो हरज नहीं, क्योंकि हम इस शरीर के साथ नहीं मरेंगे; भारत, जिसमें आज भी हज़ारों मनुष्य प्रतिवर्ष नित्य आनंद की प्राप्ति में जान देते हैं, उत्तम मोक्षप्राप्ति के साधन में कठोर से कठोर श्रमकष्ट सहन करते हैं, विपत्तियाँ उठाते हैं, सारे जीवन की कमाई न्योछावर कर देते हैं। समझे, केवल समझे ही नहीं, वरन् उस पर आचरण करके देख लो कि मोक्ष प्रत्येक मनुष्य के हाथ में है, यदि वह जाने कि मैं कौन हूँ और मेरी सत्यता क्या है ?

२—स्वामी राम की यादगार

[लेखक, रायबहादुर ला० बैजनाथ साहिब बी० ए० जज]

यह सामान्य नियम है कि धर्म प्रत्येक युग का अलग-अलग होता है। जो धर्म सत्ययुग में था, वह अब नहीं है। यह नियम गृहस्थों से भी उतना ही संबंध रखता है, जैसा कि संन्यासियों से। अतः पूर्वकाल में संन्यासी जंगलों में रहकर अपने शिष्यों को ब्रह्मविद्या पढ़ाया करते थे, फल-फूल खाकर निर्वाह करते थे, लोग उनके पास ब्रह्मविद्या सीखने जाते

थे और कभी-कभी राजाओं की सभाओं में जाकर उनको उपदेश करते और उनके दोष प्रकट करते थे। अर्थात् वे वह काम करते थे जो आजकल समाचारपत्र करते हैं। उदाहरण के लिये नारदजी ने राजा युधिष्ठिर से, जब उनको इंद्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली का राज मिला, विस्तार के साथ पूछा कि तुम अपनी प्रजा की रक्षा के लिये क्या-क्या करते हो? तुममें वे १४ दोष, जिनसे राज्य नष्ट हो गए, हैं या नहीं? अर्थात् १. नास्तिकपन, २. झूठ, ३. क्रोध, ४. प्रमाद, ५. लापर्वाही, ६. योग्य पुरुषों का निरादर, ७. आलस्य, ८. चित्त की अस्थिरता, ९. केवल एक मनुष्य की सम्मति पर निर्भर करना, १०. ऐसे लोगों से सम्मति लेना जो सम्मति देने के अयोग्य हों, ११. एक नियत बात को छोड़ना, १२. भेद का खोलना, १३. शुभ कार्य को पूरा न करना, १४. विना विचारे किसी काम को करना। इन दोषों से वे राज्य भी, जो कि सुदृढ़ थे, नष्ट हो गए।

अब वह समय नहीं रहा, न वह संन्यासी हैं, न गृहस्थ। वरन् आजकल के संन्यासियों को भी गृहस्थों की नाईं समय के साथ चलना पड़ेगा, अर्थात् अपने विचारों को न केवल पूर्वीय वरन् पश्चिमीय विज्ञान और तत्त्वज्ञान से पूर्ण करके, न केवल एकांतवास या ईश्वर-स्मरण में, शाब्दिक वादानुवाद या मठों या दावतों (भंडारों, भोजन)

में सदैव अपना समय व्यय करना होगा, वरन् संसार में रह कर उसके वासियों को अपने उत्तम बर्ताव और उपदेशों से कृतार्थ करना पड़ेगा। ऐसे साधुओं में स्वामी रामतीर्थजी थे। उनको जो अनुभव अन्य देशों में प्राप्त हुआ, वह उनके व्याख्यानों में, जो भिन्न-भिन्न पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं, इस उद्देश्य से प्रकट किया गया है कि भारतवर्ष की उन्नति में उससे क्या लाभ हो सकता है।

स्वामीजी महाराज एक प्रतिष्ठित ब्राह्मणवंशी पंजाब के रहनेवाले थे। आपने १८९५ ई० में पंजाब-युनिवर्सिटी में डिगरी पाई और गणित-शास्त्र के प्रोफ़ेसर रहकर बहुत समय तक लाहौर में रहे। १९०१ ई० में आपने केवल इस उद्देश्य से कि ब्रह्मविद्या केवल पुस्तकीय विषय नहीं वरन् अनुभवी वस्तु है, समस्त संबंधों को त्यागकर हिमालय के वन-गुफाओं में, एकांत में रहना स्वीकार किया और कुछ काल के अभ्यास से यह जान लिया कि जो वस्तु पुस्तकों में लिखी है, वह केवल काल्पनिक नहीं है, वरन् यथार्थ और अनुभवसिद्ध है। फिर पहाड़ से उतरकर मथुरा, आगरा और लखनऊ आदि में बहुत-से व्याख्यान दिए। और अगस्त, १९०२ ई० में आप जापान होते हुए अमेरिका पहुँचे। वहाँ पर आप ढाई वर्ष के लगभग रहकर फिर भारतवर्ष में पधारे। आपको योरप के विज्ञान और दर्शन से वैसी ही

जानकारी थी, जैसे हमारे यहाँ के शास्त्रों से। अतः जो कुछ आपने कहा, वह निज अनुभव का फल था। आशा है, उनके उपदेश पर हम सब लोग आचरण करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वामीजी में भक्ति और ज्ञान, दोनों इस सुंदरता से थे कि जो प्रायः लोगों में कम देखने में आते हैं। उनको मौलाना रूम, शम्स तबरेज़ और हाफ़िज़ की रचनाओं में उतनी ही गति थी जितनी कैंट, हेगल, फ़िगटे, शोपनहार, स्पाइनोज़ा आदि जर्मन-तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा सुक़रात, अफ़लातून, अरस्तू आदि यूनानी तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा कारलाइल, कूपर, टेनीसन आदि इँगलैंड के तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा इमर्सन, थोरो, वाल्ट ह्विटमेन आदि अमेरिकन तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा उपनिषद् और उसके व्याख्याकार शंकर, नानक, कबीर, गौतम, बुल्लाशाह आदि भारतीय तत्त्ववेत्ताओं में थी। उन्होंने जो परिणाम इन सबके वाक्यों पर विचार करके निकाले, वह यह सिद्ध करते हैं कि एक शिक्षित पुरुष यदि सत्य का ज्ञान करने की ओर ध्यान दे, तो ज्ञान पा जाने से वह दूसरों पर किस सौंदर्य और उत्तमता के साथ उसे प्रकट कर सकता है। यह सत्यता सब देशों और सब भाषाओं में एक ही है और एक ही रहेगी। केवल उसके प्रकट करने के ढंग अलग-अलग हो सकते हैं। और जो कुछ दोष उसके प्रकट करने में हो सकता है, वह केवल इस

कारण से होता है कि मनुष्य केवल नाम-रूप में बद्ध रहकर उसको प्रकट करता है। अतः यदि उस व्यक्ति का (जो उस सत्यता को प्रकट करना चाहे) हृदय का दर्पण इतना मलिन हो जिसमें उसका प्रतिबिंब साफ़ न पड़ सके, तो उसका उस सत्यतानिमित्त वर्णन भी दोषपूर्ण होगा। यदि उसका हृदयदर्पण निर्मल होगा, तो उसका वर्णन भी विमल होगा। यही अंतर उन लोगों में है कि जो अनुभव से सत्यता को प्रकट करते हैं और उन लोगों में जो अध्ययन या श्रवण से करते हैं।

मनुष्य के लिये केवल वह वस्तुएँ, जो ज्ञानेंद्रियों से जानी जाती हैं, असली नहीं हैं ; वरन् उनसे अधिक एक और वस्तु असली है, जो न ज्ञानेंद्रियों के अधिकार की सीमा में है और न जिह्वा से कही जा सकती है, और न विचार में आ सकती है। वह वस्तु क्या है, उसको कोई प्रकट नहीं कर सकता। केवल उसको दूर से व्यंजना के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। या यह कहा जा सकता है कि 'वह यह नहीं है, यह नहीं है।' यही शैली हमारे यहाँ के शास्त्रों में वैसी ही ग्रहण की गई है, जैसा कि योरप के तत्त्वज्ञान में। इसीलिये महाभारत में कहा गया है कि वह वस्तु जो सत् है, वेदों से नहीं जानी जाती, तो भी वेद उसके बताने के द्वार हैं। जैसे कि द्वितीया के चंद्रमा को दिखलाने के लिये किसी वृक्ष की

टहनी दिखाई जाती है और कहा जाता है कि उस टहनी से परे जो वस्तु है वही चंद्रमा है, ऐसे ही यह सब तत्त्व-ज्ञान, धार्मिक पुस्तकें और धर्मोपदेष्टा केवल दृष्टि जमाने के लिये टहनियाँ हैं, उससे आगे प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने अंतःकरण की शुद्धि और अभ्यास से सत्यता को पहुँचना पड़ता है। इसी उद्देश्य से सभी धर्मों में त्याग, सत्यता, विश्वास, सदाचरण और अभ्यास पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। तात्पर्य सबका यह है कि मनुष्य प्रथम अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को बिना किसी स्वार्थ के पालन करे, केवल यह समझकर कि उनको पालन करना उसका धर्म है। दूसरे, वह जो कुछ करे वह ईश्वरार्पणबुद्धि से अथवा परमार्थ-मार्ग में करे। तीसरे, सदैव उसी का ध्यान, उसी की भक्ति, और उसी की चर्चा से अपने मन को संसार से हटाकर उसकी ओर दृढ़ रूप से बाँधे। और चौथे, समस्त बाह्य-विषयों को भूलकर अंत में तदाकार अर्थात् तद्रूप हो जाय। यही समस्त संसार के धर्मों का यथार्थ और अंतिम ध्येय है। अतः महाभारत में कहा गया है कि धीर अर्थात् ज्ञानी पुरुष वहीं पर निवास करते हैं, जहाँ सबका मूल वा अंत है; मध्य में निवास नहीं करते। सबके अंत में ठहरना ही यथार्थ कल्याण है। जो कुछ अल्प लाभ है, वह मध्य में ही ठहरने में है। अतः

धर्माधर्म के विचार को भी त्याग दो, सत्य और मिथ्या के विचार को भी त्याग दो, और इन दोनों को त्यागकर उस विचार को भी त्याग दो जिससे इनको छेड़ा था। अर्थात् सब विचारों को अपने मन से हटाकर, धर्माधर्म और सत्यासत्य को मन से ऐसा दूर कर दो कि वह वस्तु जो वस्तुतः सत्य है, उसमें मन लीन हो जाय। और फिर यह विचार कि वह लीन हो गया, उसको भी उड़ा दो। यही धर्म और शास्त्र की परमावस्था है, और इसी पर समस्त उपासना और ज्ञान का अंत है, और इसी को इन व्याख्यों में प्रकट किया गया है। "नक़द धर्म" से, जैसा कि स्वामी रामतीर्थजी कहते थे, तात्पर्य यह है कि अपने कर्त्तव्य को कर्त्तव्य जानकर बिना किसी निजी हानि-लाभ के विचार के पूरा करो, और 'फ़र्ज़े-औला' अर्थात् आत्मकृपा से तात्पर्य यह है कि अपनी आत्मा को जो सत्य है, उसको सबकी आत्मा में अर्थात् सबमें उपस्थित और विद्यमान देखो, और वह परिच्छिन्नता का आवरण, जो तुमको दूसरों से पृथक् करता है, उसको तोड़कर नाम-रूप के बंधन से मुक्त होकर जैसे तुम वास्तव में हो, वैसे ही हो जाओ। जितना भेद और भिन्नता एक जाति या धर्म-संप्रदाय का दूसरी जाति वा धर्म-संप्रदाय से है, वह केवल इस कारण से है कि

मनुष्य ने स्वयं अपने अज्ञान से अपने आपको उस बंधन में, कि जिसमें उसको नहीं डालना चाहिए, डाल लिया है। इसी से यह समस्त झगड़ा मेरे-तेरे का है। जब यह अज्ञान, सत्य-ज्ञान के दीपक से काफ़ूर की भाँति काफ़ूर (दूर) हो जायगा, तो फिर यह कहना कि तुम हिंदू हो, मैं मुसलमान हूँ, वह ईसाई है, वह यहूदी है, कहाँ रहेगा ? यही तात्पर्य स्वामी राम के लेख 'अकबरे-दिली' का है, अर्थात् अपने हृदय को ऐसा विशाल बना लो कि कोई स्थान इन छोटे और परिच्छिन्न विचारों का "कि तुम्हारा धर्म और है, मेरा धर्म और है, मैं तुम नहीं, तुम मैं नहीं" शेष न रहे। यही बर्ताव का ढंग समस्त संसार के ऋषियों, पैग़म्बरों और धर्मप्रवर्तकों का रहा है। संसार के लोग उनको अपने से गया-गुज़रा कहते हैं। निःसंदेह वह अपने से गए-गुज़रे थे, अर्थात् अहंभाव से परे हो गए थे। किंतु संसारी लोग उनको उनके जीवन-काल में न पहचान सके, वरन् उनके बाद उनको समझे। इसी कारण से श्रीकृष्णजी को दुर्योधन और शिशुपाल आदि ने धूर्त और छलिया कहा, बुद्ध को नास्तिक बतलाया, शंकर को अप्रकट (भीतर से) नास्तिक कहा, सुक़रात को विष का प्याला पिलाया गया, मसीह को सलीब पर और मंसूर को दार (सूली) पर चढ़ाया गया। ये लोग उस समय तो पागल

समझे गए, परंतु उन्हीं के पागलपन के स्रोत की एक तरंग ऐसी है जो मनुष्य को जीवित और स्थिर रखती है। अतः ऐसे लोगों को संसार कुछ कहे, उनका काम उनके शरीर से पृथक् होने के पश्चात् फलता है। इसी कारण से कहा गया है कि सच्चा संन्यासी वही है जो अपने शरीर को मानवी कल्याण के वृक्ष की खाद बना दे।

स्वामी रामतीर्थजी ने जितने दिन वह अमेरिका और जापान में रहे, अपना नफ़सकुशी (आत्मनिग्रह वा स्वार्थ-त्याग) का वही स्वभाव रक्खा, जो भारत में था। यहाँ तक कि चिरकाल तक केवल शाकाहार और दूध-पान करके अपना निर्वाह किया। भारतवर्ष में लौट आकर भी उन्होंने वही ढंग जो ऋषियों का था जारी किया, अर्थात् इस बात को उचित न समझा कि वेदांत का जाननेवाला सर्वभक्षी अर्थात् बिना विचारे प्रत्येक वस्तु का खानेवाला या सर्ववर्ती, अर्थात् सामाजिक सिद्धांतों की उपेक्षा करके शुभाशुभ-विवेक त्याग कर जैसे चाहे वैसा कर्म करनेवाला हो। परंतु इससे एक बहुत बड़ा उपदेश मिलता है जो इस समय के साधुओं को सीखना चाहिए। योगवाशिष्ठ में कहा गया है कि ज्ञानी के यही बाह्य चिह्न हैं कि उसके काम अर्थात् विषय-इच्छा, क्रोध, लोभ और मोह नित्यप्रति कम होते जायँ।

इस समय हमारे यहाँ धार्मिक संप्रदायों और जातीय प्रभेदों की कुछ कमी नहीं, और वर्तमानकालिक शिक्षा एवं नए-नए विचारों की बदौलत प्रत्येक धर्म और संप्रदाय के लोग अपनी-अपनी सामाजिक और धार्मिक दशा को सुधारने पर तुल गए हैं। प्रत्येक स्थान पर धार्मिक और जातीय सुधार की सोसाइटियाँ मौजूद हैं, सैकड़ों पुस्तकें इन विषयों पर प्रतिदिन प्रकाशित होती हैं, हर वर्ष हर संप्रदाय के लोग जल्से करते हैं, परंतु जहाँ तक देखा जाता है, धर्म और सोसाइटियों की दशा में कुछ अच्छाई नहीं दिखाई देती। पूर्वकाल में जब इतनी सोसाइटियाँ, इतनी पुस्तकें और इतने समाचारपत्र एवं उपदेश नहीं थे, एक मनुष्य सारे देश को हिला सकता था। गौतम बुद्ध के समय में कौन-सी सोसाइटियाँ और समाचारपत्र थे, परंतु बुद्ध-धर्म आज संसार के समस्त धर्मों से अधिक फैला हुआ है। शंकरजी महाराज ९ वर्ष की आयु में घर से बाहर निकल कर अकेले लँगोटीबंद, अमरकंटक में नर्मदा के किनारे श्रीगोविंदाचार्य के शिष्य हुए और फिर १५ वर्ष की आयु तक बदरीनाथ में रहकर वह १६ व्याख्याएँ उपनिषदों, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्रों आदि पर कीं जो जब तक संसार स्थित है, तब तक रहेंगी। और नारदकुंड में डुबकी लगाकर बदरीनाथ की मूर्ति निकाली। लेखक ने उस स्थान

को देखा है। वहाँ पर ज्येष्ठ के महीने में इतनी सरदी थी कि पानी में हाथ डालना असंभव था, और गंगा के प्रवाह का वेग और पानी का भँवर ऐसा था कि ख़याल में भी नहीं आ सकता कि कैसे कोई व्यक्ति डुबकी लगाएगा। फिर १६ और २६ वर्ष की आयु के मध्य में ऐसे प्रसिद्ध और सुयोग्य पंडितों को, जैसे कि मंडन मिश्र, प्रभाकर और कुमारिल भट्ट आदि थे, शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया और अनेक मंदिरों को, जो नष्ट हो गए थे, नए सिरे से स्थापित किया। यही दशा रामानुज, नानक और कबीर की थी। ये लोग न सोसाइटियों में काम करते थे, न इनके पास रुपया था, न कोई सांसारिक सामान था, न इनका कोई सहायक था, वरन् सब ओर से इनका विरोध होता था। सूरदास ने अंधेपन की दशा में श्रीकृष्ण की भक्ति में एक लाख भजन लिखे, जो प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर अब तक हैं। तुलसीदास को उनकी स्त्री ने यह कहकर कि जैसे तुम मेरे इस अपवित्र शरीर पर लट्टू हो वैसे यदि तुम श्रीरामचंद्र के ऊपर मोहित हो जाओ, तो तुम्हारी मुक्ति हो जाय, ऐसा भक्त और ज्ञानी बना दिया कि उनके वचनों का हर छोटे-बड़े पर अब तक प्रभाव मौजूद है। वर्तमान काल में भी केशवचंद्र सेन, स्वामी दयानंदजी और ईश्वरचंद्र विद्यासागर भी बिना किसी

सांसारिक सामान के ऐसे हुए कि जिन्होंने देश की दशा में कुछ न कुछ परिवर्तन कर दिया। इसका कारण यह था कि इन सब लोगों को एक बात की धुन लगी थी और वह उस धुन में अपने को भूल गए थे। इसी कारण वह लोगों को अपने साथ खींचे लिए चले जाते थे। और चूँकि इस समय के सुधारकों और जल्सा करनेवालों में ऐसी धुन अपेक्षाकृत कम है, इसलिये उनके वचनों का प्रभाव भी वैसा ही है। चारों ओर से यही कोलाहल सुनाई पड़ता है कि 'धर्म को बढ़ाओ, धर्म को बढ़ाओ', परंतु धर्म वैसे का वैसा ही दुर्बल और निर्जीव है। पहले समयों में इतना कोलाहल तो नहीं सुनाई देता था, परंतु धर्म कुछ न कुछ बढ़ जाता था। कारण यह था कि जो धर्म के बढ़ानेवाले थे, उन लोगों ने पहले अहंकार को मिटा दिया था, आत्म-सुधार कर लिया था, सारे संसार को अपना समझ लिया था और फिर कमर बाँधकर जाति-सुधार के मैदान में कूदे थे। इस समय जहाँ तक दृष्टि डाली जाती है, ऐसे मनुष्य न साधुओं में दृष्टिगोचर होते हैं, न गृहस्थों में। साधु बेचारे तो अपने मठों और शाब्दिक झगड़ों वा भंडारों में ऐसे प्रवृत्त हैं कि उनको दूसरों की भलाई सोचने का अवकाश ही नहीं है। गृहस्थों में जो बेचारे ग़रीब और निर्धन हैं, उनको न पेट को रोटी है

और न तन को कपड़ा है, और समस्त आयु पेट के धंधों में ही पिस कर मर जाते हैं । मध्य-श्रेणी के लोगों को अपने व्यापार और धंधे, और शोक के साथ कहना पड़ता है, कि मुक़दमेबाज़ी और झगड़ों से इतना समय नहीं मिलता कि वह भविष्य की कुछ सोचें । वह लोग जो शिक्षित समझे जाते हैं, वह बेचारे भी इधर अपनी रोटी की चिंता में व्यतिव्यस्त हैं, उधर आधुनिक शिक्षा ने उनको लोगों से ऐसा पृथक् कर दिया है कि अन्य अनेक भारतीय जातियों के अतिरिक्त एक जाति शिक्षित लोगों की भी होती जाती है जिसका सर्व-साधारण से बहुत कम संबंध है । रईसों, बड़े आदमियों और राजाओं को अधिकतर भोग-विलास से अवकाश नहीं मिलता, तो फिर यदि जाति अथवा धर्म का सुधार न हो, तो आश्चर्य ही क्या है ? और जब तक इन सब ख़राबियों की जड़ दूर न होगी, यहाँ के लोग अपने आपको उस 'नक़द धर्म' के अनुसरण करनेवाले, उस 'आत्म-कृपा' के अधिकारी और उस 'अकबरे-दिली' के रखनेवाले, जिसे स्वामीजी महाराज ने बताया है, न बनाएँगे, तब तक देश के सुधार की आशा नहीं हो सकती । हमारे समस्त शास्त्रों का अंत इस बात पर है कि "वही देखता है, जो अपने समान सबको देखता है ।" सारे धर्म का निचोड़ यही रक्खा गया है

कि "मत करो वह काम दूसरों के लिये जिसको स्वयं तुम अपने लिये करने को तैयार नहीं।" बौद्धिक तर्कों और वाद-विवादों की कुछ सीमा नहीं है। हर संप्रदाय और मतों की आज्ञाएँ भी अलग-अलग हैं, प्रत्येक बुद्धिमान् अपनी-अपनी कहता है, अतः धर्म की असलियत का जानना अति कठिन है, परंतु उसकी कसौटी यह है कि वह वस्तु जिसपर समस्त संसार के लोगों को मतभेद न हो और जिसको सब एकमत होकर मानें, वही सच्चा है। वह धर्म वही है जो ऊपर कहा गया है, और उसी को स्वामीजी ने अपने लेक्चरों में भी प्रकट किया है। आशा है, इनसे लोगों को लाभ होगा। सांसारिक लोग अपने कर्त्तव्यों को उत्तम रीति से पालन करना सीखेंगे, शिक्षित लोग अपने अशिक्षित भाइयों से भिन्नता का आवरण उठा देंगे, साधु-संन्यासी शाब्दिक झगड़ों तथा मठों वा चेलों और भंडारों पर ही निर्भर रहना छोड़कर देश की भलाई में लगेंगे, और अपने आत्मा को सबका आत्मा जानेंगे। यदि इन व्याख्यानों से यह प्रयोजन कुछ भी पूरा होगा, तो मानो स्वामीजी की एक जीवित और चिरकालिक स्मृति (यादगार) स्थापित होगी।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

३–स्वामी रामतीर्थ

[लेखक, "वनस्पति"]

स्वामी रामतीर्थ की असामयिक घटना अभी कल की बात है। इनके जल-समाधि लेते ही सच तो यह है कि इस देश की बहुत-सी आशाओं पर पानी फिर गया और बहुत-सी अभिलाषाओं का खून हो गया, बहुत-सी लालसाएँ मन की मन ही में रह गईं, और बहुत-सी उमंगें उभरते-उभरते बैठ गईं। इसमें संदेह नहीं कि कई वर्षों से हमारे पथ-आदर्शकों, नेताओं और गौरवास्पद गुरुजनों की यात्रा-मंडली अत्यंत त्वरित गति से परमधाम की ओर प्रस्थानित हो रही है। एक दुःख कठिनता से अंत होने पर आता है कि अकस्मात् दूसरा उपस्थित हो जाता है। दुःख और शोक प्रकट करने के लिये न आँखों में आँसू बाक़ी रहे हैं और न लेखनी और जिह्वा की नोक में बोलने की सामर्थ्य। विपत्ति पर विपत्ति और शोक पर शोक, फिर एक से एक बढ़कर। अंततः मनुष्य है, कहाँ तक धैर्य के साथ सहन करे। शब्द भी इस अवसर पर ऐसे क्षीण और शक्तिहीन दिखाई देते हैं कि उनसे काम लेना एक प्रकार अपने शोक-संताप की गुरुता और गंभीरता को कम करना है। फलतः ईश्वर की इच्छा के सम्मुख सिर झुका लेने के अतिरिक्त और कोई वश नहीं।

स्वामी रामतीर्थजी उन पवित्र आत्माओं में से एक थे, जिनसे बहुत-से पुरुषों को आत्मिक लाभ पहुँचा है। यदि उनकी आयु कुछ दिन और साथ देती, तो एक बहुत बड़े समुदाय का आंतरिक अंधकार बहुत कुछ दूर हो जाता। संयुक्तप्रदेश, जहाँ उनके जीवन का अंतिम समय अतिवाहित हुआ है, थोड़े दिनों उनके प्रवास-प्रतिवास से सौभाग्यशाली हुआ। उनके जीवन का बहुत बड़ा भाग पंजाब में बीता है। संभव है, वह बड़ा भाग सर्व-साधारण की दृष्टियों में, प्रकट-रूप में अधिक मनोरंजक और अर्थपूर्ण न हो, परंतु बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति आरंभिक बातों से पूर्व-पक्ष और उत्तर-पक्ष करके बड़ी-बड़ी गुत्थियाँ सुलझा लिया करते हैं। आरंभ ही से मनुष्य का सांगोपांग पूर्ण होना (जैसा कि मनुष्य पूर्ण हो सकता है) कल्पना योग्य नहीं है, परंतु विकास और पूर्णता के लक्षण बुद्धिमान् और सूक्ष्मदर्शी व्यक्तियों की जानकारी के लिये अत्यंत आत्मानंद और मनस्तुष्टि का कारण हुआ करते हैं। यथा—

साले कि निकोस्त अज़ बहारश पैदास्त।

अर्थ—उत्तम संवत्सर के लक्षण उसके आरंभ ही में प्रकट हो जाते हैं।

स्वामी रामतीर्थजी का जीवनचरित लिखने की, संभव है, विशेष तैयारियाँ हो रही हों, परंतु इस अवसर पर उनके

आरंभिक जीवन के संबंध में कुछ दृश्य लिपिबद्ध करना कदाचित् निरर्थक न होगा।

लेखक का इस ब्रह्मलीन महात्मा के साथ, जब कि वे विद्यार्थी थे, एक दीर्घ समय तक, एक साथ रहने का संयोग हुआ है। जिन दिनों वे फ़ोरमन-मिशन-कॉलेज, लाहौर में प्रोफ़ेसर थे, उन दिनों भी प्रायः उनके दर्शन होते रहते थे। अब तक लेखक का यही खयाल है कि उस समय लेखक से जिस कोटि की बेतकल्लुफ़ी उनके साथ थी, कदाचित् ही लाहौर में उनकी किसी से हो। लेखक के साथ उनके संबंध मैत्री के थे। कुछ समय तक एक ही कमरे में रहने, एक साथ खाने-पीने, उठने-बैठने के कारण हर तरह की बातचीत करने का अधिक अवसर मिला करता था। इस मेल-जोल, स्वभाव-समता और प्रमोद के कारण परस्पर एक प्रेम ही नहीं, वरन् एक आत्मिक संबंध हो गया था। अनेक अवसरों पर, विशेष विश्वास होने के कारण, वह अपने मनोरहस्य भी प्रकट कर दिया करते थे और लेखक भी समयानुसार अपनी सम्मति प्रकट कर देने में आगापीछा न किया करता था। लेखक के निजी सिद्धांत और धार्मिक निश्चयों से वह भली भाँति परिचित थे, और इस कारण वह अपने सिद्धांत और अपने भविष्य कार्यक्रम के प्रकट करने में कभी संकोच न करते थे। यह

बात लेखक के स्वभाव और प्रकृति के विरुद्ध है कि वह पवित्रात्मा और सत्योपासक महानुभावों के सिद्धांतों और कार्य-प्रणालियों को सुनकर कटु आलोचना से काम ले, अथवा अनुचित और विरुद्ध सम्मति प्रकट करे। यही एक विशेष कारण था, जिससे प्रेम का नाता नित नई उन्नति पर रहा।

गोसाईं-वंश में होने के कारण उन दिनों सब लोग उन्हें गोसाईंजी कहा करते थे। यों तो लेखक ने उन्हें पहले भी कई बार देखा होगा, परंतु जब से उनका निवास लाहौर के कायस्थ-बोर्डिंग-हाउस में हुआ, तब से विशेष अनुराग का आरंभ समझना चाहिए। कायस्थ-महाशयों की उदारता के कारण यह बोर्डिंग-हाउस उन दिनों केवल कायस्थ-विद्यार्थियों के लिये सुरक्षित न था, वरन् कभी-कभी इसमें ब्राह्मण और वैश्य आदि विद्यार्थियों की संख्या अधिक हुआ करती थी। आरंभ में गोसाईंजी लाला ज्वालाप्रसादजी के साथ यहाँ पर निवास करने के लिये पधारे थे। उन दिनों लालाजी कदाचित् बी० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। बी० ए०, एल-एल० बी० होने के पश्चात् एक दीर्घकाल से वे फ़िरोज़पुर में वकालत करते हैं। गोसाईंजी इन्हें अपना प्रियजन समझते और गणित सिखाया करते थे। उस समय, यह ठीक

स्मरण नहीं है कि, गोसाईंजी भी उन्हीं के साथ बी० ए० परीक्षा की तैयारी कर रहे थे या क्या। लाला ज्वालाप्रसाद जी अपने विद्यार्थी-काल में भी अमीरी प्रकृति के पुरुष थे। विद्वानों की संरक्षता के अतिरिक्त वे कवियों के भी कुछ कम आदरकर्ता न थे। और यही कारण था कि एकआध कवि सदैव उनकी सेवा में उपस्थित ही रहा करता था। गोसाईंजी का निजी व्यय अति अल्प था और उसका भार संभवतः लालाजी के ही सिर था। लाला साहब गोसाईंजी के साथ इसी बोर्डिंग-हाउस के ऊपर कमरे में रहा करते थे। यह ऊपर का कमरा उन दिनों कुछ जीर्ण दशा में था। इसकी कुछ दीवारें दरक गई थीं, परंतु तत्काल गिर जाने का भय कम था। एक दिन वर्षा वेग से हो रही थी और बिजली खूब चमक रही थी। मेघ का गर्जन भी भयानक था। लालाजी गोसाईंजी के साथ प्राण-रक्षा के विचार से निचले कमरे में आकर बैठ गए। लेखक भी वहीं एक ओर विद्यमान था, इस अवसर पर लेखक को पहली बार यह बात विदित हुई कि गोसाईंजी चारपाई की अपेक्षा भूमि पर शयन करने को अधिक पसंद करते हैं। वे आराम के भी कम अभ्यासी थे। सवेरे लगभग चार बजे जगकर अध्ययन आरंभ कर देते थे। लाला ज्वालाप्रसाद साहिब को वह खुद बड़े

प्यार से जगाया करते थे। लालाजी का सुख-शय्या से चौंककर जगने के लिये तत्परता प्रकट करना और फिर सो जाना और गोसाईंजी का लगातार अत्यंत प्रेम के स्वर में अध्ययन के लिये उनसे आग्रह करना लेखक सहज में नहीं भूल सकता।

लाहौर के कायस्थ-बोर्डिंग-हाउस में गोसाईंजी के पिता बहुत कम और उनके गुरुजी प्रायः पधारा करते थे। गोसाईंजी ज़िला गुजराँवाला के एक गाँव के, जिसका नाम संभवतः मुरारीवाला था, निवासी थे। उनके पिताजी का स्वभाव बहुत ही सादा था और वह केवल देवनागरी और संस्कृत जानते थे। लेखक को उनसे वार्तालाप का प्रायः अवसर मिला करता था। उन्हीं के द्वारा मालूम हुआ था कि उनके शिष्य बहुत दूर तक हैं; कहते थे कि कभी-क़भी उनके पास बाग़िस्तान तक जाने का संयोग होता है। गोसाईंजी के कुलगुरु, जिन्होंने यज्ञोपवीत-संस्कार कराया था, ब्राह्मण थे; परंतु वह कहा करते थे कि हमें जो कुछ आत्मोन्नति लाभ हुई है, वह धन्ना भगतजी से हुई है। उन्हीं को वह गुरुजी कहा करते थे। कुल (वंश) की दृष्टि से कदाचित् यह (भगत धन्नाराम) अरोड़े थे और गुजराँवाला-नगर में रहा करते थे। गोसाईंजी उनके अति श्रद्धालु थे, और कभी-कभी लेखक से उनकी सिद्धाई और चमत्कार की

चर्चा किया करते थे। जिन दिनों का यह जिक्र है, उन दिनों गोसाईंजी के केवल एक पुत्र था। आजकल भगवत्-कृपा से वह वयःप्राप्त होगा। लेखक ने उसे देखा है, चाहे वह अब कठिनता से पहचान सके। गोसाईंजी छुट्टी के दिनों में कुछ दिनों के लिये अपनी जन्मभूमि जाया करते थे। यद्यपि वह किसी दशा में गृहस्थ के कर्तव्यों से बेसुध न रहते थे, परंतु लेखक ने उनके भाषण और चित्त-वृत्ति से यह परिणाम निकाल लिया था कि संभव है, यह इन झगड़ों से बहुत जल्द छूट जायँ।

पंजाब-युनिवर्सिटी की बी० ए०-परीक्षा में गोसाईंजी प्रथम रहे थे, इसलिये उन्हें ६०) रु० मासिक छात्रवृत्ति मिल गई थी। इस द्रव्य में से कुछ तो वह अपने निज के व्यय के लिये रख लिया करते और शेष घर भेज दिया करते थे, या अवसर अनुसार अपने गुरुजी की स्वल्प आवश्यकताओं के लिये भेंट कर दिया करते थे। गोसाईंजी को पुस्तकें मोल लेने में बहुत कुछ खर्च करना पड़ता था।

जिस साल बी० ए० की परीक्षा में गोसाईंजी ने पूर्ण सफलता प्राप्त की थी, कदाचित् उसी वर्ष पंजाब-युनिवर्सिटी के लिये यह अनिवार्य था कि इँगलैंड जाने के लिये अपने किसी श्रेष्ठ विद्यार्थी को निर्वाचित करे। सफल अभिलाषी के लिये कदाचित् सौ पौंड वार्षिक छात्रवृत्ति सरकार की

ओर से स्वीकृत थी। लेखक ने गोसाईंजी को विवश किया था कि इसके लिये कुछ प्रयत्न करें। पहले उन्होंने इसके लिये आश्चर्य प्रकट किया और कई प्रकार की भीतरी-बाहरी कठिनाइयाँ दिखाईं। किंतु काटनेवाली युक्तियों ने उन्हें तनिक भी महत्त्व नहीं दिया। अंततः विवश होकर उन्होंने इधर-उधर ध्यान दिया। पारिवारिक विरोध को उन्होंने शीघ्र अपने भविष्य कार्य-क्रम के प्रकाश से दूर कर दिया और नियमानुसार उसी छात्रवृत्ति के लिये अभिलाषियों के समूह में सम्मिलित हो गए। जहाँ तक स्मरण है, गोसाईंजी के अतिरिक्त केवल एक उम्मेदवार और था। मिस्टर बैल, जो इन दिनों पंजाब के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर हैं, उस समय गवर्नमेंट-कॉलेज के प्रिंसिपल थे। गोसाईंजी की उक्त साहिब महोदय सदैव प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने इन्हें बहुत बड़ी आशा दिलाई थी। परंतु परिणाम आशा के अनुकूल नहीं हुआ। गोसाईंजी की योग्यता और अधिकारों की दृष्टि से यह परिणाम सर्वानुमोदित नहीं था, तो भी गोसाईंजी को इस अकृत-कार्यता का तनिक भी खयाल नहीं हुआ, और न वह कभी उलाहने का एक शब्द जिह्वा पर लाए। इँगलैंड जाकर केवल गणित की विशेष शिक्षा की उन्हें रुचि थी। सिविल सर्विस, वैरिस्टरी या किसी अन्य विभाग का वह

नाम तक लेना नहीं चाहते थे। परिणाम निकलने से पहले इँगलैंड के निवास की भी चर्चा हुआ करती थी, जिसका वह संक्षिप्त उत्तर दे दिया करते थे कि वहाँ जाकर भी वर्तमान भोजन और पहनावे में परिवर्तन नहीं हो सकता।

एम० ए० की परीक्षा के लिये उन्होंने गणित का विषय चुन लिया था और उसी की ओर आरंभ से उनका चित्त जाता था। गवर्नमेंट-कॉलेज, लाहौर में अध्ययन के लिये वह नियत समयों पर जाया करते थे। इस अवसर में लाहौर के बहुत बड़े रईस स्वर्गवासी राय बहादुर मेलारामजी के सुपुत्र राय रामसरनदास ने उन्हें अपना शिक्षक नियत कर लिया था। उनकी कोठी में एक विशाल अट्टारी (बालाखानों का ऊपर का कमरा) पर वह रहा करते थे। लेखक कभी-कभी वहाँ उनसे प्रातःकाल में मिलने जाया करता था। उस समय प्रायः वह एक प्रकार का व्यायाम किया करते थे जिसे उनके सिवाय लेखक ने और किसी को करते नहीं देखा। एक चारपाई को पट सीधी दीवार के सहारे खड़ी कर दिया करते थे। उसके बाद दोनों हाथों से दोनों ओर चौड़ाई से पकड़ जहाँ तक ऊपर ले जा सकते, ले जाते और इसी तरह नीचे ले आते थे। मुँह बंद करके शीघ्र-शीघ्र इस व्यायाम को देर तक करते रहते थे। राय रामसरनदासजी के छोटे भाई लाला हरिकृष्णदास

से भी, जो पिछले दिनों पूर्ण युवावस्था में मृत्यु को प्राप्त हुए, गोसाइंजी की बड़ी प्रीति थी। एक दिन लेखक के साथ वह कोठी के बागीचे से आ रहे थे। मार्ग में ला० हरिकृष्णदासजी अंगूरकुंज से अंगूर तोड़कर आस्वादन कर रहे थे। गोसाइंजी ने पूछा, क्या हो रहा है। लालाजी ने उत्तर देने के स्थान पर गुच्छे उपस्थित कर दिए, जिससे प्रयोजन यह था कि आप भी इसमें सम्मिलित हो जाइए।

गोसाइंजी का आहार केवल दूध कहना चाहिए। कभी-कभी दिन में वह भोजन भी कर लिया करते थे। प्रायः निकट बैठकर भोजन करने का संयोग हुआ करता था। स्मरण नहीं है कि कभी उन्होंने पतले-पतले दो फुलकों से अधिक भोजन किया हो। लगातार कई-कई दिन दोनों समय वह केवल दूध पर संतोष करते थे। यदि लेखक कभी उन्हें मेवा आदि खाने में सम्मिलित होने के लिए विवश करता, तो मेरे सम्मान के लिये नाममात्र को कुछ खा-पी लिया करते थे, ओषधियाँ व्यवहार करते लेखक ने उन्हें कभी नहीं देखा। हाँ, जब कभी विरले उन्हें ज़ुकाम की अधिक शिकायत हुआ करती थी, तो अनारकली के एक हिंदू-कारख़ाने की एकआध सोडे की बोतल पी लिया करते थे। मांस-भक्षण को वह खुल्लमखुल्ला महान् पाप कहा करते थे, और उसकी चर्चा से भी उन्हें घोर घृणा उत्पन्न

हुआ करती थी। कहा करते थे कि यदि राह चलते इसकी कहीं से गंध भी आ जाय, तो मस्तिष्क देर तक व्याकुल रहता है। इसी तरह मादक द्रव्यों को भी वह हलाहल विष से उपमा दिया करते थे।

उनका पहनावा अत्यंत सादा था। गरमी और बरसात के दिनों में गजी की सादी धोती और कुरता पहनते थे और सिर नंगा रखते थे। हजामत भी पंजाबी ढंग की बनवाते थे। बाहर जाने के लिये साधारण मलमल का दुपट्टा बाँध लिया करते थे। जहाँ तक इस समय स्मृति काम देती है, टोपी कभी उनके सिर पर देखने का संयोग नहीं हुआ। जाड़े की ऋतु केवल एक मोटी कशमीरी पट्टी के कोट में निर्वाह कर लेते थे। रात के समय भी बहुत ही स्वल्प ओढ़ने-बिछौने का सामान हुआ करता था। विद्योपार्जन के पश्चात् वह स्यालकोट के मिशन-कॉलेज में प्रोफ़ेसर हो गए थे। कहते थे कि जाड़े-भर में सिवाय एक धुस्से के और कोई गरम कपड़ा व्यवहार नहीं किया। लिहाफ़ का भी काम वही दे देता था। स्यालकोट-नगर के शिक्षित पुरुष और प्रत्येक संप्रदाय के हिंदू उनके पूरे अनुवर्ती थे। वहाँ विद्यार्थियों को यह सवेरे-शाम स्वयं ही वायु-सेवन कराया करते थे। और उन्हें आत्मिक ध्यानसंबंधी अभ्यास के भी ढंग सिखाते थे।

अँगरेज़ी-ढंग के कपड़े और जूते से अत्यन्त परहेज़ करते थे। एक दिन लेखक ने उन्हें संदिग्धावस्था में देखा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि युनिवर्सिटी का वार्षिक उत्सव दो-एक दिन में होनेवाला है। प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिये उसमें सम्मिलित होना आवश्यक है। कहने लगे कि इस अवसर पर विलायती चोगा और बूट पहनने पड़ेंगे। यह बात अपनी प्रकृति के विरुद्ध है। कुछ देर तक तर्क के पश्चात् अंत में यह निश्चय हुआ कि यह दोनों चीज़ें कॉलिज ही में ज़रा देर के लिये किसी से उधार माँग ली जायँ। अंत में इसी निश्चय के अनुसार काम हुआ। ऐनक वह आवश्यकता पर हर समय लगाते थे।

स्यालकोट से लौट आने पर वह फ़ोरमैन-मिशन-कॉलिज, लाहौर में प्रोफ़ेसर हो गए थे। संभवतः बी० ए० की परीक्षा में वह इसी कॉलिज से सम्मिलित हुए थे। इन दिनों लाहौर में पानी की टंकी के निकट उन्होंने एक मकान ले लिया था, और स्त्री-पुत्रों को भी बुला लिया था। इंट्रेंस-परीक्षा के किसी गणित के परचे के वह परीक्षक थे, जिसके लिये उन्हें कुछ द्रव्य मिला था। इससे उन्होंने बढ़िया लकड़ी का सामान ख़रीद लिया था। परंतु आनंद यह है कि आप उसे बहुत कम व्यवहार में लाते थे। मकान के चौड़े कमरे में एक बड़ा-सा ताक़ था जिसकी

कार्निस आगे को निकली हुई थी। उस पर उन्होंने एक कपड़े का टुकड़ा बिछा लिया था। आवश्यकतानुसार लिखने के लिये उससे मेज़ का काम लेते थे, और लगातार दो-दो, चार-चार घंटे उसी पर किताबें खोलकर पढ़ते रहते थे। इस मकान में उन्हें बैठकर लिखते-पढ़ते बहुत कम देखा है। मित्र विशेष का भोजन-सत्कार वह दूध से किया करते थे।

इन्हीं दिनों में कभी-कभी वह सनातन-धर्म-सभा के जल्से में भी जाया करते थे और कुछ व्याख्यान भी दिया करते थे। साधु शिवगणाचार्यजी ने भी उन्हें अपने महोत्सव का कुछ काम सुपुर्द कर दिया था, परंतु अधिक ध्यान करने पर वह उससे तत्काल पृथक् हो गए थे। बाद में साधुजी के साथ की ठीक अवस्था लेखक को ज्ञात नहीं है। हाँ, यह एक पत्र में पढ़ा था कि साधुजी ने व्यास-पूजा के दिन लाहौर में एक मिठाई की थाली भेंट करके गोसाईंजी से दीक्षा ग्रहण की थी।

दुःखों को भी गोसाईंजी बड़े धैर्य और संतोष के साथ सहन किया करते थे। एक दिन वह अपने निवास-स्थान पर नित्य से अधिक देर के पश्चात् पधारे। मुखमंडल से शोक-संताप के चिह्न परिलक्षित थे। लेखक ने कारण पूछा। एकांत में कहने लगे कि "आज दोपहर के पश्चात् कॉलेज में एक पत्र मिला जिससे बड़ी बहन की असमय-

मृत्यु की घटना ज्ञात हुई। यही एक बहन थी और इसी ने शिशुपन में मुझे बच्चों की नाईं पाला था। पत्र पढ़कर मौनता की अवस्था में मैं रावी-नदी की ओर चला गया। एकांत में रक्त की स्वाभाविक उष्णता अश्रुपात द्वारा कम करके इष्टदेव से प्रार्थना की कि इस दुःख को वीरता के साथ सहन करने की शक्ति प्रदान हो और इस समय से स्वर्गीया बहन की केवल एक पवित्र स्मृति शेष रह जाय, और किसी प्रकार का अधिक रंज न हो, जिससे कर्तव्यों के पालन में भूल होने की आशंका उत्पन्न होने न पाए।"

गोसाईंजी के मनोविनोद के कृत्य अत्यंत स्वल्प थे। सवेरे-शाम वाटिका-विचरण अथवा रावी-नदी के नीर-प्रवाह एवं तरंगों के परस्पर टकराने को ध्यानपूर्वक देखना था, और कभी-कभी विशेष मित्रों से भी अवकाश के समय मिलने जाया करते थे। स्मरण नहीं है कि लेखक ने उन्हें कभी समाचारपत्र या साहित्यपत्रों को पढ़ते देखा हो। हाँ, कभी-कभी वह उर्दू-फ़ारसी की सूफ़ी-मत-संबंधी शेरें लेखक को सुनाया करते थे। कुछ कवियों के वचन सुनकर उन पर निस्तब्धता छा जाती थी। मतलब यह कि या तो गोसाईंजी पढ़ते या बातें करते रहते थे, या जब इन बातों से अवकाश पाते, तत्काल आँखें बंद करके महावाक्य "ॐ" का जप आरंभ करके उसके ध्यान में तन्मय हो जाते थे।

उनका कथन था कि चित्त पारे के समान चंचल है, इसे प्रतिक्षण अपने अधिकार में रखना चाहिए, अन्यथा यह धृष्टता पर तुल जाता है।

माला फेरने को गोसाईंजी अधिक महत्त्व नहीं दिया करते थे। कहते थे कि चिरकालिक अभ्यास के पश्चात् उँगलियाँ चला करती हैं, परंतु चित्त भाग जाता है।

ईश्वर से एकांत वार्तालाप के वे बड़े ही पक्षपाती थे। एक दिन लेखक ने उनसे एकांत में चर्चा की कि इस देश के कल्याण के लिये अनेक प्रयत्न हो रहे हैं, सबसे प्रभाव-शाली उपाय क्या हो सकता है? कहने लगे कि "हरएक अच्छा काम अपने स्थान पर अच्छा है, परंतु हमारा कुछ और विचार है। आरंभ में यह चाहिए कि कुछ थोड़े-से पवित्र हृदय और सदाचारी पुरुष एकत्रित किए जायँ। कुछ काल तक उन्हें शुद्ध भावना और पवित्र हृदय से ईश्वर-प्रार्थनाओं का अभ्यासी किया जाय। इसके बाद एक नियत समय तक रात-दिन बारी-बारी से परमात्मा के निकट इस देश की यथार्थ भलाई के लिये ईश्वर से प्रार्थना का क्रम जारी रक्खा जाय। एक समाप्त करे, दूसरा उसकी जगह बैठ जाय। २४ घंटों के भीतर एक क्षण भी ऐसा न हो कि एक न एक व्यक्ति पूजा के आसन पर ईश्वर से प्रार्थना न कर रहा हो। इस प्रकार हमारी सद्भावनाएँ अवश्य

उचित समय पर पूरी हो जायँगी, और देश में पवित्र स्वभाव और शुद्ध अंतःकरणवाले मनुष्यों का एक ऐसा समाज भी विद्यमान हो जायगा, जो प्रत्येक विभाग में वीरता और सचाई के साथ काम कर सकेगा, साथ ही एक संदूक में कुछ नक़द द्रव्य भी रख दिया जाय और इस समुदाय के व्यक्तियों को सूचित कर दिया जाय कि अत्यंत निजी आवश्यकताओं के लिये बिना पूछे इस द्रव्य को काम में लाया करें। इसके बाद फिर धन बाहु-बल से उत्पन्न करें। जितना लिया गया था, उतना ही या उससे कुछ अधिक फिर संदूक में डाल दिया करें।"

एक दिन लेखक ने गोसाइँजी से पूछा कि "आपकी हार्दिक इच्छा क्या है, विद्यार्थियों को कॉलेज में पढ़ाना या कुछ और ?" कहने लगे कि "यह क्रम अस्थायी है, स्त्री-पुत्रों की आवश्यकता के लिये कुछ एकत्रित कर देने के पश्चात् दिन-रात सारे देश में सदुपदेश करना मेरा अंतिम ध्येय है। जिस जगह जाया करेंगे, विद्यार्थियों को कुछ पढ़ाकर केवल दूध के लिये कुछ ले लिया करेंगे; और हमें किसी वस्तु से प्रयोजन न होगा। सदुपदेशों के द्वारा इस देश के आत्मिक अंधकार को दूर करना मुख्य समझता हूँ।"

संयुक्त-प्रदेश अमेरिका के प्रेज़िडेंट मिस्टर रूज़वेल्ट का

स्वयं उनके दर्शनों को आना सिद्ध करता है कि इस युग में भी भारतभूमि के साधु-महात्माओं में वह गुण विद्यमान हैं, जिनके आगे सांसारिक विभव और ऐश्वर्य, तेज और प्रताप नतशिर हैं।

लेखक को गोसाईंजी ने दो अँगरेज़ी पुस्तकें स्मृतिरूप में प्रदान की थीं। एक 'स्टोरी आफ़ दी इँगलिश लिटरेचर',जो इँगलैंड की किसी कर्मनिष्ठ महिला की लिखी हुई है। गोसाईंजी इस महिला को कृपालु माता कहा करते थे। वह कहते थे कि जिस प्रकार माता अपने बच्चों को अच्छी कहानियों के द्वारा विज्ञानमय लाभदायक बातें सिखाती है, इसी तरह इन्होंने मुझे अँगरेज़ी-सभ्यता के इतिहास से परिचित किया है। दूसरी पुस्तक 'लाइट आफ़ एशिया' जिसके लेखक सर एडविन आर्नल्ड थे। यह पुस्तक महात्मा बुद्ध का जीवनचरित है। इसे भी प्रायः गोसाईंजी पढ़ा करते थे।

किंबहुना, अब इन बातों में क्या रक्खा है। स्मरण करने से चित्त को और दुःख होता है।

एक आली दिमाग़ था, न रहा।
मुल्क में इक चिराग़ था, न रहा॥

राम के देहत्याग पर कुछ कविताएँ

१—रुबाअयात (पद्य)

[लेखक, पं० नारायणप्रसाद बेताब, दिल्ली]

दुनिया से अजब मर्दे-ख़ुश असलूब[१] गया ।
जो मुल्क का था मुहिब्ब-ओ-महबूब[३] गया ॥
अब हिंद के बेड़े का ख़ुदा हाफ़िज़[४] है ।
अफ़सोस कि राम नाख़ुदा[५] डूब गया ॥

क्यों सर पे न तेग़ अस्फ़हानी[६] फिर जाए ।
क्यों दर से न दौरे-शादमानी[७] फिर जाए ॥
जब राम-सा रहबर हो ग़रीक़े-रहमत[८] ।
उम्मेदों पर किस तरह न पानी फिर जाए ॥

मरकर भी वही मिशन है ऐ राम ! तेरा ।
आग़ाज़[९] की मानिंद है अंजाम[१०] तेरा ॥
तू काहे को तहे-नशीने-दरिया[११] होता ।
सोतों को जगाना है मगर काम तेरा ॥

---

१. शुद्धाचरण । २. प्रेमी । ३. प्यारा । ४. रक्षक । ५. केवट, मल्लाह । ६. असफ़हान-नगर की तलवार । ७. प्रसन्नता का काल । ८. कृपा-स्वरूप हो गया, अथवा ब्रह्म में लीन हो गया । ९. आरंभ । १०. अंत । ११. नदी की तह में बैठा होता ।

२–नौहा (विलाप)

[लेखक, मुंशी दुर्गासहाय साहिब "सरवर" जहाँआबादी]

कौन-सा मोती है गंगा ! तेरे दामन[१] में निहाँ[२] ।
क़तआ है क़ामत[३] पै किसकी चादरे-आबे-रवाँ ॥
हल्क़ा-ए-गरदाब[४] है क्यों आह ! चश्मे-ख़ूँफ़शाँ[५] ।
किसके मातम[६] में लबे-साहिल[७] हैं सरगरमे-फ़ुग़ाँ[८] ॥
तेरी मौजों[९] ने किसको ले लिया आग़ोश[१०] में ।
जोशशे-गिरिया[११] का आलम है तेरे सरजोश में ॥
किसके ग़म में तेरे साहिल का है दामाँ तार-तार ।
तेरी मौजें आज क्यों हैं राम गंगा ! बेक़रार ॥
शाहिदे-ख़्वाबे-अजल[१२] से आह ! होकर हमकनार ।
सो गया यह कौन जाँबाज़े-वतन[१३] ज़ेरे-मज़ार[१४] ॥
लेने आई आसमाँ से रहमते-बारी[१५] किसे ।
थी गराँ[१६] ऐ मौज ! साहिल की सुबकसारी[१७] किसे ॥
मंज़िले-ख़ुर[१८] में है ज़र्रा ख़िलवत आरा[१९] कौन-सा ।

---

१. पल्ला, किनारा, भीतर । २. छुपा हुआ । ३. डुलिया, आकार । ४. भँवर का चक्कर । ५. रुधिर बहानेवाला नेत्र । ६. विलाप । ७. नदी-तट । ८. शोकस्वरूप । ९. लहरों-तरंगों । १०. बग़ल । ११. रुदन-वेग । १२. मृत्युरूपी नींद का साक्षी । १३. देश पर प्राण न्योछावर करनेवाला । १४. क़ब्र के अंदर । १५. ईश्वर-कृपा । १६. भारी । १७. हलकापन । १८. सूर्य के मार्ग १९. एकांत को शोभा देनेवाला ।

दोश-बरदोशे-सदफ़[1] है दुर्रे-यकता[2] कौन-सा ॥
आशना बहरे-हक़ीक़त[3] का है, ऐसा कौन-सा ।
हो गया दरिया में दरिया मिलके क़तरा कौन-सा ॥
सफ़ उलटकर कौन यह बज़्मे-जहाँ[4] से उठ गया ।
शमओ[5]-परवाना का परदा दरमियाँ से उठ गया ॥
क़ैदे-हस्ती से थी किसको सरगरानी[6] हाय-हाय !
कर दिया शौक़े-बक़ा[7] ने किसको फ़ानी हाय-हाय !
किस पै टूटा दस्ते-जौरे-आसमानी[8] हाय-हाय !
नज़रे-तूफ़ाँ हो गई किसकी जवानी हाय-हाय !
साहिले-गंगा पै रोती है क़ज़ा[9] किसके लिये ?
खाक उड़ाती फिरती है सिर पै सबा[10] किसके लिये ?
आसमाँ गरदिश में है किसको मिटाने के लिये ?
फिर रहा है इक न इक फ़ितना[11] उठाने के लिये ?
चादरे-आबे-रवाँ में मुँह छुपाने के लिये ।
जा रहा है कौन यह गंगा नहाने के लिये ?
ले चला मौजे-फ़ना बनकर ये किसको जोशे-शौक़ ?
हलक़ए-गिरदाब है खोले हुए आग़ोशे-शौक़ ॥

---

१. सीप की तह दर तह में । २. अद्वितीय मोती । ३. तत्त्व-ज्ञानी । ४. संसार की महफ़िल । ५. दीपक । ६. क्रोध, नाराज़गी । ७. अमृत की जिज्ञासा । ८. दैवी कोप । ९. मौत । १०. समीर । ११. फ़साद, झगड़ा ।

किसका बेड़ा गर्क़ अमवाजे-फ़ना[1] होने को है ?
किसका साया तुझसे ओ साहिल ! जुदा होने को है ?
दिल में मातम आरज़ूओं का बपा होने को है ।
आह ! ऐ दर्दे-तमन्ना ! आज क्या होने को है ॥

दिल यह कहता है कि आँखों से टपक जाऊँगा मैं ।
सब्र कहता है कि पहलू से खिसक जाऊँगा मैं ॥

कहते हैं आँखों के फ़व्वारे उछल जाएँगे हम ।
अश्क[2] कहते हैं कि दामन पर मचल जाएँगे हम ॥
दिल के दाग़ों का तक़ाज़ा है कि जल जाएँगे हम ।
नाले कहते हैं कि घबराकर निकल जाएँगे हम ॥

दस्ते-मातम[3] का इशारा है कि दामाँ चाक[4] हो ।
पंजए-वहशत यह कहता है गरेबाँ चाक हो ॥

बेकसी कहती है सहरा[5] में उड़ाकर सिर पे ख़ाक ।
जा रही है ख़ुल्द[6] को यह आह ! किसकी रूहे-पाक[7] ॥
है लहू की बूँद पहलू में दिले-अंदोहनाक ।
जामए-सब्रो-सकूँ है किसके ग़म में चाक-चाक ॥

आश्रम सूना पड़ा किसका लबे-साहिल है आज ?
किसकी छोटी-सी कुटी उजड़ी हुई मंज़िल है आज ?

---

१. नाश व अभाव की तरंगों में । २. अश्रु । ३. विलाप-दृश्य । ४. पल्ला फट जाय । ५. जंगल । ६. स्वर्ग । ७. पवित्रात्मा ।

ख़ुल्द से है किसको लेने को क़ज़ा आई हुई ?
साहिले-गंगा पै है ग़म की घटा छाई हुई।
डूबती है किसकी कश्ती आज चकराई हुई ?
मौजे-क़िस्मत की तरह इक-इक है बल खाई हुई ॥
आशना दरिया से क़तरा कौन-सा होने को है ?
इश्तियाक़े-महर में शबनम फ़ना होने को है ॥
आह ! इक तिश्ना लबे-ज़ौक़े-तमन्ना हाय-हाय !
हो ग़रीक़े-रहमते-हक़ राम गंगा हाय-हाय !
खा के तूफ़ाने-हवादिस[१] का थपेड़ा हाय-हाय !
तेरी मौजों में हो गुम इक दुर्रे-यकता[२] हाय-हाय !
हाय ! अब क्या कहके समझाएँ दिले-नाकाम[३] को।
रम रहा है राम में लाएँ कहाँ से 'राम' को ॥
ख़ाक में किसको मिलाया आह ! तूने आसमाँ।
किस पै टूटा हाय ! तू ऐ दस्ते-मर्गे-नागहाँ[४] ॥
शर्क़[५] में जिसकी चमक थी ज़ेबे-ताजे-इज़्ज़ो-शाँ[६]।
ख़ाक में है आह ! अब वह गौहरे-यकता निहाँ ॥
मोतियों से यों तेरा ऐ क़ौम ! ख़ाली ताज हो।
हैफ़ ! तेरी आरज़ूओं का चमन ताराज[७] हो ॥

---

१. घटनाओं की बाढ़। २. अद्वितीय मोती। ३. पराधीन या कामी चित्त। ४. अचानक मृत्यु। ५. पूर्व। ६. मान-प्रतिष्ठा की शोभा देनेवाला। ७. उजड़ा हुआ।

हमनफ़स[1] जुज़ नाला-ओ-आहो[2]-बक़ा कोई न हो।
दस्तगीर ऐ दस्ते-बेदादे-क़ज़ा कोई न हो॥
जोशे-तूफ़ाँ हो बपा और आशना कोई न हो।
मौज दरिया हो मकीं[3] में नाख़ुदा[4] कोई न हो॥

हो फ़ना तूफ़ान में इक ज़िंदाए[5]-जावेदे-क़ौम।
आह! यों गंगा में डूबे कश्तिए-उम्मेद-क़ौम॥

अपना बेड़ा हो गया जब ग़र्क़ तूफ़ाने-फ़ना।
हमको क्या! बाँधा करे बादे-मुराद अपनी हवा॥
क़ौम की कश्ती का कश्तीबान ही जब उठ गया।
सिर को मौजें आके अब साहिल से टकराएँ तो क्या॥

हमको क्या लाखों बरस शोरो-फ़ुग़ाँ[6] उट्ठा करे।
साहिले-गंगा से आहों का धुआँ उट्ठा करे॥

ऐसा नक़्शे-दिलनशीं[7] और तू मिटाए आसमाँ।
ऐसा मोती और मिट्टी में मिलाए आसमाँ॥
ऐसा रख़शंदा[8] चिराग़ और तू बुझाए आसमाँ।
ऐसा ताबिंदा[9] सितारा! डूब जाए आसमाँ॥

जिसने क़ौमी आसमाँ को हों लगाए चार चाँद।

१. हमदम, साथी। २. रुदन, विलाप से अतिरिक्त। ३. मकान, स्थान में स्थित। ४. केवट, मल्लाह। ५. जाति का अमर पुरुष। ६. रोना-धोना। ७. दिल में जमनेवाला चित्र। ८. प्रकाशमान। ९. चमकीला।

खाक में छुप जाय वह ऐ चर्ख़े-नाहंजार[1] चाँद ॥
बेनिशाँ हो आह ! ऐसा ताजे-शोहरत का नगीं ।
ऐसा दुर्रे-बेबहा हो आह ! पैवंदे-ज़मीं ॥
ऐसा आरिफ़ गोशए-मरक़द[2] में हो ख़िलवत-गज़ीं[3] ।
ऐसा नफ़्से-मुद्दआ पामाल हो चर्ख़े-बरीं[4] ॥
खाक का पैवंद ऐसा गौहरे-नायाब हो ।
ऐसा बेड़ा आह ! गंगा में ग़रीक़े-आब हो ॥
जाँनिसारे-क़ौम ऐसा ग़र्क़े-तूफ़ाँ आह ! हो ।
ऐसा जाँबाज़े-वतन आँखों से पिनहाँ[5] आह ! हो ॥
ऐसा मजमूए-तसव्वफ़ का परेशाँ आह ! हो ।
बेचिराग़ ऐ क़ौम ! यों तेरा शबिस्ताँ[6] आह ! हो ॥
दाग़ हो तेरे जिगर का तेरी मंज़िल का चिराग़ ।
बुझ के हो पानी में ठंडा तेरे महफ़िल का चिराग़ ॥
बे सदा ज़ेरे-ज़मीं ऐ क़ौम ! तेरा साज़ हो ।
और शौक़े-शमअ़ में तू गोश बर-आवाज़[7] हो ॥
हलक़ए-गिरदाब, हैहै ! दीदए-ग़म्माज़[8] हो ।
ग़र्क़े-दरिया हो वह मोती जिस पै तुझको नाज़ हो ॥
डूब जाए यकबयक जी तेरे उस जाँबाज़ का ।

---

१. बदज़ात आकाश । २. क़ब्र के कोने में । ३. एकांत-स्थित । ४. नवाँ आकाश वा ब्रह्मलोक । ५. छुपा हुआ, लोप । ६. शयन का स्थान । ७. सुनने पर कान लगाए रहे । ८. कटाक्ष-भरी दृष्टि ।

दिल न पिघले आसमाने-तफ़रक़ा-परवाज़ का ॥
नज़रे-तूफ़ाने-अजल इक गौहरे-नायाब हो।
तेरी मौजों का न ज़ुहरा[1] राम गंगा आब हो ॥
जोशे-ग़म हो, शोरे-तूफ़ाँ हो, कफ़े-सैलाब हो।
आसमाँ की आह ! गरदिश, गरदिशे-दूलाब[2] हो ॥
ग़र्क़ हो इक नौजवाँ अफ़सोस ! साहिल के क़रीब।
बैठ जाए इक मुसाफ़िर थक के मंज़िल के क़रीब ॥
क़ौम की चोटी का हो इक फूल पैवंदे-ज़मीं।
उफ़ ! तेरी नैरंगियाँ ऐ गरदिशे-चर्ख़े-बरीं ॥
जिसकी मंज़िल आह ! हो जल्वा-गहे-नूरे-यक़ीं।
हो गहन[3] में वह सपेहरे[4]-क़ौम का माहे-मुबीं[5] ॥
जिसके दिल में गरमिए-हुब्बे-वतन का जोश हो।
वह चिराग़े-क़ौम ऐ बादे-अजल ! ख़ामोश हो ॥
जिसकी किरणें चार सू मग़रिब में हों जलवा[6]फ़िशाँ।
ऐसा सूरज डूब जाए शर्क़ में यों नागहाँ ॥
हो मुहिब्बे-क़ौम ऐसा ख़ाक में हैहै ! निहाँ।
ऐसा परवाना हो ऐ सोज़े-फ़नाँ आतश बजाँ ॥
आह ! ऐसा बुलबुले-रंगीं-नवा[7] ख़ामोश हो।

---

१. रामरूपी तारा। २. राहट, कुएँ का चर्ख़। ३. ग्रहण। ४. राष्ट्र का रक्षक। ५. रौशन चाँद। ६. प्रकाशमान। ७. भाँति-भाँति की आवाज़ सुनानेवाला।

ऐसी दिलकश ! ऐसी जाँपरवर-सदा खामोश हो ॥
नजरे-तूफ़ाँ आह ! यूँ इक जाँ निसारे-क़ौम हो ।
शामे-मातम जलवए-सुबहे-बहारे-क़ौम हो ॥
ऐ ज़मीं ! यों तेरे हाथों से फ़िशारे-क़ौम हो ।
ऐ फ़लक ! यों ग़म से तीरा-रोज़गारे[1]-क़ौम हो ॥
हो सपेहरे-क़ौम पर ग़म की घटा छाई हुई ।
सिर पै हो यूँ जोशे-मातम की घटा छाई हुई ॥
आह ! ऐसे फूल पै बेवक़्त छा जाए ख़िज़ाँ ।
ऐसा नख़्ले-आरज़ू[2] हो आह ! मातम का निशाँ ॥
ऐसा दुर्रे-बेबहा पानी में हो यों रायगाँ ।
ख़ाक में हो दफ़्न ऐसा आह ! गंजे-शायगाँ[3] ॥
हाथ से गुम आह ! ऐसी दौलते-जावेद[4] हो ।
शामे-ग़म, सुबहे-बहारे-जल्वए-उम्मेद हो ॥
ऐसा ज़ल्ले-आतफ़त[5] उठ जाय सिर से आह ! क़ौम ।
ऐसा मुहसिन,[6] और पिनहाँ हो नज़र से आह ! क़ौम ॥
बाज़ आए आसमाने-दूँ[7] न शर[8] से आह ! क़ौम ।
हो कुदूरत ऐसे पाकीज़ा-गुहर से आह ! क़ौम ॥
ऐसा मोती ताजे-शोहरत से टपककर गिर पड़े ।

---

१. बदनसीब । २. आशाओं का वृक्ष । ३. भारी ख़ज़ाना । ४. नित्य रहनेवाली । ५. कृपालु का साया । ६. अनुग्रह करनेवाला । ७. कमीना आकाश । ८. फ़साद ।

बनके आँसू यूँ ज़मीं पर ऐसा गौहर गिर पड़े ॥

मंज़िले-हस्ती से ऐसा रहनुमा जाता रहे।
चारासाज़े-क़ौम ऐ दस्ते-क़ज़ा[1] जाता रहे ॥
ग़र्क़े-दरिया होके ऐसा आशना जाता रहे।
क़ौम की कश्ती का हैहै! नाख़ुदा जाता रहे ॥

हो गुनहगारों का बेड़ा पार क्योंकर देखिए।
मौज है इक-इक निगल जाने को अयदर[2] देखिए ॥

छा रही है सरबसर तासर नहूसत की घटा।
और मुसल्लित[3] क़ौम पर है ख़्वाबे-ग़फ़लत की घटा ॥
रंग लाए देखिए क्या जोशे-नकबत[4] की घटा।
उठ गई अफ़सोस! सिर से अब्रे-रहमत की घटा ॥

क़ौम के सूखे हुए धानों को अब सींचेगा कौन?
ऐसे वहशतख़ेज़ मैदानों को अब सींचेगा कौन?

देखिए हमसे गुनहगारों का क्या होता है हश्र।
हश्र[5] के दिन हम सियहकारों[6] का क्या होता है हश्र ॥
दुश्मने-जाँ है फ़लक यारों का क्या होता है हश्र।
क़ौम के मायूस बीमारों का क्या होता है हश्र ॥

कह रहा है उठके दर्दे-जाँगुदाज़[7]-क़ौम हैफ़।

---

१. मौत का हाथ। २. भारी वा अजगर साँप। ३. अधिकार जमाए हुए। ४. ज़िल्लत, शोक। ५. फल वा प्रलय। ६. ज़ालिम, पापी। ७. राष्ट्र की जान पिघलानेवाली अथवा प्राण हरनेवाली पीड़ा।

उठते जाते हैं जहाँ से चारासाज़े-क़ौम हैफ़ ॥

आह ! ऐ हिंद ! आह ! ऐ शोरीदए-सौदाए-ग़म ।
आह ! ऐ ख़ानाख़राब ! ऐ बादिए-पैमाए-ग़म[1] ॥
सर ब हामूँ[2] दादा-ओ-आवारए-सहराए-ग़म ।
ख़ारे-हसरत ज़ेरे-पा-ओ आबला[3]-फ़रसाए-ग़म ॥
तेरे ख़्वाबे-ऐश की अफ़सोस यह ताबीर हो ।
नक़्शे-मातम तू हो, ग़म की आह ! तू तसवीर हो ॥

ग़म की छुरियाँ यों तेरे क़लबो-जिगर के पार हों ।
तेरे पहलू में शगुफ़्ता[4] ज़ख़्मे-दामनदार हों ॥
ख़ारे-हसरत आह ! यूँ तेरे गले के हार हों ।
ख़ाक का पैवंद तेरे मुहसिने-ग़मख़्वार हों ॥
आशना यूँ आह ! डूबें तेरे साहिल के क़रीब ।
तेरे परवानों का ख़ाकस्तर हो महफ़िल के क़रीब ॥

तेरे हीरो आह ! हों शहरे-ख़मोशाँ के मकीं ।
तेरे हामी गोशए-मरक़द[5] में हो उज़लत[6]-गज़ीं ॥
अपने ग़मख़्वारों के ग़म में तू हो यूँ मातमनिशीं ।
दिल में हो दर्दे-तमन्ना, लब पै हो आहे-हज़ीं[7] ॥
हो परेशाँ तेरे जाँबाज़ों की वीराने में ख़ाक ।

---

१. ग़म का जंगल । २. वन । ३. छाला, फफोला घिसनेवाला । ४. खिले हुए, हरे-भरे । ५. क़ब्र के कोने में । ६. एकांत-स्थित । ७. शोक-भरी आह ।

यूँ उड़ाए शामे-ग़म तेरे सियहख़ाने में ख़ाक ॥
उठनेवाले आह ! उठ जाएँ तेरी महफ़िल से यूँ ।
लोटता हो ख़ाक पर तू इज़तरावे-दिल[1] से यूँ ॥
उठ रहा हो शोरे-आवाज़े-जरस[2] मंज़िल से यूँ ।
क़ौम के मोती जुदा हों दामने-साहिल से यूँ ॥
तेरी कश्ती आह ! यूँ गंगा में भरकर ग़र्क़ हो ।
तेरी आयंदा तमन्नाओं का दफ़्तर ग़र्क़ हो ॥
आह ! यूँ काहिश[3] में हों ऐ हिंद ! तेरे बाकमाल ।
बनके चमकें आसमाँ पर बद्रे-ग़ैरों[4] के हलाल ॥
जिनका साया क़ौमो-मिल्लत के लिये हो नेक फ़ाल ।
जलवागाहे-क़ौम से उठ जायँ वह रौशन-ख़याल ॥
अंजुमन ख़ामोश हो और अंजुमन-आरा न हों ।
तिश्ना[5]-लब हों बादाकश और साग़रो-मीना[6] न हों ॥
क़ौम हो गुमकर्दह-रह और रहनुमा कोई न हो ।
जुज़ सदाए-नालह आवाज़े-दरा[7] कोई न हो ॥
हो न फ़रसख़[8] का निशाँ और नक़शे-पा कोई न हो ।
कारवाने-ग़ोले-बियावाँ[9] के सिवा कोई न हो ॥

---

१. दिल की तड़प । २. घंटे की आवाज़ । ३. कमी । ४. दूसरों का पूरा चाँद, ईद का चाँद बनकर । ५. प्यासे । ६. मद्य व प्याला । ७. घंटे का शब्द । ८. यात्रा । ९. बन के भूतों के जत्था ।

क़ाफ़िला-गुमगश्ता[1] रह हो, वादिए[2]-पुरख़ार हो।
ख़िज़रे-मंज़िल हो न कोई कारवाँ सालार[3] हो॥

आह ! ऐ हिंद ! आह ! ऐ आमाजगाहे-तीरे-ग़म[4]।
आह ! ऐ सैदे-जराहत-ख़ुर्दा[5] ओ नख़चीरे-ग़म[6]॥
आह ! ऐ मिन्नत-पज़ीरे-नालए-शबगीरे-ग़म[7]।
आह ! नक़्शे नामुरादी ! आह ! ऐ तसवीरे-ग़म॥

बेकसी का तू हो ग़म-आलूद पुतला ख़ाक पर।
नक़्शे-हसरत हो तेरा नक़्शे-तमन्ना ख़ाक पर॥

तेरी कुश्ते-आरज़ू[8] से आसमाँ को लाग हो।
बर्क़े-ख़िरमन-सोज़ को, बादे-ख़िज़ाँ को लाग हो॥
शहरगे-जाँ से तेरी नोके-सनाँ[9] को लाग हो।
तेरे बीमारों से मर्गे-नागहाँ को लाग हो॥

चारासाज़े-क़ौम हों यूँ वक़्फ़े-बेदादे-अजल।
ताककर यूँ तीर मारे दिल पै सैयादे-अजल॥

आसमाँ हो दरपए-फ़िक्‌रे-गज़ंदे[10]-क़ौम हैफ़ !
हो बसाने[11]-बैद जकड़ा बंद बंदे-क़ौम हैफ़ !

---

१. जत्था मार्ग भूले हुए। २. घाटी काँटों से भरी। ३. सरदार। ४. मिट्टी का ढेर जिस पर तीर लगाए जायँ। ५. घायल हुआ शिकार। ६. शोकस्थान वा शोकातुर। ७. शोक के प्रभात का रुदन। ८. हताश। ९. भाले की नोक। १०. शोकातुर। ११. तादृश्य।

दर्दे-दिल से लोटते हों दर्दमंदे-क़ौम हैफ़ !
सो रहे हों बेख़बर दिरमाँ-पसंदे-क़ौम हैफ़ !
बादाकश ख़ूने-जिगर पीते हों और साक़ी न हो।
ख़ुम में कुछ दो-चार क़तरों के सिवा बाक़ी न हो ॥

३—वफ़ाते-स्वामी रामतीर्थ

[लेखक, डाक्टर शेख़ मोहम्मद इक़बाल एम० ए०, पी०-एच० डी०, बैरिस्टर, लाहौर]

हमबग़ल दरिया से है ऐ क़तरए-बेताब तू !
पहले गौहर था बना अब गौहरे-नायाब[1] तू !
आह ! खोला किस अदा से तूने राज़े-रंगो-बू[2] ।
मैं अभी तक हूँ असीरे-इम्तियाज़े-रंगो-बू[3] ॥
मिट के गौग़ा ज़िंदगी का शोरिशे-महशर[4] बना ।
यह शरारा बुझके आतशख़ानए-आज़र[5] बना ॥
नफ़ी हस्ती इक करिश्मा है दिले-आगाह का ।
ला के[6] दरिया में निहाँ[7] मोती है इल्लल्लाह[8] का ॥
चश्मे-नाबीना[9] से मख़्फ़ी[10] मानि-ए-अंजाम है ।

---

१. अमूल्य मोती । २. नाम-रूप का रहस्य । ३. नाम-रूप के भेद में आसक्त । ४. प्रलय (क़यामत) का शोर । ५. अग्नि । ६. भाव-अभाव, नफ़ी, शून्यता । ७. छुपा हुआ । ८. ईश्वर से अतिरिक्त । ९. अंधे के नेत्र । १०. गुप्त, लोप ।

थम गई जिस दम तड़प सीमाबे-सीमे-खाम[१] है ॥
तोड़ देता है बुते-हस्ती को इब्राहीमे-इश्क़ ।
होश का दारू है गोया मस्तिए-तसनीमे[२]-इश्क़ ॥
क्या कहूँ ज़िंदों से मैं उस शाहिदे-मस्तूर[३] की ।
दार को समझे हुए हैं जो सज़ा मंसूर की ॥

४—रामचर्चा

[लेखक, श्रीस्वामी भोलानाथ]

स्वामी रामतीर्थजी महाराज, जो कि प्रत्यक्ष में परिच्छिन्न और अप्रत्यक्ष में अपरिच्छिन्न वस्तु से अपना संबंध पैदा कर चुके थे, उनकी याद में कुछ पद्य हैं ।

उनका जीवन प्रत्येक जीवन के लिये एक विशेष प्रभाव रखता है । सच्चा प्रेम क्या वस्तु है ? अहंकार का त्याग ।

बगीर ख़ंजरे-तेज़ो-तबर व गुलूए-हया ।
अगर तू आशिक़े-इश्क़ी व इश्क़ रा जोयाँ ॥

अर्थ—यदि तू ईश्वर-प्रेम का प्रेमी अथवा प्रेम का जिज्ञासु है, तो लज्जा के गले पर तेज़ ख़ंजर और तबर को ला डाल ।

पतंगे का संबंध प्रदीप के साथ क्या है ? बुलबुल फूल से क्या संबंध रखती है ?

---

१. कच्चा पारा । २. स्वर्गीय प्रेम की नहर । ३. छुपे हुए साक्षी की ।

मुझको जमइते[1]-ख़ातिर है परेशाँ होना।
लाख सामाँ है, इक बेसरो-सामाँ होना॥

प्रकृति ने इश्क़े-हक़ीक़त (सच्चे प्रेम) का नमूना मजाज़ (कल्पित वा लौकिक प्रेम) में प्रकट किया है। लौकिक प्रेम में रूप का त्याग स्पष्ट प्रसिद्ध है, और सच्चे प्रेम में अहंकार के त्याग की आवश्यकता है। चाहे जो हो, प्रेम का परिपूर्ण होना असत् तथा अनात्मा को भस्म किए विना असंभव है।

बायार कसे दस्त दर आग़ोश न कर्द।
ता तर्के-ज़रो-सीमो-दिलो-होश न कर्द॥
हाफ़िज़ सबूर बाश कि दर राहे-आशिक़ी।
हर कस कि जाँ नदाद बजानाँ नमी रसद॥

अर्थ—कोई भी यार (अपने स्वरूप) से बगलगीर (अभेद) नहीं हुआ, जब तक कि उसने सांसारिक धन-दौलत और बाह्य होश नहीं त्यागे। ऐ हाफ़िज़! संतोष कर, जिस प्रेमी ने प्रेम के मार्ग में अपने प्राणार्पण नहीं किए, वह प्यारे को प्राप्त नहीं हो सका।

राम ने उस शमाए-हक़ीकत (सत्य-प्रदीप) पर परवान-ए-दिल (मन-रूपी पतंगे) को किस प्रकार जलाया। नेह-नातों से पृथक्ता, सांसारिक पद और वैभव से उपरामता मानो प्रत्येक संसार के कमाल को उस कमाल या All के आगे रख दिया।

---

१. संतोष।

मुसव्वर खैंच ला तसवीर वह जिसमें दिखाई हो।
उधर तलवार खींची हो, इधर गर्दन झुकाई हो॥

राम ने जीवन की पूँजी वरन् स्वयं जीवन को भी उस प्रेम-ज्वाला के अर्पण कर दिया, और आप ताली बजाकर आनंद लेने लगे। इस मस्त की वह उस मस्ती से श्रेष्ठ निकली जिससे कि प्रत्येक हृदय विवश होने से उसको मोल लेने के लिये तैयार हो गया।

अक़्ल अगर दानद कि दिल दर बंदे-ज़ुल्फ़श चूँ ख़ुश अस्त।
आक़िलाँ दीवाना गरदंद अज़ पए-ज़ंजीरे-मः॥

अर्थ—बुद्धि अगर जान ले कि उस प्यारे की ज़ुल्फ़ के बंधन में जब दिल हो तो वह खुश होता है। तब बुद्धिमान् लोग तो हमारी प्रेम-रूपी ज़ंजीर के लिये पागल हुए फिरने लग जायँ।

वह ध्येय, जिसके लिये प्रत्येक व्यक्ति व्याकुल है, इस (मस्ती की) वह से उसका चिह्न मिलने लगा, भौतिकता आध्यात्मिकता की ओर झुक गई, व्याकुलता शांति को देखने लगी।

संसार, जो कि अपना प्रभाव इंद्रियों द्वारा हृदय पर रखता है, इस व्याकुल पतंगे या दीप्तिमान् प्रदीप के दिल पर न रख सका; क्योंकि उस हृदय पर उस सत् का आक्रमण हो चुका था जिससे कि बाहरी आँखें अपरिचित हैं। राम के आध्यात्मिक जीवन का आरंभ और अवसान ॐ के

साथ था। उनके जीवन ने संसार में उस तेज का प्रकाश किया, जिसकी चमक को देखने के लिये प्रत्येक हृदय व्याकुल है। उन्होंने अपनी शिक्षा में अनंत सुख का रहस्य खोला, और उस ग्रंथि का खोलनेवाला नाखून यह है—

रह-नवर्दाने-मुहब्बत रा प्याम अज़ मा रसाँ।
कांदरीं राह यक क़दम अज़ खुद गुज़श्तन मंज़ल अस्त॥

अर्थ—प्रेम-मार्ग पर चलनेवालों को हमारा संदेश पहुँचा दो कि इस मार्ग में अपने परिच्छिन्न मैं (अहंकार) से एक पग परे हट जाना ही ध्येय पर पहुँच जाना है।

राम की शिक्षा अकर्मण्यता (inactivity), आलस्य और जड़ता का पाठ नहीं पढ़ाती, वरन् वास्तविक कर्मण्यता (activity) और क्रियाशीलता के रहस्य को खोलती है। वह अवश्य इस परिच्छिन्न अहंकार से पृथक्ता को स्वीकार करती है, किंतु उस अविनाशी शक्ति से एक होने का मार्ग भी इसी परिच्छिन्न अहंकार के त्याग में ही विद्यमान है।

मज़ा रखता है ज़ख्मे-ख़ंजरे-इश्क़।
कभी ऐ बुलहवस खाया तो होता॥

बूँद को समुद्र से मिलाना और कण को मरुस्थल से एक करना 'राम' की शिक्षा का सार है। फिर भी यदि बूँद अपने active अर्थात् चेतन, गतिशील होने का दावा कर सकता है, तो क्या समुद्र से मेल करानेवाला बूँद

अकर्मण्य कहला सकता है। वही instrument (यंत्र) एक गौरवशाली विद्वान् के हाथ में आकर एक विचित्र और अद्भुत काम कर सकता है—

कर तर्क खुदी[1] की आदत को और क़तरे[2] से दरिया बन जा।
हो मह्व[3] ज़रा अस्लीयत में और ज़र्रे[4] से सहरा[5] बन जा॥
क्या आहू-ए-सहरा[6] है तू, जो भूला है यूँ नाफ़ा[7] को।
क्यों जंगल में सरगर्दा[8] है तू अपना ही शैदा[9] बन जा॥

राम ने यद्यपि उस पार्थिव शरीर से संबंध तोड़ लिया है, किंतु उनका जीवन उनकी शिक्षा के एक-एक शब्द से प्रकट हो रहा है। उनकी वाणी भी 'खुमखानए-राम' के प्रथम पृष्ठ पर इस प्रकार है—

बया ऐ शेख़ ! दर ख़ुमख़ानए - मा।
शराबे - ख़ुर कि दर कौसर न बाशद॥

अर्थ—ऐ शेख़ ! हमारे मस्ती के शराबख़ाने में आ, और उसे पी, ऐसी शराब स्वर्ग में भी नहीं है।

सचमुच 'राम' की शिक्षा सांसारिक दुःख-शोक में शांति का संदेश है।

ऐ नसीहत गो ख़ुदा रा रौ बवीं औ रौ बवीं।

---

१. अहंकार का त्याग। २. बूँद। ३. लीन। ४. कण। ५. बन, मरुस्थल। ६. जंगल वा वन का मृग। ७. कस्तूरी। ८. भ्रम रहा। ९. आसक्त, अपने पर मोहित।

अर्थ—ऐ उपदेशक ! जा ख़ुदा को अनुभव कर, जा तू स्वयं निजात्मा का अनुभव कर ।

स्वामी नारायणजी महाराज को अंतःकरण से धन्यवाद देना पड़ता है, जिन्होंने इस बहुमूल्य कोश को इतने बलिदान से लोगों के सामने रक्खा जिससे कि कई हृदयों से दरिद्रता का भाव दूर हुआ, हो रहा है, और होता रहेगा ।

नाथ

गुलाम रूए-ज़मीन

ॐ

कौन-सा गौहर[1] लिए गंगा में जा लेटा है तू ।
जिसके नाज़े-हुस्न का शैदा है अब तक इक जहाँ ॥
तेरी सूरत का तसव्वुर दिल तो बाँधे है मगर ।
तू उठाता ही नहीं है, चादरे - आबे - रवाँ[2] ॥
आह ! क्या एजाज़[3] तुर्फ़ा तेरी पिन्हानी[4] से है ।
दिल असीरे - जिस्म[5] हैं पिन्हाने - बहरे - बेकराँ[6] ॥
तेरे उस नाज़े - तबस्सुम[7] ने लगा दी आग-सी ।
जलते जाते हैं कई शैदाए - वस्फ़े - जाविदाँ[8] ॥

---

१. मोती । २. बहते जल का बुर्क़ा या पहरावा । ३. चमत्कार, करामात । ४. पोशीदगी, लुप्तावस्था । ५. देहासक्त । ६. अनंत समुद्र में लुप्त । ७. मुस्कराहट का नख़रा व हावभाव । ८. अमर गुणों के प्रेमी ।

तू चिरागे-नूरे-वहदत[1] लेके हो पिन्हाने-आब[2] ।
और तारीकी[3] में ठुकराएँ कई पा नातवाँ[4] ॥
तेरा नामे-राम सीनों पे है लेटे मिस्ले-मार[5] ।
तेरा दुर्रे-मार्फ़त[6] आँखों से क़तरा-सा रवाँ ॥
जब कि तू इक हल्क़ा-ए-गरदाब[7] में साकिन[8] हुआ ।
फिर नहीं होता है क्यों गरदाबे[9]-दिल में तू अयाँ[10] ॥
तेरी हस्ती थी सरापा गरक़ए - आबे[11] - हयात ।
इसलिये छोड़ा न तूने पैकरे-ख़ाकी[12] भी याँ ॥
क्या सदाए - नगमए[13] - सोऽहं मिली है आब में ।
और इस नगमे के पैकर में हुआ है तू निहाँ ॥
क्या तेरा मतलब है ज़ेरे-आब रहने से यही—
कि बुझाए आतिशे-परवाना[14] को आबे-रवाँ ॥
आह ! ऐ शोले-सरापा[15] साकिने-फ़ानूसे-आब[16] ।
इजतमाए - आबो - आतिश[17] को किया तूने अयाँ[18] ॥

---

१. अद्वैत-ज्योति का प्रदीप । २. जल में छुप गया । ३. अंधकार । ४. निर्बल के पांव । ५. सर्पवत् । ६. आत्मज्ञान का मोती । ७. भँवर के चक्र में । ८. निवासी, स्थित । ९. दिल के भँवर या हृदयाकाश में । १०. प्रकट, प्रत्यक्ष । ११. अमरत्व में नितांत तल्लीन । १२. भौतिक शरीर । १३. सोऽहं ध्वनि का अलाप । १४. परवाना या प्राणी की बेताबी । १५. अग्नि-स्वरूप । १६. जलरूपी फानूस (कंदील) में स्थित । १७. जल अग्नि के एक जा मिलने को । १८. स्पष्ट, प्रकट ।

कोई जा देखे हिमाला-कोह के हर वर्ग को।
सीनए-नाज़ुक में कोहे - ग़म हिमाला - सा निहाँ ॥
यूँ तो ज़ाहिर है तेरा होना दिले-मुश्ताक़[१] से।
पर उसी क़ालिब[२] से इज़हारे - तबस्सुम[३] है कहाँ ॥
ज़ेरे - पर्दा - ए- अनासर[४] आँख लड़ जाए अगर।
तो कहीं छुपने को मिलती ही नहीं जा[५] बेगुमाँ ॥
कौन-से पत्ते पै तू वह राज़ लिख पिन्हाँ हुआ।
या हिमाला की चटानों पै है, नक़्शे-कामराँ[६] ॥
सीना - ए - बेताब[७] मदफ़ूने - चटाने - संग[८] हो।
शायद है इस संग से हो जाय वह भी राज़दाँ[९] ॥
रोज़ बरदोशे-हवा आती हैं आहें कोह की।
ढूँढ़ जाती हैं तुझे साहिल पै ले बेताबियाँ ॥
हो गया है सीना-ए[१०]-गरदूँ भी हमदर्दे-जहाँ।
ढूँढ़नेवालों को दिखलाए है माहे - .जू - फ़िशाँ[११] ॥
यह तेरी फ़ुर्क़त[१२] अगर देखें मिसाले - वस्ल[१३] है।
क्योंकि यह पिन्हानी[१४] सूरत हुई दिल में है अयाँ ॥

---

१. प्रेमी चित्त। २. शरीर। ३. मुस्कराहट की विद्यमानता। ४. पंचभौतिक परदे-तले। ५. स्थान। ६. आप्तकाम। ७. उसके प्रेम में तड़पता चित्त। ८. पत्थर की चट्टान-तले दबाया हुआ हो। ९. गुह्य भेदी। १०. समय या काल का चित्त। ११. प्रकाशमान चाँद। १२. वियोग। १३. मिलाप के सदृश्य। १४. छुपी।

थे तेरे बेताब जौहर[1] सरनगूने - वहरे - ज़ात[2]।
फिर भला रहने ही क्यों देते तेरी सूरत को याँ ॥
तू मिसाले - बुलबुला था दरमियाने - वहरे - ज़ात।
इसलिये डुबकी लगाई कर लिया पिन्हाँ निशाँ ॥
आह ! तू ज़र्रा मिसाल आग़ोशे-सहरा[3] में बसा।
करके पिन्हाँ सूरते-जुज़वी[4] हुआ कुल में अयाँ ॥
और अब मुश्ताक़ आँखों में हुआ बेताब तू।
बहरे - दीदे[5] - जल्वा-ए - खुद[6] दर ज़मीनो - आसमाँ ॥
क़तरए - अशकम[7] बसूए - आसमाँ[8] परवाज़ कर्द।
शोरो-ग़ौग़ा कर दो शुद हम पहलूए - आवे - रवाँ ॥
तू मिसाले - शाह[9] बूदी पस फुगंदी बारे - तन[10]।
चूँकि बादशाहाँ न ज़ेबद ज़हमते - बारे - गिराँ[11] ॥
अज़ मियाने - साग़रे - तन[12] बादा -अत नौशीदाई[13]।
साग़रत[14] बरसंग करदद ख्वेश रा पोशीदाई ॥
बहरे-दीदे - बादाए - गुलगूने[15] - तो ग़ौग़ा[16] पिदीद।

---

१. गुण। २. आत्मस्वरूप के आगे औंधे। ३. जंगल के दामन में। ४. व्यष्टिरूप व्यक्ति। ५. देखने के लिये। ६. अपने स्वरूप के दर्शन के लिये। ७. मेरी अश्रुबूँद। ८. आकाश की ओर उड़ी। ९. तू बादशाह-जैसा हो गया। १०. देह के भार को डाल दिया। ११. भारी बोझ की पीड़ा। १२. तनरूपी प्याले में से। १३. तूने शराब को पी लिया है। १४. अपना प्याला पत्थर पर डाल दिया। १५. तेरी सुर्ख़ शराब के दर्शनार्थ। १६. शोर प्रकट हुआ।

चूँ ब - आलम क़तरए-बेताब बा दरिया रसीद ॥
ऐ नसीमे - शौक़े - हरदिल रस्म खुश बरदाश्त कुन ।
नग़्महा - ए[1] - ॐ व सोऽहं दर जहान् गोश-कुन[2] ॥
नक़्श था जो बहर पै वह बहर का जाता रहा ।
क्या गया ? बस इक तअय्युन[3] और क्या जाता रहा ॥
वह सदाए - नग़मए - दिलकश जो थी उस साज़ से ।
हो गई वाबस्ता[4] -ए - गोशे - जहाँ किस नाज़ से ॥
साज़ गर मिलता नहीं वह, तो बजा ले दूसरा ।
नग़मए - साज़े - तनफ़्फ़ुस[5] में भला है फ़र्क़ क्या ॥
दामने - शैदाए - बुलबुल से निकल भागा है गुल ।
दिल में जा साकिन हुआ और अंदलीब आसा[6] है गुल ॥
ग़ायते-नज़दीकी[7] - ए - हर - दो मिसाले-हिज्र[8] शुद ।
जीं सबब पैदा व आलम ईं सवाले-हिज्र शुद ॥
गरमिए[9] - परवानए - दिल शुद नमूदे - शमआ - रू ।
शोरिशे - बेताब क़तरा दरमियाने - बहरो - जू ॥
अज़ फ़सूने - अश्के[10]-चश्मम शुद हवेदा शक्ले[11]-राम ।

---

१. ध्वनियाँ । २. सुन । ३. उपाधि । ४. मिल गई । ५. श्वास के बाजे का शब्द । ६. बुलबुल की तरह । ७. दोनों की अत्यंत निकटता । ८. वियोग सदृश्य । ९. परवाने के चित्त की गरमी या भटक ही प्रदीप प्रकट हो गई । १०. मेरे नेत्र के अश्रु के जादू से । ११. राम की मूर्ति प्रकट हुई ।

दरमियाने - आबे - गंगा जल्वा[1] - पैरा शक्ले- 'राम' ॥
तो बराए शमआ - सोज़ाँ आशिक़े - परवाना - ई[2] ।
बहरे - दीदे - जल्वाअश अज़ ख़्वेशतन बेगाना - ई ॥
अंदरूने - सीनाअत हम बादा ओ पैमाना बूद[3] ।
बहरे-जाने-मयकशाँ ओ नीज़ हम मैख़ाना बूद ॥
नौ तराज़े - ख़ूबी - ए - तौहीद[4] रा ब नमूदाई ।
बज़मियाने - गेसुए[5] औ राहे रा पैमूदाई[6] ॥
अज़ हिमाला राज़हाए[7] रमज़े-वहदत[8] आमदी ।
बहरे-गोशे - दिल ब आलम दुर्रे-हिकमत[9] आमदी ॥
तो बराए - गुर्दा कालिब[10] आबे - हैवाँ[11] आमदी ।
बहरे - राज़े - शौक़े - जानाँ मिस्ले - जानाँ आमदी ॥
तो मियाने - नूरे - वहदत[12] शमआ - ओ परवानाई ।
शमआ रा परवाना ओ परवाना रा जानानई ॥

---

१. दर्शन देनेवाली। २. तू प्रज्वलित दीपक के लिये प्रेमी परवाना है, और उसके दर्शन को देखने के लिये अपने से पृथक् है। ३. तेरे हृदय में शराब और प्याला दोनों एक हुए और शराब बनानेवालों के लिये वही शराबख़ाना भी हो गया। ४. अद्वैत की भाँति-भाँति की ख़ूबियों को तूने स्पष्ट किया। ५. बाल। ६. मापा हुआ। ७. गुह्य रहस्य। ८. अद्वैत का रहस्य। ९. दानाई का मोती। १०. जड़ शरीर। ११. प्राणरूपी जल। १२. तू अद्वैत-रूपी ज्योति के भीतर दीपक और परवाना हुआ है।

बहरे-शौक़े-बादए[1]-तो मस्ते-मय हुशियार गश्त।
मुब्तिला-ए-सहरे-चश्मत[2] नरगिसे-बीमार गश्त॥
बादा[3] था हमबगले-सागर[4] हाथ से जाता रहा।
आह! इक नायाब गौहर हाथ से जाता रहा॥
तिश्ना-चश्माने[5]-जहाँ का आब था, जाता रहा।
नौबहार इक जल्वा-ए-बेताब था, जाता रहा॥
शोरिशे-बेताबिए-दिल[6] 'नाथ'[7] कर पिन्हाने-साज़[8]।
वर्ना हो जाए न जुंबिश में कहीं तूफ़ाने-साज़॥

ॐ

५—राम का पद्यमय जीवनचरित

[लेखक, मुंशी द्वारिकाप्रसाद 'गुहर' बरेली-निवासी]

मदद करता है ईश्वर बनके माँ-बाप।
उसी की, जो मदद अपनी करे आप॥

दिले-आज़ादगाने मिन्नत-कश अहले-कर्म न बूद।
न बाशद एहत्याजे-आबे-दरिया नख़्ले-खुदरौ रा॥

विचार था कि मजमुआ तसनीफ़ाते-गुहर के साथ

---

१. तेरे प्रेम-मद्य की जिज्ञासा के लिये मदमस्त हुशियार हो गया। २. तेरे नेत्र के जादू में आसक्त। ३. शराब। ४. प्याला। ५. जगत् के प्यासे नेत्रों का। ६. दिल की तड़प का शोर। ७. कवि की उपाधि। ८. अनहद बाजे में छुपा दे।

गंजीना-ए-जवाहराते-सखुन (जिसमें परमहंस स्वामी रामतीर्थ-जी महाराज एम० ए० का जीवनचरित और अपनी भक्ति तथा सत्य-प्रेम भी दर्शाया है) सम्मिलित किया जाता, किंतु उक्त स्वामीजी महाराज का जीवनचरित पद्य में पुस्तकाकार छपवाकर जनता में वितरण करने की इच्छा तीव्र थी, परंतु चित्त स्थिर न होने के कारण संपूर्ण जीवनचरित पद्य में तैयार न हो सका। इसलिये कुछ संक्षिप्त हालात, जो हृदय में अंकित और हस्त-लिखित थे, एकत्र करके उन्हें ही मजमुआ-ए-तसनीफ़ाते-गुहर से पृथक् प्रकाशित करना उचित समझा।

भूमिका

स्वामी रामतीर्थजी महाराज का संपूर्ण जीवनचरित उनके उपदेशों और प्रभावशाली व्याख्यानों के साथ हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी पुस्तकों में, कई भागों में, छपकर सर्वसाधारण के दृष्टिगोचर हो चुका है, और उनके सुयोग्य शिष्य श्रीमन्नारायण स्वामी ने जिस योग्यता, साहस और भक्ति के साथ उनकी बनाई हुई पुस्तकों को एकत्रित करके ठीक-ठीक वृत्तांतों और कार्यों को जनता के सामने रखकर उनकी स्मृति को क़ायम रखने का जो प्रयत्न किया है, वास्तव में इन तमाम खूबियों का उन्हीं के सिर सेहरा है। यह छोटी-सी प्रेम की भेंट भी उन्हीं के समर्पण करना अच्छा होता, परंतु यह विचार करके, कि एक अति

संक्षिप्त और अपूर्ण जीवनचरित उनकी और अन्य राम-भक्तों की दृष्टि में अति तुच्छ होगा और उन पर पुस्तक छपाने का भार छोड़कर अलग हो जाना कायरपन की दलील होगी, मुझे श्रीमन्नारायण स्वामीजी की सेवा में पुस्तक पेश करने का साहस न हुआ। तथापि ईश्वर को कुछ ऐसा ही मंजूर था कि गत जून-मास में मुझे स्वामीजी महाराज के बरेली में स्वतः दर्शन हो गए और मुझे अपने इस छोटे-से लेख को उनकी भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया, जिस पर स्वामीजी महाराज ने इस छोटे-से राम-चरित को भी श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली में स्थान देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार इस छोटी-सी भेंट का प्रकाशन भी श्रीस्वामी नारायणजी की ही कृपा का फल है।

महापुरुषों का जीवनचरित, विशेषतया पद्य में गोस्वामी तुलसीदास आदि योग्य और श्रेष्ठ कवियों के लिये लिखना तो कोई बड़ी बात नहीं, परंतु आजकल मुझ-ऐसे साधारण योग्यतावाले मनुष्य के लिये एक ऐसे विद्वान् और योग्य संन्यासी का जीवनचरित लिखना, जिसकी कीर्ति का डंका सारे संसार में बज चुका था और जिसके प्रभावशाली व्याख्यान और प्रेम के करिश्मे लाखों नहीं बल्कि करोड़ों हृदयों पर अपना सिक्का बिठा चुके थे, और न केवल भारतवर्ष बल्कि मिस्र, जापान और अमेरिका में जिसके

गुणानुवाद गाए जा चुके थे, कोई सहज काम न था, फिर ऐसी दशा में जब कि दासत्व के वस्त्र पहने हुए और समयानुकूल अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हुए तथा मित्रवर्गों की निःस्वार्थ इच्छाओं को पूरा करते हुए अपना कर्तव्यपालन करने में दृढ़ रहना क्योंकर संभव था, इस लिये पाठकों तथा राम-प्रेमियों से क्षमा चाहता हूँ और अपने प्रिय राम के समक्ष लज्जित हूँ कि पूर्ण जीवनचरित पद्य में लिखने का कर्तव्यपालन न कर सका और सांसारिक धंधों में फँसकर अपने आपको स्वामी रामतीर्थजी महाराज का अनन्य भक्त कहाने का अधिकारी न बना सका।

गुफ़-सा चलने में न होगा कोई गाफ़िल बढ़कर।
गिर पड़े हैं मेरे दामन की गिरह खुलके गुहर॥

प्रथम मुझे श्रीस्वामी रामतीर्थजी महाराज के चरणों में प्रेम होने का यह कारण हुआ कि १९०२ ई० में, जब कि मुझे कविता में अभ्यास कम था, कविता की धुन में कतिपय समाचारपत्रों में अपना लेख भेजता रहता था और बिना मूल्य समाचारपत्र भी मेरे पास आते रहते थे। और मैं १९०२ ई० से कई समाचारपत्रों का संवाददाता था। उनमें से किसी-किसी अख़बार में (जैसे ज़माना, हिंदुस्तानी आदि) कभी-कभी स्वामी रामतीर्थजी महाराज के मनोहर उपदेश और प्रभावशाली व्याख्यान पढ़कर मेरे चित्त को

भाते रहे, और मुझे उनका शिष्य होने की इच्छा उत्पन्न हुई। मेरी यह इच्छा पूर्ण न हो पाई थी, अर्थात् मुझे उनका शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त न हो पाया था कि अगस्त, १९०७ ई० के रिसाला 'आज़ाद', लाहौर में एक लेख "ज़िंदा जावेदे-राम" से शीर्षक मिस्टर हरगोविंद प्रसाद निगम देहलवी का लिखा हुआ मेरे देखने में आया। जिसके कुछ प्रभावशाली वाक्य निम्नलिखित हैं, जिनका मेरे चित्त पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और मेरी आँखों में आँसू डबडबा आए—

"ज़ुबाँ पै बारे ख़ुदाया[1] यह किसका नाम आया।
कि मेरी नुत्क़[2] ने बोसे मेरी ज़ुबाँ के लिये॥

हमारा मोहसिने-शफ़ीक़,[3] हमारा मुहिब्बे[4]-रफ़ीक़ प्यारा राम, जिसकी एक उलफ़त-भरी निगाह दिलों को मोह लेती है और जिसका एक नारा[5]-ए-ओ३म् हज़ारहा मुर्दा दिलों में रास्ती और नेकी का बीज बो देता है, जिसके दर्शन से इन्सान नेक बनते थे और जिसकी सोहबत आदमी के चाल-चलन को टकसाली और मिसाली[6] बना देती थी, हमसे क़रीब-क़रीब एक साल के हुआ है, रूपोश[7] हो गया। दस महीने से ज़्यादा हो गए कि उस बुलबुले-हज़ारदास्ताँ की मीठी-मीठी आवाज़ मुश्ताक़ कानों में नहीं पड़ी और नरगिस[8]-वार मुंतज़िर आँखों ने भी उस बद्रे-

---

१. ऐ परमात्मा। २. वाक् इंद्रिय। ३. कृपालु, दर्दमंद। ४. प्रीति करनेवाला मित्र। ५. प्रणव-ध्वनि। ६. दृष्टांतरूप वा दीपक-स्वरूप। ७. छुप गया अर्थात् ब्रह्मलीन हो गया। ८. पुष्प।

कामिल[१] के नूरानी[२] चेहरे का जल्वा[३] नहीं देखा, जिसकी शुआअतें[४] गुज़िश्ता मार्मी दस माह के पूर्व हज़ारों आँखों को नूरानी बनाती थीं, उस गुले-रअना[५] की ख़ुशबू ख़ुशगवार[६] ने इस आलमे-असफल[७] को मुद्दत हुई मुअत्तर[८] करना छोड़ दिया।

इस बुलबुले-ख़ुशगो[९] ने अभी इस चमन से परवाज़ किया ही था कि तमाम नेचर ने मार्मी लिबासे-ख़िज़ाँ ज़ेबतन[१०] किया और कोहो-हामूँ[११], अशजारो-अनहार[१२] से यह बहिश्त-अंगेज़ सदाएँ[१३] आने लगीं कि हमारा आशिक़े-ज़ार, हमारा दिलदादा व शेफ़्ता[१४] हम पर मरनेवाला आज हमसे जुदा हो गया। मुद्दत से जिसके वस्ल[१५] के वास्ते तड़पते थे आया, और दुरोज़ा ख़ुशीवख़्श-कर फिर चलता-फिरता नज़र आया। हाय! वस्ल के मज़े को भी अच्छी तरह से महसूस न किया था कि हिज्र[१६] का सदमा[१७]-ए-जाँकाह हमारी जान के वास्ते मौजूद हो गया। ख़ैर, माशूक़ों का मातम[१८] शैनो-बुका[१९] तो आरज़ी[२०] होता ही है, संगीनदिल[२१] नेचर ने तो चार माह ही के बाद अपनी मार्मी पोशाक को फाड़कर फिर अपना लिबासे-बहार ज़ेबतन किया। वही सुर्ख़-सुर्ख़ फूल, हरे-हरे पत्ते और लहलहाती हुई सब्ज़ों के परदों में छिप-छिपकर अपनी छवि दिखाने लगी, और आशिक़ों के दिलों में जोशे-जुनूँ पैदा करने लगी। मगर राम, प्यारे राम! तू ही तो बता कि उन

---

१. पूर्ण चंद्र। २. प्रकाश-स्वरूप। ३. प्रकाश, दर्शन। ४. दिलेरी। ५. एक प्रकार का पुष्प। ६. उत्तम सुगंध। ७. भूलोक। ८. सुगंधित। ९. अच्छी तानवाली। १०. पहन लिया। ११. पर्वत, मैदान। १२. वृक्ष और नहरें। १३. आवाज़ें। १४. प्रीतम। १५. मिलाप। १६. जुदायगी। १७. भारी चोट। १८. शोक इत्यादि। १९. रोना-धोना। २०. थोड़े काल तक। २१. पाषाण-हृदय।

दिलों की ख़िज़ाँ को कौन-सी बहार दूर कर सकती है जो जानते हैं कि तेरा वजूद तेरे मुल्क का मुल्की व दीनी ख़िज़ाँ के वास्ते बहार था। काश[1] कि मौजूदा वहशत-अंगेज़ मुल्की वाक़यात पर तेरा दूरबीन और वसी[2] नज़र पड़ती, तो तू हमारे महज़ूँ[3] और मुर्दा दिलों को अपनी ज़ाती ख़ुशनफ़सी से मसीहावार ताज़ा-रूह बख़्शता और हमको अपनी ख़ंदा पेशानी से ओ३म् गाकर बतलाता कि—

चुनाँ न माँद-ओ-चुनीं नीज़ हम न ख़्वाहद माँद।

अर्थ—जब ऐसा नहीं रहा, तो वैसा भी आगे न रहेगा। कुछ उम्मीदें पैदा होतीं, कुछ तबियतें बढ़तीं। इधर तेरी ज़िंदा मिसाल, ख़ुद ईसारे-नफ़सकुशी[4] और मुहब्बते-आलम का सबक़ हर रोज़ ताज़ा पढ़ाकर मायूसी से बचाती और कहती—

गुलगीर[5] सिफ़त जो सिर तराशेंगे अदू[6]।
नाम अपना भी मिस्ल शम्मा-ए-रोशन होगा॥

राम की जुदाई का सदमा, उसकी सोहबते-पाक[8] और तलक़ीने[9]-हाल से जो दुनिया को फ़ैज़ पहुँच रहा था, उसका रंज, अपने मुल्क की हालत और मौजूदा तकालीफ़ और बदबख़्ती[10]—जिसने बड़े-बड़े लायक़ मुदब्बिरों के दिलों को स्याह और बड़े-बड़े इन्साफ़पसंदों, आक़िलों को बेवक़ूफ़ और ग़ैर-इंसाफ़-पसंद बना दिया—और ग़रज़ ऐसे ही बहुत-से आलाम[11] के ख़्यालाते-परेशाँकुनी में मबहूत[12] था कि आलमे-ख़्वाब[13] में गुज़र हो गया तो कुछ

१. क्या अच्छा होता। २. विशाल दृष्टि। ३. टूटे हुए वा उदास। ४. आत्मत्याग वा मन का निरोध। ५. बत्ती काटने की क़ैंची। ६. शत्रु। ७. रौशन, दीपकवत्। ८. सत्संग। ९. मौजूदा उपदेश। १०. दुर्भाग्य। ११. मातम, रोने-धोने। १२. भौचक्का, विस्मित। १३. स्वप्नावस्था।

गए, उक़दे खुलने शुरू हुए और देखा कि एक चमने-वसी[1] में सैर कर रहा हूँ: इस फूल को देखता हूँ, उस फूल को देखता हूँ, मगर तबियत सेर[2] नहीं होती। एकाएक सामने नज़र उठाकर देखता हूँ, तो मालूम होता है, वही मुसकिराता हुआ चेहरा, वही ओ३म गाते हुए लब, वही मुहब्बत-भरी हुई निगाहें, वही मिले हुए हाथ जो हर कसोनाकस[3] को इत्तहाद[4] और यक जहती[5] और वहदहूला शरीक[6] का सबक़ पढ़ाते हैं, कसरत[7] में वहदत दिखाते हैं, वही सुनहरी चश्मा, साफ़ रंग, जिसमें 'राम' सबके वजूदे-असली को देखता था, तख़्ते-नूर पर जल्वा-कुनाँ[8] सामने मौजूद है, सरे-तसलीम ख़म हो गया, पाक क़दमों को बोसा देकर अपनी ज़िंदगी को पाक किया और चश्म[9]-ज़दन में अपने आपको प्यारे राम के आग़ोश[10] में पाया। एक हिस, एक मुसकिराहट, एक लब के इशारे से तमाम कुलफ़तें[11] दूर हो गई, और तमाम आलाम[12] ख़ैरबाद कह गए, उम्मीद का ख़ुशरू चेहरा सामने नज़र आने लगा, क्योंकि राम ने अपने दहिन[13]-मुबारक से फ़रमाया—"क्यों जी मौत की चाहत को इतनी जल्दी भूल गए, राम को कौन मार सकता है, मैं तुम्हारे साथ हूँ, नहीं तुममें मौजूद हूँ, पूर्ण वा नारायण वग़ैरह सब मेरे ही तो वजूद हैं। मायूसी को हरगिज़ जगह न दो। तकालीफ़ को मरदाना वार बरदाश्त करना इन्सान को बुज़ुर्ग बनाता है, और जिस क़ौम में वह पैदा होता है उसके लिये वह बायसे-फ़ख़्र होता

---

१. विशाल उद्यान। २. तृप्त। ३. छोटे-बड़े वा अच्छे-बुरे। ४. एकता, मेल। ५. मिलाप, इत्तफ़ाक़। ६. एकमेवाद्वितीयम्। ७. अनेक में एक। ८. प्रकाशमान। ६. आँख की झपक। १०. बग़ल। ११. कठिनाइयाँ। १२. दुःख। १३. मुखारविंद।

है।" इतना कहने के बाद स्वामी राम फ़ारसी के मुफ़स्सिला ज़ैल अशआर मस्त हो-होकर पढ़ने लगे—

ता शाना सिफ़त सर न निही दर तहे-अर्रा।
हरगिज़ ब सरे-ज़ुल्फ़े-निगारे न रसी॥ १॥
ता सुरमा सिफ़त सूदह न गर्दी तहे-संग।
हरगिज़ ब सफ़ा चश्मे-निगारे न रसी॥ २॥
ता हमचू दुर्रे सुफ़्ता न गर्दी बा तार।
हरगिज़ ब बना गोशे-निगारे न रसी॥ ३॥
ता ख़ाक तुरा कूज़ा, न साज़ंद कुलालाँ।
हरगिज़ ब लबे-लाले-निगारे न रसी॥ ४॥
ता हमचू हिना सूदा न गर्दी तहे-संग।
हरगिज़ ब क़फ़े-पाए-निगारे न रसी॥ ५॥
ता हमचू क़लम सर न निही दर तहे-कारद।
हरगिज़ ब सर-अंगुश्ते-निगारे न रसी॥ ६॥

ख़ाक दर चश्मे कि ओ न शनाख़्त हुस्ने-ख़्वेश रा।
मुर्दा आँ दिल को बला गरदाँ न शुद दरवेश रा॥

अर्थ—(१) जब तक ज्ञान-रूपी आरा के तले तेरा सिर (अहंकार) रखकर कंघी न बना लिया जाय, तब तक अपने प्यारे के बालों तक पहुँचना असंभव है।

(२) जब तक ज्ञान-रूपी पत्थर के नीचे पिसकर तू (तेरा तुच्छ अहं वा अहंकार) सुरमे के समान न हो जाय, तब तक तेरी पहुँच अपने प्यारे के नेत्रों तक भी नहीं हो सकती।

(३) जब तक मोती के समान तू ज्ञान-रूपी तार से न पिरोया जाय, तब तक प्यारे के कान तक भी तू कभी नहीं पहुँच सकता।

(४) जब तक ज्ञानवान्-रूपी कुम्हार तेरी मिट्टी को कूट-कूट

कर प्याला नहीं बना लेते, तब तक तू प्यारे के ओष्ठ तक भी कभी नहीं पहुँच सकता।

(५) जब तक ज्ञान-रूपी चक्की के तले तू पिसकर मेंहदी नहीं हो लेता, तब तक प्यारे के पांव भी तुझे नसीब नहीं होते।

(६) जब तक ज्ञान-रूपी छुरे के नीचे तू अपने अहंकार-रूपी सिर को रखकर क़लम (लेखनी) नहीं बना लेता, तब तक तू अपने प्यारे की उँगलियों तक भी नहीं पहुँच सकता।

उस आँख में मिट्टी पड़े कि जो अपने सौंदर्य को नहीं पहचान सकती। और वह दिल मुर्दा है कि जो तत्त्ववेत्ताओं के ऊपर न्योछावर नहीं हुआ।

हमारा ख़्याल है और इसमें शक नहीं कि यह दुरुस्त ख़्याल है कि आफ़ताब के क़रीब हो जाने से हम चौंधिया जाते हैं, और उसमें जिस क़दर रोशनी हो उसका अंदाज़ा नहीं कर सकते। राम बेशक दुनिया के उन चंद महान् पुरुषों में से है जिनके ज़िम्मे दुनिया की बहबूदी[1] और बेहतरी का अहम[2] काम लगाया जाता है। अज़मत[3] का अंदाज़ा उसके गाँववाले बहुत कम और उसके मुल्कवाले बहुत कुछ ज़्यादा कर सकते हैं। मगर राम की पूरी-पूरी अज़मत कई सदियों के बाद मालूम होगी जिस वक़्त आइंदगान[4] को मालूम होगा कि उसकी मिसाल सदियों से पैदा नहीं हुई, और उसकी तालीमो-तलक़ीन[5] जो मौजूदा ज़माने के कई सदी आगे है अफ़ज़ल[6] और बरतर[7] है और उसकी हसूले-ज़िंदगी की वह हालत है कि जिससे बेहतर कोई वह्मो-ख़्याल में न आ सके।"

---

१. भलाई। २. भारी। ३. बड़ाई, बुज़ुर्गी। ४. भविष्य में आनेवालों को। ५. सिखाना-बुझाना। ६. सर्वोत्तम। ७. श्रेष्ठ।

उपर्युक्त लेख का प्रभाव मेरे दिल पर कुछ कम न पड़ा था जब कि उससे पहले हिंदुस्तानी अखबार, लखनऊ में बाबू गंगाप्रसाद वर्मा का लिखा हुआ लेख (जिसमें स्वामी रामतीर्थजी महाराज के गंगा की लहरों में अंतर्द्धान होने का हृदय-विदारक समाचार था) पढ़कर मेरे दिल पर चोट लगी। एकदम मुझे वैराग्य-सा उत्पन्न हो गया और पागलपन सवार हो गया जिससे घर-बार छोड़कर जंगलों की हवा खाने को मजबूर होने लगा था। मन ही मन में ध्यान करके मैं श्रीगंगाजी से अपने अमूल्य रत्न रामतीर्थजी के दर्शनों के लिये मचल रहा था, गोया अपने नेत्रों से आँसुओं की गंगा बहा रहा था। ऐसी दशा में मुझे कई बार स्वामीजी के दर्शन हुए और वह काल्पनिक मूर्ति अपने अमृतमय उपदेशों से मुझे धीरज देती रही। और वन-भ्रमण के संकल्प से दूर करती रही। इस वैराग्य दशा में जो-जो घटनाएँ और अवस्थाएँ उपस्थित हुई मैं कागज़ के टुकड़ों पर उनको लिखता गया, बल्कि रामोपदेश जो इस छोटे-से ट्रैकट में है, मैं समझता हूँ कि प्यारे राम ही का मनोहर उपदेश है, मेरा नहीं।

कभी-कभी पागल होकर मैं अपनी लेखनी और पुस्तकें फेंककर खुली हवा में टहलने लगता था। बड़ी कठिनता से मैं अपना चित्त सावधान कर सका और इस

वैराग्य तथा समाधि की दशा में जो कुछ मैं संग्रह कर सका, वही गंजीना-ए-जवाहराते-सखुन, अर्थात् पद्य में स्वामी रामतीर्थजी महाराज के जीवनचरित, के नाम से मजमुआ-तसनीफ़ाते-गुहर के साथ शामिल कर दिया, जिसे मैं अब अलग करके रामतीर्थ-ग्रंथावली में प्रकाशित कर रहा हूँ। सन्मार्ग तक पहुँचने और सीढ़ी-सीढ़ी पदार्पण करते हुए कष्ट-पूर्ण पथ को किसी गुरु व नेता की सहायता के बिना ते करना कोई आसान काम नहीं, परंतु सच्चे जिज्ञासु को ऐसे गुरु व नेता का मिल जाना अनुमान से परे नहीं।

जो आया सामने बस रख दिया सिर उसके चरणों पर।
मुहब्बत में न समझा फ़र्क़ कुछ मैं दोस्तो-दुश्मन में॥

कुछ दिनों क़ुल्लियाते-राम व रामवर्षा पढ़-पढ़कर आनंद उठाता और अपना दिल बहलाता रहा। कभी लेखनी और दावात उठाकर प्रिय राम से पत्रव्यवहार करने का विचार करता और वायु को अपना दूत ठहराता।

लाई है ऐ नसीमे-सहर क्या पयामे-राम।
किस रंग में है मेरा दिल आरामे-नाम राम॥

कभी वृक्ष-नहरों से राम का पता पूछता, कभी वन के पशु-पक्षी को अपना साथी और मित्र समझता।

बाग की चिड़ियों! उड़के बता दो कहाँ है प्यारा राम।
बन के दरख़्तों! हिलके बता दो कहाँ है प्यारा राम॥

भगवत्-लीला प्रकृति के मनोहर दृश्य और प्रत्येक पुष्पलता में राम का चमत्कार दिखा-दिखाकर मुझे प्रसन्न और निमग्न करने लगी, यहाँ तक कि एक रात्रि को जब मैं पुस्तक देख रहा था मुझे अक्षरों में राम ही राम की मोहिनी मूर्ति मुसकिराते लबों से 'ओ३म् ओ३म्' उच्चारण करते हुए दिखाई देने लगी। वास्तव में यह दृश्य सोती वा नींदी दशा में दिखाई दिया था, जब कि पुस्तक देखते-देखते आँख एकदम लग गई थी। स्वप्नावस्था में कई बार मुझे स्वामीजी के दर्शन, कभी उपदेश करते हुए और कभी आँखों से आँसू बहाते हुए, मिले। और जब कभी सोते-सोते मेरी आँख खुल गई, तो अपने आपको भी रोता हुआ पाया। जब कभी मेरा दिल घबराता, तो "लाइफ़ आफ़ स्वामी रामतीर्थ ऐंड हिज़ टीचिंग्स" नाम की पुस्तक, जो मुझे अत्यंत प्रिय थी, पढ़ने लगता और दिल बहलाया करता था। कभी-कभी कुछ ऐसी भगवत्-लीला होती कि देवोपमा, वयोवृद्ध पुरुष भगुआ वस्त्र धारण किए हुए मुझे शिक्षा देते दिखाई पड़े, और कभी-कभी ब्रह्मश्रोत्रिय व ब्रह्मनेष्ठी गुरुओं ने मुझे अपना शिष्य बनाने की इच्छा प्रकट की, परंतु मेरे हृदय में पहले से ही स्वामी रामतीर्थजी महाराज का प्रेम समाया हुआ था, इसलिये सबकी सुनता और अपनी धुनता रहा। हार्दिक प्रेम और आकर्षण की दशा यह थी कि

कभी-कभी इच्छाशक्ति और मन:संकल्प से प्रत्येक वस्तु स्वयमेव उपस्थित हो जाती। लगभग यही प्रभाव था कि एक योगेश्वर ने अपने एक अधिकारी शिष्य को मुझे शिष्य बनाने के लिये परीक्षार्थ मेरे पास भेजा, जिन्होंने और शिष्यों के होते हुए भी मुझे अपना शिष्य बनाने की उपदेश द्वारा इच्छा प्रकट की और कहा कि बिना गुरु के मोक्ष मिलना असंभव है, इसलिये तुमको शिष्य होना चाहिए। परंतु मैं स्वामी रामतीर्थजी महाराज को प्रथम ही अपना गुरु और नेता स्वीकार कर चुका था, इसलिये उनकी शिक्षा यद्यपि प्रभावशाली थी परंतु मैंने कुछ ध्यान न दिया, यहाँ तक कि योगेश्वर ने स्वयं दर्शन देकर मेरी समस्त शंकाओं का समाधान कर दिया, और यद्यपि मैं उनको निर्भयता और ढिठाई से मिला, तथापि उन्होंने प्रेमपूर्वक मेरी हर बात को सुना और पवित्र गीता के सिद्धांतानुसार आचरण करने और गृहस्थ-आश्रम को यथा-विधि पालन करने को मुख्य कर्तव्य बतलाते हुए प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करने की शिक्षा दी। सितंबर, सन् १८६८ ई० से सन् १६१० ई० तक ऑडिट आफ़िस आर० के० रेलवे में थोड़े-से वेतन पर मैं साधारण क्लर्क रहा। १२ वर्ष तक बड़े परिश्रम से अपना काम करता रहा। दिन-भर दफ़्तर में काम करना, और कभी-कभी

काम की अधिकता से मकान पर दो-दो घंटे काम करने के अतिरिक्त कुछ समय कविता करने को बचाता रहा। और जैसे-जैसे राम-प्रेम हृदय में जोश मारता गया, वैसे-वैसे कविता उनके उपदेशों के रूप में बहती रही, और इसी तरह उनके जीवनचरित पर भी लेखनी ने अपना प्रवाह जारी किया जिससे यह छोटा-सा संक्षिप्त जीवनचरित उपदेशों के सहित तैयार हो गया, जो आज मैं अति प्रेम-भरे हृदय से राम-प्यारों की भेंट कर रहा हूँ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

ॐ

प्रार्थना

वह भक्ती मुझको ऐ परमात्मा दे।
दुई का भेद जो दिल से मिटा दे॥
मैं सबसे पहले पद भक्ती का पाऊँ।
क़लम लिखने को फिर आगे उठाऊँ॥
मैं रमकर तुझको अपनाऊँ जहाँ में।
तुझी में लय मैं हो जाऊँ जहाँ में॥
अगर रखना है अपने नाम की लाज।
तो बर ला मेरे मन की कामना आज॥
न मैं लज़्ज़ाते-नफ़सानी में भटकूँ।
न माया-मोह के बंधन में अटकूँ॥

न चक्कर में फिरूँ आवागवन के।
रहूँ अँधेरे वन में शेर वन के॥
बनूँ मैं आमिले - राहे - हक़ीक़त।
करूँ तै मंज़िले - राहे - हक़ीक़त॥
रहूँ क़ैदे-अलायक़[1] से मैं आज़ाद।
समझ मुझको भी अपना भक्त प्रहलाद॥
दिए दर्शन ध्रुव को जिसने वन में।
वही तू रम रहा है मेरे मन में॥
तेरा जल्वा है हर कौनो-मकाँ में।
तु ही तू है ज़मीनो-आसमाँ में॥
बसा है तू ही तू मेरी नज़र में।
तेरा प्रकाश है ब्रह्मांड-भर में॥
तेरा ही नूर है शम्सो[2]-क़मर में।
चमन में, नख़्ल[3] में, हर बर्गो-बर[4] में॥
फ़लक[5] पर झूमती काली घटाएँ।
घटा में बर्क़[6] की दिलकश अदाएँ॥
तु ही तू जल्वा-अफ़ज़ा[7] चार सू[8] है।
जिसे समझा हूँ मैं, क्या शक है ? तू है॥
हयाओ - हुस्नो - शोख़ी[9]-ओ - अदा में।

---

१. संबंधियों के बंधन। २. सूर्य-चाँद। ३. वृक्ष। ४. पत्ते-फल। ५. आकाश। ६. बिजली। ७. प्रकाशमान। ८. चारों ओर। ९. लज्जा, सुंदरता।

जमाले[1]-यारो - चश्मे - दिलरुबा में ॥

तुझे हर रंग में मस्ताना पाया।
तुझे हर शमअ़ पर परवाना पाया॥

जहाँ देखो वहाँ है जल्वागर तू।
सनम तू है, नज़र तू है, गुहर[2] तू॥

मिले भक्ती तो सब कुछ आ गया हाथ।
मुझे अब चाहिए क्या और हे नाथ!

हक़ीक़त हो गई मालूम अपनी।
है धोखा हस्तीए-मौहूम[3] अपनी॥

यह दुनिया क्या है नक़शा ख़्वाब का है।
हुबाब उठता हुआ इक आब का है॥

यह मक़सद आख़िरी है ज़िंदगी का।
लिखूँ जीवनचरित इक मह-ऋषी का॥

है जिसका नाम नामी रामतीरथ।
श्री भगवान स्वामी रामतीरथ॥

सुनाए मौत जब पैग़ाम अपना।
गुहर यों हो बख़ैर-अंजाम अपना॥

नज़र हसरत की दुनिया पर पड़ी हो।
अजल मुक्ति लिए सिर पर खड़ी हो॥

तमन्ना है कि चरणों का रहे ध्यान।
दमे-आख़ीर छूटें जब मेरे प्रान॥

---

१. सुंदरता। २. मोती या कवि की उपाधि। ३. कल्पित शरीर।

वही हो जल-समाधी का नजारा।
तरंगों में हो गंगाजल की धारा॥
कँवल आसन व फ़र्शे-सतहए-आब[1]।
चँवर झलती हो हर इक मौजे[2]-गिरदाब[3]॥
घटाएँ प्रेम की छाई हुई हों।
हवा में लहरें वल खाई हुई हों॥
हमारा राम प्यारा ज़िंदा-जावेद[4]।
अयाँ[5] वहरे-शफ़क़[6] में मिस्ले-ख़ुरशेद[7]॥
हो जल-धारा में यों आसन जमाए।
मुनी पर्वत पै ज्यूँ धूनी रमाए॥
फ़लक तक गूँजती हो ओ३म् की धुन।
जो धुन सुन-सुन के लहरें जल की हों सुन॥
लबे-गंगा[8] गिरोहे-आशिक़ाँ हो।
अजब कुछ दिलरुबा प्यारा समाँ हो॥
हर इक बेखुद हो मस्ताना अदा[9] में।
सुरीली ओ३म् की दिलकश सदा[10] में॥
तसव्वुर[11] हो वही इक चश्मो-सर[12] में।
हो फिरती मोहिनी मूरत नज़र में॥
कफ़न तन का बने हरिद्वार की धूल।
चढ़ें बस राम-गंगा में मेरे फूल॥

---

१. जल की तह पर। २. तरंग। ३. भँवर। ४. अमर पुरुष। ५. प्रकट। ६. उषा के समुद्र। ७. सूर्यवत्। ८. गंगातट। ९. ढंग। १०. ध्वनि। ११. ध्यान। १२. दिल आँख।

जन्म, वंश और बाल्यावस्था

है शब की आमद-आमद रुख़सते-शाम ।
छुपा मग़रिब में है मेहरे-गुल[1]-अंदाम ॥

दिवाली का है दिन घर-घर ख़ुशी है ।
दिलों में रूह-अफ़ज़ा[2] रोशनी है ॥

दिए घी के हैं रौशन मंदिरों में ।
हैं घंटे बजते टन-टन मंदिरों में ॥

चिराग़ों से है घर हरएक गुलज़ार ।
मनाया जा रहा है आम त्योहार ॥

मुरारीवाला इक छोटा-सा है गाँव ।
निछावर जिस पे है बरसाना नंदगाँव ॥

यहाँ इक ब्राह्मण के घर बसद-प्रेम[3] ।
उसी दिन लक्ष्मी-पूजन का है नेम ॥

है इसका नाम हीरानंद मशहूर ।
गुसाईं ब्राह्मण है चश्मे-बद[4] दूर ॥

हैं इसके घर ख़ुशी के साज़ो-सामाँ ।
दिए रौशन हैं रश्के-माहे-ताबाँ ॥

ख़ुशी इक और भी है होनेवाली ।
दुबाला होता है जश्ने-दिवाली ॥

न था मालूम अभी कुछ देर का हाल ।
चमकता चाँद से भी बढ़के इक लाल ॥

---

१. पुष्पवत् सूर्य । २. प्रसन्नतावर्धक । ३. सैकड़ों । ४. बुरी दृष्टि ।

कि बालाए - सरश[1] अज होशमंदी ।
दरख़्शाँ आफ़ताबे - अरज - मंदी[2] ॥

करेगा इस भरे घर का उजाला ।
ख़ुशी का मर्तबा होगा दुबाला ॥

ख़बर थी किसको यह नन्हा-सा प्यारा ।
बनेगा क़ौम की आँखों का तारा ॥

महीना अक्तूबर का था शुभ घड़ी थी ।
अठारा सौ तिहत्तर ईसवी थी ॥
बवक़्ते-शब दिवाली[3] बुद्ध के रोज़ ।
हुआ ताबाँ यह माहे-आलम-अफ़रोज़[4] ॥

हैं गुज़रे साल तक़रीबन व्यालीस[5] ।
था संवत विक्रमीय उन्नीस सौ तीस ॥
हुई जब दूसरे दिन सुबह ताबाँ ।
हुआ ख़ुरशीदे-आलम जल्वा अफ़शाँ ॥

गुसाइँ ख़ान्दान् का नूर चमका ।
यह प्यारा नाज़िरो-मनज़ूर चमका ॥
बनी इशरत-कदह[6] वह पाक भूमी ।
बुलाए बाप ने पंडित नजूमी ॥

---

१. उसके सिर पर । २. सौभाग्य का सूर्य । ३. कवि की भूल से समय ऐसा दिया गया है । राम की जन्मघड़ी जन्मपत्री के अनुसार दिवाली के दूसरे दिन लगभग ४ बजे सायंकाल है । ४. जगत्-प्रकाशक चाँद । ५. लेखक ने जिस समय यह जीवनी लिखी थी तब ४२ वर्ष का समय बीता था, पर अब ६० वर्ष से ऊपर हो गए हैं । ६. ख़ुशी का घर ।

की इक पंडित ने यह पेशीनगोई ।
कि है फ़रज़ंद यह औतार कोई ॥
इसे थोड़े ही सिन में ज्ञान होगा ।
बड़ा भारी यह विद्यावान होगा ॥
हवा आएगी जंगल की इसे राम ।
करेगा यह भजन-तप, योग-अभ्यास ॥
हो ईश्वर-दर्शनों की चाह इसको ।
हक़ीक़त की मिलेगी थाह इसको ॥
मजाज़ी से हक़ीक़ी को पहुँचकर ।
सरूरे-ज़ात[1] का तैरे समुंदर ॥
नफ़स को योग से कर लेगा वस में ।
फँसेगा यह न दुनिया की हवस में ॥
कि दुनियावी सुखों पर मारकर लात ।
बनेगा बादशाहे - किशवरे - ज़ात[2] ॥
रिफ़ाहे-आम हों अरमान इसके ।
हों क़ौम औ मुल्क पर अहसान इसके ॥
करेगा ख़ूब दुनिया-भर की यह सैर ।
समुंदर मारफ़त[3] का जायगा तैर ॥
बरस इक्कीस या तैंतीस के अंदर ।
है डर, ग़रक़ाब हो दरिया में गिरकर ॥
अवाइल उम्र[4] ही से था इसे ज्ञान ।

---

१. निजानंद । २. आत्मलोक । ३. आत्मज्ञान । ४. बचपन से ।

हक़¹ औ नाहक़ की थी हद-दर्जे पहचान ॥

अगर ईश्वर है निर्गुण औ निराकार ।
तो क्यों पूजें न इस मूरत को साकार ॥

यह भारतवर्ष का प्यारा दुलारा ।
लगा नाज़ों से पलने माह - पारा ॥

हुए पैदा हुए पूरे न नौ माह ।
कि विछुड़ा गोद से माता की यह, आह !

जो तीर्थ देवी इक उसकी बहन थी ।
और घर में पिता अपने की जो बहन थी ॥

यह हर दो प्रेम की पुतली बनी थीं ।
कि ईश्वर-प्रेम में डूबी हुई थीं ॥

बना नूरे-नज़र उनका यह फ़रज़ंद ।
पला आग़ोश में उनके यह दिलबंद ॥

उसे वे प्रेमो-उल्फ़त से खिलातीं ।
भजन ईश्वर के गा-गाकर सुनातीं ॥

असर ऐसा पड़ा भजनों का दिल पर ।
कि बचपन से ही भक्ती ने किया घर ॥

वह दिलकश मोहनी मूरत का नक़्शा ।
चमकता चाँद-सी सूरत का नक़्शा ॥

हर इक की आँख की पुतली का था तिल ।
लुभा लेता था बस हर एक का दिल ॥

बरस दो की अभी नौबत थी आई ।

1. सत्-असत् ।

हुई बचपन में ही उसकी सगाई ॥
गुसाईं[१] हीरानंद उसके पिदर[१] की ।
हुई कुछ दिन में शादी दूसरी भी ॥
हक़ीक़ी माँ को यह था जैसा प्यारा ।
बना सौतेली माँ का भी दुलारा ॥
हुआ जब ख़त्म उसका तीसरा साल ।
बिठाया बाप ने मकतब[२] में फ़िलहाल ॥
था बचपन ही से ज़हन उसका ख़ुदादाद[३] ।
कि था मद्दाह[४] हर एक उसका उस्ताद ॥
बढ़ा इल्मो-अदब[५] का इस क़दर शौक़ ।
कि हमचश्मों में सबसे ले गया फ़ौक़[६] ॥
थे करते प्यार सब उस्ताद उसको ।
सबक़ रहता था अज़बर याद उसको ॥
कथा का शौक़ था बचपन से उसको ।
भजन थे 'हर' के भाते मन से उसको ॥
हुई तालीम जब ख़त्म इब्तिदाई[७] ।
तो नौबत मदरसे जाने की आई ॥
उसी क़सबे में था सरकारी इस्कूल ।
वहाँ जाता था पढ़ने हस्बमामूल ॥
किया तहसीले-इल्म इस शौक़े - दिल से ।

---

१. पिता । २. पाठशाला । ३. ईश्वरदत्त । ४. प्रशंसा करने-वाला । ५. विद्याध्ययन । ६. वृद्धि, उन्नति । ७. प्रारंभ ।

किए तै जल्द छोटे-छोटे दरजे ॥
न खोया वक़्त बेकार अपना इक पल ।
रहा नंबर हर इक दरजे में अव्वल ॥
वज़ीफ़े भी किए हासिल कई बार ।
मिले सार्टीफ़िकेट भी उसको दो-चार ॥
ग़रज़ करता गया ज्यों सिन[1] तरक़्क़ी ।
की उस नौउम्र ने दिन-दिन तरक़्क़ी ॥
कि थोड़े ही दिनों में करके अभ्यास ।
किया वर्नाक्युलर उर्दू मिडिल पास ॥
जो पहुँचा दस बरस के सिन में यह माह[2] ।
पिता ने इसके इसका कर दिया ब्याह ॥
अभी बच्चे को कब इतनी समझ थी ।
कि पैरों में पड़ी जाती है बेड़ी ॥
हुआ बारह बरस में कुछ समझदार ।
तो बोला बाप से इक रोज़ नाचार ॥
नहीं यह हिंदुओं में रस्म अच्छी ।
कि कर देते हैं बचपन में ही शादी ॥
तरक़्क़ी में रुकावट है जो कुछ भी ।
तो बस यह कमसिनी[3] ही की है शादी ॥
यह नौ-दस साल का नौउम्र बच्चा ।
हक़ और नाहक़ को इतना जानता था ॥

---

१. आयु । २. चंद्रमुख राम । ३. छोटी आयु की ।

कि ख़ुद कहने लगा इक दिन पिता से।
पिताजी, मदरसे के मौलवी ने॥
पढ़ाने में है की मेहनत मेरे साथ।
है उस्तादाना की शफ़क़त मेरे साथ॥
यह मेरी राय में है मौलवी को।
बँधी है भैंस जो घर पर वह दे दो॥
किताबों में पढ़ा है मैंने अक्सर।
कि हक़ उस्ताद का है सबसे बढ़कर॥
सन् अट्ठारा सौ अट्ठासी में इसने।
किया पास इंटरेंस अज़हद ख़ुशी से॥
था जितना इल्म उसे उतना अमल था।
वज़ीफ़े जो मिले, मिहनत का फल था॥
सन् अट्ठारा सौ नव्वे में फिर इसने।
किया अव्वल हो नंबर पास एफ़० ए०॥
तबीअत में बला की सादगी थी।
अजब हिम्मत, अजब आमादगी[1] थी॥
मदद करता है ईश्वर बन के माँ-बाप।
उसी की जो करे अपनी मदद आप॥
यह पाता था जो सरकारी वज़ीफ़ा।
किताबों का भी सरफ़ा[2] था न चलता॥
न बचता पास था पैसा कोई भी।

१. उत्साह। २. ख़र्च।

बमुश्किल थी गुज़र-औक़ात होती ॥
था बाप उसका ग़रीब इतना बेचारा ।
बमुश्किल रोटियों का था गुज़ारा ॥
उस ईश्वर-भक्त को ख़ुद पर था विश्वास ।
रहा करता था हरदम शाद-बश्शास[१] ॥
दिमाग़ उसका वह मख़ज़न[२] अक़्ल का था ।
नमूना साफ़ रौशन अक़्ल का था ॥
मिनट इक-इक था उसका बेश-क़ीमत ।
वह था मुतलाशिए - राहे - हक़ीक़त[३] ॥
शबो-रोज़[४] उसने की मेहनत लगातार ।
वह आख़िर पड़ गया इक बार बीमार ॥
न मेहनत सह सकी जब तन्दुरुस्ती ।
तो बी० ए० में हुई नाकामयाबी ॥
मगर मेहनत से ख़ुद हिम्मत न हारा ।
हुआ दरजे में पास आख़िर दुबारा ॥
वज़ीफ़े पाए दो फिर पास होकर ।
रहा बी० ए० में भी अव्वल ही नंबर ॥
कि हल करना रियाज़ी के सवालात ।
नज़र में उसके इक अदना-सी थी बात ॥
दिली ख़्वाहिश रहा करती थी अक्सर ।
बनूँ दुनिया का टीचर[५] या कि प्रीचर[६] ॥

---

१. प्रसन्नचित्त । २. ख़ज़ाना । ३. सत्य मार्ग का जिज्ञासु ।
४. रात-दिन । ५. उस्ताद या शिक्षक । ६. उपदेशक ।

सो ईश्वर लाया बर ख़्वाहिश यह उसकी ।
बना दुनिया का वह टीचर हक़ीक़ी ॥
रियाज़ी सीखने उससे सदा थे ।
एम० ए० तक के थे तल्बा[1] आते ॥
वह भक्त ईश्वर का प्यारा रामतीरथ ।
हर इक नज़रों का तारा रामतीरथ ॥
था इल्म-ओ-फ़न का कुछ इस दर्जे शायक़[2] ।
कि पढ़-लिखकर हुआ हद दर्जे लायक़ ॥
रियाज़ी के प्रोफ़ेसर ने भी ख़ुश हो ।
वहाँ सब चैन दी इनआम उसको ॥
थे नामी डॉक्टर इक बाबू रघुनाथ ।
उन्होंने रामतीरथ का दिया साथ ॥
पढ़ाने में दी एम० ए० तक की इम्दाद ।
कि एहसाँ रह गए उनके सदा याद ॥
हुआ था इत्तफ़ाक़ इक बार ऐसा ।
वह पाता था जो माहाना[3] वज़ीफ़ा ॥
न उसमें से बचा कुछ पास उसके ।
लिए क़र्ज़ उसने दस रुपए किसी से ॥
अदाई की अजब सूरत थी उनके ।
वह हर माह उसको दस देता था रुपए ॥
है अहसाँ के इवज़ यह फ़र्ज़ इन्साँ ।
कि मोहसिन[4] को कभी भूले न एहसाँ ॥

---

१. विद्यार्थी । २. लगनवाला । ३. मासिक वृत्ति । ४. कृपालु ।

थी जैसी कुछ कि क़ब्ल अज़ इम्तहाँ आस[1] ।
एम० ए० भी कामयाबी से किया पास ॥
रियाज़ी के मिशन - कालिज में ख़ुद ही ।
प्रोफ़ेसर भी रहे आप आनरेरी[2] ॥
हैं लिखते डॉक्टर रघुनाथ को आप ।
यह सब है आप ही का पुण्य-परताप ॥
हुई मुझ पर दया परमात्मा की ।
कि हासिल हो गई एम० ए० की डिगरी ॥
था गो सख़्त इम्तहाँ, परचे थे मुश्किल ।
मगर इम्दाद थी ईश्वर की शामिल ॥
बुज़ुर्गों की दुआ से हो गया पास ।
मिला मेहनत का फल पूरी हुई आस ॥
इसी असना[3] में गुज़रा वाक़या एक ।
ज़-बस जाँकाह[4] था यह हादसा[5] एक ॥
वह तीरथदेवी जो उसकी बहन थी ।
जिसे हद दर्जा उसकी मामता थी ॥
हुई इक दिन ग़शी उसको जो तारी ।
तो वह बैकुंठ को इकदम सिधारी ॥
जुदाई का बहन की जब सुना हाल ।
न पूछो राम का जो कुछ हुआ हाल ॥

---

१. आशा । २. अवैतनिक । ३. समय, काल । ४. प्राण लेनेवाला । ५. घटना ।

दिल उसका गो कि मुतहम्मिल[1] बड़ा था ।
मगर सदमा यह फ़ुरक़त[2] का कड़ा था ॥
उमड़ आए जो अश्क[3] आँखों से यक बार ।
कलेजे को लिया खुद थाम नाचार ॥
जो खेला गोद में बचपन से था राम ।
बहन का लाड़ला तन मन से था राम ॥
भर आया जोशे-उल्फ़त से जो दिल आह !
तो रख ली सब्र की सीने पै सिल[4] आह !
किया सदमा बसद हसरत-गवारा ।
नहीं था सब्र के जुज़ कोई चारा ॥
कथा सुनने का बचपन से जो था नेम ।
भरा हर रोम में ईश्वर का था प्रेम ॥
है नंदगोपाल का मंदिर जो मशहूर ।
कथा सुनने को जाते हस्ब दस्तूर ॥
है ज़िक्र इक दिन कथा सुनते ही सुनते ।
लगे आप यकबयक बेतौर रोने ॥
हों बच्चे जिस तरह रोते बिलक कर ।
थे रुख़सारों पै अश्क[5] आते ढलक कर ॥
किया रोने को सबने मना हर चंद ।
नहीं रोना हुआ पर आपका बंद ॥
न काम आया दिलासा औ तशफ़्फ़ी ।

---

१. धैर्यवान् । २. वियोग । ३. अश्रु । ४. पत्थर । ५. अश्रु ।

अमर दिल पर गई कर प्रेम-भक्ती ॥
नहीं छुपता है जब इश्क़े-मजाज़ी ।
तो छुप सकता है कब इश्क़े-हक़ीक़ी ॥
एम० ए० की रामडिगरी करके हासिल ।
हुए भक्ती की जानिब आप मायल ॥
स्वाभाविक आपमें ईश्वर के गुण थे ।
कि क़ुदरत की तरफ़ से कारकुन थे ॥
मगर माया का परदा दरमियाँ था ।
गुजस्सिम ब्रह्म[१] का जल्वा निहाँ[२] था ॥
भजन में महव[३] इतने हो गए थे ।
कि अपने तन - बदन से खो गए थे ॥
तसव्वुर[४] कृष्ण का ऐसा बँधा था ।
स्वरूप अपना भी ख़ुद भूला हुआ था ॥
तमन्ना थी कि हों ईश्वर के दर्शन ।
यह तन-मन-धन करूँ सब कृष्ण-अर्पण ॥
घटा को देखकर आँसू बहाकर ।
यह कह उठते थे दीवाना अक्सर ॥
मुझे कब होंगे दर्शन कृष्ण प्यारे !
बनोगे कब मेरी आँखों के तारे ॥
नहीं अब और कोई जुस्तजू है ।

---

१. ब्रह्मस्वरूप । २. लुप्त । ३. लीन । ४. ख्याल, ध्यान ।

फ़क़त दर्शन की मुझको आरज़ू है ॥
है ज़िक्र इक रोज़ का रावी किनारे ।
थे महव ईश्वर-भजन में आप प्यारे ॥
कि कोइल कूक उठी इतने में नागाह ।
पड़े चौंक आप भरकर सर्द इक आह ॥
कहा कोइल से फिर तान इक सुना दे ।
मुझे उस बंसीवाले का पता दे ॥
सदा[1] मुरली की है जैसी तरबख़ेज़ ।
है तेरी कूक भी दिलकश - दिलावेज़[2] ॥
बता दे कृष्ण का देखा है मुखड़ा ।
यक़ीनन साँवला उसका है मुखड़ा ॥
कभी कहते थे अश्क आँखों में भरकर ।
दया कब कीजिएगा कृष्ण ! मुझ पर ॥
न होंगे आपके क्या मुझको दीदार[3] ।
हूँ क्या मैं ऐसा ही पापी गुनहगार ॥
सनातनधर्म के जल्सों में अक्सर ।
खड़े होते थे जब देने को लेक्चर ॥
हक़ीक़ी प्रेम के दिलकश असर से ।
थे गंगा-जल बहाते चश्म-तर से ॥
जो माहाना मिला करती थी तनख़्वाह ।
क़रीबन सर्फ़ हो जाती थी हर माह ॥

---

१. आवाज़, ध्वनि । २. मनोहर । ३. दर्शन ।

वह अपने क़ौल के ऐसे धनी थे।
ग़ुलाम उनके थे सब जितने ग़नी[1] थे ॥ *

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

मुसद्दस

[लेखक, मुं० द्वारिकाप्रसाद साहब 'गुह्हर', लखनवी]

ॐ

प्रेम का तोहफ़ा

(हक़ीक़ी, लाज़वाल, बेलौस और सच्ची मुहब्बत की यादगार में)

चमक जा हुस्न[1] की दिलकश अदा में राम की मूरत।
चमक कर बर्क़[2] दिखला दे घटा में राम की मूरत ॥
चमक आईनए-दिल की जिला में राम की मूरत।
चमक जा ॐ की दिलकश सदा[3] में राम की मूरत ॥
दिखा दे इक झलक ऐ गंगे माई ! 'राम' प्यारे की।
गुसाईं भक्त हीरानंद[4] के आँखों के तारे की ॥ १ ॥

निहाँ[5] नज़रों से है क्यों आज ऐ मह्वे-ख़ुद[6]-आराई।
दरख़्शाँ[7] है किधर ऐ आफ़ताबे-अक़्ल-ओ-दानाई[8] ॥

---

१. धनाढ्य वा बेपरवाह।

* यहीं तक ही यह जीवनी लिखी गई थी। यदि कवि महाशय इसे पूर्ण कर देंगे, तो आगामी संस्करण में उसे भी प्रकाशित किया जायगा।

१. सौंदर्य। २. बिजली। ३. ध्वनि। ४. स्वामी राम के पिता का नाम था। ५. छुपा। ६. अपनी महिमा में मस्त वा मग्न। ७. रौशन। ८. बुद्धि व समझ का सूर्य।

कहाँ है आज तू ओ खुद तमाशा खुद तमाशाई।
है किस दुनिया में आज ऐ प्रेम औ उल्फ़त के शैदाई[1]॥
है गुस्ताख़ आँखें देखें, प्यारी मस्ताना अदाएँ हम।
सुनें इक बार फिर ॐ ॐ की दिलकश सदाएँ[2] हम॥ २॥

कहाँ ॐ ॐ की धुन में है तू ऐ राम! मतवाला।
कहाँ तू झूमता फिरता है पीकर प्रेम का प्याला॥
हर इक दिल में फिर अपने तेज का फैला दे उजियाला।
दिखा दे राम मुखड़ा प्यारा दिल को मोहनेवाला॥
बहा दे शांती औ प्रेम का दरिया मेरे दिल में।
दिखा दे जल्वए[3]-हुस्ने-हक़ीक़ी पहली मंज़िल में॥ ३॥

नसीमे-दश्त[4]! किसको ढूँढ़ती फिरती है तू वन में।
सबा[5] फिरती है किसकी जुस्तजू में सेहने-गुलशन[6] में॥
लहरिया प्रेम की ओढ़े मगन लहरें हैं क्यों मन में।
छुपा है मेरा मोती राम गंगा! तेरे दामन[7] में॥
पहाड़ों की चटानें कर रही हैं शोर वादी[8] में।
है अब तक प्यारा स्वामी रामतीरथ जल-समाधी में॥ ४॥

मुजस्सिम प्रेम की ओ जागती मूरत कहाँ है तू।
हक़ीक़ी हुस्न की ओ मनचली मूरत कहाँ है तू॥
वह हँसती मुस्कराती मोहनी मूरत कहाँ है तू।

---

१. प्रेम पर लट्टू। २. ध्वनियाँ। ३. असली सौंदर्य का दर्शन। ४. वन-पवन। ५. पूर्वी वायु वा समीर। ६. बाग़ के आँगन (चौक) में। ७. पल्ला, अर्थात् तेरे भीतर। ८. घाटी।

रियाज़ी,[1] फ़िल्सफ़ी,[2] वेदांती मूरत कहाँ है तू ॥
दुई का काश[3] परदा सामने से जल्द हट जाए।
तेरे दर्शन से भारतवर्ष की काया पलट जाए ॥ ५ ॥

महक[4] फूलों में फहराए गुलबुने - बाग़े - सख़ुन[5]-दानी।
चहक शाखों पै फहराए बुलबुले-मस्ते-ख़ुश -अलहानी[6] ॥
सुना इक बार फिर कानों को दिलकश रागे - हक़ानी[7]।
लुटा दिल खोलकर गंजीनए-असरारे- रूहानी[8] ॥
शहंशाहों का शाहंशाह यकताए-ज़माँ[9] तू है।
ज़मीं तू है, ज़माँ तू है, मकीं[10] तू है, मकाँ[11] तू है ॥ ६ ॥

नफ़स[12] को ज़ेर करके किसने सर की फ़ौज रावन की।
तलाशे-हक़[13] में किसने ख़ाक छानी कोह और बन की ॥
बड़ी थी लालसा ऐ राम! तुझको राम-दर्शन की।
रमा तू राम में ऐसा कि पाई कामना मन की ॥
यह है हक़्क़ुल-यक़ीं[14], ढूँढ़ा है जिसने उसको पाया है।
कभी आशिक़ कभी माशूक़ बन-बनकर वह आया है ॥७॥

निगाहें ढूँढ़ती हैं राम! तुझको कोहो-सहरा[15] में।
तेरी फ़ुरक़त[16] में है बेताब हर इक आज दुनिया में ॥

---

१. गणितविद्या की। २. तत्त्वज्ञान की। ३. ईश्वर करे कि। ४. सुगंधि दे। ५. तत्त्ववेत्ताओं के बाग़ के वृक्ष। ६. मधुर स्वर से गानेवाली बुलबुल। ७. परमात्मा का आलाप। ८. आध्यात्मिक रहस्यों का ख़ज़ाना। ९. अद्वितीय काल। १०. स्थान का स्वामी। ११. स्थान। १२. अहंकार, व्यक्तिगत अभिमान। १३. ब्रह्म-जिज्ञासा। १४. निश्चयात्मकता। १५. वन-पर्वत। १६. जुदाई।

बहा जाता है बेड़ा क़ौम की कश्ती का दरिया में।
तरंगें कर रहा लहरों से है तू राम गंगा में॥
सदा[1] आती है, ढूँढ़ो दिल में, प्यारा राम तुझमें है।
कहाँ है, राम मैं हूँ, राम मैं हूँ, राम मुझमें है॥ ८॥

वह देखो राम प्यारा झूमता मस्ताना आता है।
लगाता ॐ के नारे वह बेतावाना आता है॥
है घुलती शमअ् ग़म में जिसके वह परवाना आता है।
जो दीवाना है उसके पास ही दीवाना आता है॥
उठो आवाज़े-हक़[2] सोते हुओं को फिर जगाती है।
सदाए - राम दिलकश गूँजती कानों में आती है॥ ९॥

लगा देता है सबको पार जिसका नाम ऐ प्यारे!
वही बस विर्दे-लब[3] रख नाम सुबहो-शाम ऐ प्यारे!
वह घट-घट में हर इक के रम रहा हैं राम ऐ प्यारे!
कहीं है राम प्यारा और कहीं है श्याम ऐ प्यारे!
हटा परदा दुई का आँख खोल और देख तू क्या है।
रमा जिस राम में वह राम तेरे दिल में बैठा है॥ १०॥

क़दम नक़्शे-क़दम पर राम के धरते जो आएँगे।
सुरूरे-ज़ात[4] का गहरा समुंदर पैर जाएँगे॥
जो अपने आपको लज़्ज़ाते[5]-दुनिया में फँसाएँगे।
वही बस ठोकरें इक-इक क़दम पर खूब खाएँगे॥
कड़ी है प्रेम की मंज़िल मगर जिसने क़दम मारा।

---

१. आवाज़, ध्वनि। २. परमेश्वर की आवाज़। ३. भजनमाला वा स्मरण। ४. निजानंद। ५. सांसारिक भोग।

मुहब्बत में कटाकर शमअ्[१]-साँ सिर फिर न दम मारा ॥११॥

जो क़ौम और मुल्क की उल्फ़त में अपने को मिटाते हैं।
उन्हीं की ख़ाक को अहले-नज़र सुरमा बनाते हैं॥
जो स्वामी रामतीरथ-ऐसे इस दुनिया में आते हैं।
वह शेरों पर भी सिक्का प्रेम का अपने बिठाते हैं॥

नहीं दम मारते हैं शमअ्-साँ जो सिर कटाकर भी।
वह पा लेते हैं मंज़िल ठोकरें दुनिया की खाकर भी ॥१२॥

बिठाया किसने भारतवर्ष में सिक्का मुहब्बत का ?
है अमरीका से ता जापान चर्चा किसकी उल्फ़त का ?
फरेरा किसने फर्राया फ़लक तक क़ौमी अज़मत[२] का ?
हुआ है कौन ऐसा आशना[३] बहरे-हक़ीक़त[४] का ?

विवेकानंद, राम और कृष्णो - स्वामी राम ज़िंदा हैं।
निशाँ गो मिट गए हों लेकिन उनके नाम ज़िंदा हैं ॥१३॥

महापुरुष ऐसे दुनिया में बड़े कामों को आते हैं।
मिटाते आपको हैं और लाखों को बनाते हैं॥
सदा मजज़ूब[५] की बड़ की तरह अक्सर लगाते हैं।
हक़ीक़त का वह सच्चा रास्ता सबको दिखाते हैं॥

जो अहले-इल्म[६] हैं उनकी नसीहत पर अमल करते।
मुअम्मे[७] अक़्ल से दुनिया के हैं पल-भर में हल करते ॥१४॥

समा जा राम ! तू नज़रों में बनकर आँख का तारा।
करें हम मुस्कराते चाँद से मुखड़े का नज़्ज़ारा[८]॥

---

१. दीपकवत्। २. राष्ट्रीय प्रतिष्ठा। ३. परिचित, ज्ञानवान्। ४. तत्त्व-भंडार। ५. मस्त, बेख़ुद। ६. विद्यावान्। ७. रहस्य, घुंडी। ८. दर्शन।

हमारा राम, प्यारा राम, भारतवर्ष का प्यारा।
बहा दे जल्द दिल में शांती और प्रेम की धारा॥

दिखा दे अपनी मतवाली अदा ऐ राम! प्यारे फिर।
मना दे राम खुशियाँ सुबह की रावी किनारे फिर॥ १५॥

तमन्ना[1] है कि फिर भारत में तुझको जल्वागर[2] देखें।
तेरा मुखड़ा चमकता चाँद-सा हरदम 'गुहर'[3] देखें॥
तेरा जीवनचरित ऐ रामतीरथ! उम्र-भर देखें।
तेरी तैंतीस साला जिंदगी को इक नजर देखें॥

ज़रा-सी जिंदगी में कर गया सब काम दुनिया में।
रहेगा राम अब्द[4] तक तेरा रौशन नाम दुनिया में॥ १६॥

राम का उपदेश

कौल[5] दुनिया से मुहब्बत का मगर हारा है।
मुझको मालूम हुआ राम का तू प्यारा है॥
तुझको मरगूब[6] अगर राम का नज़ारा[7] है।
देख याँ प्रेम की बहती हुई इक धारा है॥

डूबकर ज्ञान की गंगा में उभर और कर ध्यान।
राम के चरणों का आईनए-दिल में धर ध्यान॥ १॥

देख दीवाना न बन, होश में आ, और सँभल।
कुलजुमे-इश्क़[8] में हो जाय न बेड़ा जलथल॥

---

१. कामना। २. विद्यमान। ३. कवि की उपाधि। ४. नित्य।
५. प्रतिज्ञा। ६. पसंद। ७. दर्शन। ८. प्रेमसागर।

जाय दलदल में न धोके से कहीं पाँव फिसल।
बज़्मे-आलम[१] में न मच जाय यकायक हलचल ॥
कहीं तू बहरे-तसव्वुफ़[२] में न गोते खा जाय।
राम बदनाम हो तुझसे ही न खुद उभरा जाय ॥ २ ॥

ढूँढ़ता फिरता है तू दश्तो-बियाबाँ[३] में किसे।
देखता रहता है, उफ़! ख़्वाबे-परेशाँ में किसे ॥
है मयस्सर रोज़ नया हिफ़्ज़ दबिस्ताँ[४] में किसे।
तमग़ए - फ़ज़्ल[५] मिला बज़्मे - सख़ुनदाँ में किसे ॥
नामो-शोहरत की हवस छोड़ दे दीवाना न बन।
देख जल जायगा इस शमअ पे, परवाना न बन ॥ ३ ॥

आतिशे-शौक़ को इस दरजा न भड़का दिल में।
बर्क़ोबाराँ[६] के शरारों[७] को न कड़का दिल में ॥
हो न आलम कहीं मजनूँ की बड़का दिल में।
डर है हो जाय न पैदा कभी धड़का दिल में ॥
भटके सहरा में न तू क़ैस[८] कहीं बन-बनकर।
सर न हो कोह के फ़रहाद-सा[९] दुश्मन बनकर ॥ ४ ॥

कौन-सी तुझको अदा राम की ख़ुश[१०] आई है।
सच बता किसलिये तू राम का शैदाई है ॥
रामभक्ती का तहे-दिल से तमन्नाई[११] है।

---

१. दुनिया की महफ़िल। २. ज्ञान का सागर। ३. जंगल, उजाड़। ४. पाठशाला। ५. बड़ाई का तमग़ा (पदक)। ६. बिजली। ७. चिनगारियाँ। ८. लैली का प्रेमी मजनूँ। ९. शीरीं का प्रेमी। १०. पसंद। ११. इच्छुक, प्रार्थी।

दर्शनों की तुझे यह चाह यहाँ लाई है ॥
पाक उल्फ़त है तो सौ जान से शैदा मैं हूँ ।
तेरे ही ज़ुल्फ़े-परेशान का सौदा मैं हूँ ॥ ५ ॥

दिल वह दिल ही नहीं जिस दिल में नहीं मेरा क़याम[१] ।
आँख वह आँख ही नहीं जिसमें नहीं मेरा मुक़ाम[२] ॥
लब वह लब ही नहीं जिस लब पे नहीं राम का नाम ।
रम रहा राम जो तन-मन में है, वह कौन है राम ॥
दूर कर दिल से दुई, तू को मिटा तू न रहे ।
राम ही राम रहे, फ़र्क़ सरे-मू[३] न रहे ॥ ६ ॥

अक़्लो-दानिश[४] में मुझे देख, कि यकता मैं हूँ ।
अदबे-इख़लाक़ का बहता हुआ दरिया मैं हूँ ॥
हुस्न और इश्क़ के जज़्बात का नक़शा मैं हूँ ।
देख आईनए-दिल में तेरे बैठा मैं हूँ ॥
चश्मे-हक़बीं[५] से मुझे देख कि मैं दूर नहीं ।
बल्कि ख़ुद आँख मिलाना तुझे मंज़ूर नहीं ॥ ७ ॥

है अभी इश्क़े-हक़ीक़त[६] का पिया जाम[७] कहाँ ।
रट पपीहे की तरह पी के इवज़े-राम कहाँ ॥
जिसका आग़ाज़[८] नहीं उसका है अंजाम[९] कहाँ ।
हस्ती-ओ-इल्म[१०] हूँ मस्ती हूँ, मेरा नाम कहाँ ॥
मंज़िले - इश्क़े - मजाज़ी[११] अभी तै करना है ।

---

१. स्थित । २. घर । ३. बाल बराबर अंतर । ४. समझ-बूझ । ५. सत्य को देखनेवाला नेत्र । ६. सत्य के प्रेम का । ७. प्याला । ८. आरंभ । ९. अंत । १०. सच्चिदानंद । ११. सांसारिक प्रेम ।

डूब मर चाह में नाकाम[1] अगर मरना है ॥ ८ ॥

देख तो राम ने क्या काम किया भारत में।
ज़िंदा - जावेद[2] रहा, नाम किया भारत में॥
मेहर[3] को ताबए-अहकाम[4] किया भारत में।
सिक्कए-इल्मो-अमल[5] आम[6] किया भारत में॥

वेद और शास्त्र की अज़मत[7] का बजाया डंका।
सारी क़ौमों में मुहब्बत का बजाया डंका॥ ९ ॥

पाई है बहरे-हक़ीक़त[8] की किसने कहीं थाह।
डूब ही जाय कहीं दिल से न हो दिल को जो राह॥
इश्क़ सादिक़[9] हो तो मुमकिन है कि हो जाय निबाह।
रोना आता है मुझे देखके हालत तेरी आह!

याद रख धार पै तलवारों के चलना होगा।
सूरमा बनके मिशन[10] से नहीं टलना होगा॥ १० ॥

राम सच्चाई की इक शमअ पै था परवाना।
क़ैसो-फ़रहाद की मानिंद न था दीवाना॥
अपनी ही ज़ुल्फ़े-परेशाँ[11] का नहीं था शाना[12]।
बज़्मे - अग़यार[13] में भी था वह नहीं बेगाना॥

क़ौम और मुल्क को ग़फ़लत से बचाया किसने।
रास्ता बामे-हक़ीक़त[14] का दिखाया किसने॥ ११ ॥

---

१. असफल। २. अमर। ३. सूर्य। ४. आज्ञाकारी। ५. ज्ञान और व्यवहार का राज्य। ६. प्रचार। ७. बड़ाई। ८. सत्य के सागर। ९. सच्चा प्रेम। १०. कर्तव्य। ११. बिखड़ी हुई बाल-लटा। १२. कंघी। १३. बेगानों की महफ़िल। १४. सत्य लोक।

राम ने धर्म की अज़मत[1] का उठाया बीड़ा।
राम ने मुल्क की ख़िदमत का उठाया बीड़ा॥
राम ने क़ौम की उल्फ़त का उठाया बीड़ा।
हमवतन[2] प्यारों की सरवत[3] का उठाया बीड़ा॥

पन्ना हो जिसमें, कहीं राम का उपदेश नहीं।
राम में नाम को भी राग नहीं, द्वेष नहीं॥ १२॥

कौन संबंधी है कर गौर तो क्या अपना है।
क्या यह जिस्म अपना है; हरगिज़ नहीं फिर किसका है॥
जिस्म क़ायम नहीं खुद ज़ात पै गर, फिर क्या है।
और क़ायम है तो बस ज़ात ही का जल्वा[4] है॥

अपना आप आत्मा है जिसकी यह सब शक्ती है।
जिस्म साए के सिवा और नहीं कुछ भी है॥ १३॥

साफ़ है आईनए-दिल अगर तू कर नज़्ज़ारा।
आत्मा आप है और आप ही अपना प्यारा॥
नाम और रूप से मन्सूब है न्यारा-न्यारा।
आत्मा एक है, प्रकाश है, जिसका सारा॥

नाम और रूप भी ज़ुज़[5] ज़ात है कर गौर नहीं।
देख तू और नहीं, और मैं हूँ और नहीं॥ १४॥

क़तरए-अश्क[6] समुंदर में गुहर[7] किसका है।
जल्वए-कौनो-मकाँ[8] पेशे-नज़र[9] किसका है॥

---

१. उन्नति, विभूति। २. देश-वासी। ३. उन्नति। ४. प्रकाश। ५. आत्मा से इतर। ६. अश्रुबिंदु। ७. मोती, कवि का नाम। ८. हर स्थान में प्रकाश (ज्योति)। ९. आँख के सामने।

राम हर रोम में व्यापक है तो डर किसका है ।
देख वीरानए-दिल में तेरे घर किसका है ॥

दिन हूँ मैं, रात हूँ मैं, सुबह हूँ मैं, शाम हूँ मैं ।
मुँह से कह 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं' ॥१५॥

राम तू ही है कहाँ राम है किस पर माइल[१] ।
देखकर हाल तेरा जार[२] भर आता है दिल ॥
तेरी ही तेग तुझे दे गई चरका[३] क़ातिल[४] ।
हो गया अपनी ही तू आप अदा पर बिसमिल[५] ॥

आप ही राम है तू, मुफ़्त में बदनाम हूँ मैं ।
मुँह से कह 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं' ॥१६॥

नाक, कान, आँख, जुबाँ तेरी नहीं, राम की है ।
तेरे क़ालिब में भी जाँ तेरी नहीं, राम की है ॥
अक़्ल है, देख कहाँ तेरी नहीं, राम की है ।
जिस्म में रूहे-रवाँ[६] तेरी नहीं, राम की है ॥

तेरा कुछ भी नहीं जब तेरा दिलाराम हूँ मैं ।
राम के मुँह से तू कह 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं' ॥१७॥

चमने-दहिर[७] में फूलों में महक किसकी है ।
ज़र्रे-ज़र्रे में ज़रा देख चमक किसकी है ॥
बर्क़[८] और रअद[९] में जुज़[१०] मेरे कड़क किसकी है ।
दिल के आईने में देख अपने झलक किसकी है ॥

---

१. आकर्षित । २. दुःखी । ३. धोखा । ४. मारनेवाला । ५. ज़ख़्मी । ६. प्राण-आत्मा । ७. दुनिया का बाग़ । ८. बिजली । ९. बादल की गड़गड़ाहट । १०. मेरे से अतिरिक्त ।

मेहर हूँ, माह[1] हूँ, बालाए-तर अज़ बाम हूँ मैं ।
मुँह से कह 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं' ॥ १८ ॥

राम के हुक्म से बेख़ौफ़ी से कह 'मैं हूँ राम' ।
वर्ना 'मैं बंदा हूँ', 'मैं बंदा हूँ' कहकह के गुलाम ॥
सारी दुनिया में चला राम का यह सिक्का-ए-आम ।
गुहर उस लब पै कि जिस लब पै न हो राम का नाम ॥

ख़िलवते-ख़ास हूँ मैं जल्वा - गहे - आम हूँ मैं ।
मुँह से कह 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं' ॥ १९ ॥

जब तेरा कुछ नहीं इस जिस्म पे, सब राम का है ।
राम ख़ुद बंदा है फिर बंदा तू कब राम का है ॥
राम के प्यारों से कह हुक्म यह अब राम का है ।
रम रहा राम में जो उसको लक़ब राम का है ॥

न तो आगाज़ ही अपना हूँ न अंजाम हूँ मैं ।
मुँह से कह 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं' ॥ २० ॥

राम को दूसरा कोई नहीं आता है नज़र ।
दूसरा कौन है जुज़ राम,[2] बिचार आठ पहर ॥
राम है ख़ाना[3]-बदोश, उसका हर इक दिल में है घर ।
है गुज़र प्रेम-भरे दिल में मेरा देख 'गुहर'[4] ॥

रौशनी बख़्शे जहाँ मेहर लबे-बाम हूँ मैं ।
मुँह से कह 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं', 'राम हूँ मैं' ॥ २१ ॥

एक सचाई में है देख वह बक़ी क़ुव्वत[5] ।

---

१. चंद्रमा । २. राम के सिवा । ३. गृहरहित, स्थानातीत । ४. कवि का उपनाम । ५. प्रबल मन ।

जिससे बढ़कर नहीं दुनिया में कोई भी ताक़त ॥
नफ़्से-सरकश को करे ज़ेर जो करके जुरअत[1] ।
रहनुमाई[2] को हो हाज़िर तेरे ख़ुद ही हिम्मत ॥
दिल अगर साफ़ न होगा, तो मुसीबत होगी ।
अपने हम-चश्मों[3] में भी साफ़ निदामत[4] होगी ॥२२॥

मुझको सहरा में न गुलशन में न गुलज़ार में ढूँढ़ ।
मुझको मथुरा, न हृषीकेश न हरिद्वार में ढूँढ़ ॥
मुझको पर्वत की चटानों पै न कुहसार में ढूँढ़ ।
मुझको झाड़ी में बन न में न ख़सो[5]-ख़ार[6] में ढूँढ़ ॥
ढूँढ़ ले राम को हाँ मुफ़लिसो-नादारों में ।
पाएगा राम को फिरता हुआ नाचारों में ॥ २३ ॥

भूल जा आपको दर्शन की अगर दिल में हो चाह ।
तेरे ही आईनए-दिल में हूँ मैं ग़ैरते-माह[7] ॥
क़ल्ब[8] अगर वह्मो-जिहालत[9] से तेरा होगा सियाह[10] ।
अपना ही रूप नज़र आएगा तुझको नहीं, आह !
ग़ौर से देख कोई तेरे सिवा अपना है ।
ख़ुद तमाशाई है तू, और यह सब सुपना है ॥ २४ ॥

ॐ मैं राम, मेरा देश मुरालीवाला ।
ॐ मैं माह हूँ, तू जिसका बना है हाला[11] ॥

---

१. उत्साह । २. नेतृत्व । ३. हमजोली, साथी । ४. शर्मिंदगी, लज्जा । ५. तिनके । ६. काँटे । ७. चंद्रमा को लज्जित करनेवाला । ८. हृदय । ९. भ्रम व अज्ञान । १०. मलिन । ११. चंद्रमा के गिर्द चक्कर ।

ॐ मैं नूर हूँ, तू जिसका बना मतवाला।
ॐ मैं रूह हूँ, साँचे में तुझे है ढाला॥
हस्ती-ओ-इल्म हूँ, मस्ती हूँ, नहीं नाम मेरा।
खुदपरस्ती-ओ-खुदाई है यह बस काम मेरा॥ २५॥

मैं शहंशाह हूँ, है जिस्म मेरा हिंदुस्तान।
विंध्याचल है लँगोट और ब्रह्मपुत्र स्थान॥
सिर हिमालय है, चरण रासकुमारी है जान।
दोनों बाजू हैं मेरे मशरक़ो-मग़रिब पहचान॥
रूह हूँ, आँखें हैं मेरी महो-मेहरे-ताबाँ।
मैं जिधर चलता हूँ, चलता है उधर हिंदुस्ताँ॥ २६॥

शिव हूँ मैं, विष्णु हूँ मैं, ब्रह्मा हूँ, शंकर हूँ मैं।
राम और कृष्ण की मूरत हूँ मैं, मंदर हूँ मैं॥
धातु हूँ, सोना हूँ, पारस हूँ मैं, पत्थर हूँ मैं।
प्रेम, विश्वास मैं, सचाई मैं, घर-घर हूँ मैं॥
मैं ही निर्गुण हूँ, सगुण हूँ मैं, निराकार हूँ मैं।
प्रेम की जागती मूरत हूँ मैं, साकार हूँ मैं॥२७॥

मैंने शेरों को किया प्रेम से बस में, बन में।
मैंने अर्जुन को फ़ने-रज़्म[1] सिखाया रन में॥
रूह हूँ मैं, कशिशे-दौरए-खूँ[2] हूँ तन में।
ज्ञान में, ध्यान में, घट-घट में हूँ, तन में, मन में॥
नूर ही नूर हूँ, प्रकाश है दुनिया में मेरा।

---

१. रण-विद्या। २. रक्त का प्रवाह करनेवाली आकर्षणशक्ति।

प्रेम के अश्कों[1] का जल बहता है गंगा में मेरा ॥२८॥

मैं ही सूरतगरि-ए-मानी[2]-ओ - बहज़ाद[3] बना ।
मैं ही शागिर्द बना और मैं ही उस्ताद बना ॥
नट बना, बाज़ीगरे-आलमे-ईजाद[4] बना ।
लैला-मजनूँ बना, शीरीं बना, फ़रहाद बना ॥
मिस्र में मैं ही बना यूसुफ़े-कनआँ[5]-सा अज़ीज़ ।
मैंने ही दौलते-दुनिया को बनाया है कनीज़[6] ॥२९॥

मैं ही गोकुल में बसा कृष्ण कन्हैया बनकर ।
मैं ही कुंजों में फिरा ब्रज की राधा बनकर ॥
मैं ही नज़रों में खपा हुस्न का जल्वा बनकर ।
मैं ही भारत में बहा प्रेम की गंगा बनकर ॥
देशभक्ती का सबक़ सबको पढ़ाया मैंने ।
जो कहा मुँह से वही करके दिखाया मैंने ॥३०॥

मैं ही मैं एक हूँ, सब मुझसे यह हैं बहुतेरे ।
वेद और शास्त्र में उपदेश भरे हैं मेरे ॥
राम का तख़्त है आइनए-दिल में तेरे ।
राम के प्रेम के हैं देख घटा में डेरे ॥
होती आकाश से है प्रेम की वर्षा कैसी ।
बहती भारत में है उपदेश की गंगा कैसी ॥३१॥

रअ़द[7] में मेरी गरज, बर्क़ में है मेरी कड़क ।
चाँद में मेरी चमक, तारों में है मेरी झलक ॥

---

१. आँसुओं । २. नक़्क़ाश का नाम । ३. नक़्क़ाश का नाम । ४. नवीन संसार का रचनेवाला खिलाड़ी । ५. देश का नाम । ६. लौंडी । ७. बिजली की कड़क ।

मेरे ही ताबए-अहकाम[1] में, सब जिन्नो-मलक[2] ।
देख तू मुझको हर इक रूप में गर दिल में हो शक ॥

ब्रह्म हूँ, जीव से माया से भी बालातर हूँ ।
इल्म हूँ, अक़्ल हूँ, विश्वास हूँ, ज़र हूँ, नर हूँ ॥३२॥

मैं ही नाज़िम हूँ, मैं ही नज़्म, मैं ही हूँ मंजूम ।
मैं ही आलिम हूँ, मैं ही इल्म, मैं ही हूँ मालूम ॥
मैं ही हाकिम हूँ, मैं ही हुक्म हूँ, मैं हूँ महकूम ।
मैं ही खादिम, मैं ही खिदमत हूँ, मैं ही हूँ मखदूम ॥

मैं ही खालिक़, मैं ही मखलूक़ हूँ, मैं ही हमा-ओस्त[3] ।
मैं ही आशिक़, मैं ही माशूक़ हूँ, मैं ही हमा-ओस्त ॥३३॥

आप ही बर्क़ हूँ मैं, आप शरारा मैं हूँ ।
आप ही हुस्न हूँ मैं, आप नज़ारा मैं हूँ ॥
आप ही चाँद हूँ मैं, आप ही तारा मैं हूँ ।
आप ही राम हूँ मैं, आप ही प्यारा मैं हूँ ॥

नूर ही नूर हूँ, प्रकाश हूँ दुनिया-भर में ।
मैं ही हूँ दैर[4] में, बुतखाने[5] में, घर में, दर में ॥३४॥

मैं वहाँ हूँ जहाँ बेलौस[6] दिलों में है प्यार ।
हूँ वहाँ प्रेम से होती हैं जहाँ आँखें चार ॥
मैं वहाँ हूँ है जहाँ रहमदिली का इज़हार ।
मैं वहाँ हूँ कि जहाँ है हक़ो-नाहक़[7] में विचार ॥

सच्चिदानंद मैं ही, ब्रह्म मैं ही अविनाशी ।

---

१ अधीन । २. दैत्य और देवता । ३. वह ही सब कुछ है ।
४. मंदिर । ५. देवालय । ६. शुद्ध, निरासक्त । ७. सत्-असत् ।

मैं अजर, मैं ही अमर, और मैं ही घटघट वासी ॥३५॥

कर दिया गुरु पै गुहर तूने जो तन मन अर्पण ।
हो गई देख तेरी ज्ञान की आँखें रौशन ॥
प्रेम के आँसुओं से धो मेरे हर लहज़ा[१] चरण ।
देख जल्वा मेरा देता हूँ तुझे मैं दर्शन ॥

दार[२] पर चढ़ के अनलहक़[३] कहा मंसूर हुआ ।
नाम भक्तों में तेरा आज से मशहूर हुआ ॥३६॥

राम का भक्त है मशहूरे-ज़माँ तुलसीदास ।
राम का भक्त है मलकुल-शुअरा[४] कालीदास ॥
भक्त भारत में हुआ राम का इक वेदव्यास ।
भक्त जन को है सदा राम पै अपने विश्वास ॥

भक्त योरप में हुए शेक्सपियर और मिल्टन ।
भक्त विलियम हुआ इक क़ैसरे-तख़्ते-जरमन ॥३७॥

राम का है यही उपदेश रहे-रास्त[५] पै चल ।
इल्म जितना है तुझे चाहिए उतना ही अमल ॥
अपने ही आप पै रख दिल में तू विश्वास अटल ।
रख नज़र हाल[६] पै माज़ी[७] के लिये हाथ न मल ॥

सबको तू प्रेम का मतवाला बना सकता है ।
कोह[८] हिम्मत से कने[९]-उँगली पै उठा सकता है ॥३८॥

फेर दे जाके सबा,[१०] राम - ढिंढोरा घर-घर ।

---

१. प्रतिक्षण, निरंतर । २. सूली । ३. मैं हक़ वा ख़ुदा हूँ ।
४. कवि-सम्राट् । ५. सन्मार्ग । ६. वर्तमान काल । ७. भूतकाल ।
८. पहाड़ । ९. उँगली का सिरा अथवा चीची उँगली । १०. समीर ।

आज से भक्त हुआ राम का भारत में गुहर ॥
बिजलियो ! कौंद के दिखला दो घटा में मंज़र ।
बादलो ! दौड़के दहला दो पहाड़ों के जिगर ॥
राम के हाथ में शिवजी का धनुषबाण है आज ।
खंड-खंड इसको करे किसमें भला जान है आज ॥३९॥

राम के प्यारों को तू राम का पहुँचा पैग़ाम ।
राम का अपने ही भक्तों के है हृदय में मुक़ाम ॥
रहता दुनिया में नहीं राम का तालिब[1] नाकाम[2] ।
रम रहा राम में जो बस वही पहुँचा लबे-बाम ॥
चाहते हैं जो मुझे तालिबे-दुनिया होकर ।
गिरते पस्ती पे हैं नाकाम वह पसपा होकर ॥४०॥

मैं ही हूँ रूहे-रवाँ 'राम कहो', 'राम कहो' ।
प्यारो ! है ध्यान कहाँ 'राम कहो', 'राम कहो' ॥
है अगर मुँह में ज़ुबाँ 'राम कहो', 'राम कहो' ।
लेके तुम तीरो कमाँ 'राम कहो', 'राम कहो' ॥
मोक्ष-पद चाहो, तो रम जाओ अभी राम में तुम ।
बाज़ी ले जाओगे दुनिया के हर इक काम में तुम ॥४१॥

प्रेम के आँसुओं से सींच के भारत की ज़मीं ।
कहना भारत मेरी माता से है क्यों ग़म में हज़ीं[3] ॥
राम ज़िंदा है, नहीं तुझसे जुदा, रख यह यक़ीं ।
तेरे हर रोम में उल्फ़त है मेरी नक़्शो-नगीं ॥
क़ौल है साथ तेरे मुझको है हर लहज़ा ख़्याल ।

---

१. जिज्ञासु, चाहनेवाला । २. असफल । ३. व्याकुल ।

देख लूँ आँख से जब तक न मैं भारत को बहाल ॥४२॥

हड्डियाँ मेरी हिफ़ाज़त से रखेगी गंगा ।
नाज़ उठाएगी मेरे बोझ सहेगी गंगा ॥
राम के चरणों से अब जल्द बहेगी गंगा ।
गोद में लाल लिए राम कहेगी गंगा ॥

धर्म का सूर्य उदय होगा फिर इक दिन लबे-बाम ।
किरणें प्रकाश की फैलाएगा भारत में राम ॥४३॥

मुर्गे-दिल के लिये है तीरे-नज़र राम का प्रेम ।
चश्मे-उश्शाक़[1] में है राम का घर राम का प्रेम ॥
रखता है सेहर[2] का हर दिल पै असर राम का प्रेम ।
पूछ गंगा की लहरियों से 'गुहर' राम का प्रेम ॥

जल-समाधी में मग्न दिल की लग्न अब भी है ।
धोती गंगा मेरे हर सुबह चरण अब भी है ॥४४॥

ॐ !　　ॐ !!　　ॐ !!!

---

१. प्रेमियों के नेत्र । २. जादू ।

उत्तरार्द्ध

राम की मस्तानी कविताएँ

अब, अंत में स्वामीजी महाराज की वह मस्तानी कविताएँ दी जाती हैं जो "नज़्मे-मुअर्रा" के शीर्षक से रिसाला "अलिफ़" के अंतिम अंक में प्रकाशित हुई थीं और जिनके बाद उक्त रिसाला का दूसरा अंक प्रकाशित नहीं हो सका। इन कविताओं से स्वामीजी के हृदय की अवस्था का भली भाँति प्रदर्शन हो रहा है। और ये सबकी सब कविताएँ अमेरिका के मस्त लेखक व कवि वाल्ट ह्विटमैन के पद्यों की शैली पर उनकी लेखनी से निकली थीं।

——:o:——

आपसे

आप कोई भी हो, एक बात !

यह डर है कि आप स्वप्न की चालें चल रहे हों !

ज़रा देखना ! यह सब कल्पित वस्तु और जोड़-जकड़ तुम्हारे हाथों के अंदर से, तुम्हारे पैरों के तले से वह उड़े ! वह उड़े !

एलो ! अभी श्रीमान् के तिल और रेखा, वर्ण, हँसी, चिंता, बोलचाल, स्वभाव, भूल-अशुद्धि, पाप-पुण्य, घर-बार, व्यवसाय-पहनावा श्रीमान् से भाग निकले, और भगवन् का सच्चा दर्शन हुआ ।

कारख़ाने, दूकानदारी, पोशाक, काम-काज, लेन-देन, लाभ-हानि, दुःख-सुख, रूप-नाम, स्त्री-पुत्र, खाना-पीना, रोना-धोना, मरना-जीना, चाराजोई, तुर्शरोई, ये सब तो इधर पड़े हैं, और सरकार अलग खड़े हैं ! नंग-मनंग !

आप कोई भी हो, अब तो मैं आपको नहीं छोड़ सकता । लो, डालता हूँ हाथ। ऐ हबीबम वै तबीबम (حبیبم وے طبیبم)! मेरे हृदय के प्रकाश ! मेरे बज़्मो-रज़्म (بزم و رزم)! मेरे गद्य और पद्य! तुम्हारे कानों के साथ मुँह लगाकर जो मैंने जी का अरमान निकाला, कुछ आपने सुना भी ?

मेरे प्राण-अधार ! अगणित स्त्रियों और पुरुषों पर यह मन आसक्त हुआ, किंतु आपके तो एक ही वसन-विहीन दर्शन से मन वह चल दिया ! गया ! सूर्य ने झाँका, ओस-कण थे ही नहीं ।

हाय ! इतने समय तक क्यों नहीं मिले !

आह ! मेरा ही टाल-मटूल और खटका मार्ग का रोड़ा बना रहा।

क्या ही अच्छा होता ! मैं सीधा आप तक पहुँचता।

काश ! मैं लेता बलाएँ आपकी !
हर घड़ी गाता सनाएँ आपकी !

अस्तु। सब काम-धंधा छोड़, अब तो मैं हूँ और आप। तुम्हारी ही माला, तुम्हारा ही जाप।

"दिल का महरम" आपको भी कोई नहीं मिला था।

मैं हूँ आपका महरम, आपका मर्म जाननेवाला।

आपके मन की कहूँगा।

किसी ने आपकी क़दरदानी नहीं की।

सच तो यों है कि आपने स्वयं अपनी क़दर नहीं की।

हाय ग़ज़ब ! जो मिला, उसने कुछ न कुछ न्यूनता आपमें अवश्य देखी। मुझे तो आप सब प्रकार पूर्ण दिखाई देते हैं।

जो मिला, आपको अधीन रखना चाहता था।

पर मैं तो अधीन बनाने का विचार तक भी नहीं ला सकता।

एक मैं हूँ कि आप पर कोई बाहरी दबाव—हाकिम, स्वामी, पति, उच्च व्यक्ति, देवता, ईश्वर अंगीकार नहीं कर सकता।

सब शाहों का शाह तू, तेरा शाह तू आप।

तू रब मालिक खुद खुदा, रब अपना तू आप ॥
चाबुक सब पर है तेरा, क्या सुल्तान अमीर ।
पत्ता तुझ बिन कब हिले, आँधी तेरी असीर ॥

चित्रकार समझता है तुम्हारा चित्र उतार लिया। कैसी भूल कर गया । तुम तो प्रकाश हो । प्रकाश ही प्रकाश हो । सूर्य के आसपास के बादलों को भोलेभाले चित्रकार ने परचा-ए-क़रतास (پرچۂ قرطاس) पर दिखलाया, और कहता है "यह लो सूर्य का चित्र ।"

आपकी मान, प्रतिष्ठा और शान दिखाने को चित्र में सिर के चारों ओर एक किरण-चक्र (halo) भी डाल दिया, परंतु वस्तुतः यह कैसा उपहास हो गया । बादल के हाशिए को चित्र में प्रकाशमान कर देने से क्या सूर्य बन जायगा ? कोई नेत्र नहीं जो आपकी ओर ठहर सके, कोई कैमिरा (Camera) नहीं जो आपके आगे आ सके, कोई रंग नहीं जो आपको जतला सके ?

नयारद चश्मे-बेदिल ताबरूए बेहिजाबत रा ।
कि बाशद साफ़ी-ए आईना शबनम आफ़ताबत रा ॥

अर्थ—बेदिल की चक्षु तेरे परदारहित मुख को देख नहीं सकती, जैसा कि ओस का शुद्ध दर्पण सूर्य के सामने ठहर नहीं सकता ।

क्या ही अच्छा होता ! वाणी में यह शक्ति होती कि आपके गीत गा सकती। तुमने जाना नहीं कि तुम कौन हो ?

तुम अपने "आप" पर ऊँघते-ऊँघते उम्र विता दी। आँखें तो खोलो, जरा देखो तो।

वह हँसमुख-नेत्र, वह तिरछी चितवन, नींद के परदे में से प्रलय उपस्थित करती है। मेरे कृष्ण ! मेरे राम ! तुम सुषुप्ति के परदे की ओट में हमें टाले मत दो।

"मैं दीन दास हूँ। मैं बेवस और बेकस (निराश्रय) हूँ। इत्यादि" यह तुम्हारा वर्णना किसी और को भर्रे में लाएगा, जो जानता न हो। मित्रों से तो मुँह छिपाओ नहीं। तुम तो मेरे प्यारे कृष्ण हो। राम हो !

यह सब तुम्हारी स्वप्न की करतूत कैसी परिहास निकली। तुम्हारी कृपणताएँ, जोड़-जमा, शेखी बघारना, अज्ञान का नाम विद्या रखना, बुद्धि के गोरखधंधे, प्रार्थनाएँ, विनतियाँ, बहानाबाजी, हीलासाजी, इनका परिणाम कोरा परिहास है। क्या कुछ और भी था ?

किंतु यह ठट्ठापन आप नहीं हैं।

इस ठट्ठेबाज़ी के भीतर नीचे घात लगाए बैठे आप दिखाई दे रहे हैं। आपकी खोज में वहाँ तक पहुँचूँगा जहाँ कोई न पहुँचा हो। मौनता, रोना-धोना, लेखन - भाषण, मेज़-कुरसी, सुख-शय्या, दिनचर्या, रजिस्टर-पर्चे, दिन-रात चाहे आपको औरों से ढाँप रखें, और अपने आप से भी छुपा दें, किंतु मुझसे नहीं छुपा सकते। बिखरे हुए बाल,

गुर्झाया हुआ चेहरा, घबराहट भरी आँखें, भयानक आकृति औरों को चाहे आपसे हटा दें, मुझे नहीं हटा सकते।

भद्दा पहनावा, अनुचित चालढाल, मदिरा-पान, लोभ, बीमारी, यह सब उतारकर आपसे अलग फेंक देता हूँ।

कहीं कोई योग्यता या शक्ति की नदी किसी पुरुष या स्त्री से नहीं बही जिसका वास्तविक स्रोत आप न थे।

कोई सौंदर्य, कोई गुण कहीं प्रकाशित नहीं हुआ जिसकी सच्ची खान आप न थे।

कोई चालाकी, कोई दृढ़ता कहीं बन नहीं पड़े जो वस्तुतः आपसे न उठी हों।

कोई सुख, कोई आनंद औरों के भाग में नहीं आते, जो आपमें समर्पित न हो रहा हो, और जो आपसे प्रस्फुटित न हुआ हो।

मेरी पूछो, तो कोई वस्तु ऐसी नहीं जो मैं किसी और को दूँ, और पूर्ण रूप से आपकी भेंट न करूँ।

किसी की शान में (चाहे ईश्वर हो या ईश्वरदूत) कीर्ति और स्तुति नहीं गाऊँगा, जो वैसे ही आवेश और विश्वास के साथ आपकी शान में न गाऊँ। आप कोई भी हो, आप अपना हक़ ले लो। ये मख़ौलबाज़ी के खेल गिरें चाहे रहें। आप अपना हक़ ले लो।

लापरवाह बादशाह! आप अपने स्वरूप के सिंहासन पर विराजमान हूजिए, और सच्चे साम्राज्य की शोभा बढ़ाइए।

सम्राट् और कोई नहीं है, न हुआ, न होगा सिवा तेरे।

यह पूर्व-पश्चिम की प्रदर्शिनियाँ धूलि हैं तुम्हारे आगे।

यह सुंदर झकाझक हरियाली, यह बहती हुई नदियों की बहार। यह पर्वतों की क़तार, यह विस्तीर्ण और विशाल नील गगन। इन सबके विस्तीर्ण आँगन में पसरकर तुम लेटे हो, और इससे भी परे हो।

यह अंधकारमयी घोर घटा, परमाणुओं के बगोले, प्रकृति के गोले, दुर्भाग्य का ज़ोर और प्रलय का शोर, तुम वह वीर युवक हो कि सब पर सवारी कर रहे हो और कोड़े लगा रहे हो।

जो ख़ुदा को देखना हो तो मैं देखता हूँ तुमको।
मैं तो देखता हूँ तुमको, जो ख़ुदा को देखना हो ॥ टेक ॥
यह हजाबे-साज़ो-सामाँ[१], यह नक़ाबे-यासो-हिरमाँ[२]।
यह ग़लाफ़े-नंगो-नामूस[३], वह दमाग़ो-दिल का फ़ानूस।
वह मनो-तुमा[४] का परदा, वह लबासे-चुस्त[५]-करदा।
वह हया[६] की सब्ज़ काई, वह फ़ना सियाह रज़ाई।

---

१. वह साज़ और सामान का परदा। २. निराशा की आड़ व परदा। ३. लज्जा व मान अथवा लज्जा-निर्लज्जता का परदा। ४. मैं, तू। ५. चुस्त करनेवाला वस्त्र। ६. लज्जा।

यह लफ़ाफ़ा जामा[1] तुर्क़ी, यह उतार सितर[2] तुमको ।
जो ब्रेहना[3] करके झाँका, तो तुम्हीं सफ़ा ख़ुदा हो ।

जो ख़ुदा को देखना हो, तो मैं देखता हूँ तुमको ।
मैं तो देखता हूँ तुमको, जो ख़ुदा को देखना हो ॥ १ ॥

ऐ नसीमे-शौक़[4] ! जाके, वह उड़ा दे जुल्फ़ रुख़[5] से ।
ऐ सबा-ए-इल्म[6] ! जाकर, दे हटा वह ख़्वाबे[7]-चादर ।
ओ बादे-तुंदमस्ती[8] ! दे मिटा अब्र[9] की हस्ती ।
ऐ नज़र के ज्ञान-गोले, यह फ़सील झट गिरा दे ।
कि हो जहल[10] भस्म इकदम, जले ब्रह्म हो, यह आलम[11] ।
जो हो चार सू[12] तरन्नम[13], कि हैं हम ख़ुदा, ख़ुदा हम ।

जो ख़ुदा को देखना हो, तो मैं देखता हूँ तुमको ।
मैं तो देखता हूँ तुमको, जो ख़ुदा को देखना हो ॥ २ ॥

न यह तेग़[14] में है ताक़त, न यह तोप में लियाक़त ।
न है बर्क़[15] में यह यारा[16], न है जहर ही का चारा ।
न यह कारे-तुंद[17] तूफ़ाँ, न है जोर शेरे[18]- गर्रां ।

---

१. वस्त्र । २. चादर । ३. नंगा । ४. जिज्ञासा की समीर । ५. आत्मस्वरूप के ऊपर से माया-रूपी ज़ुल्फ़ वा अंधकार का काला परदा परे हटा दे । ६. ऐ ज्ञान की वायु (लटक) । ७. स्वप्न-रूपी चादर । ८. ऐ निजानंद की घटा । ९. (परदा-रूपी) बादल । १०. अज्ञान । ११. संसार । १२. चारों ओर । १३. (आनंद की) फुहार, मंद-मंद वर्षा । १४. तलवार । १५. बिजली । १६. बल । १७. भारी घटा का काम । १८. चिंघाड़नेवाले वा भयानक सिंह का शोर ।

कोई जज़्बा[1] है न शहवत[2], कोई ताना नै[3] शरारत ।
जो तुझे हिलाने आए ।
जो तुझे हिलाने आएँ, तो हो राख भस्म जाएँ ।
वह ख़ुदाई दीदे[4] खोलो, कि हों दूर सब बलाएँ ।
जो ख़ुदा को देखना हो, तो मैं देखता हूँ तुमको ।
मैं तो देखता हूँ तुमको, जो ख़ुदा को देखना हो ॥ ३ ॥

वह पहाड़ी नाले चमचम, वह बहारी अब्र छमछम ।
वह चमकते चाँद-तारे, हैं तेरे ही रूप प्यारे ।
दिले-अंदलीब[5] में ख़ूँ, रुख़े[6]-गुल का रंगे-गुलगूँ[7] ।
वह शफ़क़[8] के सुर्ख़ इशवे[9], हैं तेरे ही लाल पट्ठे[10] ।
है तुम्हारा धाम तो 'राम', ज़रा, घर को मुँह तो मोड़ो ।
कि रहीम, राम हो तुम, तुम ही तो ख़ुद ख़ुदा हो ।
जो ख़ुदा को देखना हो, तो मैं देखता हूँ तुमको ।
मैं तो देखता हूँ तुमको, जो ख़ुदा को देखना हो ॥ ४ ॥

बुढ़ापा

मैं छिपकर बैठता हूँ । यह पुराना खँडहर मुझे ख़ूब भाता है, क्योंकि इसकी आड़ में मेरा रूप कोई नहीं बूझ सकेगा ।

---

१. चित्त की उमंग वा जोश । २. विषय-लालसा वा विषय-वासना । ३. न कोई । ४. ब्रह्म-दृष्टि या दिव्य-नेत्र । ५. बुलबुल पक्षी का दिल । ६. पुष्प की मूरत । ७. लाल रंग वा गुलाबी रंग । ८. उषा, उदय-अस्त के समय आकाश में जो लाली होती है, साँझ । ९. नख़रे, टख़रे और अदा । १०. ऐ प्यारे लाल !

यह बुढ़ापा मेरी कुलाहे-नजरबंद[1]........है, जिसे पहनकर मैं मानव-प्रेम की कई गली-कूचों में बेखटके घूम सकता हूँ।

हाय बुढ़ापा! बुढ़ापा? नहीं-नहीं। वहीं, परे-परे। यहाँ पर जहाँ मैं खड़ा हुआ हूँ, चढ़ते यौवन की सदा बहार है।

नेत्रहीन की दृष्टि

वह आँखें! कहाँ दृष्टि आन पड़ी है? दुनिया के और मेरे बीच में परदा पड़ गया, जो दिन प्रतिदिन अधिक मोटा होता जा रहा है।

हाय एकांत! नहीं, एकांत क्यों? वह ठंढक, वह चैन जो मुझे प्राप्त हुआ, कौन वर्णन कर सकता है? वह चोट जिससे मैं मर गया होता, उससे तो मेरी जंजीर टूट गई। कुबड़ी को लात फल गई।

मैं जो बंदी था, विमुक्त हो गया। दुनिया रही नहीं, अब तो सब आनंद और शांति है।

साधु पुरुष अलग बैठकर ईश्वर को पहुँचने के लिये बड़े परिश्रम से आँख-कान बंद करते हैं।

लब व बंदो-गोश-बंदो-चश्मे-बंद।
गर न याबी सर्रे-हक़ बर मन बख़ंद॥

---

1. बंदीख़ाना की टोपी।

अर्थ—मुँह, कान और आँख बंद करने पर यदि तू तत्त्व के रहस्य को न प्राप्त कर सके, तो मुझ पर हँस लेना।

यारों को तो घर बैठे लड्डू मिले।

जाड़े के दिनों में गरम-गरम धूप मेरे हाथों को चुंबन देती क्या भली लगती है। चलते हुए मेरे मस्तक को हवा चूमती है, और क्या ही प्यारी लगती है। वह प्रकृति, जिससे मेरी आँखें मिची हुई थीं, अब तो मेरा मन बहलाती है। प्रत्येक वस्तु मनमानी मोहानी बन गई। अब तो हर कोई कैसे मेरे पास आने लगा। अब मुझे किसी की खोज में जाने की आवश्यकता नहीं रही।

मैं मजे से एक स्थान पर बैठा हूँ, और आएँ मेरे पास जिनका जी चाहे! वाह वा!

तूफ़ाने-नूरम सर बसर मसरूफ़े-बाज़ी चूँ पिसर ॥
जुमला ज़माँ मैदाने-मन, ताबे-शुआ चौगाने-मन ॥
गोए मन अस्त ईं मिहरो-मह, वईं कौकबे-गरदाने-मन ॥

अर्थ—प्रकाश की मैं पूरी पूरी बाढ़ हूँ। बच्चों के समान मैं खेल में निरंतर प्रवृत्त हूँ। सारा काल (समय) मेरे खेलने का मैदान है। ये सूर्य-चाँद और चक्कर लगानेवाले तारे मेरी खेलने की गेंद हैं।

साधु

मंजूर हो गर सैर दिला! बहरे-जहाँ[1] की।

---

1. संसाररूपी समुद्र की।

जुज़ कश्तिए-दरवेश[1] सफ़ीना[2] नहीं अच्छा ॥

यह साधु धूप में पड़ा है कि स्वयं धूप बन रहा है !

चट्टान पर लेटा है कि चट्टान का एक टुकड़ा हो रहा है !

नहीं, स्वयं भूमि है । चट्टान को छूने से सारी भूमि छुई जाती है ।

अंतर तो केवल कल्पना और समझ का है । इस समझ के भेद को मिटाकर साधु भूमि से मिला हुआ है । भूमि का "ख़ुद" (अर्थात् आत्मा) साधु का "ख़ुद" (आत्मा) हो रहा है । और वही तो "ख़ुद-आ" या "ख़ुदा" है ।

क्या तुम्हारे आँगन की हवा और है और संसार-भर की हवा और ?

यदि आँगन की वायु भिन्न होती, तो उसमें ज़िंदा भी कोई न रह सकता । इसी तरह तुम्हारे नथुनों और फेफड़ों में फिरनेवाली भी सारे संसार की वायु ही तो है । मेरा ही श्वास समस्त संसार का श्वास है, मेरे ही नेत्रों का प्रकाश सारे संसार का प्रकाश भी है ।

और तुम्हारा ही आत्मा सारे संसार का आत्मा तो है । व्यष्टि और समष्टि का भेद तो केवल कहने-सुनने के लिये कल्पित किया गया था ।

---

१. साधु की कश्ती अर्थात् चिप्पी के विना । २. कश्ती ।

राम तो सबका है, और सब राम के हैं।

कृष्ण की माँ के घर में तो मक्खन बहुत था, परंतु मारो चाहे कोसो, वह तो सबके घरों से अपना भाग लेगा। एक यशोदा के घर में बंद होकर वह शेष जागीर भला किस नाम पर छोड़ दे? "ॐ आनंद" की ध्वनि करता हुआ यह योगी भिक्षा को निकलता है। हैं! सम्राट् प्रजा-पालन को भेस बदलकर आया है। जो देखता है, दूसरे द्वार तक जाने नहीं देता।

कैसा ठेकेदारी का समय आ गया। धरती का, लकड़ी का, पानी का तो हुआ। योगी का भी ठेका लिया चाहते हो?

वह माँगकर ले आया, अब नदी-तट पर खाने लगा।

आ जाओ मछली, बंदर और मोर! हम सब मिलकर खाएँगे। वह कैसा भूखा था।

वह देखो, काल को खा गया, लाज़माँ (कालातीत)। देश को हड़पकर गया, लामकाँ (देशातीत)। मत और मतांतर (धर्म) को निगल गया। बेनिशाँ (चिह्नातीत)।

अतः घर नहीं। घाट नहीं। नंग-धड़ंग। एक-अकेला। ग़रीबों का ग़रीब हो गया।

ग़रीब? अजीब और ग़रीब। अकेला? सबसे भला। नंगा? ख़ुदा से चंगा।

सूर्य भी अकेला चढ़ता है। बाज़ भी अकेला उड़ता है। सिंह भी अकेला फिरता है।

एकमेवाद्वितीयम् 'राम' तो अकेला ही है। एक ही है। बस।

सिर पर आकाश का मंडल है, धरती पै सुहानी मख़मल है।
दिन को सूरज की महफ़िल[1] है, शब[2] को तारों की सभा बाबा॥
जब झूम के यहाँ घन आते हैं, मस्ती का रंग जमाते हैं।
चश्मे तंबूर बजाते हैं, गाती है मल्हार हवा बाबा॥
याँ पंछी मिलकर गाते हैं, प्रीतम के संदेश सुनाते हैं।
याँ रूप अनूप दिखाते हैं, फल फूल और बर्गे-ग्रा[3] बाबा॥
धन-दौलत आनी जानी है, यह दुनिया रामकहानी है।
यह आलम आलम-फ़ानी है, बाक़ी है जाते-ख़ुदा बाबा॥

गर बफ़र्क़े-मा निहद सद कोहे-मेहनत रोज़गार।
चीने-पेशानी न बीनद गोशा-ए-अब्रूए-मा॥

अर्थ—अगर समय सैकड़ों पर्वतों का भार मेरे सिर पर रख दे, तो भी मेरी भृकुटि मेरे मस्तिष्क पर बल देखने न पायगी।

गर्चि क़ुतुब[4] जगह से टले तो टल जाए।
गर्चि बहर[5] भी जुगनू[6] की दुम से जल जाए॥
हिमालय बाद[7] की ठोकर से गो फिसल जाए।

---

१. सभा। २. रात्रि। ३. घास की पत्ती। ४. ध्रुवतारा। ५ समुद्र। ६. रात को चमकनेवाला कीड़ा जो उड़ता भी है। ७. वायु।

और आफ़ताब[1] भी क़ब्ले-अरूज[2] ढल[3] जाए ॥
मगर न साहबे-हिम्मत[4] का हौसला टूटे ।
कभी न भूल से अपनी जबीं[5] पै बल आए ॥

ज्ञानी

नसीमे[6]-बहारी चमन[7] सब खिला ।
अभी छींटे दे-देके बादल चला ॥
गुलो[8] ! बोसा[9] लो चाँदनी का मिला ।
जवाँ नाज़नीं[10] इक सरापा[11] बला ॥
हुई ख़ुश, मिला तख़लिया[12] क्या भला ।
क़रीब आई, बूरी हँसी खिलखिला ॥
न जादू से लेकिन ज़रा वह हिला ।
निगह[13] से दिया काम[14] को झट जला ॥
सकी जब न सूरज में दीवा जला ।
परी बन गई ख़ुद मुजस्सम[15] हया ॥

---

१. सूर्य । २. सूर्योदय से पहले । ३. अस्त हो जाय । ४. हिम्मतवाला पुरुष, धैर्यवान् । ५. पेशानी, मस्तक । ६. वसंतऋतु की मंद-मंद स्पंद (ठंढी वायु) । ७. बाग़ । ८. पुष्प । ९. चुंबन । १०. युवा बाँकी स्त्री (कामिनी) । ११. अति सुंदर । १२. एकांत । १३. दृष्टि । १४. कामवृत्ति (विषय-वासना) । १५. लज्जावती । तात्पर्य, जब ज्ञानी-रूप सूर्य में वह कामिनी अपना विषय-वासना-रूपी दीपक न जला सकी, अर्थात् जब ज्ञानवान् उस कामिनी के सौंदर्य के फंदे में न आ सका, तब वह बाँकी कामिनी स्वयं अति लज्जित हो गई ।

कि सब हुस्न[1] की जान मैं ही तो हूँ।
मेह-ओ-माह[2] के प्राण मैं ही तो हूँ ॥ १ ॥

हज़ारों जमा पूजा सेवा को थे।
थे राजे चँवर मोरछल कर रहे ॥
थे दीवान धोते क़दम[3] शौक़ से।
थे ख़िदमत में हाज़िर मदहख़ाँ[4] खड़े ॥
ऋषी तुम हो अवतार सबसे बड़े।
यह सब देख बोला लगा क़हक़हे[5] ॥

बड़ा ही नहीं बल्कि छोटा भी हूँ।
न महदूद[6] कीजिएगा सब मैं ही हूँ ॥ २ ॥

बुरे तौर थे लोग सब छेड़ते।
ठठोली से थे फबतियाँ[7] घड़ रहे ॥
तड़ातड़ तड़ातड़ वह पत्थर जड़े।
लहू के निशाँ सिर पै रुख़[8] पै पड़े ॥
पया पै[9] थे ज़ख़्म और सदमे[10] कड़े।
थे दीदे[11] अजब मुस्कराहट[12] भरे ॥

कि इस खेल की जान मैं ही तो हूँ।
यह लीला के भी प्राण मैं ही तो हूँ ॥ ३ ॥

समय नीम[13]-शब, माह[14] था जनवरी।

---

१. सौंदर्य। २. सूर्य-चंद्र। ३. चरण, पाद। ४. स्तुति करनेवाले। ५. हँसकर बोला। ६. परिच्छिन्न न कीजिएगा। ७. बातें बना रहे व हँसी उड़ा रहे। ८. मुख। ९. लगातार, निरंतर। १०. कठोर चोट। ११. नेत्र। १२. प्रसन्नता-भरे, हँसी पिरोए हुए। १३. अर्ध रात्रि। १४. मास।

हिमालय की बर्फ़, स्याह रात थी ॥
बरफ़ की लगी उस घड़ी इक भड़ी ।
थमी बर्फ़बारी[1] तो आँधी चली ॥
बदन की तो गत[2] बेदमजनूँ-सी थी ।
पै दिल में थी ताक़त, लबों पर हँसी ॥

कि सर्दी की भी जान मैं ही तो हूँ ।
अनासिर[3] के भी प्राण मैं ही तो हूँ ॥ ४ ॥

समय दोपहर माह था जून का ।
जगह की जो पूछो, ख़ते-उस्तुवा[4] ॥
तमाज़त[5] ने लू की दिया सब जला ।
हरारत[6] से था रेग[7] भी भूनता ॥
बदन मोम-सा था पिघलता पड़ा ।
पै लब से था ख़ंदा[8] परोया हुआ ॥

कि गरमी की भी जान मैं ही तो हूँ ।
अनासिर के भी प्राण मैं ही तो हूँ ॥ ५ ॥

बियाबाँ तनहा लक़ोदक़[9] ग़ज़ब ।
इधर मेदा[10] ख़ाली उधर ख़ुश्क लब ॥
उठाई निगह सामने, ऐ अजब ।
लड़ी आँख इक शेरे-गर्रा[11] से तब ॥

---

१. बर्फ़ की वर्षा। २. दशा। ३. पंचभूत जिन्हें फ़ारसी में चार तत्त्व कहते हैं। ४. पृथिवी का मध्य भाग जहाँ अति गरमी होती है। ५. गरमी। ६. धूप की तेज़ी से। ७. रेत। ८. हँसी पिरोई हुई। ९. बड़ा भारी भयानक सघन वन। १०. पेट। ११. चिंघारनेवाला व घूरनेवाला सिंह।

यह तेज़ी से घूरा, गया शेर दब।
जलाले[1]-जमाली था चितवन[2] में अब ॥
कि शेरों की भी जान मैं ही तो हूँ।
सभी खल्क़[3] के प्राण मैं ही तो हूँ ॥ ६ ॥

चला मँझधारा में कश्ती घिरी।
यह कहता था तूफ़ाँ कि हूँ आख़िरी ॥
थपेड़ों से झटपट चटाँ वह चिरी।
उधर बिजली भी वह गिरी वह गिरी ॥
था थामे हुए बाँस[4] ज्यूँ बाँसरी।
तबस्सम[5] में जुरअत[6] भरी थी निरी ॥
कि तूफ़ाँ की भी जान मैं ही तो हूँ।
अनासिर के भी प्राण मैं ही तो हूँ ॥ ७ ॥

बदन दर्दो-पेचश से सीमाब[7] था।
तपे-सख़्तो-रेज़श से बेताब[8] था ॥
नशा ज्ञान का ज्यूँ[9] मए[10]-नाब था।
वह गाता था गोया[11] मरज़ ख़्वाब था ॥
मिटा जिस्म जो नक़्श बर[12]-आब था।
न बिगड़ा मेरा कुछ कि ख़ुद आब था ॥

---

१. निजानंद का तेज। २. दृष्टि। ३. सृष्टि। ४. यहाँ अभिप्राय बेड़ा को चलानेवाले चप्पे से है। ५. मुस्कराहट, हँसी। ६ दिलेरी, उत्साह, शूर-वीरता वा निर्भयता। ७. पारा। ८. व्याकुल। ९. समान। १०. अंगूर की शराब। ११. मानो। १२. जल पर आकार।

जहाँ भरके अबदाने-खूबाँ[1] में हूँ।
मैं हूँ 'राम' हर एक की जाँ में हूँ ॥ ८ ॥

चाँद की करतूत

अजब घूमते - घूमते राम को।
मिला इक तालाब सरे-शाम[2] को ॥

जुलाहे की थी पास में झोंपड़ी।
थी लड़की वहाँ खेलती इक खड़ी ॥

हवा चुपके से सरसराने लगी।
उधर चाँदनी दमदमाने लगी ॥

मैं क्या देखता हूँ कि लड़की वहीं।
है बुत बन रही और हिलती नहीं ॥

खुला मुँह है भोले से मुसका[3] रही।
है आँखों से क्या चाँद को खा रही ॥

उतर आँख से दिल में दाखिल हुआ।
दिले-साफ़ में चाँद सब घुल गया ॥

कहो तो अरे चाँद ! क्या बात है ?
यह क्या कर रहे हो, यह क्या घात है ?

पड़ा अक्स[4] है तेरा तालाब पर।
पै लड़की के दिल में किया तूने घर ॥

---

१. सुंदर प्राणियों के तन । २. सायंकाल के समय ।
३. मुसकिरा रही, धीमे-धीमे हँस रही । ४. प्रतिबिंब ।

दिया आलिमों[1] को न जिस राज़[2] को।
दिखाया न जो दूरबीन-बाज़[3] को॥
रियाज़ी का माहिर[4] न जो पा सका।
न हैयत[5] से जो भेद कुछ आ सका॥
जुलाहे के घर में दिया सब बता।
अरे चाँद! क्यों जी! हुआ तुझको क्या?
वह नन्हें[6] से दिल में यह आराम क्या।
ग़रीबों के घर में तेरा काम क्या?

आनंद के मारे क़ाफ़िया, रदीफ़ और वज़न आदि की यदि मस्त रिंद का सामना पड़ जाय तो वाक्य व रचना के बंधनों से उनका मुक्त होना आवश्यक हो जाता है। कविता की भूमि पर आँखें जमाए वर्षों बीत गए, कविता के आकाश पर दृष्टि उठाओ।

(राम)

रौशनी की घातें (जनूने-नूर)

न बर उशतुर बर सवारम्। न चूँ शुतर ज़ेरे-बारम्॥
न खुदावंदे - रैयत। न ग़ुलामे-शहर यारम्॥
नफ़्से मीज़नम आज़ादा ओ ख़ुश उम्र मी गुज़ारम्॥

---

१. बुद्धिमानों, ज्ञानियों को। २. भेद, गुह्य, रहस्य। ३. दूरदर्शी वा त्रिकालदर्शी। ४. गणितशास्त्र में निपुण। ५. शक्ल का इल्म, तसवीर वा रूप की विद्या वा ज्योतिष-शास्त्र। ६. छोटे से।

अर्थ—न लादू पशु पर मैं सवार हूँ और न ऊँट के समान बोझ के तले लदा हुआ हूँ। न प्रजा का प्रजापति हूँ और न राजा का सेवक हूँ। मैंने अपने तुच्छ अहंकार को मार रक्खा है, इसलिये स्वतंत्र हुआ आनंद से विचरण करता हूँ।

मैं पड़ा था पहलू[1] में राम के, दोनों एक नींद में लेटे थे।
मेरा सीना[2] सीने पै उसके था, मेरा साँस उसका तो साँस था॥
आई चुपके-चुपके से रौशनी, दिए बोसे[3] दीदों[4] पै नाज से।
लंबी-पतली लाल-सी उँगलियों से, खुशी में गुदगुदा दिया?
"कुछ तुमको आज दिखाऊँगी" (मैं दिखाऊँगी) ऐसा कहके
हाय! जगा दिया।
यह जगा दिया कि सुला दिया, जाने किस बला में फँसा दिया।
ऐ लो! क्या ही नक़्शा जमा दिया, कैसा रंग जादू रचा दिया॥
चली निखरकर हमें साथ ले, करी सैर हाथों में हाथ दे।
मचे खेल आँखों में आँख दे, गुल[5] वलवला[6]-सा बपा किया॥
इक शोर ग़ोग़ा[7] उठा दिया निज धाम को तो भुला दिया।
मुँह राम से तो मुड़ा दिया, आरामे-जाँ[8] को मिटा दिया॥
थक हारकर झख मारकर, हर मू[9] से बोला पुकारकर।
अरी नाबकारा[10] रौशनी! अरी चकमा[11] तूने भला दिया॥

---

१. पास, एक ओर, समीप। २. छाती। ३ चुंबन। ४. नेत्र। ५. शोर। ६. हलचल। ७. शोर, हुल्लड़, धूम। ८. जीवन के चैन को। ९. बाल, रोम। १०. नाकारी, बेहूदा, नटखटी। ११. धोखा।

खंदी[१] ! किरणें[२] तेरी सफ़ेद हैं, बालों में रंग भरे है तू ।
गुलगूना[३] मुँह पै मले है तू, नटनी ने रूप बटा लिया ॥
रुख़[४] देखिए तो है फ़क़[५] तेरा, दिल गर्दिशों[६] से है शक़[७] तेरा।
तू उड़ती पैया से धूल है, रथ राम ने जो चला दिया ।
कहो किस जवानी के ज़ोर पर तूने हमको आके उटा दिया ॥
यूँ[८] कहके क़िस्सा समेटकर, दिल जाँ में यार लपेटकर ।
फिर लंबी तानों में पड़ गया, गोया[९] ग़ैरे-राम[१०] जला दिया॥
अभी रात-भर भी न बीती थी कि लो रौशनी को हवा लगी
नए नख़रे-टख़रे से प्यार से, मेरे चश्मे-ख़ाना[११] को वा[१२] किया
कुछ आज तुमको दिखाऊँगी (मैं दिखाऊँगी), ऐसा कहके
हाय ! नचा दिया ।
कहूँ क्या ? जी ! भरें[१३] में आ गए, कैसा सब्ज़ बाग़ दिखा दिया॥
लड़ भिड़ के आख़िर शाम को, कह अल्विदा सब काम को ।
आग़ोश[१४] में ले राम को, तन उसके मन में छुपा दिया ॥
लेकिन फिर आई रौशनी, लो ! दम दिलासा चल गया ।
और फिर वही शैतानियाँ, वैसी ही कारस्तानियाँ[१५],

---

१. ऐ निर्लज्ज । २. किरणों से अभिप्राय बाल हैं । ३. उबटना । ४. मुख । ५. पीला, मुरझाया हुआ । ६. काल-चक्र से । ७. फटा हुआ, टूटा हुआ । ८. ऐसे । ९. मानो । १०. राम से भिन्न को । ११. मेरे भीतर के नेत्र वा मेरी भीतरी दृष्टि । १२. खोल दिया । १३. पेच, दाँव । १४. बग़ल । १५. चालाकियाँ ।

हँसने में और खसने में फिर दिन-भर को यूँ ही बिता दिया॥
बेहूदा टालमटोल, जी[१] यारों का फिर उकता गया।
हम सो गए जाग उट्ठे फिर, यूँ ही अलाइज़जल[२] क़यास,
वादा[३] न अपना रौशनी ने एक दिन ईफ़ा[४] किया॥
थकने न पाई रौशनी, मामूल पर हाज़िर थी यह।
उमरों पै उमरें हो गईं, इसका तवातर[५] दौर था॥
किस धुन में सब इक़रार थे, क्यों दिन बदिन यह मदार[६] थे।
किस बात के दर पै थी यह? मस्तो-ख़राबे-मैं[७] थी यह?
यह तो मुइम्मा[८] न खुला, सदियों का अर्सा[९] हो गया॥
हर बात जो समझी अजब, पास जा देखा तो तब।
ख़ाली सुहाना ढोल था, धोका था फ़ितना-ए-गोल[१०] था॥
सब गुंगों-कर[११] अशजार[१२] थे, चपो-रास्त[१३] सब अग़यार[१४] थे।
सब यार दिल पर बार थे, और वे ठिकाना कार था॥
अपना तो हर शब[१५] रूठ जाना, रौशनी का फिर मनाना।
आज और कल रोज़ो-शब की क़ैद ही में तलमलाना,
सब मेहनतें तो थीं फ़ज़ूल, और कार नाहमवार था॥
वह रौशनी का साथ चलना, अपना न हरगिज़ उसको तकना-

---

१. चित्त। २. इत्यादि। ३. इक़रार। ४. पूरा किया। ५. निरंतर। ६. टिकाव, ठहराव। ७. प्रेममद, आनंदित। ८. रहस्य। ९. काल, समय। १०. भूत वा शैतान की शरारत। ११. गूँगे, बहरे। १२. वृक्ष। १३. दाएँ-बाएँ। १४. अन्य लोग, अनात्म-पदार्थ। १५. रात्रि।

वह रौशनी के जी[1] की हसरत[2], हमको न परवा बल्कि नफ़रत,
सूदो-जियाँ[3], बीमो-रजा[4] की रगड़ कारे-ज़ार[5] था ॥
यूँ हि रफ़्ता-रफ़्ता पड़े कभी, कभी उठ खड़े थे मरे कभी।
कभी शिक्मे-मादर[6] घर हुआ, कभी ज़न[7] से बोसो-किनार[8] था ॥
बढ़ना कभी, घटना कभी, मद्दो-जज़र[9] दुश्वार था।
गर्ज़ इंतज़ारो-कशाकशी[10], दिन-रात सीना-फ़िगार[11] था ॥
क्या ज़िंदगी यह है बगोले की तरह पेचाँ[12] रहे ?
और कोर-सग[13] बनकर शिकारे-बाद[14] में हैराँ रहे ?
लो आख़िरश आया वह दिन, इक़रार पूरा हो गया।
सदियों की मंज़िल कट गई, सब कार पूरा हो गया ॥
हाँ ! रौशनी है सुर्ख़रू, तेरा वादा आज वफ़ा[15] हुआ।
तेरे सदक़े-सदक़े मैं नाज़नीं ! कुल भेद[16] आज फ़िदा हुआ ॥
उमरों का उक़दा[17] हल हुआ, कुफ़लो-गिरह[18] सब खुल गए।
सब क़ब्ज़ो-तंगी उड़ गई, पाप और शुभे सब धुल गए।
सब ख़्वाबे-दूई[19] मिट गया, दीदे[20] अजब यह खुल गए ॥

---

१. चित्त । २. शोक । ३. लाभ-हानि । ४. भय-निर्भय । ५. युद्ध । ६. माता का पेट वा गर्भ । ७. स्त्री । ८. चुंबन, प्यार । ९. घटाव-बढ़ाव, ऊँच-नीच । १०. खैंचातानी । ११. घायल चित्त । १२. पेच खाते रहे । १३. अंधा कुत्ता । १४. पवन के शिकार । १५. पूरा । १६. घुंडी खुल गई । १७. मुश्किल हल हो गई । १८. ताला और गाँठ । १९. द्वैत-रूपी स्वप्न । २०. नेत्र ।

ऐ रौशनी ! ऐ रौशनी ! खुश हो मैं तेरा यार हूँ ।
खाविंद[1] घरवाला हूँ मैं, पुश्ते-पनाह[2] सरकार हूँ ॥
वह राम जो माबूद[3] था, साया था मेरे नूर[4] का ।
क्या रौशनी, क्या राम, इक शोला[5] है मेरे तूर[6] का ॥
इन आँसुओं के तार के सिहरे से चिहरा खिल उठा ।
क्या लुत्फ़ शादी-ए-मर्ग[7] है, हर शै[8] से शादी वाह ! वाह !!
हाँ ! मुयदावाद[9], ऐ साँप, सग ! ऐ ज़ाग[10], माही[11], चील, गिध !
इस जिस्म से कर लो ज़ियाफ़त, पेट भर-भर वाह ! वाह !!
आनंद के चश्मे के नाके[12] पर यह जिस्म[13] इक बंद था ।
वह बह गया बंदे-खुदी[14], दरिया बहा है वाह ! वाह !!
सब फ़र्ज़, क़र्ज़ और गर्ज़ के इमराज़[15] यकदम उड़ गए ।
हल फिर गया ज़ेरो[16]-ज़बर पर और सुहागा वाह ! वाह !!
दुनिया के दल बादल उठे थे, नज़रे-ग़लत-अंदाज़[17] से ।
लो इक निगाह से चुक गया सारा सियापा वाह ! वाह !!
तन नूर से भरपूर हो, मामूर[18] हो, मसरूर[19] हो ।

---

१. पति, स्वामिन् । २. आधार, आश्रय । ३. पूजनीय । ४. प्रकाश । ५. ज्वाला । ६. अग्नि का पर्वत । ७. प्रसन्नता-पूर्वक मृत्यु का आनंद । ८. प्रत्येक पदार्थ । ९. प्रसन्न हो । १०. काग । ११. मच्छी । १२. मुख, द्वार । १३. शरीर । १४. अहंकार-रूपी बंधन । १५. रोग । १६. ऊँच-नीच, बड़े-छोटे । १७. ग़लत ढंग से । १८. पूर्ण । १९. खुश, प्रसन्न ।

वह उड़ गया, जाता रहा, पुर नूर हो, काफ़ूर हो ॥
अब शब कहाँ? और दिन कहाँ? फ़र्दा[१] है नै इमरोज़[२] है।
है इक सरूरे-लातग़य्युर[३] ऐश है नै[४] सोज़[५] है ॥
उठना कहाँ? सोना कहाँ? आना कहाँ? जाना कहाँ?
मुझ बहरे-नूरो-सरूर[६] में, खोना कहाँ? पाना कहाँ?
मैं नूर हूँ, मैं नूर हूँ, मैं नूर का भी नूर हूँ।
तारों में हूँ, सूरज में हूँ, नज़दीक से नज़दीक हूँ
और दूर से भी दूर हूँ ॥
मैं मादनो-मख़ज़न[७] हूँ मैं, मम्बा[८] हूँ चश्मए-नूर का।
आरामगह[९], आरामदेह[१०] हूँ, रौशनी का नूर का ॥
मेरी तजल्ली[११] है यह नूरे-अक़्लो[१२]-नूरे-अनसरी[१३]।
मुझसे दरख़्शाँ[१४] हैं यह कुल अजरामे[१५]-चर्खे-चंबरी[१६]॥
हाँ! ऐ मुबारक रौशनी! ऐ नूरे-जाँ[१७]! ऐ प्यारी "मैं"।
तू राम और मैं एक हैं, हाँ एक हैं, हाँ एक हैं ॥
हर चश्म[१८], हर शै[१९], हर बशर[२०], हर फ़ह्म[२१], हर मफ़हूम[२२] मैं।

---

१. कल। २. आज। ३. विकार-रहित आनंद। ४. नहीं। ५. जलन, कुढ़न, दुःख। ६. आनंद और प्रकाश के समुद्र में। ७. खान और भंडार। ८. निकास। ९. आराम का स्थान। १०. आराम देनेवाला। ११. तेज। १२. बुद्धि का तेज। १३. पंचभौतिक तेज। १४. चमकीले। १५. तारागण। १६. गोल आकाश वा आकाशमंडल के। १७. प्राण के तेज। १८. चक्षु। १९. वस्तु। २०. जीव-जंतु। २१. समझ, ज्ञान। २२. समझा हुआ, ज्ञात।

नाज़र नज़र मंज़ूर[1] मैं, आलिम[2] हूँ मैं, मालूम मैं ॥
हर आँख मेरी आँख है, हर एक दिल है दिल मेरा।
हाँ! बुलबुलो-गुल, मिहरो-माह[3] की आँख में है तिल मेरा ॥
वहशत[4] भरे आहू[5] का दिल, शेरे-बबर का क़हर[6] का।
दिल आशिक़े-बेदिल का प्यारे, यार का और दहर[7] का ॥
अमृत-भरे स्वामी का दिल, और मार[8] पुर-अज़ ज़हर का।
यह सब तजल्ली[9] है मेरी, या लहर मेरे बहर का ॥
इक बुलबुला है मुझमें सब, ईजादे[10]-नौ, ईजादे[11]-नौ।
है इक भँवर मुझमें यह मर्गे-नागहाँ[12] और ज़ादे[13]-नौ ॥
सोए पड़े बच्चे को वह जाली उठाकर घूरना।
आहिस्ता से मक्खी उड़ाना, तिफ़्ल[14] का वह बसूरना ॥
वह दो बजे शब को शफ़ाख़ाना में तिशना[15]-मरीज़ को।
उठकर पिलाना सोडावाटर, काट अपनी नींद को ॥
वह मस्त हो नंगे नहाना, कूद पड़ना गंग में।
छींटे उड़ाना, गुल मचाना, ग़ोते खाना रंग में ॥
वह माँ से लड़ना, ज़िद में अड़ना, मचलना, एड़ी रगड़ना।
वालिद से पिटना और चिल्लाते हुए आँखों को मलना ॥

---

१. द्रष्टा, दर्शन, दृश्य। २. ज्ञानी। ३. सूर्य-चंद्र। ४. घबराहट-भरे। ५. मृग। ६. आफ़त का। ७. काल का। ८. ज़हरीले साँप का। ९. प्रकाश। १०. नई बनावट। ११. नई उन्नति। १२. अचानक मृत्यु। १३. नई उत्पत्ति। १४. बच्चा। १५. प्यासा।

कॉलेज के साइंस रूम में, गैसों से शीशे फोड़ना।
बारूद और गोलों से सफ़ दर सफ़[1] सिपाहें तोड़ना ॥
इन सब चालों में हम ही हैं, यह मैं ही हूँ, यह हम ही हूँ ॥१॥
गरमी का मौसम, सुबहदम, साअ़त[2] है दो या तीन का।
खिड़की में दीवा देखते हो टिमटिमाता टीन का ? ॥
दीवे पै परवाने हैं गिरते, बेखुदी में बार-बार।
बेचारा लड़का कर रहा है इल्म[3] पर जाँ को निसार ॥
बेचारे तालिब[4]-इल्म के चेहरे की ज़र्दी है मेरी।
बेनींद लंबी साँस और आहों की सर्दी है मेरी ॥
इन सब चालों में हम ही हैं, यह मैं ही हूँ, यह हम ही हैं ॥२॥
है लहलहाता खेत, पुर्वा चल रही है ठुम-ठुमक।
गाढ़े की धोती, लाल चीरा चौधरी की लट-लटक ॥
जोशे-जवानी ! मस्त अलगोजा बजाना उछलना।
मुगदर घुमाना, कुश्ती लड़ना, पिछड़ना और कुचलना ॥
छकड़ा लदा है बोझ से, हिचकोले खाता बार-बार।
वह टाँग पर धर टाँग पड़ना, बोझ ऊपर हो सवार ॥
शिद्दत[5] की गरमी, चील अंडे के समय, सरे-दोपहर।
जा खेत में हल का चलाना, अर्क़[6] में हो तरबतर ॥
और सिर पै लोटा छाछ का, कुछ रोटियाँ कुछ साग धर।

---

१. पंक्तिवार। २. घड़ी। ३. विद्या। ४. विद्यार्थी। ५. अत्यंत गरमी। ६. पसीने से मुराद है।

भत्ता उठा कुत्ते को ले, औरत[1] का आना ऐंठकर ॥
इन सब चालों में हम ही हैं, यह मैं ही हूँ, यह हम ही हैं ॥३॥
दुलहिन का दिल से पास आना, ऊपर से रुकना झिजक जाना।
शर्मो-हया का इश्क़ के चुंगाल में रह-रह के आना ॥
वह माहे-गुलरू[2] के गले में डाल बाहें प्यार से।
ठंढे चश्मों के किनारे, बोसाबाज़ी[3] यार से ॥
हाँ! और वह चुपके-से छिपकर, आड़ में अशजार[4] के।
बेदाम खुफ़िया पुलिस बनना, राम की सरकार के ॥
इन सब चालों में हम ही हैं, यह मैं ही हूँ, यह हम ही हैं ॥४॥
यह सब तमाशे हैं मेरे, यह सब मेरी करतूत है ॥
वह इस तरफ़ खा-खा के मरना, उस तरफ़ फ़ाक़ों से गुम।
वह बिलबिलाना जेल में, जंगल में फिरना सुम बकुम[5] ॥
और वह गद्देले कुर्सियाँ, तकिए बिछौने बग्घियाँ।
सब मादरे-सुस्ती बवासीरो-ज़ुकाम और हिचकियाँ ॥
यह सब तमाशे हैं मेरे, यह सब मेरी करतूत है ॥ ५ ॥
वह रेल में या तारघर में, महल कुवारिनटीन में।
रूस, अम्रीका, ईराँ में, जापान में या चीन में ॥
सिसकना, दुखड़े सुनाना, ख़ूँ बहाना ज़ार-ज़ार।
वह खिलखिलाना क़हक़हों और चहचहों में बार-बार ॥

---

१. स्त्री। २. चंद्रमुखी प्रिया। ३. चुंबन का लेना। ४. वृक्षों।
५. बैहरे (बोले) और गूँगे।

वह वक़्त पर बारिश न लाना, हिंद में या सिंध में ।
फिर राम को गाली सुनाना, तंग होकर हिंद में ॥
वह धूप से सबको मिसाले-मुर्गे-बिरयाँ[1] भूनना ।
बादल की सारी को किनारी चाँदनी से गूँदना ॥
चुप होके खानी गालियाँ, साले से उस शिशुपाल[2] से ।
खुश हो सलीबो-दार[3] पर, चढ़ना मुबारक हाल से ॥
यह कुल तमाशे हैं मेरे, यह सब मेरी करतूत है ।
इन सब चालों में हम ही हैं, यह मैं ही हूँ, यह हम ही हैं ॥६॥
मोहताज[4] के, बीमार के, पापी के और नादार[5] के ।
हमलब-ओ-हमबगल[6] हूँ, हमराज़[7] हूँ बेयार का ॥
सुनसान-शब[8], दरिया किनारे हैं खड़े डटकर तो हम ।
और क़ैदे-तख़्तो-ताज में गर हैं पड़े जकड़े तो हम ॥
सस्ते से सस्ते हैं तो हम, महँगे से महँगे हैं तो हम ।
ताज़ा से ताज़ा हैं तो हम, सबसे पुराने हैं तो हम ॥
वाइद[9] हूँ, मुझको मेरा ही सिजदा[10]-सलाम है ।
मेरी नमस्ते मुझको है, और राम-राम है ॥
जानते हो ? आशिक़ो-माशूक़[11] जब होते हैं एक ।

---

१. भूने हुए पक्षी के सदृश । २. इस सारी पंक्ति से कृष्ण भगवान् का गाली खाना अभिप्रेत है । ३. सूली । ४. भिखारी । ५. निर्धन । ६. नितांत समीप । ७. भेद जाननेवाला । ८. घोर रात्रि । ९. अद्वैत, एक अकेला । १०. झुकना, प्रणाम । ११. प्रेमी और प्रिया, उपासक और उपास्य ।

बे शुभा[1] मेरी ही छाती पर वहम[2] सोते हैं नेक ॥
पुण्य में और पाप में, हर बाल साँस और मांस में।
दूर कर आँखों से परदा, देख जल्वा[3] घास में ॥
कुछ सुना तुमने ? अजब चालें मेरी चालाकियाँ।
बे हिजाबाना[4] करिश्मे, लाधड़क बे बाकियाँ[5] ॥
हाँ, करोड़ों ऐब, जुर्म, अफ़आ़ले-नेक[6], एमाले-ज़िश्त[7]।
मुझमें मुतसव्वर[8] हैं दोज़ख, मैकदह[9], मसजिद, बहिश्त ॥
मार देना, झूठ बकना, चोर-यारी और सितम[10]।
कुल जहाँ के ऐब रिंदाना[11] पड़े करते हैं हम ॥
ऐ ज़मीं के बादशाहो ! पंडितो, परहेज़गारो[12] !
ऐ पुलिस ! ऐ मुद्दई, हाकिम, वकील, ऐ मेरे यारो !
लो बता देते हैं तुमको राज़े-ख़ुफ़िया[13] आज हम।
अपने मुँह से आप ही इक़रार ख़ुद करते हैं हम ॥
"ख़्वाह चोरी से कि यारी से, खपा लेता हूँ मैं।
सबकी मलकीयत को मक़बूज़ात[14] को और शान को ॥"
यह सितम, यारो ! कि हरगिज़ भी तो सह सकता नहीं।

---

१. निःसंदेह । २. एकत्र । ३. दर्शन । ४. परदा-रहित करामात । ५. निर्भयता, निडरपना । ६. पुण्य-कर्म । ७. पाप-कर्म । ८. कल्पित । ९. शराबख़ाना । १०. आश्चर्य, ज़ुल्म । ११. निर्भय वा निहंग होकर । १२. व्रत और तप करनेवाले । १३. गुह्य, भेद । १४. अधिकार, संपत्ति ।

ग़ैरे-ख़ुद[1] के ज़िक्र को, या नाम को, कि निशान को ॥
ख़ुदकुशी[2] करते हैं सब क़ानून, तनक़ीहो-जिरह ।
दूर ही से देख पाते हैं जो मुझ तूफ़ान को ॥
कुल जहाँ बस एक ख़र्राटा है मस्ती में मेरा ।
ऐ ग़ज़ब[3] ! सच कर दिखाता हूँ मैं इस बोहतान[4] को ॥
क्या मज़ा हो, लो भला दौड़ो, मुझे पकड़ो,
मुझे पकड़ो, मुझे पकड़ो कोई ।
रिंदमस्तों का शहंशाह हूँ मुझे पकड़ो,
मुझे पकड़ो, मुझे पकड़ो कोई ।
सीनाज़ोरी[5] और चोरी, छेड़-छाड़, अठखेलियाँ ।
चुटकियाँ सीना में भरता हूँ, मुझे पकड़ो कोई ॥
खा के माखन, दिल चुराकर, वह गया, मैं वह गया ।
मारकर मैं हाथ हाथों पर यह जाता हूँ मुझे पकड़ो कोई ॥
रात दिन छुपकर तुम्हारे बाग़ में बैठा हूँ मैं ।
बाँसुरी में गा बुलाता हूँ, मुझे पकड़ो कोई ॥
आइएगा, लो उड़ा दीजिएगा मेरे जिस्म[6] को ।
नाम मिट जाने से मिलता हूँ, मुझे पकड़ो कोई ॥
दस्तो-पा[7], गोशो-दीदा[8], मिस्ले-दस्ताना[9] उतार ।

---

१. अपने से अतिरिक्त वा भिन्न । २. आत्मघात । ३. आश्चर्य । ४. झूठ । ५. ज़बरदस्ती । ६. शरीर । ७. हाथ-पाँव । ८. कान और आँख । ९. दस्ताना की तरह ।

हुलिया सूरत को मिटाता हूँ, मुझे पकड़ो कोई ॥
साँप जैसे कैंचली को, फेंक नामो-नंग[1] को।
बे[2] सिलह के बस[3] में आता हूँ, मुझे पकड़ो कोई ॥
नट गया, वह नट गया ! नट कर भला जाए कहाँ।
मुँह तो फेरो ! यह खड़ा हूँ लो मुझे पकड़ो कोई ॥
आते-आते मुझ तलक, मैं ही तो तुम हो जाओगे।
आपको जकड़ो ! अगर चाहो मुझे पकड़ो कोई ॥
आतिशे-सोज़ा[4] हूँ मुझमें पुण्य क्या और पाप क्या ?
कौन पकड़ेगा मुझे ? और हाँ ! मेरा पकड़ेगा क्या ?

दुनिया की छत पर से ललकार

ख़ुश खड़ा दुनिया कि छत पर हूँ तमाशा देखता।
गह[5] बगह देता लगा हूँ वहशियों[6] की-सी सदा[7] ॥
बादशाह दुनिया के हैं, मोहरें मेरी शतरंज के।
दिल - लगी की चाल हैं सब रंग सुलह-ओ-जंग के ॥
रक़्से-शादी[8] से मेरे जब काँप उठती है ज़मीं।
देखकर मैं खिलखिलाता क़हक़हाता[9] हूँ वहीं ॥
ऐ मुकाली[10] रेलगाड़ी ! उड़ गई। ऐ सिरजली[11] !

---

१. लज्जा और निर्लज्जा। २. हथियार-रहित। ३. वश में। ४. जलती अग्नि। ५. कभी-कभी। ६. वनचरों। ७. आवाज़ व घोषणा। ८. प्रसन्नता के नृत्य से। ९. खिलकर हँसना। १०. काले मुखवाली। ११. जले हुए सिरवाली, अर्थात् सिर से धुआँ निकालनेवाली।

ऐ ख़रे-दज्जाल[1] ! नख़राबाज़ियों में जू[2] परी ॥
भोलेभाले आदमी भर-भर के लंबे पेट में ।
ले डकारें[3] लोटती है रेत में या खेत में ॥
छोड़ धोकाबाज़ियाँ और साफ़ कह, सच-सच बता ।
मंज़िले-मक़सूद[4] तक कोई हुआ तुझसे रसा[5] ॥
पेट में तेरे पड़ा जो वह गया ! लो वह गया !
लैक[6] हाय ! मंज़िले-मक़सूद पीछे रह गया ॥
ऐ जवाँ बाबू ! यह गरमी क्यों ? ज़रा थमकर चलो ।
बैग लेकर हाथ में सरपट न यूँ जल्दी करो ॥
दौड़ते क्या हो बराते-नूर[7] के मिलने को तुम ?
वह न बाहर है, ज़रा पीछे हटो बातन[8] को तुम ॥
क्यों हो मुजरिम[9] अहलकारों की खुशामद में पड़े ?
यह कचहरी वह नहीं, तुमको रिहाई[10] दे सके ॥
पहनकर पोशाक गहने बुर्क़ा ओढ़े नाज़[11] से ।

---

१. एक गधा को कहते हैं जो हज़रत ईसा के शत्रु के तले रहता था और जिसका पेट अत्यंत लंबा था और बाक़ी अंग बहुत छोटे, सो रेल को उस गधे के दृष्टांत से दर्शाया है। २. परी के समान। ३. सीटी अथवा चीख़ से अभिप्राय है। ४. अंतिम लक्ष्य-स्थान वा असली घर । ५. पहुँचा। ६. किंतु। ७. तेज के पुंज या प्रकाश के विवाह में। ८. भीतर। ९. अपराधी। १०. छुटकारा, मुक्ति। ११. नख़रे से।

चोरी-चोरी गुलबदन[1] मिलने चली है यार से ॥
ऐ मुहब्बत से भरी ! ऐ प्यारी बीबी ख़ूबरू[2] !
चौंक मत घबरा नहीं, सुनकर मेरी ललकार[3] को ॥
निकल भागा दिल तेरा, पैरों से बढ़कर दौड़ में ।
दिल हरम[4] है यार का, साकिन[5] हो, गिर नै[6] दौड़ में ॥
हो खड़ी जा ! बुर्क़ा जामा और बदन तक दे उतार ।
बे हया हो, एक दम में, ले, अभी मिलता है यार ॥
दौड़ क़ासिद[7] ! पर लगाकर, उड़ मेरी जाँ ! पेच खाकर ।
हर दिलो[8]-हर जाँ में जाकर, बैठ जमकर घर बनाकर ॥
"मैं ख़ुदा हूँ", "मैं ख़ुदा हूँ" राज़[9] जाँ में फूँक दे ।
हर रगो-रेशे[10] में घुसकर मस्ती-ओ-मुल[11] झोंक दे ॥
ग़ैरबीनी[12], ग़ैरदानी[13] और ग़ुलामी बंदगी (को) ।
मार गोले दे धड़ाधड़, एक ही कूक दे ॥
रौशनी पर कर सवारी, आँख से कर नूर-बारी[14] ।

---

१. पुष्प के तनवाली, कोमल, यहाँ वृत्ति से अभिप्राय है । २. अति सुंदर । ३. आवाज़, ध्वनि । ४. मंदिर । ५. स्थित । ६. नहीं । ७. संदेशा ले जानेवाला । ८. प्रत्येक चित्त और प्राण में । ९. गुह्य भेद, रहस्य । १०. प्रत्येक नस और पट्ठे में । ११. मस्ती (निजानंद) और शराब (ज्ञानामृत) । १२. द्वैतदृष्टि । १३. द्वैतभावना । १४. नेत्र से आनंदरूपी प्रकाश की वर्षा ।

हर दिलो-दीदा[1] में जा झंडा अलिफ़[2] का ठोंक दे ॥

कहाँ जाऊँ ? किसे छोड़ूँ ? किसे ले लूँ ? करूँ क्या मैं ?
मैं इक तूफ़ाँ क़यामत का हूँ, पुर हैरत तमाशा मैं ॥ १ ॥
मैं बातिन[3] मैं अयाँ[4], जेरो[5]-ज़बर, चप[6]-रास्त, पेशो[7]-पस ।
जहाँ मैं, हर मकाँ[8] मैं, हर ज़मा[9] हूँगा, सदा था मैं ॥ २ ॥
नहीं कुछ जो नहीं मैं हूँ, इधर मैं हूँ, उधर मैं हूँ ।
मैं चाहूँ क्या ? किसे ढूँढ़ूँ सभों में ताना बाना मैं ॥ ३ ॥
वह बहरे-हुस्नो[10]-ख़ूबी हूँ, हुबाब[11] हैं काफ़[12] और कैलास ।
उड़ा इक मौज[13] से क़तरा, बना तब मिहर[14]-आसा मैं ॥ ४ ॥
ज़रो-नेमत[15] मेरी किरणों में धोका था सुराब[16] ऐसा ।
तजल्ली नूर[17] है मेरा कि 'राम' अहमद हूँ, ईसा मैं ॥ ५ ॥

माया

शाम

गंगा की ठंडी छाती से आती है ख़ुश हवा ।
है भीने-भीने बाग़ का साँस इसमें मिल रहा ॥

---

१. प्रत्येक हृदय और नेत्र में । २. अद्वैत का झंडा ब्रह्मविद्या अथवा 'रिसाला अलिफ़' मासिक पत्र जिसे स्वामीजी ने निकाला था । ३. भीतर । ४. बाहर, प्रकट । ५. नीचे-ऊपर । ६. बाएँ-दाएँ । ७. आगे-पीछे । ८. देश । ९. काल । १०. सुंदरता का समुद्र । ११. बुलबुला । १२. कोह काफ़ के पर्वत से आशय है । १३. लहर, तरंग । १४. सूर्य-जैसा । १५. धन-दौलत । १६. मृगतृष्णा का जल । १७. तेजोमय प्रकाश ।

गंगा के रोम-रोम में रचने लगा वह बहर[1] ।
आया जुवार[2] ज़ोर का लहरों पै लैके लहर ॥
देखो तो कैसे शौक़ से आते जहाज़ हैं ।
मारे ख़ुशी के सीटी बजाते जहाज़ हैं ॥
शादी ज़मीं की ऐ लो ! फ़लक[3] से हुई हुई ।
वह सायबान क़नात है जब ही तनी हुई ॥
दुल्हा के सिर पै तारों का सिहरा खिला-खिला ।
दुलहिन के बर्क़े-दिल[4] ने चिराग़ाँ[5] खिला दिया ॥

स्थान (ईडन बाग़, कलकत्ता)

है क्या सुहाना[6] बाग़ में मैदाने-दिलकुशा[7] ।
और हाशिया[8] है बैंचों का सब्ज़ा पै वाह वा ॥
मजमा[9] हजूम लोगों का भरकर लगा है यह ।
मैदान आदमी से लबालब भरा है यह ॥
बैंचों पै बाज़ बैठे हैं, अक्सर हैं ख़ुश खड़े ।
बाँके जवान बाग़ में हैं टहलते पड़े ॥
मैदान-पार सड़क पै है बग्घियों की भीड़ ।

---

१. समुद्र । २. समुद्र में तूफ़ान । ज्वार-भाटा । अर्थात् समुद्र में लहरों का चढ़ाव-उतार । ३. आकाश । ४. दिल में रहनेवाली बिजली, इस जगह अभिप्राय पृथिवी से है । ५. बिजली की रौशनी फैल गई । ६. दिल को अच्छा लगनेवाला । ७. खुले दिलवाला अर्थात् विशाल मैदान । ८. किनारा । ९. गिरोह, भीड़ ।

घोड़ों की सरकशी[1] है, लगामों की देनपीड़[2] ॥
शौक़ीन कलकत्ता के हैं, मौजूद सब यहाँ।
हर रंग-ढंग वज़े के मिलते हैं अब यहाँ ॥

काम

(अर्थात् कलकत्ते के बाग़ में लोग क्या कर रहे हैं ?)

हम सबको देखते हैं, पर यह देखते कहाँ ?
आँखें तनी हुई हैं, यह क्या पीर क्या जवाँ ॥
मर्कज़[3] है सब निगाहों का उजला[4] चबूतरा।
खुश बैंड[5] बाजा गोरों का है जिसमें बज रहा ॥
गाते फुला-फुलाके हैं वह गालें गोरियाँ।
क्या रौशनी में सुर्ख़ दमकती हैं कुरतियाँ ॥
ऐ लोगो! तुमको क्या है ? जो हिलते ज़रा नहीं।
क्या तुमने लाल कुरती को देखा कभी नहीं ॥

परदा

इसरार[6] इसमें क्या है, करो ग़ौर तो सही।
इस टिकटिकी में क्या है करो ग़ौर तो सही ॥
गोरों की कुरतियों को हैं गो तक रहे ज़रूर।
लेकिन नज़र से कुरतियाँ गोरे तो सब हैं दूर ॥

---

१. सिर हिलाना। सिर हिलाकर लगाम तुड़वाना। २. दबाना।
३. केंद्र। ४. रौशन, चमकीला। ५. अँगरेज़ी बाजे का नाम है।
६. भेद, गुह्य भेद।

लहरा रहा है परदा-सा सबकी निगाह पर।
इस परदे से पिरोई है हर एक की नजर॥
यह परदा तन रहा है, अजब ठाट-बाट का।
जिसमें जमीं-जमानो-मकाँ है[१] समा रहा॥
परदा बला है, छेद कि सीवन[२] कहीं नहीं।
लेकिन मोटाई पूछो तो असला[३] नहीं नहीं॥
परदा सितम[४] है, सेहर[५] के नक़शो-निगार हैं।
हर आँख के लिये याँ अलहदा ही कार[६] हैं॥
सब सामयीं[७] के सामने परदा है यह पड़ा।
हर एक की निगाह में नक़शा बना दिया॥
परदों से राग के है यह परदा अजब पड़ा।
गंधर्व शहर का है कि मिराज[८] का मजा॥
जादू है, हिप्नोटिज़्म[९] है, परदा सुराब[१०] है।
क्या सच है रंग ढंग, यह सब नक़शे[११]-आब है॥
रहिए तो यार परदे में देखें तो कैफ़ियत[१२]।
आँखें सिली हैं परदा से क्यों? क्या है माहियत[१३]?
दीदों[१४] में और रंगों में क्या है मुनासिबत?

---

१. देश, काल, वस्तु। २. सिया हुआ। ३. बिलकुल, नितांत। ४. ज़ुल्म, आश्चर्य। ५. जादू। ६. काम। ७. सुननेवाले, श्रोतागण। ८. चढ़ाई, तरक्क़ी, बलंदी (यहाँ अभिप्राय स्वर्ग या विष्णुलोक है)। ९. हाथों के द्वारा आदमी को मूर्च्छित करने की विद्या। १०. रेत का मैदान जो धूप में पानी की तरह नज़र आए, मृगतृष्णा का जल। ११. पानी के नक़शा। १२. हाल, दशा। १३. असलियत। १४. चक्षु, नेत्रों।

विवाह

वह नेनियों के -रू-बरू नूरी लिबास[1] में ।
दुलहिन खिली है फूल-सी फूलों की बास में ॥
शादी के राग-रंग में बाजा बदल गया ।
ऐ लो ! बरात बैठी है जल्सा बदल गया ॥
दुलहिन का रंग हूबहू गोया गुलाब है ।
और चश्मे[2]-नीम मस्त[3] से झड़ता शराब है ॥
क्यों दाएँ से और बाएँ से गुड़ जाएँ न आँखें ।
जब रंग ही ऐसा हो, तो जुड़ जाएँ न आँखें ॥

युनिवर्सिटी कॉनवोकेशन

ऐनक लगाए लड़के को वह इसही परदे पर ।
हरकारा दौड़ता हुआ लाया है क्या खबर ॥
लेते ही तार हाथ में लड़का उछल पड़ा ।
"मैं पास हो गया हूँ, लो मैं पास हो गया ॥"
"बी० ए० के इम्तहान में बढ़कर रहा हूँ मैं ।
इँगलिश में और हिसाब में अव्वल रहा हूँ मैं ॥"
है चांसलर[4] से जल्सा में इनआम पा रहा ।

---

१. प्रकाश की पोशाक का वस्त्र । २. आँख । ३. आधी मस्त ।
४. युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) के भवन में प्रधान पुरुष (सभापति) ।

और फ़ेलो-साहबान[1] से है इकराम[2] पा रहा ॥

क्यों दाएँ से और बाएँ से मुड़ जाएँ न आँखें।
जब रंग ही ऐसा हो तो जुड़ जाएँ न आँखें ॥

बच्चा पैदा हुआ

वह देखना किसी के लिये इसही परदे पर।
पूरी हुई है आरज़ू, पैदा हुआ पिसर[3] ॥
मंगल है, शादियाना[4] है, ख़ुशियाँ मना रहा।
दरवाज़े पर है भाट खड़ा गीत गा रहा ॥
नन्हा[5] है गोलमोल, कि इक कँवल-फूल है।
नाज़ुक है लाल-लाल अचंभा अमूल[6] है ॥
अब तो बहू की चाँदी है घर भर में बन गई।
सास भी जो रूठी थी, लो आज मन गई ॥

क्यों दाएँ से और बाएँ से मुड़ जाएँ न आँखें।
जब रंग ही ऐसा हो तो जुड़ जाएँ न आँखें ॥

नेशनल कांग्रेस[7]

वह देखना ? किसी के लिये इसी परदे पर।
मंडप है कांग्रेस का, गजब धूम कर्रोफ़र[8] !

---

१. युनिवर्सिटी के सभासद् व प्रोफ़ेसर। २. उपाधि इत्यादि। ३. पुत्र। ४. ख़ुशी के बाजे बज रहे हैं। ५. छोटा-सा बच्चा। ६. अनंत मोलवाला अर्थात् अमूल्य। ७. राष्ट्रीय महासभा। ८. शान-शौकत।

लेक्चर वह दे रहा है धुआँधार सिहरकार[1]।
जो चीर शक्को-शुभा को है जाता जिगर के पार ॥
हक[2]-ओ-दक सुकूत[3] में हैं पड़े हाज़रीं[4] तमाम।
हर दीदा शोलाबार[5] है ! बिजली है ख़ासो-आम ॥
वह तालियों की गूँज में इक दिल हुए तमाम।
वह मोतियों से आँख का छलके पड़ा है जाम[6] ॥
"गो आन, गो आन"[7]! कहते हैं सब अहले-ज़िंदगी[8]।
हड्डी से ख़ूँ से लिक्खेंगे तारीख़ हिंद की ॥
क्यों दाएँ और बाएँ से मुड़ जाएँ न आँखें।
जब रंग ही ऐसा हो तो जुड़ जाएँ न आँखें ॥
इस परदे पर है, ठेका में, इक लाख की बचत।
इस परदे पर है, सेठ को, दो लाख की बचत ॥
इस परदे पर है सिंह जवाँ ख़ूब लड़ रहा।
तन्हा है एक फ़ौज से क्या डट के अड़ रहा ॥
इस परदे पर जहाज़ हैं आते ख़ुशी-ख़ुशी।
मक़सद[9] मुराद दिल की हैं लाते ख़ुशी-ख़ुशी ॥
इस परदे पर तरक़्क़ी है रुतबा बढ़ा-बढ़ा।
इकदम है मेरे यार का दर्जा बढ़ा-चढ़ा ॥
इस परदे पर हैं सैरो-तमाशे[10] जहान के।

---

१. जादू की तरह असर करनेवाला। २. आश्चर्य, हैरान। ३. चुपचाप। ४. श्रोतागण। ५. सबकी आँखें अग्नि बरसानेवाली अर्थात् लाल हैं। ६. नेत्ररूप प्याला अर्थात् चक्षुओं से अश्रुपात हो रहे हैं। ७. आगे बढ़ो। आगे बढ़ो। ८. जानदार। ९. मंतव्य। १०. सैर और तमाशा।

इस परदे पर हैं नक़्शे - बहिश्तो-जुनान[1] के ॥
बिछड़े हुए मिले हैं, मुर्दे भी उठ खड़े हैं ॥
क्यों दाएँ से और बाएँ से मुड़ जाएँ न आँखें ।
जब रंग हों दिलख़्वाह[2] तो जुड़ जाएँ न आँखें ॥

अवधूत का सच्चा साम्राज्य

वाह! क्या ही प्यारा नक़्शा है, आँखों का फल मिला ।
उस सोहने नौजवान का जीना सफल हुआ ॥
महल उसका, जिसकी छत पै हैं हीरे जड़े हुए ।
क़ौसे-क़ज़ह[3] - ओ - अब्र[4] के परदे तने हुए ॥
मसनद[5] बलंद तख़्त है, पर्वत हरा-भरा ।
और शजरे-देवदार[6] का है चँवर झूलता रहा ॥
नग़मे[7]-सुरीले "ओ३म्" के हैं उससे आ रहे ।
नदियाँ परिंदे[8], बाद[9] हैं, वह सुर मिला रहे ॥
बेहोशो-हिस है गर्चि पड़ा खाल की तरह ।
दुनिया है उसके पैर को फ़ुटबाल[10] की तरह ॥
कैसी यह सल्तनत[11] है, अदू[12] का निशाँ नहीं ।
जिस जा[13] न राज मेरा हो ऐसा मकाँ नहीं ॥

---

१. स्वर्ग-नरक । २. मनोरंजक । ३. इंद्रधनुष । ४. बादल । ५. बैठने की जगह ऊँची । ६. देवदार के वृक्ष । ७. आवाज़, शब्द । ८. पक्षी । ९. वायु । १०. पाँवों से खेलने की गेंद । ११. बादशाहत, राज्य । १२. दुश्मन, शत्रु । १३. जगह ।

क्यों दाएँ से और बाएँ से मुड़ जाएँ न आँखें।
जब रंग हों दिलख्वाह तो जुड़ जाएँ न आँखें॥

माया सर्वरूप

माया का परदा फैला है क्या रंग-रंग में।
और क्या ही फड़फड़ाता है हर आबो-संग[1] में॥

इस परदे पर हैं झील[2], जज़ीरे[3], खलीजो-बहर[4]।
इस परदे पर हैं कोह[5]-ओ-बियाबाँ[6] दयारो-शहर[7]॥

सब पीर[8] सब जवान इसी परदे पर तो हैं।
बाशिंदे और मकान इसी परदे पर तो हैं॥

पैग़ंबर और किताब इसी परदे पर तो हैं।
सब खाको-आसमाँ इसी परदे पर तो हैं॥

पील[9], अस्प[10] और गुलाम इसी परदे पर तो हैं।
शाहंशाहों के शाह इसी परदे पर तो हैं॥

क्या झिलमिलाता परदा है यह अनकबूत[11] का।
दे है ख़्याल उगला हुआ काम सूत का॥

नक़्शो-निगार और परदा एक हैं

यह दो नहीं हैं, एक हैं, परदा कहो कि नक़्श।

---

१. पानी में, पत्थर में। २. सरोवर। ३. द्वीप। ४. खाड़ी और समुद्र। ५. पर्वत। ६. जंगल। ७. मुल्क और शहर। ८. वृद्ध, बुड्ढे। ९. हाथी। १०. घोड़े। ११. मकड़ी जो अपने मुँह से तंतु निकालकर जाला तनती है।

नक़शो-निगार[1] परदा हैं, परदा ही तो है नक़्श ॥
यह इस्तआरा[2] था, कि यह "माया के रूप" हैं।
"माया" कहो कि यूँ कहो यह "नाम-रूप" हैं ॥
"इस्मो[3]-शकल" ही "माया" हैं, "माया" हैं इस्मो-शक्ल।
हममानी[4] "माया" के हैं, यह सब रंग-रूप-शक्ल ॥

फ़िलसफ़ा[5]

परदा खड़ा है माया का यह किस मुक़ाम पर?
है यह सरोद[6] पर कि हवासे-अवाम[7] पर?

है भी कहीं कि मबनी[8] है यह वहमे-ख़ाम[9] पर।
क्या सच है, एस्तादा[10] है, यह मेरे 'राम' पर ॥

तात्पर्य—इँगलैंड प्रत्येक निवासी से आशा रखता है कि वह अपना कर्तव्य पूरा-पूरा पालन करे। इस प्रकार के वाक्य देखने में इँगलैंड को निवासियों से भिन्न प्रकट करते हैं। किंतु वास्तव में इँगलैंड कोई पृथक् वस्तु नहीं है जो इँगलैंड-निवासियों पर शासन कर रहा हो। इँगलैंड के

---

१. नाना प्रकार के रंग-रूप। २. अभिप्राय, लक्ष्य, दृष्टांत, तमसील। ३. नाम-रूप। ४. एक समान अर्थ। ५. दर्शनशास्त्र, तत्त्वज्ञान। ६. गान। ७. सब इंद्रियों। ८. आश्रित, सहारा लिए हुए। ९. कच्चा वहम अर्थात् कल्पित भ्रम। १०. खड़ा हुआ, अर्थात् आश्रित।

निवासी ही सामूहिक रूप से इँगलैंड से नामज़द हैं। विंदुओं का समूह ही समष्टि-रूप में रेखा कहलाता है।

रेखाओं ही की लब्धि समष्टि-रूप में सतह(surface)नाम पाती है, सतहों का तर-ऊपर समूह ही शरीर कहा जाता है।

इसी तरह श्रोताओं की कल्पनाओं का समूह ही यहाँ परदा कहा गया है, और मनुष्यों की व्यष्टि-रूप से भ्रांति या अविद्या ही मिलकर समष्टि-रूप से माया कहलाती है। माया आपकी भ्रांति, अविद्या या कल्पनाओं से पृथक् कोई शक्ति नहीं।

यह कल्पनाओं का आवरण श्रोताओं और बैंड बाजे के बीच में बाधक हो रहा है, और श्रोताओं तथा बैंड बाजा ही की बदौलत क़ायम है। किंतु जो लोग संगीत-विद्या में पारंगत हैं, वह इस परदे के पार देखते हैं। वह राग के उकसाए हुए विचार में चक्कर नहीं खाते, वरन् स्वयं राग को समझते और उसका आनंद लेते हैं। इसी प्रकार सामान्य पुरुष तो माया अर्थात् रंग, रूप, नाम, आकृति में उलझे रहते हैं, किंतु ज्ञानवान् नाम-रूप के गोरखधंधे को काट, भ्रम और कल्पना के पार, सच्चिदानंद का दर्शन करता है। ॐ

महले-परदा (दृष्टांत)

है इस तरफ़ तो शोर सरोदों[1] समा का ।
और उस तरफ़ है ज़ोर शुनीदन[2] की चाह का ॥
इन दोनों ताक़तों का वह टकराना देखिए ।
पुर ज़ोर-शोर लहरों का चकराना देखिए ॥
लहरें मिलीं मिटीं, ऐ लो ! पैदा हुए हुबाब[3] ।
यह बुलबुले ही बुर्क़ा[4] हैं, परदा बरूए[5]-आब ॥
मौजों ही का मुक़ाबला परदा का है महल[6] ।
मौजें हैं आब[7], कहते नहीं क्यों महल है जल ?
हाँ, यह तो रास्त[8] है कि सरोद और सामयीं[9] ।
दोनों मिले मिटे हैं, वह जल-रूप-राम[10] में ॥
और राम ही में परदा है नक़शो-निगार हैं ।
यह सब उसी की लहरों के, मौजों[11] के कार[12] हैं ॥

अहसासे-आम (दार्ष्टांत)

महसूस करनेवाली इधर से यह (आई) लहर ।
महसूस[13] होनेवाली उधर से (वह) आई लहर ॥

---

१. राग-रंग (आवाज़) । २. सुनना । ३. बुलबुला वा बुदबुदे । ४. परदा । ५. पानी के चेहरे पर अर्थात् पानी की तह पर । ६. अधिष्ठान वा आधार । ७. पानी, जल । ८ सच । ९. राग और सुननेवाले । १०. जल-रूपी राम में वा राम जो जल-रूपी है उसमें । ११. लहरें । १२. काम । १३. इंद्रियगोचर पदार्थों को भान करनेवाली वृत्ति वा भोक्ता पुरुष ।

दोनों के अक़दे[1]-शादी से पैदा हुए हुबाब[2] ।
यानी नमूद[3] अशिया[4] हुई पानी में झट शिताब[5] ॥
लहरें भी और बुलबुले सब एक आब हैं ।
इन सबमें राम आप ही रमते जनाब हैं ॥
माया तमाम इसकी है हर फ़ेल[6]-ओ-क़ौल में ।
मफ़ऊल, फ़ेलो-फ़ाइल[7] हैं हर डौल-डौल में ॥
आबशारों और फ़व्वारों की फुहारों की बहार ।
चश्मासारों, सब्ज़ाज़ारों[8], गुलइज़ारों[9] की बहार ॥
बहरो-दरिया[10] के झकोले और सबा[11] का खुशखराम[12] ।
मुझमें मुतसव्वर[13] हैं यह सब "ओम्" में (जैसे) कलाम[14] ॥
पसर[15] कर लेटा हूँ जग में, सुबह में और शाम में ।
चाँदनी में, रौशनी में, कृष्ण में और राम में ॥

राम मुबर्रा[16]

यह तो सब रास्त[17] है, बले[18] अज़ रूए[19]-ज़ात भी ।
देखो तो परदा नक़्श वग़ैरा न थे कभी ॥

---

१. विवाह की गाँठ या मेल । २. बुलबुला । ३. प्रकट, व्यक्त । ४. वस्तु, रूप । ५. शीघ्र । ६. काम और वचन । ७. करण, कर्म और कर्ता । ८. बाग़ इत्यादि । ९. पुष्प-जैसे कपोलवाले प्यारे । १०. समुद्र और नदी । ११. प्रातःकाल का वायु । १२. मटककर चलना । १३. कल्पित, आरोपित हैं । १४. शब्द, वाक्य । १५. फैलकर । १६. शुद्धस्वरूप राम । १७. सच । १८. किंतु । १९. वस्तुतः भी ।

है मौज[1] ही में रद्दो-बदल[2] जिसके बावजूद।
क़ायम है ज्यूँ का त्यूँ सदा इक आब[3] का वजूद॥
अज़ एतबारे-ज़ात[4] यह कहना पड़ा है आब।
पैदा ही कब हुए थे वह अमवाज[5] और हुबाब[6]॥
अज़ रूए-राम पूछो तो फिर वह निगारो-नक़्श।
माया वग़ैरह का कहीं नामो-निशानो-नक़्श॥
हरकत, सकून[7] और तग़य्युर[8] का काम क्या?
नुतक़ो[9]-ज़ुबाँ को दख़ल सिफ़ातों[10] का नाम क्या?

इक़बाल[11] कहाँ, अदबार[12] कहाँ याँ बेशी कमी को वार कहाँ।
याँ पुण्य कहाँ, और पाप कहाँ अरु मुझमें जीतो[13]-हार कहाँ॥
इक़रार कहाँ, इन्कार कहाँ, तकरार कहाँ, इसरार[14] कहाँ।
महसूस,हवास[15] अहसासकहाँ,ख़ाक[16],आबऔरबादो-नार[17] कहाँ॥
सब मर्कज़[18], मर्कज़, मर्कज़ है, इक तार[19] कहाँ, परकार[20] कहाँ।

परिणाम

ग़लताँ[21] है मुहीत बेपायाँ,[22] याँ वार कहाँ, और पार कहाँ?

---

१. लहर। २. बदलना इत्यादि। ३. जल। ४. वस्तु के लिहाज़ से कहना पड़ा। ५. लहर। ६. बुलबुला। ७. अस्थिरता व स्थिरता। ८. तब्दीली, विकार। ९. वाणी वा वाक्-इंद्रिय। १०. गुण। ११. विभूति, महिमा। १२. बोझ। १३. हार-जीत। १४. हठ, ज़िद। १५. स्पर्शइंद्रिय, पदार्थ। १६. पृथिवी। १७. वायु और अग्नि। १८. केंद्र। १९. पंक्तियें। २०. पंक्तियें डालनेवाला औज़ार। २१. पेच खाता हुआ ग़र्क़ या मग्न। २२. बेहद (अनंत) अहाता।

गंगा है कहाँ, और बाग़ कहाँ, है सुलह कहाँ, पैकार[1] कहाँ?
याँ नाम कहाँ और रूप कहाँ, अख़फ़ा[2] कहाँ, इज़हार[3] कहाँ?
नहीं एक जहाँ दो चार कहाँ, औ मुझमें सोच-विचार कहाँ?
माँ-बाप कहाँ, उस्ताद कहाँ? गुरु-चेले का याँ कार कहाँ?
एहसान कहाँ, आज़ार[4] कहाँ? याँ ख़ादिम[5] और सरदार कहाँ?
न ज़माँ[6] न मकाँ[7] का कभी था निशाँ, इल्लत[8] मालूल[9] (का) अज़कार[10] कहाँ?
नहीं ज़ेरो[11] - ज़बरे[12], पसो[13] - पेश कहाँ? तक़ती[14] और शेर-अशआर[15] कहाँ॥

इक नूर[16] ही नूर हूँ शोलाफ़िशाँ[17],
गुलज़ार[18] कहाँ और ख़ार[19] कहाँ?

लेक्चर तक़रीर उपदेश कहाँ? तहरीर[20] कहाँ, परचार कहाँ?
तप, दान और ज्ञान और ध्यान कहाँ? दिल बेबस सीनाफ़िगार[21] कहाँ?
नहीं शेख़ी शोख़ी आर[22] कहाँ? सिर टोपी या दस्तार[23] कहाँ?
नहीं बोली ताना धमकी यहाँ, सूफ़ार[24] कहाँ और दार[25] कहाँ॥

---

१. लड़ाई, जंग। २. पोशीदगी (अव्यक्त)। ३. व्यक्त, स्पष्ट। ४. दुःख। ५. नौकर। ६. काल। ७. देश। ८. कारण। ९. कार्य। १०. ज़िकर, चर्चा। ११. नीचे। १२. ऊँचे। १३. पीछे-आगे। १४. टुकड़े करना, कविता का वज़न बनाना। १५. कविता, नज़्म। १६. प्रकाश। १७. दमकनेवाला, यहाँ दमक मार रहा है। १८. बाग़। १९. काँटा। २०. लेख। २१. सीना फाड़नेवाला या ज़ख़्मी दिल। २२. लज्जा, हया। २३. पगड़ी। २४. तीर का मुँह। २५. सूली।

इक मैं ही, मैं ही, मैं ही हूँ;
शै ग़ैर[1] का दारोमदार कहाँ ?

आलायशे-क़ैदो-निजात[2] कहाँ, अवहामे-रसन और मार[3] कहाँ ?
घरबार कहाँ, कुहसार[4] कहाँ, मैदान कहाँ, और ग़ार[5] कहाँ ?
मह[6], अंजम[7], फ़र्श[8], और अर्श[9] कहाँ ? याँ ख़्वाब[10] कहाँ बेदार[11] कहाँ ?
जब ग़ैर[12] नहीं, डर ख़ौफ़ कहाँ, उम्मेद से हालते-ज़ार[13] कहाँ ?
मैं इक तूफ़ाने-वहदत[14] हूँ, कहो मुझमें इस्तफ़सार[15] कहाँ ?

इक मैं ही, मैं ही, मैं ही हूँ,
याँ बंदे[16] और सरकार[17] कहाँ ॥

---

१. अन्य वस्तु, भिन्न वस्तु। २. मुक्ति और बद्ध का लेश। ३. रस्सी और साँप की भ्रांति। ४. पर्वत। ५. कंदरा, गुफा। ६. चाँद। ७. तारे। ८. पृथिवी। ९. आकाश। १०. स्वप्न। ११. जाग्रत्। १२. अन्य। १३. रोने की दशा। १४. एकता का तूफ़ान। १५. प्रश्न करना व पूछना। १६. प्रजा, सेवक, गुलाम। १७. राजा, मालिक।